बैंकिंग

BANKING

लेखक

शंकर सहाय सक्सेना एम० ए०, एम० काम०

प्रिन्सिपल महाराणा कालेज उदयपुर

ग्राम्य अर्थशास्त्र, आर्थिक भूगोल, प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, भारतीय मज़दूर, भारतीय सहकारिता आन्दोलन आदि ग्रन्थों के रचयिता

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

प्रयाग

द्वितीय संस्करण] १९५० [मूल्य ४)

बैंकिंग

श्री भगवान दास केला

अध्यक्ष भारतीय ग्रन्थमाला

को

समर्पित

जिन्होंने आत्म निर्धनता को स्वीकार कर मातृभाषा
हिन्दी में अर्थशास्त्र तथा राजनीति साहित्य का
निर्माण किया, जिन्होंने एक साहित्यिक
तपस्वी का जीवन व्यतीत किया है
और जिनके स्नेह ने लेखक
को बांध लिया है ।

निवेदन

लेखक उन व्यक्तियों में से है जिनका विश्वास और मान्यता रही है कि उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर वह पिछले २० वर्षों से हिन्दी में अर्थशास्त्र और व्यापार सम्बन्धी साहित्य निर्माण करने में प्रयत्नशील है।

आज लेखक का स्वप्न सत्य होने जा रहा है। राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के उपरान्त देश अपने मस्तिष्क को भी विदेशी भाषा की दासता से मुक्त कर लेना चाहता है—यह शुभ लक्षण है। एक के बाद दूसरा विश्वविद्यालय हिन्दी को परीक्षा और शिक्षा का माध्यम स्वीकार करता जा रहा है; किन्तु हिन्दी में ऊँची परीक्षाओं के लिए प्रामाणिक ग्रन्थों का अभाव है। हिन्दी के प्रत्येक विद्वान् का यह कर्तव्य है कि वह मातृ-भाषा की इस कमी को पूरा करे।

प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई थी। हिन्दी में बैंकिंग पर कोई पुस्तक न होने के कारण इस विषय के विद्यार्थियों को इसके अध्ययन में कठिनाई हो रही थी अस्तु इस पुस्तक को लेकर उपस्थित हुआ यद्यपि यह पुस्तक बैंकिंग के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखी गई थी परन्तु लेखक ने इसे लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा कि वह साधारण पाठक को बैंकिंग का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए पर्याप्त हो।

पुस्तक में बैंकिंग के सिद्धान्तों और भारतीय बैंकिंग के सम्बन्ध में सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश कर दिया गया है। पारिभाषिक शब्दों को हिन्दी में देकर साथ ही कोष्टक में अंग्रेजी शब्द भी दे दिये गये हैं क्योंकि सम्भव है कि कुछ दिनों तक अध्यापकगण कालेजों में अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त अभी कुछ हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का अन्तिम रूप भी निर्धारित और सर्वप्रचलित नहीं हो पाया है।

पुस्तक का हिन्दी संसार में अच्छा स्वागत हुआ। अर्थशास्त्र के विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की और उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में कालेजों में इसका उपयोग किया गया अतएव पुस्तक का प्रथम संस्करण शीघ्र समाप्त हो गया।

पुस्तक के दूसरे संस्करण को लेकर उपस्थित होते हुए लेखक को हर्ष है। नवीन संस्करण में पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। भारत में बैंकों की असफलता अन्तर्राष्ट्रीय बैंक तथा भारत, ग्रामीण कृषि साख कारपोरेशन इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों पर पृथक् परिच्छेद जोड़ दिए गए हैं। अन्य परिच्छेदों में भी यथेष्ट संशोधन और परिवर्धन किया गया है। पुस्तक पहले से अधिक उपयोगी बनाने की पूरी चेष्टा की गई है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी में बैंकिंग विषय के गम्भीर अध्ययन करने में सहायक होगी।

शंकर सहाय सक्सेना

विषय-सूची

निवेदन

बैंकिंग के सिद्धान्त (Principles of Banking)

दूसरा भाग

भारतीय बैंकिंग

तीसरा भाग

अध्याय—१

बैंकिंग सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द

बैंक (अधिकोष) :—बैंक लेन-देन करने वाली संस्था को कहते हैं। जिस प्रकार एक व्यापारी वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता है ठीक उसी प्रकार बैंक द्रव्य (money) के उपयोग का लेन-देन करते हैं। वे सर्व साधारण से कम सूद पर रुपया लेते हैं और ऊँची दर पर उसे उधार दे देते हैं। लेन-देन ही वास्तव में इनका मुख्य धंधा है और इसी से उनको अधिकांश लाभ मिलता है। यह समाज के लिए और बहुत तरह से उपयोगी है जैसे आगे के अध्यायों में प्रकट होगा। आज बिना सुव्यवस्थित बैंकों के कोई भी देश व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति नहीं कर सकता। सच तो यह है कि आधुनिक व्यापार साख (Credit) पर निर्भर है। माल तैयार करने वाला (Maunfacturer) थोक व्यापारी (Wholesaler) को साख देता है और थोक व्यापारी खुदराफरोश (Retailer) को साख देता है। खुदराफरोश उपभोक्ताओं (Consumers) अर्थात् ग्राहकों को साख देता है। ये सब बिना बैंकों तथा अन्य लेन-देन करने वाली संस्थाओं के नहीं हो सकते। बैंक जनता के द्रव्य (money) का रक्षक है और जनता उससे ही साख पाने की आशा करती है।

जमा (Deposit):—जमा बैंक को दिया हुआ ऋण है जो उसने जमा करने वाले व्यक्तियों से एक निश्चित सूद पर और अदायगी सम्बन्धी कुछ शर्तों पर लिया है। जब कोई व्यक्ति अपना रुपया किसी बैंक में जमा करता है तो बैंक एक निश्चित सूद की दर पर और रुपया निकालने की कुछ शर्तों पर उसे स्वीकार करता है। जमा तीन प्रकार की होती हैं। (१) सेविंग बैंक हिसाब (Savings Bank Account) (२) मुद्दती जमा (Fixed-Deposit Account) (३) चालू खाता (Current Deposit Account)।

सेविंग बैंक खाता (Savings Bank Account) :—यह वह हिसाब है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी छोटी-छोटी बचत को बैंक में जमा कर सकता है। इस प्रकार का हिसाब सर्व साधारण में मितव्ययिता की आदत

डालने के लिए खोला जाता है। इस खाते में कोई भी व्यक्ति अपना, अपनी स्त्री के नाम का या बच्चों के नाम का हिसाब जिनका वह अभिभावक (Guardian) है, खोल सकता है। इस हिसाब की विशेष बात यह है कि एक निश्चित रकम से अधिक रुपया इसमें जमा नहीं किया जा सकता तथा सप्ताह में एक या किसी किसी बैंक में दो बार से अधिक नहीं निकाला जा सकता। अब कुछ बैंक सेविंग बैंक खाते वालों को भी चेक (Cheque) द्वारा रुपया निकालने की सुविधा प्रदान करते हैं। पोस्ट आफिस सेविंग बैंक हिसाब में कुल पाँच हजार रुपये से अधिक जमा नहीं किये जा सकते और सप्ताह में एक बार से अधिक रुपया नहीं निकाला जा सकता। परन्तु व्यापारिक बैंकों की जमा करने की रकम भिन्न भिन्न होती है।

मुद्दती जमा (Fixed Deposit) :—वह जमा होती है जिसमें बैंक के पास रुपया एक निश्चित समय के लिए रख दिया जाता है और उस निश्चित अवधि के समाप्त हुए बिना निकाला नहीं जा सकता। बैंक इस प्रकार की जमा पर कितना सूद देगा—यह जितने समय के लिए रकम जमा की गई है तथा बैंक की स्थिति पर निर्भर रहता है। साधारणतः मुद्दती जमा ६ महीने से लेकर तीन वर्षों तक के लिए होता है। रुपया जमा कर देने पर बैंक एक रसीद देता है। इस हिसाब की कोई पास बुक नहीं होती। यह रसीद हस्तान्तरित (Transfer) नहीं की जा सकती। जब कोई व्यक्ति रुपया जमा करता है उसी समय वह रुपया निकालने का नोटिस भी दे देता है क्योंकि जितनी अवधि के लिये रुपया जमा किया जाता है उतने समय पूर्व नोटिस दिये बिना रुपया नहीं निकाला जा सकता। बैंक की विशेष आज्ञा बिना निश्चित तारीख के पूर्व रुपया नहीं निकाला जा सकता। यदि रुपये को फिर जमा करना हो तो रसीद को निश्चित तारीख पर बैंक भेज देना चाहिए जिससे सूद की हानि न हो।

मुद्दती जमा की रसीद का नमूना

Due 20th March, 1949.

Imperial Bank of India—Fixed Deposit Receipt
No. 54/23 Bareilly 20th March, 1948.

Received from Professor Bhola Nath Sharma Rupees Five thousand only as Fixed Deposit repayable

twelve months after date with interest at the rate of three per cent per annum.

For the Imperial Bank of India,

P. Nixan,

Agent.

Entd.

Atma Ram,

Accountant.

B. O 12672

N. B.—Interest will cease at the expiration of the above period of 12 months, when this receipt must be sent in for renewal or payment endorsed by the depositor.

चालू खाता (Current Account) :— चालू खाता एक खुला हिसाब होता है । इसमें रुपया जमा करने वाला किसी भी समय रुपया जमा कर सकता है और निकाल सकता है । इस हिसाब पर अच्छे बैंक कोई सूद नहीं देते । यदि चालू खाता में एक निश्चित रक़म से रुपया कम हो जाता है तो जमा करने वाले को कुछ खर्च देना होता है । इम्पीरियल बैंक आव इन्डिया में कम से कम ५०० रुपये की रक़म रहनी चाहिए ।

जो भी व्यक्ति किसी बैंक में चालू खाता खोलना चाहता है उसे बैंक के किसी पुराने ग्राहक से बैंक को अपना परिचय करवा देना चाहिए । बैंक अजनबियों को अपना ग्राहक नहीं बनाता । पहली बार रुपया जमा करने पर ग्राहक को पास बुक, पे-इन बुक (रुपया जमा करने वाली किताब) तथा चेक बुक मिलती है ।

पास बुक :— बैंक के लेजर में लिखे हुए हिसाब की नक़ल होती है । कम से कम उसे महीने में एक बार बैंक भेजकर मिलवा लेना चाहिए । इम्पीरियल बैंक प्रत्येक ग्राहक को महीने के आरम्भ में उसका हिसाब एक पृथक् कागज पर भेजता है और यह हिसाब के पृथक् कागज़ एक फोल्डर में रक्खे जाते हैं ।

Pay in Book —इस किताब में कागज छपा हुई स्लिप होती है। जिन्हें पे इन स्लिप कहते हैं। जब चालू खाते में रुपया जमा करने के लिए बैंक भेजा जाता है तो वह पहले पे इन स्लिप पर दर्ज कर दिया जाता है। यदि कभी इस बात पर झगड़ा उठ खड़ा हो कि कितना रुपया जमा किया गया है तो इन स्लिपों से पता चल सकता है। यही इनका उपयोग है। जब रुपया जमा करने के लिए भेजा जाय तो साथ में पे इन स्लिप ठीक तरह से भर कर भेजना आवश्यक है। कुछ बैंकों में दो प्रकार की स्लिपें होती हैं। एक नकदी के लिए और दूसरी चेक ड्राफ्ट इत्यादि के लिए।

स्लिप की प्रतिलिपि (Counterfoil) पर बैंक का खजांची हस्ताक्षर कर देता है और रुपया जमा करने वाले को लौटा देता है।

चेक (Cheque) बुकः—इसमें १० से १०० चेक तक होते हैं। सब चेक एक ही डिज़ाइन, साइज और सूरत के होते हैं। चालू खाते में रुपया चेक के द्वारा ही निकाला जाता है। बैंक इसका मूल्य के ग्राहकों को चेक बुक देता है।

विनिमयसाध्यता (Negotiability)

विनिमयसाध्यता क्या है इसको एक उदाहरण से अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि कोई चोर आपकी घड़ी, सूट, रेडियो और पुस्तकें चुरा लेता है और उन वस्तुओं को किसी व्यक्ति को बेच देता है। वह व्यक्ति इन चीज़ों का मूल्य देकर खरीदता है उसको यह मालूम नहीं होता कि यह चोरी की चीज़ें हैं और वह अनजाने में उन चीज़ों को मूल्य देकर खरीद लेता है। अब यदि आपको उन चीज़ों का पता लग जाता है तो उन चीज़ों का खरीदार जिसने कि अनजाने में मूल्य देकर उन चीज़ों को खरीदा है उनको लौटाने से इनकार नहीं कर सकता। उसे कानून के अनुसार उन चीज़ों को वापस लौटाना होगा। लेकिन करंसी नोट, चेक या बिल या हुंडी के बारे में यह बात नहीं है। यदि मेरा १०० रुपए का नोट चोरी चला जाता है और चोर उस नोट को देकर किसी दूकानदार से १०० रुपए का सामान ले लेता है तो यदि मुझे मालूम भी हो जावे कि अमुक दूकानदार के पास मेरा नोट पहुँच गया है, मैं उस नोट को नहीं पा सकता। हां चोर के खिलाफ़ मैं कानूनी कार्यवाही कर सकता हूं। इसी प्रकार यदि मान लो कि तुम्हें कहीं से एक हजार रुपए का चेक मिला है। वह चोरी

चला जाता है। चोर किसी से एक हज़ार रुपये लेकर उसके पक्ष में तुम्हारे नाम से बेचान (Endorsement) कर देता है। बैंक के पास तुम्हारे हस्ताक्षर तो हैं नहीं, उसके पास अपने ग्राहक अर्थात् रुपया जमा करने वाले के हस्ताक्षर होते हैं। ऐसी दशा में वह तुम्हारे नाम के जाली हस्ताक्षरों को न पहचान कर एक हज़ार रुपये उस चेक को खरीदने वाले को दे देता है तो फिर तुम उस व्यक्ति (चेक खरीदने वाले) से अपना रुपया वसूल नहीं कर सकते। कारण यह है कि करंसी नोट, तथा चेक विनिमय-साध्य पुर्ज़े (Negotiable instrument) हैं। इस प्रकार बिल और हुंडी भी विनिमयसाध्य पुर्ज़े हैं। इनका कारबार विनिमय साध्य पुर्ज़ा कानून द्वारा निश्चित होता है। इस कानून के अनुसार जब तक कि उस पुर्ज़े पर किसी का नाम नहीं है वह न तो मुक़दमा चला सकता है और न उस पर मुक़दमा चलाया जा सकता है।

चेक (Cheque) या धनादेश :—वह शर्तरहित आज्ञा है जो किसी बैंक को दी जाती है जिसके द्वारा बैंक की एक निश्चित रकम किसी व्यक्ति विशेष अथवा उसकी आज्ञानुसार किसी व्यक्ति को अथवा आज्ञा (चेक) को ले जाने वाले को माँगने पर देनी होती है।

ऊपर लिखी हुई चेक की परिभाषा का विश्लेषण करने पर चेक के नीचे लिखे गुण मालूम पड़ते हैं :—(१) वह शर्त रहित आज्ञा है। (२) वह एक लिखित पुर्ज़ा होता है। (३) उस पर लिखने वाला हस्ताक्षर करता है। (४) वह किसी बैंक विशेष पर ही काटा जाता है। (५) उसकी रकम निश्चित होती है (६) उसका भुगतान माँगने पर तुरन्त किया जाता है (७) उसका भुगतान उस व्यक्ति को जिसका उसमें नाम लिखा है अथवा उसकी आज्ञा-नुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा उसे ले जाने वाले (Bearer) को किया जाता है। कोई भी हुंडी पुर्ज़ा जिसमें ऊपर लिखी हुई कोई एक बात न हो चेक नहीं कहा जावेगा।

चेक में तीन पक्ष होते हैं :—(१) चेक काटने वाला (Drawer) अर्थात् जो चेक लिखता है और जिसका बैंक में हिसाब होता है। (२) जिस बैंक पर चेक काटा जाता है उसे Drawee कहते हैं (३) और जिसके पक्ष में चेक काटा जाता है अर्थात् जिसे रकम मिलती है उसे Payee कहते हैं। कभी-कभी चेक काटने वाला (Drawer) स्वयं रक़म पाने वाला (Payee) बन जाता है जब वह स्वयं अपने पक्ष में (To Self) चेक काटता है।
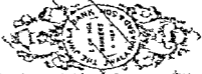
चेक फार्म :—इसके दो भाग होते हैं। चेक और उसकी प्रतिलिपि (Counterfoil)। प्रतिलिपि आगे के हवाले के लिए चेक बुक में ही रहती है और चेक फाड़कर रक़म पाने वाले को दे दिया जाता है।

सब चेकों पर तथा उनकी प्रतिलिपियों पर नम्बर पड़े होते हैं। बैंक तथा उसकी ब्रांच का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में छपा रहता है। तारीख के लिए जगह छुटी होती है। चेक काटने वाले को नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

तारीख :—जिस तारीख को चेक लिखा गया हो ठीक वही तारीख चेक पर डालनी चाहिए। अगली तारीख वाले अर्थात् उत्तरतिथीय चेक (Postdated cheque) को बैंक उस तारीख के आने तक भुगतान नहीं करेगा। परन्तु पूर्वतिथीय चेक (Ante-dated cheque) अर्थात् पिछली तारीख पड़े हुए चेक का भुगतान करने में बैंक को कोई भी आपत्ति न होगी यदि वह ६ महीने पुराना न हो। ६ महीने पुराने चेक को पुराना चेक (Stale cheque) कहते हैं। यदि चेक पर कोई तारीख न पड़ी हो तो बैंक उस पर ठीक तारीख डाल सकता है। किन्तु व्यवहार में बैंक ऐसे चेक को अधूरा (Incomplete) कह कर लौटा देता है।

रक़म :—रक़म साफ-साफ अक्षरों और अंकों दोनों में ही देना चाहिए जिससे इस सम्बन्ध में कोई संदेह न रहे और न जालसाज़ी की सम्भावना रहे। चेक में रक़म बढ़ाने के लिये लिखते समय तनिक भी स्थान न छोड़ना चाहिए। अंकों और अक्षरों में लिखी हुई रक़म में कोई अन्तर न रहना चाहिए नहीं तो बैंक उसका भुगतना करने से इन्कार कर देगा और उस चेक पर लिख देगा कि "शब्द और अंक नहीं मिलते"।

हस्ताक्षर :—हस्ताक्षर करते समय भी चेक काटने वाले को सावधानी से हस्ताक्षर करना चाहिए। हस्ताक्षर उस हस्ताक्षर से भिन्न नहीं होना चाहिए जो उसने हिसाब खोलते समय बैंक की हस्ताक्षर बही (Autograph Book) में किये थे। यदि हस्ताक्षर की लिखावट में तनिक भी अंतर हुआ तो बैंक चेक को अस्वीकार कर देगा।

प्रतिलिपि :—चेक बुक में से चेक फाड़ने से पहले उसकी प्रतिलिपि (Counterfoil) भर लेनी चाहिये। तारीख, पाने वाले का नाम, जिस हिसाब के सम्बन्ध में भुगतान किया जा रहा है उसका उल्लेख, रक़म, उसमें अवश्य लिखनी चाहिये। चेक काटनेवाले को प्रतिलिपि पर भी हस्ताक्षर करना चाहिये।

चेक की किस्में :—चेक विनिमयसाध्यता (Negotiability) की दृष्टि से दो तरह के होते हैं। (१) धनी जोग या वाहक चेक (Bearer cheque) (२) या शाह जोग चेक (Order cheque)

धनी जोग चेक (Bearer cheque)—जो बिना बेचान (Endorsement) किये ही विनिमय साध्य (Negotiable) बनाया जा सके। बेयरर चेक या धनी जोग चेक रखने वाला बैंक में जाकर उसका भुगतान माँग सकता है। इस चेक को चलाने के लिए उसे किसी आदमी को दे देना ही काफी है। जिसके पास बेयरर चेक होगा उसी को बैंक भुगतान दे देगा। यद्यपि कानूनके अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि जिसके पास चेक है उसका भुगतान लेते समय भुगतान लेने वाला हस्ताक्षर करे किन्तु व्यवहार में बैंक बिना हस्ताक्षर कराये रुपया नहीं देता।

आर्डर चेक या शाह जोग चेक:—(Order cheque) वह है जिसे चलाने के लिए बेचान (Endorsement) करना पड़ता है। जिसको यह चेक दिया जाता है वह उसका मालिक तब तक नहीं होता जब तक कि देने वाला हस्ताक्षर करके उसके पक्ष में बेचान (Endorsement) नहीं कर देता। अतएव आर्डर चेक को चलाने के लिये केवल चेक को किसी को दे देना ही काफी नहीं है वरन् उसके पक्ष में बेचान करना भी आवश्यक है। यदि कोई चेक किसी व्यक्ति विशेष के पक्ष में काटा गया हो लेकिन उसके आगे (or bearer या or order) न लिखा हो—उदाहरण के लिए "Pay to Mr. Rama Krishna" तो वह आर्डर या शाह जोग चेक माना जावेगा। आर्डर चेक को बेयरर चेक केवल चेक काटने वाला (Drawer) ही बना सकता है। उसे इस परिवर्तन पर हस्ताक्षर करने होते हैं।

बेचान करना (Endorsement) :—किसी विनिमयसाध्य पुर्जे (Negotiable Instrument) अर्थात् चेक, हुन्डी, तथा प्रामिसरी नोट की पीठ पर हस्ताक्षर करने को बेचान करना (Endorsement) कहते हैं। पुर्जे की पीठ पर हस्ताक्षर करने का उद्देश्य उसका स्वामित्व अन्य किसी को हस्तांतरित कर देना है। जो व्यक्ति पुर्जे की पीठ पर हस्ताक्षर करता है उसे बेचान करने वाला (Endorser) और जिसके पक्ष में बेचान किया जाता है उसे (Endorsee) कहते हैं। पहला हस्ताक्षर रुपये पाने वाले (Payee) का होता है।

बेचान का रूप :—रकम पाने वाले (Payee) को चेक पर उसी तरह अपने हस्ताक्षर करना चाहिये जिस तरह चेक काटने वाले ने उसका नाम लिखा हो। यदि लिखने वाले ने उसका नाम गलत लिखा हो तो भी उसे अपने हस्ताक्षर उसी तरह से करना चाहिए जैसा कि उसने लिखा हो। ऐसी दशा में यह अधिक अच्छा होगा कि हस्ताक्षर करने वाला पहले तो जैसा उसका नाम लिखा हो वैसे ही हस्ताक्षर करे और उसके नीचे जिस प्रकार वह हस्ताक्षर करता है वैसे हस्ताक्षर कर दे। यदि चेक पर बेचान (Endorsement) ठीक नहीं होगा तो जिस बैंक पर वह काटा गया है उसका भुगतान करने से इन्कार कर देगा। नीचे ठीक बेचान के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

रकम पाने वाला (Payee)	गलत बेचान (Irregular Endorsement)	ठीक बेचान (Regular Endorsement)
व्यक्ति Individuals		
महात्मा गाँधी	महात्मा गांधी	मोहन दास कर्मचंद गाँधी
सेठ चिरंजी लाल	सेठ चिरंजी लाल	चिरंजी लाल
डाक्टर गिरवर सहाय सक्सेना	डाक्टर गिरवर सहाय सक्सेना	गिरवर सहाय सक्सेना डी. लिट.
देशरत्न बा० राजेन्द्रप्रसाद	देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद	राजेन्द्र प्रसाद
स्त्रियां— श्रीमती दस्तूर (Mrs. Dastur)	श्रीमती दस्तूर (Mrs. Dastur)	मोहनी दस्तूर श्री हीरालाल दस्तूर की पत्नी (Mohini Dastur wife c H. Dastur)
कुमारी बोस (Miss Bose)	कुमारी बोस (Miss Bose)	कमला बोस (Kamla Bose)
कुमारी दिनेशनन्दनी चोरडिया (अब विवाहित हो गई)		दिनेशनन्दनी डाल[illegible] (अविवाहित समय का न[illegible] दिनेशनन्दनी चोरडिया) Dinesh Nan[illegible] Dalmia (Vice-Chordia)

रकम पाने वाला (Payee)	गलत बेचान (Irregular Endorsement)	ठीक बेचान (Regular Endosement)
संस्थायें—		
बरेली कालेज, बरेली	मदन मोहन, प्रिंसिपल, बरेली कालेज, बरेली	बरेली कालेज के लिए मदन मोहन प्रिंसिपल
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	मौलिचद्र शुक्ल, मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए मौलिचन्द्र शुक्ल, मन्त्री
अशिक्षित व्यक्ति—		
बनवारी लाल		बनवारी लाल के अगूठे का निशान............ गवाही.. ....
फर्म (साझेदारी)—		
सक्सेना ब्रदर्स.. . .	जगदम्बा सहाय सक्सेना	सक्सेना ब्रदर्स या सक्सेना ब्रदर्स के लिए जगदम्बा सहाय सक्सेना पार्टनर (साझीदार)
मेसर्स श्रीराम मेहरा	श्री राम मेहरा	श्री राममेहरा एन्ड क०
कंपनियां—		
जगत बैंक लिमिटेड	जीवन लाल सेक्रेटरी, जगत बैंक लि०	जगत बैंक लि० के लिए और उसके बदले जीवन लाल सेक्रेट्री
इंडिया कंपनी लि०..	विमलचद्र दास एण्ड कंपनी, मैनेजिंग एजेंट	इन्डिया कंपनी लि० के लिए विमल चन्द्र दास एन्ड कंपनी— मैनेजिंग एजेंट
एग्जिक्यूटर (Execu[tors]) तथा प्रबन्धकर्ता [A]dministrators)		
[बी]० सी. राय (स्वर्गवास [हो] गया)	ए० एन राय	स्वय अपने लिए तथा स्वर्गीय बी० सी० राय

रकम पाने वाला (Payee)	गलत बेचान (Irregular Endorsement)	ठीक बेचान (Regular Endorsement)
B. C. Roy (Now deceased)	A. N. Roy.	की जायदाद का सह-एक्जिक्यूटर (Co-executor) ए० एन० राय (For self and (Co-executor of the estate of late B. C. Roy-A. N. Roy)
ट्रस्टी (Trustees) रामनारायण तथा भजन-लाल स्वर्गीय बालमुकुंद की जायदाद के ट्रस्टी (Ram Narain and Bhajan Lal Trustees of the estate of the late Bal-Mukand	रामनारायण भजनलाल	राम नारायण लाल भजन लाल स्वर्गीय बाल मुकुन्द की जायदाद के ट्रस्टी । Ram Narain Lal and Bhajan Lal Trustees of the estate of late Bal-Mukand.

बेचान की किस्में :—चेकों पर साधारणतः चार तरह के बेचान होते हैं ।

(१) कोरा या साधारण बेचान (Blank or General Endorsement)

(२) पूर्ण या विशेष बेचान (Full or Special Endorsement)

(३) प्रतिबन्ध युक्त बेचान (Restrictive Endorsement)

(४) बिना ज़िम्मेदारी के बेचान (Sans Recourse Endorsement)

कोरा या साधारण बेचान :—वह होता है जिसमें हस्ताक्षर करने वाला केवल अपने हस्ताक्षर कर देता है और किसी व्यक्ति का नाम लिखकर उसको चेक हस्तान्तरित नहीं करता। इस प्रकार के बेचान का प्रभाव यह पड़ता है कि चेक बेयरर बन जाता है और उसको चलाने के लिए उस पर फिर हस्ताक्षर नहीं करने पड़ते। आर्डर चेक पर कोरा बेचान कर देने से वह बेयरर चेक बन जाता है।

पूरा या विशेष बेचान :—वह है जिसमें हस्ताक्षर करने वाला अपने हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त व्यक्ति का नाम भी लिख देता है जिसे वह चेक देना चाहता है।

उदाहरण के लिये .—Pay to Ram Lal or order
Shankar Sahai Saxena.

अब इस चेक पर फिर रामलाल के हस्ताक्षरों की आवश्यकता होगी जब वह इसका भुगतान लेना चाहेंगे या और किसी को देना चाहेंगे।

प्रतिबंधयुक्त बेचान : यदि शंकर सहाय सक्सेना इस चेक पर "केवल रामलाल को भुगतान कीजिए Pay to Ram Lal only" लिख दें तो फिर रामलाल उसको आगे हस्ताक्षर करके नहीं चला सकते। इसे प्रतिबंध-युक्त बेचान कहते हैं।

बिना ज़िम्मेदारी के बेचान :—जब बेचान करने वाला चेक के अस्वीकृत (Dishonour) हो जाने पर उसकी ज़िम्मेदारी या दायित्व (Liability) अपने ऊपर नहीं लेना चाहता तो वह बिना ज़िम्मेदारी के बेचान करता है। उदाहरण के लिए :—

बिना ज़िम्मेदारी के प्रेमनारायण	Sans Recourse Prem Narain

या

Without Recourse to me
Prem Narain

रेखांकित चेक (Crossed cheques) :—रेखांकित चेक वह होता है जिस पर दो समानांतर तिरछी रेखायें खिंची हों। उसमें चाहे कुछ लिखा हो (& Co.) या कुछ भी न लिखा हो। इसका अर्थ यह होता है कि इस चेक का भुगतान केवल किसी बैंक को ही मिल सकता है। अर्थात् यदि किसी को रेखांकित चेक मिले तो उसे उस चेक का भुगतान प्राप्त करने के लिए उस चेक को किसी बैंक को देना होगा। अर्थात् रेखांकित चेक का भुगतान किसी

बैंक के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। रेखांकन (Crossing) दो प्रकार की होती है (१) साधारण (General (२) विशेष (Special)

साधारण रेखांकन (General Crossing) :—यह होता है कि जिसमें चेक पर दो तिरछी समानांतर रेखाएँ खिन्चीं हों और उनके अन्दर या तो कुछ नहीं लिखा जाता या "& Co" इत्यादि शब्द लिखे जाते हैं। इस तरह के रेखांकन का अर्थ यह होता है कि उस चेक का भुगतान किसी बैंक को ही दिया जा सकता है किसी व्यक्ति को उसका भुगतान नहीं किया जावेगा। पाने वाला (Payee) उस बैंक का भुगतान बैंक जाकर स्वयं नहीं पा सकता। उसे इस प्रकार का चेक किसी बैंक को देना होगा वही उसका भुगतान पा सकेगा। क्योंकि चेक कानूनन ग्राह्य (Legal Tender) नहीं है इस कारण पाने वाला (Payee) रेखांकित चेक लेना अस्वीकार कर सकता है।

रेखांकन के उदाहरण

साधारण रेखांकन

- & Co
- Not Negotiable
- A/C Payee only
- Not Negotiable & Co

विशेष रेखांकन

- United Commercial Bank, Ltd.
- The Bharat Bank, Ltd.
- Not Negotiable Jaipur Bank, Ltd.
- A/C Payee only The Imperial Bank of India
- Bareilly Corporation Bank, Ltd A/C New Standard Bank, Ltd.

विशेष रेखांकन (Special Crossing) :—यह होता है जिसमें दो तिरछी रेखाओं के बीच में किसी बैंक विशेष का नाम दे दिया गया हो। इसका अर्थ यह है कि चेक का भुगतान नामांकित बैंक के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। जिस बैंक पर चेक काटा गया है वह इस प्रकार के चेक का भुगतान केवल उसी बैंक को करेगा जिसका नाम रेखाओं के बीच में किया गया है। अधिकतर इस प्रकार का रेखांकन पाने वाले के अनुरोध पर किया जाता है जिसमें चैक अधिक सुरक्षित हो जावे।

(& Co) :—रेखाओं के बीच में इन शब्दों के लिखने का कोई महत्त्व नहीं है। यह केवल एक पुरानी परिपाटी है जो आज भी प्रचलित है।

अविनिमय साध्य (Not Negotiable) :—"Not Negotiable" शब्द साधारण रेखांकन और विशेष रेखांकन दोनों में ही काम आता है। इनके लिख देने से चैक की विनिमय साध्यता की सीमा निर्धारित हो जाती है। जिस चेक पर अविनिमय साध्य रेखांकन (Not Negotiable Crossing) हो वह केवल उन्हीं के हस्ताक्षरों से हस्तांतर किया जा सकता है जो जाने बूझे हों। इस रेखांकन का अर्थ यह है कि जिसके नाम यह चैक हस्तांतर किया जावेगा उसका अधिकार (Title) हस्तांतर करने वाले (Transferor) से किसी भी प्रकार अच्छा नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में यदि हस्ताक्षर करने वाले का अधिकार दूषित है तो जिसे चैक हस्तांतर किया जावेगा उसका भी अधिकार दूषित होगा। इसके विपरीत साधारणतः यदि कोई व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति से विनिमय साध्य पुर्जा (Negotiable Instrument) नेकनियती से मूल्य देकर ले लेता है तो उसका उस चैक पर दोषरहित अधिकार (Good title) होगा फिर चाहे जिस व्यक्ति से उसने चैक लिया हो।

केवल पाने वाले के हिसाब में जमा करो (Account Payee

only) :—यह भुगतान वसूल करने वाले बैंक को आज्ञा है कि वह इस चैक का रुपया वसूल करके पाने वाले के हिसाब में ही जमा करे उसे नकद रुपया न दे दे।

खुला चैक (Open Cheque) :—जो चैक रेखांकित नहीं होता उसे खुला चैक कहते हैं। चैक को रेखांकित करने का उद्देश्य यह होता है कि यथार्थ पाने वाले (Payee) को ही रुपये का भुगतान हो। खुला चैक बैंक में ले जाने पर उसका भुगतान दिया जाता है। इसलिए यदि खुला चैक चोरी चला जावे तो उस पर कोई रोक-थाम नहीं होता। जब चैक डाक से भेजा जावे तो उसे अवश्य रेखांकित कर देना चाहिए।

रेखांकन कौन कर सकता है :—चैक काटने वाला (Drawer) अथवा अन्य कोई व्यक्ति जिसे वह चैक मिले उसे साधारणतः अथवा विशेष रेखांकित कर सकता है। यदि कोई चैक साधारणतः रेखांकित (Crossed Generally) हो तो अगला व्यक्ति उस पर विशेष रेखांकन (Special Crossing) कर सकता है। यदि चैक पर विशेष रेखांकन हो तो अगला व्यक्ति उसमें "Not Negotiable" शब्द जोड़ सकता है। परन्तु यदि चैक पर विशेष रेखांकन किया गया हो तो वह बैंक जिसके पक्ष में रेखांकित किया गया है अपने एजेंट दूसरे बैंक के नाम उस चैक को विशेष रूप से रेखांकित कर सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि कानून के द्वारा विशेष रेखांकन (Special Crossing) दुबारा केवल उस दशा में हो सकता है जब कि एक बैंक अपने एजेंट दूसरे बैंक के पक्ष में उसे करता है।

यदि बैंक रेखांकन की परवाह न करे, रेखांकित चैक का रुपया गलती से किसी अन्य पुरुष को दे दे, तो वह चैक के असली स्वामी के प्रति उत्तरदायी होगा। यदि रेखांकित चैक पाने वाले का बैंक में कोई हिसाब नहीं है तो चैक की रकम प्राप्त करने के लिए उसे चाहिए कि वह अपने हस्ताक्षर द्वारा उसके स्वामित्व को किसी ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरित कर दे जिसका हिसाब किसी बैंक में हो।

बैंक का चैक पर चिह्न (Bankers mark on cheques):— जब कोई चैक जो भुगतान के लिए बैंक में लाया गया हो लेकिन बैंक उसका

भुगतान करना अस्वीकार कर दे तो उस चैक पर अस्वीकार करने के कारणों का उल्लेख कर दिया जाता है। इस प्रकार के चिह्न वापस किये जाने वाले चैक के सिरे पर बाईं तरफ लिखे जाते हैं। भिन्न-भिन्न चिह्नों के विषय में यहाँ कुछ लिखना आवश्यक है।

(१) R/D चैक काटने वाले से पूछिये (Refer to Drawer):- यह चिह्न तब लिखा जाता है जब कि चैक काटने वाले के हिसाब में यथेष्ट रुपया नहीं होता।

(२) भुगतान रोक दिया (Payment Stopped):—यदि चैक काटने वाला चैक काटने के उपरान्त बैंक को यह सूचित कर दे कि उक्त चैक का भुगतान न किया जाय तब बैंक उस चैक पर यह चिह्न लगा कर वापस कर देगा।

(३) (Effects not cleared):—उस समय लिखा जाता है जब कि वापस किये जाने वाले चैक के काटने वाले ने जो चैक इत्यादि जमा किए हैं उनका रुपया अभी तक बैंक ने वसूल नहीं कर पाया है और चैक काटने वाले, के हिसाब में चैक का भुगतान करने के लिए यथेष्ट रुपया नहीं है।

(४) अगली तारीख वाले चैक (Post dated cheque):— जिस चैक पर अगली तारीख पड़ी है उस पर Post dated cheque लिख कर वापस कर दिया जाता है।

(५) पुराना चैक (Out of date) :—जो चैक ६ महीने से अधिक पुराना है उस पर पुराना चैक (Out of date) लिख कर वापस कर दिया जाता है।

(६) चैक लिखने वाले के हस्ताक्षर नहीं मिलते : यदि चैक काटने वाले के हस्ताक्षर नहीं मिलते तो चैक "Drawer's Signatures differ" लिख कर वापस कर दिया जाता है।

(७) बेचान की प्रामाणिकता की आवश्यकता है (Endorsementrequires confirmation) :—जब कि किसी चैक पर बेचान ठीक न हो तो बैंक उस पर ऊपर लिखा चिह्न लगाकर वापस भेज देता है।

(८) परिवर्तन की प्रामाणिकता की आवश्यकता है (Alteration requires confirmation) :—यदि कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन चैक में किया जाए और उस पर हस्ताक्षर न हो तो बैंक उस पर ऊपर लिखा चिह्न लगाकर वापस भेज देगा।

सुपुर्दगीदार के नाम अदालत का हुक्म (Garnishee order) :—यदि बैंक के ग्राहक पर डिगरी हो गई हो और डिगरी से देनदार (Judgment debtor) हो तो अदालत उसके बैंक एकाउंट पर कानूनी रोक लगा सकती है और बैंक को आज्ञा दे सकती है कि वह उसके द्वारा कटे हुए चैकों का भुगतान रोक दे। इस प्रकार की आज्ञा को अदालत की आज्ञा या (Garnishee order) कहते हैं।

पुराना चैक (Stale cheque) :—जो चैक ६ महीने से अधिक पुराना हो उसे पुराना चैक (Stale cheque) कहते हैं। इस प्रकार के चैक का बैंक बिना चैक काटने वाले (Drawer) से पूछे भुगतान नहीं करेगा।

चिह्नित या प्रमाणित चैक (Marked cheque):—वह होता है जिस पर बैंक हस्ताक्षर कर देता है, जिसका तात्पर्य यह होता है कि जिस दिन चैक बैंक के हस्ताक्षरों के लिए उपस्थित किया गया था उस दिन चैक काटने वाले के हिसाब में यथेष्ट रुपया था। चैक काटने वाले (Drawer), दूसरे बैंक, या चैक जिसके पास है (Holder) उसकी प्रार्थना पर चिह्नित (Mark) किया जा सकता है। यह निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि यदि इस प्रकार का चिह्नित या प्रमाणित चैक उचित समय के अन्दर भुगतान के लिए उपस्थित नहीं किया जाता तो बैंक उस चैक के भुगतान के लिए रुपया अलग रख लेने के लिए विवश है।

फटा या विकृत चैक (Mutilated cheque) :—फटा या विकृत चैक वह होता है जो कि फट गया हो। इस प्रकार का चैक बैंक द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता; जब तक कि उसके सिरे पर "अकस्मात फट गया" "Accidently Torn" न लिख लिया जावे और उस पर हस्ताक्षर न कर दिये जावें।

बैंक का खर्चा (Bank charge): —बैंक के खर्चे में जमा से अधिक निकाले गए रुपये पर सूद, चैक, बिल, तथा डिवीडैंड वारैंट पर बैंक का कमीशन तथा अन्य सम्बन्धित खर्चे सम्मिलित होते हैं। हिन्दोस्तान में बैंक अधिकतर उन चैकों पर जो दूसरे शहरों में स्थित बैंकों पर काटे गए हैं से ६ आना सैकड़ा कमीशन लेते हैं। बैंक ड्राफ्ट और तार की हुंडी (TelegraphicTransfer) देने पर भी बैंक अपना कमीशन लेता है।

बैंक ड्राफ्ट (Bank-Draft) :—बैंक ड्राफ्ट एक चैक है जो बैंक अपनी शाखाओं अथवा अन्य बैंकों पर काटता है। उस चैक में अर्थात् बैंक ड्राफ्ट में उल्लिखित व्यक्ति को एक निश्चित रकम देने की प्रार्थना करता है।

बैंक ड्राफ्ट द्वारा रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से भेजा जा सकता है। उसका उपयोग वे लोग भी करते हैं जिनका बैंक में हिसाब नहीं होता। यदि किसी व्यक्ति को पटना से कलकत्ता कुछ रुपया भेजना हो तो वह उतना रकम तथा बैंक का कमीशन देकर कलकत्ते के किसी बैंक पर बैंक ड्राफ्ट ले सकता है। साथ ही बैंक ड्राफ्ट में जालसाज़ी की भी कोई संभावना नहीं होता क्योंकि जिस बैंक पर ड्राफ्ट लिखा जाता है उसको रक़म से पहले ही सूचित कर दिया जाता है।

यदि कोई व्यक्ति जिसका बैंक एकाउंट हो अपने किसी लेनदार (Creditor) को रुपया अदा करना चाहे तो वह चैक काट कर उसके पास भेज सकता है। लेकिन जिसका बैंक एकाउंट नहीं है वह ऐसा नहीं कर सकता लेकिन वह बैंक ड्राफ्ट खरीद कर अपने लेनदार के पास भेज सकता है। जब देश के अन्दर बैंक ड्राफ्ट खरीदा जाता है तो प्रति सैकड़ा थोड़ा सा कमीशन (२ आने) बैंक को देना पड़ते हैं। लेकिन विदेशों के लिए बैंक ड्राफ्ट खरीदते समय कमीशन विनिमय दर (Exchange Rate) में ही सम्मिलित कर लिया जाता है।

तार की हुंडी (Telegraphic Transfer) :—बैंकों के द्वारा द्रव्य टैलीग्रैफिक ट्रांसफर अर्थात् तार की हुंडी के ज़रिये भी विदेशों को भेजा जाता है। द्रव्य भेजने वाला रक़म, कमीशन, और भेजने का व्यय बैंक के पास जमा कर देता है, और बैंक अपनी शाखा अथवा दूसरे किसी बैंक को तार द्वारा सूचित कर देता है कि उतनी रक़म रुपया जमा करने वाले द्वारा बतलाये हुए व्यक्ति को दे दी जाय।

बैंक ऋण और ओवर ड्राफ्ट (Bank loans and over Draft) :—व्यापार में व्यापारी को किसी विशेष सौदे के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ सकती है, या फिर अपने बढ़ते हुये व्यापार को सम्हालने के लिए उसे अधिक पूँजी की आवश्यकता हो सकती है। यदि उसके पास अधिक द्रव्य न हो तो उसे ऋण लेना पड़ सकता है। वह उस दशा में अपने बैंक से ऋण ले सकता है। यदि वह ऋण के लिये यथेष्ट ज़मानत दे सके तो उसे ऋण मिलने में तनिक भी कठिनाई न होगी।

बैंक से ऋण लेने के दो तरीके हैं :—

(१) एक तरीका यह है कि बैंक व्यापारी के चालू खाते (Current Account) में उतनी रक़म जमा कर दे और उसके नाम से एक ऋण खाता (Loan Account) खोल कर उसमें उतनी रक़म

नामें माड़ दे (Debit) । ऐसी दशा में पूरे ऋण पर सूद लिया जाता है।

(२) दूसरा तरीका यह है कि व्यापारी बैंक से यह तय कर ले कि व्यापारी अपने चालू खाते पर उतनी रकम तक चैक काट सकेगा जितनी तय हो चुकी है (यह रकम उसके रुपये जो कि चालू खाते में जमा हो उसके ऊपर होगी) सूद प्रति दिन के बैलेंस पर लगाया जाता है। यह बैंक ओवर ड्राफ्ट कहलाता है। ओवर ड्राफ्ट का अर्थ यह है कि व्यापारी ने जितनी रकम के चैक (अपनी जमा की हुई रकम के ऊपर) काटे हैं और बैंक ने उसका भुगतान किया है उतनी रकम के लिए व्यापारी बैंक का ऋणी है।

साख पत्र (Letter of credit) :—यह एक पत्र होता है जो एक बैंक दूसरे बैंक अथवा एक से अधिक बैंकों को लिखता है जिसमें बताये हुए व्यक्ति को एक निश्चित रकम देने की प्रार्थना होती है। जब कोई व्यक्ति किसी अन्य स्थान को जाये और साथ में रुपया न रखना चाहे तो वह किसी भी स्थानीय बैंक को उतनी रकम तथा कमीशन देकर उस स्थान के किसी बैंक के नाम एक साख पत्र ले सकता है जहाँ कि वह जा रहा है। जब कि साख पत्र कई बैंकों के नाम होता है जो कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर हों तो जो भी बैंक जितना रुपया देता है उस साख पत्र पर लिख देता है और जब वह व्यक्ति अन्य स्थान के बैंक के पास जाता है तो जितना रुपया वह बैंक देता है उस पर लिख देता है। इस प्रकार जब तक वह रकम जो कि साख पत्र में लिखी है पूरी नहीं हो जाती तब तक वे बैंक जिनके नाम साख पत्र लिखा गया है उस व्यक्ति को रुपया देते रहेंगे। साख पत्र का अधिकतर उपयोग तब होता है जब कोई व्यक्ति देश में अथवा विदेशों में भ्रमण करता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है।

बिल (Bill) :—"बिल एक लिखित पुर्जा होता है जिसमें किसी व्यक्ति विशेष को शर्त रहित आज्ञा होती है कि वह एक निश्चित रकम उल्लिखित व्यक्ति या उसकी आज्ञानुसार किसी दूसरे व्यक्ति या उस पुर्जे के वाहक (Bearer) को दे दे। उस पुर्जे पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं"।

बिल से सम्बन्धित चार पक्ष होते हैं :-(१) लिखने वाला (Drawer) जो व्यक्ति ड्राफ्ट लिखता है अर्थात् लेनदार (Creditor) अथवा विक्रेता। (२) जिस पर बिल लिखा जाय (Drawee) जिस व्यक्ति को भुगतान करने की आज्ञा दी जावे अर्थात् देनदार (Debtor) या खरीदार। (३) पाने वाला (Payee) जिस व्यक्ति के पक्ष में बिल लिखा जाय या जिसे

भुगतान मिलने वाला हो (अर्थात् लिखने वाले का लेनदार), या स्वयं लिखने वाला जब कि वह बिल पर "बिल का भुगतान मुझे किया जाय" ऐसा लिख देता है। (४) रखने वाला (Holder) वह या तो पाने वाला (Payee) हो सकता है अथवा जिसके नाम बेचान किया गया हो।

किस्में :—बिल दो प्रकार के होते हैं, देशी (Inland) और विदेशी (Foreign)। देशी बिल वह है जो किसी एक देश में ही लिखा जाय और उसी देश के रहने वाले किसी व्यक्ति पर किया जाय। जो बिल किसी अन्य देश के रहने वाले पर किया जाता है वह विदेशी बिल (Foreign Bill) कहलाता है।

देशी बिल का नमूना

Rs. 275-0 0 Calcutta,
6 annas 1st. January, 1948.

Three months after date, pay to our order a sum of Rupees two hundred and seventy five only, value received.

Mr. Bhola Dutta,
Harding Road,
Delhi

Per Pro. Bengal Paper Mills Co. Ltd.
Edward Jaies,
Director.

विदेशी बिल का नमूना

(First of Exchange)

£ 55-3-2 Parker Street, Kingsway,
9 d. London, the 9 th Jan., 1947.

Ninety days after sight of the First of Exchange (Second and third of the same tenure and date unpaid) pay to the National Bank of India Ltd, the sum of fifty five pounds, three shillings, and two pence, value received.

Per Pro. Longmans & Co. Ltd.,
Henry Anderson,
Manager.

In case of need apply to Messrs Martin & Co., London, for honour of Longmans & Co. Ltd.

To

Messrs Ram Narain Lal,
2, Katra Road,
Allahabad.

हुण्डी :—बिल के समान ही होती है। उसका उपयोग बाज़ार के व्यापारी तथा सर्राफ बहुत करते हैं। इनका चलन व्यापारिक रीति-रिवाज़ के अनुसार होता है। हुण्डी दो प्रकार की होती है :— (१) दर्शनी हुण्डी जिसका भुगतान मांगने पर किया जाता है। (२) मिती हुण्डी जिसका भुगतान देखने के उपरान्त कुछ दिनों बाद या निश्चित तारीख के बाद होता है। मिती हुण्डी अधिकतर देखने से ६१ दिन के बाद भुगतान के लिए दी जाती है। मिती हुण्डी पर रियायती दिन (Days of Grace) उस स्थान के रिवाज़ के अनुसार दिए जाते हैं। हुण्डी अधिकतर मुड़िया में लिखी जाती है।

दर्शनी हुण्डी का नमूना

सिद्ध श्री कानपुर शुभस्थान श्री पत्री भाई हर प्रसाद बाल मुकुन्द जोग लिखा प्रयाग जी से वंशीधर हरिश्चन्द्र की राम राम बंचना। आगे हुण्डी कीनी आप ऊपर दिया रुपया ५०० आँकड़े पाँच सौ के निमा दो सौ पचास के दुने पुरे देना। यहां राखा भाई दी सैन्ट्रल बैंक आव इण्डिया लिमिटेड, इलाहाबाद वाले के मिती फागुन बदी २ से पहुँचे दाम धनी-जोग बिना जब्ता बाजार चलन हुण्डी की रीति ठिकाने लगाय दाम चौकस कर देना। फागुन बदी २, १९९८।

अर्थ :—यह हुण्डी इलाहाबाद (प्रयाग जी) के वंशीधर हरिशचंद्र ने कानपुर के हर प्रसाद बालमुकुन्द पर ५०० रु० के लिए की है। सैन्ट्रल बैंक आव इन्डिया लि० के मांगने पर फागुन बदी २, सम्वत् १९९८ के बाद इसका भुगतान कर देना होगा।

मिती हुण्डी का नमूना

रु० ४-४-०
स्टाम्प

सिद्ध श्री बरेली शुभ स्थान रामचन्द्र शिवचरन लाल लिखी देहली से जगजीवनराम की राम राम बंचना। अपरंच हुण्डी एक रुपया ५ ५०० आंकडे

पचपन सौ जिसका निमा रुपया सत्तावन सौ पचास का दूनो पुरा देना । अठे राखा दि इलाहाबाद बैंक लिमटेड पास मिती सावन सुदी दसमी (१०) से दिन इकसठ पीछे नामे साह जोग हुण्डी चलन कल्दार दीजो मिती सावन सुदी दशमी (१०) सम्वत् १९९८।

अर्थ :—यह हुंडा देहली के जगजीवन राम ने बरेली के रामचन्द्र शिवचरन लाल पर ५, ५०० रुपये के लिए की है । हुंडी का भुगतान इलाहाबाद बैंक लिमिटेड को सावन सुदी १० सम्वत् १९९८ से ६१ दिन बाद करना होगा ।

बैंकिंग सम्बन्धी अन्य ज्ञातव्य बातें

चैक को उपस्थित करना :—जिसके पास चेक हो उसे या तो स्वयं चैक को उस बैंक पर जिस पर वह काटा गया है ले जाना चाहिए अथवा अन्य किसी बैंक के द्वारा उचित समय के अन्दर उपस्थित करना चाहिए। नहीं तो यदि वह बैंक जिस पर कि चैक काटा गया है इस बीच में दिवालिया हो जाय तो जिसके पास चैक है वह चैक काटने वाले से रुपये के भुगतान का दावा नहीं कर सकता। वह केवल बैंक का लेनदार (Creditor) मात्र रह जावेगा और चैक काटने वाले से भुगतान का दावा करने का अधिकारी नहीं रहेगा, यदि चैक काटने वाले के हिसाब में उस समय यथेष्ट रुपया हो।

बैंक अपने ग्राहक का एजेंट है और यदि उस ग्राहक के हिसाब में यथेष्ट रुपया है तो बैंक को उसके चैकों को स्वीकार करना होगा। यदि चैक ठीक तरह से काटे गए और उपस्थित किए गए हों तो निम्नलिखित दशाओं में बैंक अपने ग्राहक के चैक को स्वीकार नहीं करेगा :—

(१) जब ग्राहक स्वयं उसके भुगतान को रोक दे ।

(२) जब बैंक को ग्राहक के दिवालिया हो जाने की सूचना मिल जाय ।

(३) जब उसे ग्राहक की मृत्यु या पागल हो जाने की सूचना मिल जाय ।

(४) जब अदालती आज्ञा (Garnishee Order) मिल जाय ।

(५) जब जमा किए हुए चैकों का दूसरे बैंकों से भुगतान न हो चुका हो ।

(६) जब अंकों और अक्षरों में दी हुई रकम भिन्न हो ।

(७) रेखांकित चैक (Crossed cheque) किसी बैंक के ही द्वारा उपस्थित करना चाहिए ।

(८) जब चैक (क) फटा हो, (ख) अगली तारीख़ का हो अथवा (ग) ६ महीने से अधिक पुराना हो।

(६) प्रत्येक संशोधन पर पूरे हस्ताक्षर होना चाहिए।

(१०) यदि पाने वाले के हस्ताक्षर अधूरे हों, बैंक में रक्खे हुए हस्ताक्षरों से न मिलने वाले हों अथवा हस्ताक्षर न हों।

(११) जब कि चैक में कोई परिवर्तन किया गया हो किन्तु उस पर हस्ताक्षर न किए गए हों।

जाली चैक के सम्बन्ध में बैंक का उत्तरदायित्व :— (१) जो बैंक कि ऐसे चैक का भुगतान कर देता है जिसकी रकम बढ़ा दी गई हो, या ऐसे चैक का भुगतान कर देता है कि जिस पर हस्ताक्षर जाली हैं तो बैंक अपने हिसाबदार के हिसाब से वह रकम वसूल नहीं कर सकता, जब तक कि (अ) परिवर्तन पर उसके हस्ताक्षर न हों, (ब) अथवा चैक काटने वाले ने ऐसी लापरवाही की हो जिसके कारण वह जालसाज़ी सम्भव हो सकी।

(२) यदि बेचान (Endorsement) जाली हो और बैंक उसका भुगतान कर दे तो वह उस हानि के लिए ज़िम्मेदार न होगा। बैंक को प्रत्येक व्यक्ति के हस्ताक्षर की जानकारी नहीं हो सकती। इसलिए यदि बेचान जाली हो और बैंक उसे बिना जाने भुगतान कर दे तो वह उतना रुपया हिसाबदार के हिसाब से ले सकता है।

चैक का अत्यन्त सुरक्षित रूप :— यदि कोई व्यक्ति ऐसा चैक काटना चाहता है कि जिससे रक़म पाने वाले को ही रुपया मिले तो उस पर विशेष रेखांकन कर देना चाहिए और उस पर "Not Negotiable" और "Account Payee only" शब्द लिख देना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हम रामसहाय अग्रवाल के नाम चैक काटना चाहते हैं जिनका कि हिसाब "इलाहाबाद बैंक लिमिटेड" में है तो चैक का सबसे सुरक्षित रूप नीचे लिखा होगा :—

Not Negotiable
Account Payee only
The Allahabad Bank Ltd.

यह चैक रामसहाय अग्रवाल के अतिरिक्त और किसी के काम का नहीं है।

चैक द्वारा भुगतान करने से लाभ : – चैक देश भर में एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भेजने का सस्ता साधन है। जिस भुगतान के सम्बन्ध में

कोई झगड़ा उठ खड़ा हो तो यह एक गवाही का काम देता है। क्योंकि उसका भुगतान बैंक के द्वारा होता है। इसके द्वारा आपसी लेन-देन तय हो जाता है और नकद रुपया लेना-देना नहीं पड़ता। इसका अधिक प्रचार करने के लिए इस पर से ड्यूटी हटा दी गई है।

बैंक में हिसाब रखने से लाभः—कारखाने वालों, व्यापारियों, तथा दूसरे पेशों में लगे हुये लोगों को बैंक में हिसाब रखने से बहुत से लाभ होते हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं :—

बैंक में रुपया जमा करने से सुरक्षित रहता है और दैनिक बिक्री की रकम को जमा करने की सुविधा रहती है। साथ ही अन्य मूल्यवान वस्तुएं भी बैंक में रखने से अधिक सुरक्षित रहती हैं। बैंक के द्वारा दूसरों को आसानी से भुगतान किया जा सकता है। अपने पास अधिक रुपया रखने की आवश्यकता नहीं होती। बैंक अपने ग्राहक के काटे हुए चैकों का भुगतान करता है और उसे मिले हुए चैकों का रुपया वसूल करता है। इसके अतिरिक्त वह अपने ग्राहकों की हुण्डी बिल को स्वीकार (Honour) करता है और उनका रुपया वसूल करता है। बैंक कुछ एजेन्ट का भी कार्य करता है, जैसे वह कम्पनियों के हिस्सों पर लाभ (Dividend) वसूल करता है अग्नि तथा अन्य बीमा की प्रीमियम लेता है। बैंक व्यापारिक मामलों की सूचना देता है। बैंक अपने ग्राहक की साख (Credit) सम्बन्धी जांच-पड़ताल का हवाला देने वाले होते हैं और इस तरह वे उसकी साख और प्रसिद्धि बढ़ाते हैं। वे अपने ग्राहकों को स्वीकृत जमानत पर नकद साख (Cash Credit) और ओवर ड्राफ्ट के रूप में रुपया उधार देते हैं। इसके अतिरिक्त बैंक में हिसाब रखने के और भी लाभ हैं।

नये ग्राहकों का हिसाब खोलनाः-बैंक नये ग्राहकों का चालू खाता (Current Account) उस समय तक नहीं खोलता जब तक उस ग्राहक के सम्बन्ध में संतोषजनक जानकारी प्राप्त नहीं कर लेता। यदि बैंक इतनी सावधानी न रक्खे तो वह कठिनाई में पड़ सकता है। नये ग्राहक के सम्बन्ध में सतोष हो जाने के उपरान्त उसके हस्ताक्षर के नमूने ले लिए जाते हैं और हिसाब खोल दिया जाता है।

अध्याय २

द्रव्य (Money) और बैंकिंग

द्रव्य और बैंकिंग हमारे आर्थिक जीवन के आधार हैं जिनके द्वारा हम अपने आर्थिक प्रयत्नों को भली प्रकार पूरा कर सकते हैं। यदि आज द्रव्य (Money) और बैंकिंग की सुविधायें हटा ली जावें तो धन (Wealth) का उत्पादन, व्यापार, उद्योग-धंधे सभी असम्भव हो जावें। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्थिक उन्नति के लिए द्रव्य और बैंकिंग का संतोषजनक प्रबंध आवश्यक है।

द्रव्य के तीन मुख्य कार्य हैं:—(१) वह विनिमय (Exchange) का माध्यम होता है, (२) वह मूल्य (Value) का मापदण्ड होता है, (३) और द्रव्य के रूप में ही धन या सम्पत्ति (Wealth) को जमा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक बढ़ई अपनी बनाई हुई मेज को बेच कर उसके बदले गेहूँ, कपड़ा और अपनी बीमार स्त्री के लिए दवा लेना चाहता है तो वह अपनी मेज को ४० रु० में बेच कर उस ४० रुपये से गेहूँ, कपड़ा और दवा खरीद लेता है। यदि द्रव्य अर्थात् रुपया चलन में न हो तो उसे मेज के बदले में गेहूँ, कपड़ा और दवा मिलने में बहुत कठिनाई हो और समय को नष्ट करना पड़े। इसी प्रकार यदि द्रव्य न हो तो मेज के मूल्य निर्धारण में भी बहुत कठिनाई पड़े। वह मेज के बदले कितना गेहूँ या कपड़ा ले इसका निश्चय करना कठिन हो जावे। और यदि बढ़ई ने अधिक मेजें बनाईं और वह इसके बदले में मिलने वाली चीजों का उस समय उपभोग नहीं करना चाहता वह कुछ बचाना चाहता है तो यह समस्या उठ खड़ी होगी कि वह अपने धन (Wealth) को किस रूप में जमा करे। स्पष्ट है कि द्रव्य (Money) के रूप में अपने धन को भविष्य के लिए जमा करना अत्यन्त सुविधाजनक है। यदि बढ़ई ने अपने परिश्रम के द्वारा मेजें बेच कर दस हज़ार रुपये जमा कर लिए हैं तो वह भविष्य में उन दस हज़ार रुपयों का जिस प्रकार चाहे उपयोग कर सकता है।

ऊपर लिखे विवरण से यह स्पष्ट है कि बिना द्रव्य के आधुनिक आर्थिक संगठन चल ही नहीं सकता। कल्पना कीजिए कि यदि द्रव्य चलन में न हो तो बढ़ई क्या करेगा। ऐसा कोई व्यक्ति मिलना तो असम्भव है कि जो गेहूँ, कपड़ा

और दवा तीनों ही वस्तुएं उसे दे सके और बदले में मेज लेने को तैयार हो। व्यवहार में यह होगा कि बढ़ई किसी किसान को ढूँढ़ेगा जो कि गेहूँ बेचना चाहता हो परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उसे मेज की आवश्यकता ही हो। सम्भवतः वह हल अधिक पसंद करे। ऐसी दशा में जब तक दो ऐसे व्यक्ति नहीं मिलते जिन्हें एक दूसरे की वस्तुओं की आवश्यकता हो तब तक अदल बदल (Barter) हो ही नहीं सकता। वस्तुओं के अदल-बदल में एक कठिनाई यह भी है कि बहुत सी वस्तुओं का विभाजन नहीं हो सकता। उनके बदले में बेचने वाले को उस वस्तु के मूल्य (Value) के बराबर ही किसी दूसरी वस्तु को लेना होगा। फिर चाहे बेचने वाले को बदले में ली जाने वाली वस्तु की उतनी मात्रा की आवश्यकता न हो। अपने ऊपर के उदाहरण को लें तो बढ़ई को यदि १० सेर गेहूँ या ५ गज कपड़ा चाहिए तो उसे कठिनाई होगी क्योंकि मेज के टुकड़े तो हो नहीं सकते; उसे तो मेज के बदले ४ मन गेहूँ अथवा १०० गज कपड़ा जो उस मेज का गेहूँ या कपड़े में मूल्य है सब का सब लेना होगा अन्यथा अदल बदल नहीं हो सकता। द्रव्य के चलन से यह कठिनाई दूर हो जाती है। बढ़ई ४० रुपये में मेज बेचकर सब चीज़ें उस मात्रा में खरीद सकता है जितनी की उसको आवश्यकता है।

द्रव्य के न होने पर केवल वस्तुओं के विनिमय (Exchange) में ही कठिनाई नहीं होगी वरन् उनके आपसी मूल्य निर्धारण में भी बहुत कठिनाई होगी। पुराने समय में जब गाँवों में मनुष्य अपनी आवश्यकता की अधिकांश वस्तुएं स्वयं उत्पन्न कर लेता था और उसकी आवश्यकताएं बहुत कम और गिनी चुनी ही होती थीं तो बहुत थोड़ी सी वस्तुओं का क्रय विक्रय होता था। उस समय उनका आपसी मूल्य निर्धारण कुछ सीमा तक सम्भव भी था। उदाहरण के लिए सन्नी और गेहूँ बराबर मूल्य के मान लिए जाते थे। किन्तु आज तो सभ्य जगत में अगणित वस्तुएं हैं। उन सब का एक दूसरे में मूल्य निर्धारण असम्भव है। अतएव उन सबका मूल्य निर्धारित करने के लिए समान मूल्य मापदण्ड (Common Standard of Value) आवश्यक है। द्रव्य इसी काम को करता है।

यही नहीं, आवश्यकता से अधिक धन (Wealth) को जमा करने का भी द्रव्य सर्वोत्तम साधन है, जिससे कि भविष्य में धन जमा करने वाला सुगमता से जिस प्रकार चाहे उसका उपभोग कर सके। उदाहरण के लिए यदि बढ़ई ने दस हजार रुपये जमा कर लिए हैं तो वह उस द्रव्य का उपयोग जिस कार्य में चाहे बिना कठिनाई के कर सकता है। किन्तु यदि उसने अपनी

बचत को गेहूँ, लकड़ी अथवा अन्य किसी वस्तु के रूप में जमा किया है तो उसे कठिनाई होगी।

अस्तु ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया कि आधुनिक समय में जब कि धन या सम्पत्ति (Wealth) का उत्पादन (Production) बड़े-बड़े कारखानों द्वारा होता है, संसार के सब देश एक दूसरे से व्यापार करते हैं, मनुष्य की आवश्यकताएं इतनी बढ़ गई हैं जिनकी पहले कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी तब बिना द्रव्य (money) के यह धंधे और व्यापार सम्भव ही नहीं हो सकता। यही कारण है कि आधुनिक जगत को द्रव्य की इतनी अधिक आवश्यकता पड़ती है।

यही कारण है कि आज प्रत्येक सभ्य समाज में यथेष्ट द्रव्य की आवश्यकता होती है जिससे व्यापार और धंधे सुगमता से चल सकें। चलन में द्रव्य के तीन रूप होते हैं एक तो प्रामाणिक सिक्का (Standard coin) दूसरे सांकेतिक सिक्का (Token coin) तीसरा कागज़ी मुद्रा (Paper currency) अथवा कागज़ी नोट। अधिकतर आजकल कागज़ी नोट और सांकेतिक सिक्कों का ही चलन होता है प्रामाणिक सिक्के नहीं निकाले जाते हैं। और कागज़ी नोट राष्ट्रीय अथवा केन्द्रीय बैंक (Central Bank) द्वारा निकाले जाते हैं। किन्तु प्रत्येक देश में एक सी परिपाटी नहीं है।

किन्तु केवल कागज़ी नोट (Paper currency) और सांकेतिक सिक्कों (Token coins) से ही आधुनिक समाज की द्रव्य सम्बन्धी आवश्यकताएं पूरी नहीं हो जातीं। कागज़ी नोट और सांकेतिक सिक्कों के अतिरिक्त चेक, बिल तथा हुण्डी इत्यादि विनिमय साध्य पुर्ज़ा (Negotiable Instrument) का भी उपयोग होता है। जो देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र हैं वहाँ कागज़ी मुद्रा (Paper currency) से १० से १५ गुने तक चेकों का उपयोग होता है। अर्थात् लोग चेकों के द्वारा अपनी देनदारी को भुगतान करते हैं। चेक बैंकों पर काटे जाते हैं और वही व्यक्ति चेक काट सकता है जिसका बैंक में हिसाब है अर्थात् जिसका रुपया चालू खाते (Current Account) में जमा होता है। इस प्रकार की जमा (Deposit) दो प्रकार उत्पन्न होती है। किसी व्यक्ति के अपनी आमदनी से बचत करके रुपया बैंक में जमा करने अथवा बैंक से ऋण लेने से। बैंक ऋण देकर किस प्रकार जमा (Deposit) का निर्माण करता है इसके सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे।

बैंक का मुख्य कार्य जनता को अपनी बचत का रुपया जमा करने की सुविधा देना है। बैंक जनता के द्रव्य को जमा (Deposit) के रूप में सुरक्षित रखता है यह उसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। जब मनुष्य की आय उसके व्यय से अधिक होती है तो उसके पास जो द्रव्य बचता है उसको सुरक्षित रखने की समस्या उठ खड़ी होती है। किसी व्यक्ति अथवा संस्था की बचत की रकम जितनी ही अधिक होती है उतनी ही उसको सुरक्षित रखने की समस्या अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। बैंक जनता को अपनी बचत को सुरक्षित रखने की चिन्ता से मुक्त कर देते हैं। बैंक जनता की बचत को केवल सुरक्षित रखने का ही जिम्मा नहीं लेते वरन् उसको जमा करने वाले के माँगने पर देने का वचन भी देते हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में योरोप में स्वर्णकार लोग धनी व्यक्तियों का धन, जेवर, सोना, चाँदी इत्यादि बहुमूल्य वस्तुएं अपने पास सुरक्षित रखते थे और उस सेवा के लिए वे कमीशन लेते थे। किन्तु कुछ समय के उपरान्त सुनारों ने देखा कि उनके धनी ग्राहक जो रुपया पैसा और सोना चाँदी जमा करते थे वह अधिकांश निकालते नहीं थे। सुनारों ने देखा कि जो रुपया जमा किया जाता है उसका बहुत थोड़ा अंश ग्राहक निकालते हैं। अतएव वे ग्राहकों के जमा किए हुए रुपये को ऋण के रूप में दूसरों को उठाने लगे और सूद प्राप्त करने लगे। अब तो सुनारों को दोहरा लाभ होने लगा। जमा करने वालों से वे उनके धन को सुरक्षित रखने के लिए कमीशन लेते और उसको व्यापारियों को कर्ज देकर सूद कमाते थे। अतएव सुनारों ने जमा को बढ़ाने के उद्देश्य से रुपये को सुरक्षित रखने के लिये कमीशन लेना बन्द कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि डिपाजिट बहुत बढ़ गए और इन सुनारों को बहुत लाभ होने लगा। अपने व्यापार को बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने डिपाजिट पर थोड़ा सूद देना भी आरम्भ कर दिया और वे सर्वसाधारण में मितव्ययिता की भावना को जाग्रत करके अधिकाधिक डिपाजिट आकर्षित करने लगे। वे लोग जितना सूद रुपया जमा करने वालों को देते थे उससे कहीं अधिक सूद ऋण पर वसूल करते थे। इसी सिद्धान्त पर आधुनिक बैंकिंग का निर्माण हुआ। अनुभव से ज्ञात हुआ कि यदि देश की मुद्रा नीति के प्रति जनता का किसी कारण विशेष वश अविश्वास न हो गया हो और न बैंकों के प्रति अविश्वास हो तो साधारण समय में जो डिपाजिट बैंकों में रक्खी जाती है उसका केवल बहुत थोड़ा भाग किसी समय निकाला जाता है। यही कारण है कि बैंक जमा

किये हुए रुपये का बहुत बड़ा भाग (६० प्रतिशत) ऋण के रूप में लोगों को दे देता है और उस पर सूद लेता है।

बैंक डिपाज़िट का निर्माण करते हैं :—जमा किए हुए रुपये का अधिकांश भाग ऋण के रूप में उठाने का कार्य एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य है कि जिसके कारण बैंकिंग का आधुनिक जगत में इतना अधिक महत्त्व है। "बैंक केवल लोगों की बचत को जमा करने वाले ही नहीं हैं वरन् वे द्रव्य (money) का निर्माण करने वाले भी हैं"। बैंक जो द्रव्य (money) का निर्माण करते हैं वह केवल डिपाज़िट किये हुये रुपये को ऋण स्वरूप अन्य व्यक्तियों को देने से ही सम्भव हो सकता है। जो रुपया कि बैंक के ग्राहक बैंक में जमा करते हैं उसको बैंक व्यापारियों तथा अन्य व्यक्तियों को कर्ज देकर नई डिपाज़िट निर्माण करते हैं और वह डिपाज़िट ही द्रव्य (money) के सदृश्य बैंक से ऋण लेने वालों के द्वारा काम में लाई जाती है। उदाहरण के लिए जब बैंक किसी व्यापारी को ऋण देता है तो वह रुपया उसको दे नहीं दिया जाता वरन् उसके नाम जमा कर दिया जाता है। कर्ज लेने वाला ग्राहक आवश्यकतानुसार उसको चेक द्वारा निकाल सकता है। चेक का उपयोग वह इसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि कोई व्यक्ति वस्तुओं के क्रय-विक्रय में द्रव्य का उपयोग करता है। जिस प्रकार द्रव्य (money) विनिमय का माध्यम (Medium of Exchange) है ठीक वही कार्य डिपाज़िट करती है। बैंक इन डिपाज़िटों का निर्माण करते हैं अस्तु बैंक एक प्रकार से विनिमय के माध्यम अर्थात् द्रव्य का निर्माण करते हैं। यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि आधुनिक काल में व्यापार में जितना उपयोग कागज़ी नोट अथवा सिक्कों का होता है उससे दस पंद्रह गुना उपयोग चैकों का होता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि जितना द्रव्य सरकार अथवा राष्ट्रीय सैन्ट्रल बैंक (देश का केन्द्रीय बैंक) सिक्कों और कागज़ी नोटों के रूप में निकालती है उसका कई गुना द्रव्य डिपाज़िटों के रूप में बैंक उत्पन्न करते हैं। अतएव देश को जितने द्रव्य की आवश्यकता होती है उसका अधिकांश भाग बैंक उत्पन्न करते हैं।

द्रव्य के निर्माणकर्ता होने के कारण बैंक जनता की क्रय-शक्ति (Purchasing Power) को निर्धारित करते हैं और द्रव्य परिमाण सिद्धान्त (Quantity theory of money) के अनुसार मूल्य स्तर (Price Level) को भी निर्धारित करते हैं। बैंकों के हाथ में जो इतनी शक्ति है वह केवल इसलिए कि वे ग्राहकों के द्वारा जमा किए हुए रुपये को दूसरों को

ऋण स्वरूप दे सकते हैं। अब हम विस्तारपूर्वक इस बात का अध्ययन करेंगे कि बैंक किस प्रकार ऋण देकर नवीन डिपाज़िटों का निर्माण करते हैं।

बैंकों द्वारा डिपाजिट या द्रव्य (money) निर्माण करने की क्रिया :— यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि बैंक के पास जो कुछ भी द्रव्य डिपाज़िट के रूप में जमा किया जाता है वह सब का सब अपने पास नक्द रूप में नहीं रखता वरन् उसका अधिकांश भाग यह कर्ज़ के रूप में दे देता है। जब कोई ऋण लेने वाला बैंक को अपनी साख के सम्बन्ध में भरोसा दिला देता है और बैंक उसको दस हज़ार रूपये ऋण देना स्वीकार कर लेता है तो दो बातें हो सकती हैं। या तो ऋण लेने वाला उन दस हज़ार रुपयों को निकाल ले अथवा उन दस हज़ार रुपयों को अपने हिसाब में जमा कर दे। यदि ऋण लेने वाला दस हज़ार रुपयों को निकाल लेता है तो जहां तक बैंक के हिसाब का प्रश्न है नीचे लिखा परिवर्तन होगा :—

डिपाज़िट तो ऋण लेने के पहले जितनी थी उतनी ही रहेगी उसमें कोई परिवर्तन न होगा। हां बैंक के पास जितना नक़द रुपया (cash) था उसमें दस हज़ार की कमी हो जावेगी और दूसरी देनी (Asset) अर्थात् कर्ज़दारों (Debtors) में दस हज़ार की वृद्धि हो जावेगी। इसका दूसरे शब्दों में यह अर्थ हुआ कि बैंक ने नक़द देनी (Cash Asset) को एक दूसरी देनी में बदल लिया। यदि ऋण लेने वाला दस हज़ार रुपया न निकाल कर उसे अपने हिसाब में बैंक के पास जमा कर देता है कि जिससे उसे जब आवश्यकता हो वह आगे निकाल सके तो बैंक के हिसाब में नीचे लिखा परिवर्तन होगा :—

ऐसा करने से बैंक की डिपाज़िट दस हज़ार रुपये से बढ़ जावेगी रोकड़ या नक़दी ज्यों की त्यों रहेगी उसमें कोई परिवर्तन न होगा और दूसरी देनी (Asset) अर्थात् कर्ज़दारों (Debtors) में दस हज़ार रुपये की वृद्धि हो जावेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि बैंक की लेनी (Liability) अर्थात् डिपाज़िट में दस हज़ार रुपये की वृद्धि हुई और बैंक की देनी (Asset) अर्थात् कर्जदारों में भी दस हज़ार रुपयों की वृद्धि हुई। यदि बैंक किसी व्यक्ति से कोई सिक्यूरिटी (प्रतिभूति) खरीदे तो भी यही परिणाम होंगे। बैंक सिक्यूरिटी के मूल्य स्वरूप बेचने वाले को चेक देगा। बेचने वाला या तो चेक को भुना कर रुपया निकाल लेगा अथवा चेक को अपने हिसाब में जमा कर देगा। यदि सिक्यूरिटी बेचने वाला रुपया निकाल लेता है तब तो बैंक की रोकड़ या

नक़दी कम हो जावेगी और सिक्यूरिटी उतने ही मूल्य की बढ़ जावेगी और यदि सिक्यूरिटी बेचने वाला उस चेक को अपने हिसाब में जमा कर देता है तो डिपाज़िट में वृद्धि होती है और उधर सिक्यूरिटी में वृद्धि होती है।

ऊपर लिखे विवरण में हमने यह भी मान लिया है कि जब कोई व्यक्ति बैंक से ऋण लेता है तो वह उतना रुपया बैंक से तुरन्त निकाल लेता है किन्तु व्यवहार में ऐसा होता नहीं है। ऋण लेने वाला अधिकतर उस रुपये को अपने हिसाब में जमा कर देता है वह तुरंत रुपया नहीं चाहता। जब उसको आवश्यकता पड़े वह रुपया निकाल सके यह अधिकतर चाहता है। बैंक अधिकतर अपने उन्हीं स्थायी ग्राहकों को ऋण देते हैं जिनका उनके साथ हिसाब होता है और जिनके बारे में बैंकों को पूरी जानकारी होती है। व्यापारी चेक के द्वारा ही भुगतान करता है रुपया अपने पास अधिक नहीं रखता। अतएव जब किसी व्यापारी को अपने कारबार के लिए कुछ पूंजी की आवश्यकता होती है तो वह बैंक से ऋण लेकर अपने हिसाब में जमा कर देता है। यही कारण है कि यह कहावत प्रसिद्ध हो गई है कि "ऋण डिपाज़िट का निर्माण करते हैं" जब बैंक सिक्यूरिटी खरीदते हैं उसका भी यही परिणाम होता है अर्थात् सिक्यूरिटी खरीदने से डिपाज़िट की वृद्धि होती है क्योंकि बेचने वाला रुपया न निकाल कर उसे अपने हिसाब में जमा कर देता है। आज जो बैंकों की डिपाज़िट में इतनी अधिक वृद्धि हुई है वह अधिकतर ऋण देने और सिक्यूरिटी खरीदने से ही सम्भव हो सकी है।

यद्यपि बैंक ऋण देकर डिपाज़िट निर्माण करते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि डिपाज़िट निर्माण करने की कोई सीमा नहीं है और बैंक जितनी चाहें उतनी डिपाज़िट निर्माण कर सकते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि बैंक जिस डिपाज़िट अर्थात् द्रव्य (money) का निर्माण करते हैं वह उनकी देनी (Liability) है और उन्हें उसको नकदी में चुकाना पड़ सकता है। बैंक जो डिपाज़िट अर्थात् द्रव्य का निर्माण कर सकते हैं वह केवल इस कारण कि उसकी सब देनी (Liabilities) का भुगतान उसको नकदी में नहीं करना पड़ता। दूसरे अर्थों में बैंक की डिपाज़िट का बहुत थोड़ा अंश ही किसी समय बैंक से निकाला जाता है। किन्तु बैंक में डिपाज़िट करने वालों को कुछ नकदी की तो आवश्यकता पड़ती ही है जो कि बैंक को देनी होगी। जनता को अपने दैनिक कारबार के लिए कुछ नकदी की आवश्यकता होती है जो कि बैंकों को देनी पड़ती है और जो कि वह बैंकों से निकालते हैं। अस्तु बैंकों को डिपाज़िट के रुपये में से कुछ रुपया ग्राहकों के मांगने पर उन्हें नकदी के रूप में

रख सकता है और यदि वह बीस प्रतिशत लाभ ले तो उसको २ हजार रुपये लाभ मिलेंगे। परन्तु यदि उसे साख मिलती है और उसकी दूकान में २० हजार का माल है तो वह वस्तुओं पर १० प्रतिशत लाभ लेकर भी २ हजार रुपये कमा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक धंधे या व्यवसाय में फल प्राप्त करने के लिए कुछ समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और यदि व्यवसायी या व्यापारी केवल अपनी निजी पूँजी से कारबार करे तो कारबार बहुत थोड़ी मात्रा में होगा और उपभोक्ताओं (Consumers) अर्थात् ग्राहकों को वस्तुओं का अधिक मूल्य देना होगा और सम्पत्ति का उत्पादन (Wealth Production) कम होगा। अतएव साख (Credit) के द्वारा इस कमी को पूरा किया जाता है।

अध्याय ३

भिन्न प्रकार के बैंक

बैंक कितने प्रकार के होते हैं इसका ठीक-ठीक उत्तर देना कठिन है क्योंकि बैंकों का स्वरूप किसी देश की आर्थिक स्थिति तथा वहाँ की परम्पराओं पर निर्भर होता है। फिर एक ही देश में आर्थिक संगठन में परिवर्तन होने के साथ बैंकों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है, उदाहरण के लिए जर्मनी में व्यापारी बैंक (Commercial Banks) उद्योग-धन्धों को भी पूँजी देते हैं किन्तु इंगलैंड के व्यापारी बैंक ऐसा नहीं करते। अस्तु बैंकों का ठीक-ठीक वर्गीकरण करना कठिन है परन्तु फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए उनका वर्गीकरण कर लेना आवश्यक है।

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि बैंक का मुख्य कार्य यह है कि वह देशवासियों द्वारा बचाये हुए धन को आकर्षित कर और एकत्रित पूँजी को देश के आर्थिक लाभ के लिए उत्पादन कार्य में लगाये। जब बैंक एक ओर देश की बचत को एकत्रित करता है वहाँ दूसरी ओर वह उत्पादन कार्य के लिए पूँजी देने की व्यवस्था करता है। किन्तु सम्पत्ति या धन (Wealth) का उत्पादन बहुत प्रकार से होता है। किसान भूमि पर खेती करके सम्पत्ति का उत्पादन करता है। गृह उद्योग-धन्धों में (Cottage Industries) में लगा हुआ कारीगर कपड़ा, जूता या पीतल के बर्तन बनाकर सम्पत्ति का उत्पादन करता है। बड़े पूँजीपति पुतली घर या कारखाने स्थापित करके सम्पत्ति का निर्माण करते हैं और सौदागर या व्यापारी माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर उसको कुछ समय अपने गोदाम में सुरक्षित रख कर और अनुकूल समय पर उसे बेंच कर सम्पत्ति का उत्पादन करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि खेती के द्वारा, धंधों के द्वारा, और व्यापार के द्वारा, सम्पत्ति का उत्पादन होता है। और इस उत्पादन कार्य को भली-भाँति चलाने के लिये पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसे बैंक देते हैं। किन्तु प्रत्येक धन्धे की साख की आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं तथा जितने समय के लिये साख की आवश्यकता होती है उसकी अवधि भी भिन्न होती है। किसी धंधे में लम्बे समय के लिए साख की आवश्यकता होती है तो किसी में कम समय के लिए, फिर प्रत्येक धंधे के लिए

साख का स्वरूप क्या होगा, इसमें भी भेद होता है। उदाहरण के लिए किसान को फसल उत्पन्न करने के लिये ६ महीने के लिए साख (Credit) चाहिए क्योंकि वह ६ महीनों में फसल उत्पन्न करके उसे बाज़ार में बेंचकर दाम वसूल कर लेगा। किन्तु यदि वह बैलों की जोड़ी लेने के लिए, मूल्यवान खेती के यंत्र या औजार लेने के लिए या कुआँ बनवाने के लिए ऋण लेता है तो वह उसे एक फसल के बाद न चुका सकेगा, उसे तीन से पांच वर्ष तक के लिए ऋण चाहिए कि जिससे वह धीरे-धीरे प्रत्येक फसल के उपरान्त थोड़ा थोड़ा चुका सके। इसी प्रकार अपना पुराना ऋण चुकाने के लिए तथा भूमि इत्यादि मोल लेने के लिए उसे २० से ३० वर्षों के लिए ऋण चाहिए। यही नहीं कि किसान को भिन्न-भिन्न समय के लिए ऋण चाहिए वरन् उसका धंधा अनिश्चित होता है कभी फसल अच्छी होती है तो कभी फसल नष्ट हो जाती है। अतएव जो भी बैंक किसानों को खेती के लिए पूँजी उधार देगा उसको इस बात के लिए तैयार रहना होगा कि फसल के नष्ट हो जाने पर ऋण की अदायगी के समय को वह बढ़ा दे। यही नहीं किसान छोटी मात्रा में ऋण लेता है और उसकी फसल को छोड़ कर अथवा कुछ दशाओं में (जब कि किसान का भूमि पर स्वामित्व होता है) भूमि के अतिरिक्त उसके पास ऋण की जमानत (Security) के रूप में देने के लिए कुछ नहीं होता है। अधिकांश किसान इतने निर्धन होते हैं कि वे ऋण के लिए प्राय कोई ज़मानत नहीं दे सकते। फिर उनकी पूँजी की आवश्यकता इतनी कम होती है कि कोई बड़ा बैंक उस कारबार को करना पसंद नहीं करेगा। किसानों से सीधा सम्पर्क जिनका न हो उस संस्था को किसानों को साख (Credit) देना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार उद्योग धंधों में दो प्रकार की साख चाहिए एक लम्बे समय के लिए और एक थोड़े समय के लिए। एक कारखाने को स्थापित करने के लिए यंत्र, इमारत तथा अन्य आवश्यक साधनों की आवश्यकता पड़ती है। और इन साधनों को उपलब्ध करने में जो पूँजी (Capital) आवश्यक होती है वह थोड़े समय में धंधे से वसूल नहीं की जा सकती। कई वर्षों में तो कारखाना बन कर खड़ा होता है। फिर यन्त्रों और इमारत इत्यादि में जो पचासों लाख रुपये व्यय होते हैं वह दो-चार वर्षों में तो वसूल हो नहीं सकते। अतएव इन सामग्रियों को उपलब्ध करने के लिए लम्बे समय के लिए पूँजी चाहिए। किन्तु इसके साथ ही मजदूरों की मजदूरी देने और कच्चे माल को खरीदने के लिए थोड़े समय के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है।

धन्धों को केवल लम्बे समय और थोड़े समय के लिए ही पूँजी नहीं चाहिए वरन् धन्धों को साख (Credit) देने का कार्य एक विशेष प्रकार का है और व्यापारिक साख (Commercial Credit) से सर्वथा भिन्न है जो सदैव केवल थोड़े समय के लिए दी जाती है। उद्योग-धन्धों की साख उनकी मशीनों, इमारतों तथा कच्चे माल और तैयार माल की ज़मानत पर दी जाती है और व्यापारिक साख माल की जमानत पर दी जाती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि खेती, धन्धे और व्यापार के लिए जो साख (Credit) आवश्यक है उसकी अवधि और रूप भिन्न है और एक ही बैंक सब प्रकार की साख का प्रबंध कर सके यह सम्भव नहीं है। इसलिए सभी प्रकार की साख का प्रबंध करने के लिए विशेष प्रकार के बैंकों की आवश्यकता होती है और एक प्रकार के बैंक केवल एक प्रकार की ही साख देते हैं। उदाहरण के लिए खेती के लिए थोड़े समय के लिए साख का प्रबंध सहकारी साख समितियाँ तथा सहकारी बैंक (Co-operative Credit-Societies and Co-operative Banks) करते हैं। लम्बे समय के लिए खेती को साख देने का प्रबंध भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) करते हैं। उद्योग-धन्धों को औद्योगिक बैंक (Industrial Banks) पूँजी देते हैं तथा व्यापारियों को व्यापार के लिए थोड़े समय के लिए व्यापारिक बैंक (Commercial Banks) साख देते हैं। संक्षेप में प्रत्येक प्रकार की साख देने का कार्य एक विशेष प्रकार का बैंक करता है। अब हम यहाँ प्रत्येक प्रकार के बैंक के संबंध में कुछ लिखेंगे।

(१) **व्यापारिक बैंक** (Commercial Banks) :—वस्तु के उत्पादन के उपरान्त और उसके उपभोक्ता (Consumer) के हाथ में पहुँचने तक जो समय लगता है उस समय के लिये साख देने का कार्य व्यापारिक बैंक करते हैं। यह तो मानी हुई बात है कि उत्पादन के उपरान्त उपभोक्ता (Consumer) के पास पहुँचने तक अधिक समय नहीं लगता। इस कारण व्यापारिक बैंकों को थोड़े समय के लिये अधिकतर कुछ महीने केलिये ही साख देनी पड़ती है। उत्पादन के उपरान्त माल थोक व्यापारियों (Wholesale dealers) के हाथ में पहुँचता है फिर वह चाहे कारखानों में तैयार हुआ माल हो या खेतों की पैदावार हो या खानों से निकला हुआ खनिज पदार्थ हो। थोक व्यापारी उस माल को लम्बे समय के लिये अपने पास रखने के लिये नहीं लेता, वह तो शीघ्र ही अनुकूल अवसर देखकर थोड़े लाभ से उसको फुटकर विक्रेताओं (Retailers) को बेंच देता है अस्तु उसको

कुछ महीनों (३ महीने) के लिए ही साख की आवश्यकता होती है जिसे वह हुंडी या बिल को स्वीकार करके प्राप्त करता है और उन बिलों या हुंडियों को भुना कर बैंक व्यापारियों को पूँजी देते हैं। विदेशों से माल मँगवाने वाले व्यापारियों को भी थोड़े दिनों के लिये ही साख की आवश्यकता होती है। अस्तु व्यापारिक बैंक थोड़े समय के लिये ही साख देने का कार्य करते हैं, हाँ कुछ बैंक विशेषकर विदेशी व्यापार (Foreign Trade) का ही कारबार करते हैं। उन्हें भारतवर्ष में (Foreign Exchange Banks) कहते हैं और कुछ केवल देश के आन्तरिक व्यापार (Internal Trade) तक ही अपने कारबार को सीमित रखते हैं, वे व्यापारिक बैंक कहलाते हैं। किन्तु अब अधिकतर बड़े व्यापारिक बैंक विदेशी तथा देशी व्यापार के कारबार को करते हैं।

औद्योगिक बैंक : (Industrial Banks) जहाँ तक उद्योग-धन्धों को थोड़े समय के लिए साख का आवश्यकता होती है (मजदूरी देने तथा कच्चा माल इत्यादि खरीदने के लिये) वह तो व्यापारिक बैंक आसानी से दे सकते हैं और देते हैं, उसके लिये विशेष प्रकार के बैंकों की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु धन्धों के लिये जो लम्बे समय के लिये पूँजी की आवश्यकता होती है उसके लिये विशेष प्रकार के बैंकों अर्थात् औद्योगिक बैंकों की आवश्यकता होती है। यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है कि जहाँ व्यापारिक बैंकों का सभी देशों में आश्चर्यजनक उन्नति हुई है वहाँ औद्योगिक बैंकों की सब जगह एक सी उन्नति नहीं हुई। उदाहरण के लिये ब्रिटेन में औद्योगिक बैंक प्रायः नहीं हैं वहाँ धन्धों का अधिक समय के लिए पूँजी हिस्सों को बेच कर इश्यू हाऊस तथा फाइनैन्स कपनियों के द्वारा इकट्ठी की जाती है। जापान में औद्योगिक बैंक यह कार्य करते थे। जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीटजरलैंड तथा इटैली में एक प्रकार के मिले जुले बैंक (Mixed Banks) होते हैं जो व्यापारिक बैंकों तथा औद्योगिक बैंकों का काम करते हैं। भारत में अभी तक औद्योगिक बैंक नहीं थे किन्तु अब भारत सरकार ने एक इंडस्ट्रियल फाइनैन्स कारपोरेशन की स्थापना की है जो लम्बे समय के लिये धन्धों को पूँजी देने का प्रबन्ध करेगी। ब्रिटेन में भी इस प्रकार की एक संस्था स्थापित की जा चुकी है।

सहकारी बैंक तथा भूमि बन्धक बैंक (Co-operative and Land ... Banks) जो कार्य धन्धों के लिए व्यापारिक बैंक और

औद्योगिक बैंक करते हैं वही कार्य खेती के लिए क्रमशः सहकारी बैंक और भूमि बन्धक बैंक करते हैं। कुछ देशों में जहाँ खेती बहुत बड़े-बड़े फार्मों पर होती है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा इत्यादि वहाँ खेती के लिये थोड़े समय के लिये पूँजी व्यापारिक बैंक ही देते हैं। किन्तु अधिकांश दूसरे देशों में खेती के लिये थोड़े समय के लिये साख देने का प्रबन्ध एक विशेष प्रकार की संस्था जिसे हम सहकारी बैंक (Co-operative Bank) कहते हैं करती है और लम्बे समय के लिए साख का प्रबन्ध भूमि बन्धक बैंक करते हैं। उदाहरण के लिए भूमि मोल लेने के लिए, भूमि का सुधार करने के लिये, मूल्यवान खेती के यन्त्र खरीदने के लिए या पुराना ऋण चुकाने के लिए।

सेविंग्स बैंक :—व्यापारिक बैंकों से भिन्न होते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य साधारण आय वाले व्यक्तियों में मितव्ययिता का भाव जागृत करने और उनकी डिपाजिट (जमा) को आकर्षित करना होता है। यही कारण है इनमें जमा किया हुआ रुपया जब चाहे तभी नहीं निकाला जा सकता है वरन् सप्ताह में एक या दो बार ही निकाला जा सकता है। जब कि व्यापारिक बैंकों के चालू-खाते (Current Account) में जमा करने वाला जब चाहे अपना रुपया निकाल सकता है। लगभग सभी देशों में पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक होते हैं। किन्हीं-किन्हीं देशों में उदाहरण के लिये संयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा में स्वतन्त्र सेविंग्स बैंक भी हैं। परन्तु आजकल सेविंग्स बैंक तथा व्यापारिक बैंकों का यह भेद प्रायः लुप्त होता जा रहा है क्योंकि सभी देशों में व्यापारिक बैंक भी सेविंग्स बैंक का काम करने लगे हैं।

राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक (Central Bank) :—आज लगभग सभी देशों में राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक (Central Bank) स्थापित हो चुके हैं। इन राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंकों का रूप संगठन तथा कार्यपद्धति में थोड़ा-थोड़ा भेद सभी देशों में पाया जाता है किन्तु उनका उद्देश्य और मुख्य कार्य सब देशों में एक समान हैं। राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक का मुख्य उद्देश्य होता है देश में सब प्रकार की साख (Credit) और द्रव्य (Money) का नियन्त्रण करना जिससे देश के आर्थिक हितों की रक्षा हो और देश की आर्थिक व्यवस्था ठीक रहे। यही कारण है कि सब बैंकों को राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक (Central Bank) में अपना सुरक्षित-कोष (Reserve) रखना पड़ता है और केन्द्रीय बैंक का सञ्चालन

अन्य बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करके लाभ कमाने के लिये नहीं होता वरन् अन्य बैंकों का बैंक बन कर उनका नेतृत्व करने के लिये किया जाता है। राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक राज्य की द्रव्य सम्बन्धी नीति (State Monetary Policy) को कार्य रूप में परिणत करता है। राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की तरह अपने हिस्सेदारों के लिये अधिकतम लाभ कमाने का प्रयत्न नहीं करता वरन् उसका मुख्य लक्ष्य देश की आर्थिक व्यवस्था को ठीक बनाये रखना होता है। वह देश की अर्थ नीति को बहुत हद तक चलाता है और उसका निर्माण करता है।

भारत में भिन्न भिन्न प्रकार के बैंक :—भारत में ऊपर लिखे सभी प्रकार के बैंक पाये जाते हैं। सब से ऊपर सर्वोपरि बैंक रिज़र्व बैंक आफ इंडिया है जो भारत का केन्द्रीय बैंक (Central Bank) है। रिज़र्व बैंक की स्थापना १९३५ में हुई उससे पूर्व यहाँ कोई केन्द्रीय बैंक नहीं था। इम्पीरियल बैंक जिसकी स्थापना १९२० में एक विशेष एक्ट के अनुसार हुई मूलतः एक व्यापारिक बैंक था किन्तु यह १९३५ तक केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के कतिपय कार्य करता था। आज व्यापारिक बैंकों की श्रेणी में इम्पीरियल बैंक के अतिरिक्त बहुसंख्यक मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंक (Joint Stock Commercial Banks) हैं। भारतवर्ष के द्रव्य बाज़ार में (Money Market) एक विशेष प्रकार के व्यापारिक बैंक भी हैं जिन्हें हम ऐक्सचेंज बैंक (विनिमय बैंक) कहते हैं जो मुख्यतः विदेशी व्यापार का कारबार करते हैं। ये सभी विदेशी बैंक हैं। पिछले दिनों में यह ऐक्सचेंज बैंक (विनिमय बैंक) देशीय व्यापार में भी हिस्सा लेने लगे हैं किन्तु उनका मुख्य कार्य विदेशी व्यापार ही है। इसके विपरीत भारतीय व्यापारिक बैंक जो पहले केवल देश के आन्तरिक व्यापार तक ही अपना कारबार सीमित रखते थे अब विदेशी व्यापार में भी भाग लेने लगे हैं। अभी तक भारत में धन्धों को लम्बे समय के लिये पूँजी देने के लिये कोई औद्योगिक बैंक नहीं था किन्तु अब भारत सरकार एक इन्डस्ट्रियल फाइनेंस कारपोरेशन की स्थापना करने जा रहा है। अभी तक यहाँ धन्धों को लम्बे समय के लिए पूँजी मैनेजिंग एजेंट तथा पूँजीपति ही देते हैं। खेती के लिये साहूकार और महाजन तथा सहकारी साख समितियाँ, सहकारी बैंक (Co-operative Banks) तथा भूमि बंधक बैंक हैं जो क्रमशः थोड़े समय तथा लम्बे समय लिये पूँजी का प्रबंध करते हैं।

इनके अतिरिक्त व्यापार के लिये थोड़े समय के लिये पूँजी का प्रबन्ध करने का कार्य सर्राफ,मुलतानी, चेटी, साहूकार तथा महाजन भी करते हैं। ये लोग भारतीय प्राचीन पद्धति के अनुसार थोड़े समय के लिये साख (Credit) का प्रबन्ध करते हैं। भारतवर्ष की छोटी-छोटी मंडियों, व्यापारिक केन्द्रों में सब स्थानों पर इन देशी बैंकरों (Indigenous Bankers) का कारबार चलता है। यह आधुनिक बैंकों के समान संगठित मिश्रित पूँजी वाले बैंक नहीं होते वरन् वे व्यक्ति या फर्म होती हैं जो व्यापारिक बैंक का कार्य करते हैं। भारत के द्रव्य बाजार (Money Market) में इन देशी बैंकरों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

बैंक के कार्य (Functions of a Bank)

बैंक के कार्यों की व्याख्या करने का अर्थ यह है कि उसकी परिभाषा की जावे किन्तु बैंक की परिभाषा करना सरल नहीं है क्योंकि समय-समय पर तथा भिन्न भिन्न देशों में बैंक जो कार्य करते रहे हैं उनमें बहुत भिन्नता रही है और आज भी वह भिन्नता विद्यमान है। अस्तु हम बैंक की परिभाषा की विस्तृत आलोचना करने का प्रयत्न नहीं करेंगे, हमारे लिए इतना जान लेना ही यथेष्ट है कि बैंक (व्यापारिक बैंक) वह संस्था है जो जनता से जमा (Deposit) इस शर्त पर स्वीकार करता है कि जमा करने वाला जब चाहे चेक द्वारा रुपये को निकाल सके।

बैंकों के मुख्य कार्य : बैंकों का मुख्य कार्य जनता की जमा को स्वीकार करना है जो जमा करने वाले की इच्छा पर चेक द्वारा निकाली जा सके। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बैंकों का मुख्य कार्य चालू खाता (Current Account) रखना है। किन्तु चालू खाते के अतिरिक्त बैंक मुद्दती जमा (Fixed Deposit) भी स्वीकार करते हैं। मुद्दती जमा करने वाले उस रुपये को तभी निकाल सकते हैं जब एक निश्चित समय के नोटिस (सूचना) की अवधि समाप्त हो जावे। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति ने एक वर्ष के लिए मुद्दती जमा (Fixed Deposit) की है तो एक वर्ष के नोटिस की अवधि समाप्त हो जाने पर ही वह उस रुपये को निकाल सकता है। किसी-किसी देश में एक महीने, दो महीने, तीन महीने तक के लिए मुद्दती जमा स्वीकार की जाती है किन्तु भारतवर्ष में बैंक ६ महीने से कम मुद्दती जमा स्वीकार नहीं करते। इंगलैंड तथा अन्य देशों में मुद्दती जमा की अवधि समाप्त होते ही जमा करने वाले को रुपया निकाल लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। भारतवर्ष में जब मुद्दती जमा की जाती है तभी जमा करने वाला निकालने का नोटिस दे देता है अस्तु व्यवहार में जमा करने वाले को मुद्दती जमा की अवधि समाप्त होते ही रुपया निकालने का अधिकार मिल जाता है। मुद्दती जमा के अतिरिक्त बैंक सेविंग्स खाता (Savings Account) भी खोलते हैं और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों की बचत को

जमा करते हैं। सेविंग्स खाते में अधिक से अधिक कितना जमा किया जा सकता है यह निश्चित कर दिया जाता है और सप्ताह में एक या दो बार से अधिक नहीं निकाला जा सकता। कोई-कोई बैंक यह भी निश्चित कर देते हैं कि एक बार में एक निश्चित रकम से अधिक नहीं निकाली जा सकती। अब बैंक चेक द्वारा सेविंग्स खाते में से भी रुपया निकालने की सुविधा प्रदान करने लगे हैं। इन खातों के अतिरिक्त बैंक कैश सर्टिफिकेट (Cash Certificate) भी बेंचते हैं जो कि ३ या ५ वर्षों के लिये होते हैं।

जनता की जमा आकर्षित करने के अतिरिक्त बैंकों का दूसरा मुख्य कार्य विश्वसनीय व्यक्तियों को उनके कारबार के लिये ऋण देना है। बैंक दो तरह से ऋण देता है। एक ढग तो यह है कि बैंक एक निश्चित रकम ऋण स्वरूप दे दे अथवा चालू खाते (Current Account) पर एक निश्चित रकम तक अधिविकर्ष (Overdraft) देकर ऋण दे। दूसरा ढग यह है कि बैंक अपने ग्राहकों के बिल, हुँडी, अथवा प्रानोट भुना कर ऋण दे। बिल, हुँडी या प्रामिसरी नोट को भुनाकर बैंक अपने ग्राहक से उस बिल अथवा हुँडी की रकम को प्राप्त करने का अधिकार खरीद लेता है और जब यह बिल या हुँडी पक जाती है तो बैंक उस बिल या हुँडी का रकम उस व्यक्ति से वसूल कर लेता है जिस पर बिल या हुँडी की गई थी। बैंक बिल या हुँडी को भुनाते समय ग्राहक को उस समय के लिये सूद काट कर शेष रक़म अर्थात् तत्कालीन मूल्य (Present Worth) दे देता है।

पहले बैंकों का एक दूसरा भी मुख्य कार्य होता था अर्थात् कागज़ी नोट निकालना। व्यापारिक बैंकों के लिये कागज़ी नोट निकालना बड़ा लाभदायक कारबार था किन्तु अब लगभग सभी देशों में कागज़ी नोट निकालने का एकाधिकार राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंकों (Central Bank) को दे दिया गया है और व्यापारिक बैंकों से यह अधिकार छीन लिया गया है। भारतवर्ष में यह अधिकार रिजर्व बैंक को है और रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व सरकार कागज़ी नोट निकालती थी।

अस्तु व्यापारिक बैंकों के तीन मुख्य कार्य थे, अर्थात् जमा (Deposit) स्वीकार करना, ऋण देना और हुँडी और बिलों को भुनाना तथा कागज़ी नोट निकालना। किन्तु अब वे कागज़ी नोट निकालने का कार्य नहीं करते इस प्रकार अब उनके केवल दो कार्य ही रह जाते हैं, अर्थात्

दस्तावेज स्वीकार करना तथा ऋण देना अथवा बिल और हुंडियों का भुनाना (Discounting)।

बैंकों के अन्य पूरक कार्य — यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि बैंक वह स्थान या संस्था है जो पूँजी बचाने वालों तथा पूँजी उधार लेने वालों को मिलाता है। परन्तु इस मुख्य कार्य के अतिरिक्त बैंक ऐसे बहुत से अन्य कार्य भी करता है जो बहुत महत्त्व के होते हैं और समाज तथा बैंक के ग्राहकों के लिये विशेष लाभ के होते हैं। आरम्भ में बैंकों ने यह कार्य अपने ग्राहकों की सुविधा के लिये करना आरम्भ किया था किन्तु बाद को बैंकों के लिये भी वे बहुत लाभदायक सिद्ध हुए और इस कारण वे बैंकों के लिए भी महत्त्वपूर्ण हो गए। यह पूरक कार्य दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं। (१) एजेंसी सेवायें (२) साधारण उपयोगिता की सेवायें।

एजेंसी सेवायें (Agency Services) — (१) चेकों, बिलों, हुँडियों तथा प्रामिसरी नोटों का रुपया अपने ग्राहकों के लिये वसूल करना तथा अपने ग्राहकों द्वारा लिखे या काटे गए चेकों, बिलों, हुँडियों या प्रामिसरी नोटों का भुगतान करना।

(२) ग्राहक की स्थायी आज्ञाओं का पालन करना। कोई भी ग्राहक अपने बैंक को यह आज्ञा दे सकता है कि बैंक उसके हिसाब में से किसी संस्था अथवा व्यक्ति को नियमित रूप से एक निश्चित रकम का भुगतान करता रहे। बहुधा ऐसा होता है कि बहुत से व्यक्ति अपने बैंक को सूचित कर देते हैं कि वह उसके हिसाब में से बीमा कम्पनी का प्रीमियम, क्लबों का चन्दा तथा अन्य ऐसे खर्चों का जो नियमित रूप से ग्राहक को चुकाने पड़ते हैं चुकाता रहे। बैंक इस प्रकार की सेवाओं के लिये थोड़ा सा कमीशन लेता है।

(३) बैंक अपने ग्राहकों से हिस्सों का लाभ (Dividend) तथा सिक्यूरिटियों पर सूद का वसूल करता है और ग्राहक के हिसाब में जमा कर देता है। ग्राहक यह भी कर सकता है कि वह कम्पनियों तथा सिक्यूरिटी निकालने वाला संस्था को सूचित कर दे कि वह उसके हिस्से का डिवाडेंड (लाभ) या सूद उसके बैंक को दे दे। ऐसी दशा में ग्राहक को उन डिवाडेंड वारंट (Dividend Warrants) पर बेचान करने और बैंक को उन्हें देने का झंझट भी नहीं करना पड़ेगी। बैंक ग्राहक का डिवाडेंड तथा सूद वसूल करने के लिये बहुत थोड़ा सा कमीशन लेते हैं।

(४) कम्पनियों के शेयर (हिस्से) या स्टाक और सिक्यूरिटियाँ ग्राहकों के लिये खरीदना। अधिकांश बैंक ग्राहकों को यह राय नहीं देते कि उन्हें अपना रुपया कहाँ लगाना चाहिये किन्तु वे भिन्न-भिन्न कम्पनियों के सम्बन्ध में सभी जानने योग्य बातें अपने ग्राहकों को बतलाते हैं और उनके सम्बन्ध में अपने ग्राहकों को पूरी जानकारी देते हैं। परन्तु प्रत्येक बैंक अपने ग्राहकों के लिए कम्पनियों के हिस्से तथा सिक्यूरिटी खरीदता है। इस कार्य के लिये बैंक अपने ग्राहक से कुछ भी नहीं लेता वह शेयर ब्रोकर से उसके कमीशन में से अपना हिस्सा लेता है।

(५) बैंक रुपये को एक बैंक से दूसरे बैंक अथवा अपनी एक ब्रांच से दूसरी ब्रांच को भेजता है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति आगरे से कुछ रुपया कलकत्ता भेजना चाहता है तो वह आगरे के किसी बैंक में रुपया जमा करके उस बैंक से एक बैंक ड्राफ्ट कलकत्ता में उसकी ब्रांच पर अथवा अन्य किसी बैंक पर ले लेगा और उस बैंक ड्राफ्ट को वह कलकत्ते में उस व्यक्ति के पास भेज देगा जिसे वह रुपया भेजना चाहता है। कलकत्ते वाला व्यक्ति उस बैंक ड्राफ्ट को बैंक में देकर रुपया वसूल कर लेगा। ग्राहक अपने बैंक से विशेष प्रबन्ध करके यह सुविधा प्राप्त कर सकता है कि वह बैंक की एक ब्रांच पर तो चेक काटे और दूसरी ब्रांच उसका भुगतान कर दे।

(६) बैंक अपने ग्राहकों का ट्रस्टी या ऐग्ज़ीक्यूटर (Trustee or executor) भी बनता है। यदि कोई ग्राहक वसीयत करता है और चाहता है कि बैंक उस वसीयत की व्यवस्था करे या वह अन्य किसी आर्थिक समझौते का प्रबंध बैंक को सौंपता है तो बैंक अपनी फीस लेकर उस महत्त्वपूर्ण और झंझट के काम को अपने ऊपर लेते हैं।

(७) बैंक अपने ग्राहकों के एजेंट, प्रतिनिधि और सलाहकार का काम करते हैं, यही नहीं वे देशी अथवा विदेशी बैंकों और अन्य व्यापारी संस्थाओं के एजेंट, प्रतिनिधि और आर्थिक सलाहकार का भी काम करते हैं।

साधारण उपयोगिता की सेवायें (General Utility Services) :—आधुनिक बैंक अन्य बहुत सी उपयोगी सेवायें करते हैं जो आज के व्यस्त कारबारियों और सर्वसाधारण के लिये बहुत सुविधाजनक और लाभदायक सिद्ध होती हैं। उनमें से नीचे लिखी सेवायें महत्त्वपूर्ण हैं :—

(१) बैंक व्यक्तिगत तथा व्यापारिक साख पत्र (Letters of Credit) देते हैं। बैंक के ग्राहकों को इन साख

पत्रों (Letters of Credit) से यह लाभ होता है कि वे बैंक की ऊंची साख से लाभ उठा सकते हैं। साख पत्र (Letters of Credit) एक प्रकार का पत्र होता है जो एक बैंक अपनी साख अथवा अन्य दूसरे बैंक को लिख देता है, जिसमें बताये हुए व्यक्ति को रुपया उधार देने या साख देने की प्रार्थना होती है। इस प्रकार यदि कोई ग्राहक अन्य स्थान पर जाकर कुछ कारबार करना चाहे तो वह अपने बैंक से उस स्थान पर स्थित उस बैंक की शाखा अथवा अन्य किसी दूसरे बैंक के नाम साख पत्र (Letter of Credit) ले जा सकता है। वहाँ उस व्यक्ति को साख पत्र (Letter of Credit) दिखाने पर तुरन्त रुपया मिल सकता है अथवा उस बैंक की शाखा या अन्य बैंक उस व्यक्ति पर उसके लेनदारों (Creditors) द्वारा लिखे गए बिलों को स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अपने बैंक के साख पत्र की सहायता से अन्य स्थान पर भी साख (Credit) पा सकता है।

(२) आधुनिक बैंक विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) का कारबार भी करते हैं। जब एक देश का व्यापारी दूसरे देश के व्यापारी से माल खरीदता है तो उसको दूसरे देश के द्रव्य में मूल्य चुकाना पड़ता है। बैंक एक देश के द्रव्य (money) को दूसरे देश के द्रव्य में बदलने का काम करते हैं। यदि भारतवर्ष का व्यापारी लंकाशायर से सूती कपड़ा अथवा संयुक्तराज्य अमेरिका से मशीनें मँगाता है तो अपने बैंक को जो भी विनिमय दर (Foreign Exchange Rate) हो उस हिसाब से रुपये दे देगा और बैंक उसको स्टर्लिंग और डालर दे देगा। बैंकों के विदेशी विनिमय के कारबार से ही यह सम्भव होता है कि एक देश के व्यापारी अन्य देशों से व्यापार कर सकते हैं अन्यथा विदेशी व्यापार असम्भव हो जावे। प्रश्न यह हो सकता है कि बैंक डालर या स्टर्लिंग कहाँ से लावेगा। वास्तव में होता यह है कि प्रत्येक देश अन्य देशों को कुछ माल भेजता है अर्थात् निर्यात (Export) करता है और कुछ माल उन देशों से मँगाता है। कल्पना कीजिए कि भारत के एक व्यापारी ने कुछ कपास लंकाशायर को भेजी है तो भारतीय व्यापारी अपनी कपास के मूल्य का विदेशी बिल (Foreign Bill) लंकाशायर के व्यापारी पर स्टर्लिंग में काटेगा और उसे लेकर अपने बैंक के पास जावेगा। बैंक उस बिल को भुना देगा अर्थात् उसका तात्कालिक मूल्य (Present worth) देकर उस बिल को (स्टर्लिंग) खरीद लेगा। अब यदि कोई व्यापारी इंगलैंड से माल मँगाता है और उसका मूल्य चुकाना चाहता

है तो वह बैंक के पास जावेगा और बैंक उसी बिल (स्टर्लिंग) को वेंच देगा। इसी प्रकार विदेशी बिलों को भुनाकर यह बैंक विदेशी व्यापार के लिये सुविधा प्रदान करते हैं। विदेशी बिलों को भुना कर विदेशी व्यापार के लिए सुविधा प्रदान करने में बैंकों को बहुत माल का समुद्री बीमा कराना पड़ता है, उसको जहाज़ द्वारा भेजने का प्रबंध करना पड़ता है, और उसको कुछ समय तक अपने गोदामों में रखना पड़ता है। अतएव बैंक इस कार्य के लिये एक बीमा विभाग और एक भाड़ा विभाग (Freight Department) भी रखते हैं। अन्य देशों में विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) कार्य व्यापारिक बैंक ही करते हैं किन्तु भारत में यह कार्य एक विशेष प्रकार के व्यापारिक बैंक करते हैं जिन्हें विदेशी विनिमय बैंक (Foreign Exchange Bank) कहते हैं।

(३) ये बैंक अपने ग्राहकों के बदले उन पर लिखे गए बिलों को स्वीकार करते हैं या कर सकते हैं। इस प्रकार बैंक अपने नाम और ऊँची साख को थोड़ा सा कमीशन लेकर अपने ग्राहकों के लाभ के लिए दे देते हैं। उदाहरण के लिए यदि बैंक का कोई ग्राहक किसी व्यापारी से साख (Credit) पर माल खरीदना चाहता है, व्यापारी उसे साख देने को तैयार भी है किन्तु वह माल खरीदने वाले को और उसकी साख (Credit) के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता ऐसी दशा में माल खरीदने वाला अपने बैंक से उस पर लिखे गए बिल को स्वीकार कर लेने के लिए कहता है। बैंक अपने ग्राहक की साख के सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखता है, अस्तु वह माल बेंचने वाले व्यापारी के बिल या हुंडी को अपने ग्राहक के स्थान पर स्वीकार कर लेते हैं और इस प्रकार माल खरीदने वाले बैंक के ग्राहक को साख (Credit) मिल जाती है।

(४) बैंक बहुमूल्य वस्तुओं, सिक्यूरिटी और अन्य आवश्यक कागज़ पत्रों को थोड़ा सा कमीशन लेकर सुरक्षित रखने का भार ले लेते हैं। उदाहरण के लिए सर्व साधारण सोना, चांदी, बहुमूल्य आभूषण, महत्वपूर्ण कागज़-पत्र, तथा सिक्यूरिटी बैंक के हवाले कर देते हैं और इस प्रकार उनके चोरी जाने और अग्नि से नष्ट हो जाने का भय जाता रहता है। इन वस्तुओं को सुरक्षित रूप से रखने के लिए बैंक विशेष प्रकार के कमरे और तिजोरियाँ बनवाते हैं, जिससे उनके चोरी जाने और अग्नि इत्यादि से नष्ट हो जाने का भय नहीं रहता। इस प्रकार थोड़ा सा कमीशन लेकर बैंक इन बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित अमानत के रूप में रखने का भार अपने ऊपर ले लेते हैं।

(५) बैंक अपने ग्राहकों की ईमानदारी और उनकी साख और आर्थिक स्थिति के सम्बंध में दूसरों को ठीक ठीक जानकारी कराते हैं। यह कार्य व्यापारी समाज के लिए बहुत महत्त्व का और आवश्यक है। क्योंकि इस प्रकार बैंकों के द्वारा व्यापारियों को सहज में ही अन्य व्यापारियों की साख तथा आर्थिक स्थिति के बारे में ठीक ठीक जानकारी हो जाती है और उनसे कारबार करने में तथा उन्हें माल देने से हानि की सम्भावना नहीं रहती। उदाहरण के लिए यदि किसी कपड़े के बड़े व्यापारी के पास अन्य स्थान का व्यापारी आर्डर देता है और तीन महीने की उधार पर माल खरीदना चाहता है तो यदि बेचने वाला व्यापारी खरीदने वाले व्यापारी को नहीं जानता अथवा वह नहीं जानता कि उसको साख देना उचित होगा अथवा नहीं, तो वह खरीदने वाले व्यापारी से बैंक रिफरेंस माँगेगा। खरीदने वाला व्यापारी अपने बैंक का नाम लिख भेजेगा और बेचने वाला व्यापारी गुप्त रूप से उसके बैंक से पूछेगा कि उक्त व्यापारी को साख (Credit) पर माल देना उचित है अथवा नहीं। बैंक उस व्यापारी की साख और ईमानदारी तथा आर्थिक स्थिति के बारे में अपनी सम्मति लिख भेजेगा। बैंक यह सूचना गोपनीय रखते हैं और व्यापारियों के सम्बन्ध में सारी ठीक-ठीक जानकारी रखते हैं।

(६) बड़े-बड़े बैंक व्यापार सम्बन्धी जानकारी तथा व्यापार सम्बन्धी आंकड़ों को इकट्ठा करके व्यापारियों को देते हैं। व्यापारिक दृष्टि से उन्नतिशील राष्ट्रों में बड़े-बड़े बैंक एक पृथक् सूचना विभाग तथा व्यापारिक आंकड़ों का विभाग रखते हैं। यह बैंक अपनी शाखों की सहायता से देश-विदेश की व्यापार सम्बन्धी सूचनायें तथा आंकड़े इकट्ठा करते हैं और उसे अपने ग्राहकों को उनके लाभ के लिए देते हैं। कोई कोई व्यापार सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री को अपने ग्राहकों के पास पहुँचाने के लिए मासिक पत्र निकालते हैं जो व्यापारियों के लिए बड़े काम की वस्तु होता है।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि आधुनिक बैंक व्यापारिक जनता तथा व्यापार और धंधों की बहुमूल्य सेवा करते हैं। सच तो यह है कि बिना अच्छे बैंकों के किसी देश का भी व्यापार तथा उद्योग धंधे उन्नति नहीं कर सकते। बैंकों की सब से महत्त्वपूर्ण सेवा तो यह है कि वह देश भर में बिखरी हुई व्यक्तियों की थोड़ी थोड़ी बचत को इकट्ठा करके उत्पादन कार्य (Productive Work) के लिए दे देते हैं। इससे धंधे और व्यापार को

उन्नति होती है। व्यापारी जिस सरलता से बैंकों से ऋण पा जाते हैं उससे उद्योग-धंधों तथा व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिलता है। यही नहीं व्यापारियों को बैंक का मूल्यवान परामर्श और उनकी जानकारी का लाभ भी प्राप्त हो जाता है। बैंक इस बात का निर्णय करते हैं कि किन व्यक्तियों को पूँजी या साख दी जावे। इस प्रकार से परोक्ष रूप से बैंक राष्ट्र की पूँजी को उस दिशा में बहने देने में सहायक होते हैं जिस दिशा में राष्ट्र की पूँजी को जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सुदृढ़ बैंकों की स्थापना से जनता में बचत करने, अत्यधिक व्यय न करने और मितव्ययिता की भावना जाग्रत होती है क्योंकि बचाने वालों को अपनी बचत को सुरक्षित तथा लाभदायक रूप से बैंकों में रखने की सुविधा प्राप्त हो जाती है। इस सुरक्षा को पाकर वे बचत करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

श्री गिल्बर्ट महोदय के शब्दों में "बैंक व्यापारिक गुणों के सार्वजनिक रक्षक हैं, वे परिश्रमी, बुद्धिमान, नियत समय पर ऋण चुकाने वाले तथा ईमानदार व्यापारियों को प्रोत्साहन देते हैं, और ऐसे व्यक्तियों को जो जुआरी, अपव्ययी, झूठे और बेईमान होते हैं कभी आर्थिक सहायता नहीं देते। ऐसे व्यापारियों को बैंक अपने से दूर ही रखते हैं। आज के व्यापारिक जगत् में बैंक की सहायता के बिना किसी भी व्यापारी का काम नहीं चल सकता। अस्तु कोई भी व्यापारी बैंक को असंतुष्ट करने से डरता है। बैंकों के कारण व्यापारियों को ईमानदार होना पड़ता है। सच तो यह है कि आज किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि बहुत कुछ बैंक पर निर्भर है। यदि किसी देश में अच्छे सुदृढ़ बैंकों की यथेष्ट संख्या में स्थापना नहीं हुई है तो उस देश की आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती।

व्यापारिक बैंकों के कार्यक्षेत्र सम्बन्धी सिद्धान्त

आज इस बात पर बैंकिंग जगत् में एक वाद-विवाद चल रहा है कि व्यापारिक बैंकों का कारबार किस प्रकार का होना चाहिए। इस सम्बन्ध में आज दो मत प्रचलित हैं। एक मत पुरातन वादियों का है। उनका मत है कि व्यापारिक बैंकों को केवल थोड़े समय के लिए शुद्ध व्यापारिक कार्यों के लिए ही ऋण देना चाहिए। एक दूसरा मत यह है कि व्यापारिक बैंकों को मिश्रित कारबार करना चाहिए अर्थात् थोड़े समय के लिए तथा धन्धों के लिए लम्बे समय के लिए भी ऋण देना चाहिए। अब हम इन दोनों मतों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना करेंगे।

पुरातन मत :—पुरातन मत वादियों का कहना है व्यापारिक बैंकों को केवल थोड़े समय के लिए ही ऋण देना चाहिए जो कि सरलता से स्वतः वसूल हो जावें। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि व्यापारिक बैंकों का जमा (डिपाजिट) थोड़े समय के लिए होती है अस्तु व्यापारिक बैंक लम्बे समय के लिए ऋण नहीं दे सकते। ब्रिटिश बैंकों का यही कहना है क्योंकि हम जमा किए हुए रुपए को जमा करने वालों के मांगने पर देना पड़ता है अस्तु हम उस रुपये को लम्बे समय के लिए नहीं फँसा सकते।

बैंक जिस प्रकार अपने रुपये को लगाते हैं उससे देश के आर्थिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बैंक अपने पास जमा किए हुए रुपये से लाभ कमाने के लिए उस रुपये को बिलों, सरकारी सिक्योरिटी (प्रतिभूत) तथा अन्य स्थानों में लगाते हैं। बैंक कभी व्यापारिक बिल में अपना रुपया लगाते हैं तो कभी सरकारी सिक्योरिटियों में तो कभी कम्पनियों के हिस्सों में रुपया लगाते हैं। बैंक जिस कागज में अपना रुपया अधिक लगाते हैं उसी आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। यदि वे व्यापारिक बिलों में अधिक रुपया लगाते हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि वे व्यापार को अधिक आर्थिक सुविधा देकर प्रोत्साहन देते हैं। यदि वे कम्पनियों के हिस्सों में रुपया लगाते हैं तो वे उद्योग धन्धों को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं इत्यादि। कहने का तात्पर्य यह है कि बैंक की विनियोग नीति (Investment Policy) का आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि बैंक कितना द्रव्य (money) व्यय किया जा सकता है उसका निश्चय करते हैं और उसका निर्माण करते हैं और जनता उसका वास्तव में उपयोग किस प्रकार होगा यह निश्चय करती है। ऊपर दिया हुआ मत बिलकुल सही नहीं है। यह ठीक है कि अन्तत द्रव्य का किस प्रकार उपयोग होगा यह बैंक के अधिकार के बाहर की बात है। हो सकता है कि बैंक अपने रुपये को एक जगह लगावें और व्यापारी उसको वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर लगा देवें। परन्तु यदि बैंक यह देखें कि उनके रुपये को अनुचित स्थान पर लगाया जा रहा है तो वे तुरन्त अपनी विनियोग नीति (रुपया लगाने की नीति) पर प्रतिबंध लगा सकते हैं।

अस्तु यह स्पष्ट है कि बैंक अपनी विनियोग नीति (Investment Policy) के द्वारा आर्थिक कारबार पर गहरा प्रभाव डालते हैं। वे जिस प्रकार के कागज में अपना रुपया लगाते हैं वही कारबार अधिक चमकता

है और उसकी उन्नति होती है। अब प्रश्न यह है कि वे किस प्रकार इन कागज़ों को, जिनमें वे अपना रुपया लगाना चाहते हैं, चुनते हैं। कागज़ चुनने का उनका आधार क्या है। बैंक यह निर्धारित करने में कि उनको अपना रुपया कहाँ लगाना चाहिए दो बातों को ध्यान में रखते हैं (१) तरलता (Liquidity) और लाभदायकता (Profitability) बैंक के लिए तरलता को अपनाना इसलिए आवश्यक है क्योंकि जमा करने वाले जब चाहें अपना रुपया माँग सकते हैं। अस्तु उनको उनका जमा किया हुआ रुपया वापस दे सकने तथा जनता का अपने में विश्वास पैदा करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि वे तरलता (Liquidity) को न छोड़ें। किन्तु यदि वे जमा किए हुए सब रुपये को बिलकुल तरल (Liquid) अवस्था अर्थात् नकदी रोकड़ के रूप में अपने पास रक्खें तो फिर वे उससे लाभ बिलकुल नहीं कमा सकते। यदि बैंक ग्राहकों द्वारा जमा किये हुए सारे के सारे रुपए को तरल अर्थात् नकदी रोकड़ के रूप में अपने पास ही रक्खे तो फिर वह रुपया जमा करने वालों को सूद कहाँ से देगा। इसके विपरीत यदि बैंक अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहे तो उसे उस रुपये को बहुत लम्बे समय के लिए लगाना पड़ेगा जो बैंक के लिए खतरनाक हो सकता है। पहली बात तो यह है कि बैंक को कुछ नक़दी तो इसलिए अपने पास रखना आवश्यक है क्योंकि जमा करने वाले समय-समय पर अपना रुपया वापस माँगेंगे और दूसरे थोड़े समय की जमा (डिपाज़िट) में आये हुए रुपये को लम्बे समय के लिए फँसा देना बहुत खतरनाक है। अतएव बैंक की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वह इन दोनों विरोधी बातों का समन्वय स्थापित करे। जितना ही वह यह समन्वय स्थापित कर सकेगा उतना ही वह बैंकिंग के कार्य में सफल होगा।

तरलता दो बातों पर निर्भर रहती है, एक तो इस बात पर कि लगा हुआ रुपया शीघ्रता से निकाला जा सके और दूसरे इस बात पर कि उसमें जोखिम तनिक भी न हो। यही कारण है कि यदि ये दोनों शर्तें पूरी हों तो लम्बे समय का कागज भी तरल लेनी (Liquid Asset) कही जावेगी। उदाहरण के लिए सरकारी सिक्यूरिटी (प्रतिभूत) को लीजिए। बैंक जब चाहे तब उसको बाज़ार में बेचकर रुपया प्राप्त कर सकता है और उसमें जोखिम भी बहुत कम होती है। इसी प्रकार कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध कम्पनियों के हिस्से भी तरल लेनी कही जा सकती है। परन्तु साधारण कम्पनियों के हिस्से न तो बहुत आसानी से बिक ही सकते हैं और उनमें जोखिम भी

होती है कि कहीं उनके भाव बहुत अधिक गिर न जावे। इसी प्रकार जो ऋण बैंक ने व्यापारियों को उनकी व्यक्तिगत जमानत पर या किसी वस्तु को बंधक रखकर उसकी जमानत पर दिया वह तुरन्त नकदी रोकड़ में परिणत नहीं किया जा सकता और उसमें जोखिम भी होती है।

अतः यह हो सकता है कि बैंक ने किसी फर्म या व्यक्ति को ऋण दिया। उस फर्म अथवा व्यक्ति की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है और उस फर्म की लेनी (Assets) देनी (Liabilities) को चुकाने के लिए पर्याप्त है। परन्तु हो सकता है कि बैंक पर यदि कोई संकट आवे तो वह ऋण तुरन्त चुकाया न जा सके। परन्तु यदि किसी देश का केन्द्रीय बैंक ऐसे समय में उस बैंक को आर्थिक सहायता दे तो संकट टल सकता है। दूसरे अर्थों में हम यह सकते हैं कि संकट के समय किसी एक बैंक की आर्थिक स्थिति अच्छी है अथवा नहीं यह इतना महत्त्व नहीं रखती जितना कि केन्द्रीय बैंक की नीति। क्योंकि यदि किसी बैंक से लोग भयभीत हो कर अपना रुपया निकालने लगें तो अच्छे बैंक को भी कठिनाई उपस्थित हो सकती है। यही कारण है कि ऐसे अवसर पर केन्द्रीय बैंक (Central Bank) बैंकों की सहायता कर सकता है क्योंकि वह अन्तिम ऋणदाता होता है। ऐसी दशा में जब केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता होता है और संकट के समय बैंकों को ऋण देकर सहायता देना उसका कर्तव्य है तब वह इस बात की भी देखभाल करता है कि बैंक उस प्रकार के कागज में अपना रुपया न फँसावें जिनको केन्द्रीय बैंक ठीक नहीं समझता। अस्तु केन्द्रीय बैंक इस प्रकार के नियम बना कर कि वह अमुक प्रकार के कागज पर ही किसी बैंक को ऋण देना स्वीकार करेगा बैंकों को एक प्रकार से विवश कर देता है कि वह उसी प्रकार का ऋण दे जिसे केन्द्रीय बैंक पसंद करता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों का विनियोग नीति को निर्धारित करता है। इस प्रकार एक ओर व्यापारिक बैंकों की देनी (Assets) तरल (Liquid) बन जाती है और दूसरी ओर केन्द्रीय बैंक द्रव्य बाजार पर नियन्त्रण स्थापित कर लेता है।

अस्तु पुरातन मत वालों का बैंकिंग सिद्धान्त यही है कि व्यापारिक बैंकों को अपनी देनी (Assets) को जहाँ तक हो सके तरल रखना चाहिए अर्थात् थोड़े समय के ही लिए ऋण देना चाहिए और उन्हीं कागजों को स्वीकार करना चाहिए जिन्हें केन्द्रीय बैंक ठीक समझता है। ब्रिटेन इस मत

का प्रधान गढ़ है। ब्रिटेन में व्यापारिक बैंक उद्योग धन्धों को चालू व्यय की व्यवस्था के लिए थोड़े समय के लिए ऋण अवश्य दे देते हैं किन्तु धन्धों में लम्बे समय के लिए अपना रुपया कभी नहीं फंसाते। भारत के व्यापारिक बैंक भी इसी नीति के अनुयायी हैं।

जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका

जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापारिक तथा औद्योगिक बैंकिंग का मिश्रण है। वे थोड़े समय के लिए भी ऋण देते हैं और उद्योग-धन्धों को लम्बे समय के लिए भी ऋण देते हैं।

जर्मनी में आरम्भ में जो बैंक थे वे वास्तव में औद्योगिक बैंक थे। वे अधिकतर अपनी पूँजी पर ही निर्भर रहते थे। डिपाज़िट बहुत कम होती थी। परन्तु बीसवीं शताब्दी में डिपाज़िट बहुत अधिक बढ़ गई और जर्मन बैंक बहुत अधिक राशि में डिपाज़िट आकर्षित करने लगे। किन्तु वे अपने पुराने कारबार अर्थात् उद्योग-धन्धों को लम्बे समय के लिए ऋण देना नहीं बन्द कर सके, अस्तु वहाँ मिश्रित बैंकिंग पद्धति प्रचलित हुई। वहाँ के बैंक दोनों प्रकार के ऋण देते हैं, व्यापार के लिये थोड़े समय का ऋण तथा उद्योग-धन्धों के लिए लम्बे समय का ऋण।

मिश्रित बैंकिंग के गुण-दोष

मिश्रित बैंकिंग के कुछ गुण हैं। मिश्रित बैंकिंग का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि उद्योग-धन्धों को उससे प्रोत्साहन मिलता है। जर्मनी इसका उदाहरण है। जर्मनी में जो तेजी से उद्योग-धन्धों की उन्नति हुई वह इसी बात का परिणाम था कि वहाँ उद्योग-धन्धों को व्यापारिक बैंक आर्थिक सहायता देते थे। जर्मनी का उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि मिश्रित बैंकिंग को अपना कर भी बैंकों की आर्थिक स्थिति ठीक रह सकती है।

मिश्रित बैंकिंग में जो खतरा उपस्थित होता है वह साधारण समय में उपस्थित नहीं होता वरन् आर्थिक मंदी के समय उपस्थित होता है। उस समय कम्पनियों के हिस्सों का भाव तेज़ी से गिरने लगता है और बैंकों को बहुत भारी हानि उठानी पड़ती है। जब आर्थिक धूम (Boom) होता है तो धन्धे बहुत लाभदायक होते हैं और बैंक धन्धों में उनकी शक्ति के बाहर रुपया फँसा देते हैं और जब संकट आता है और आर्थिक मंदी होती है तो

बैंकों में उनका रुपया डूबने लगता है, उनके कागजों का मूल्य गिरने लगता है और बैंकों की स्थिति सङ्कटमय हो जाती है।

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मिश्रित बैंकिंग आर्थिक मंदी का सामना नहीं कर सकता। अस्तु आवश्यकता इस बात की है कि व्यापारिक बैंकिंग और औद्योगिक बैंकिंग को पृथक् रक्खा जावे और मिलाया न जावे। भारत के बैंकों ने इसी नीति को स्वीकार किया है। 4.3.57

अध्याय ५

बैंक की लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet of a Bank)

बैंक की लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet of a Bank) बैंक की तत्कालीन आर्थिक स्थिति को प्रगट करता है। बैंक के कारबार के सम्बन्ध में इस लेखे का अध्ययन करने से पूरी जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस लेख को देखने से यह भी ज्ञात हो सकता है कि बैंक किस प्रकार अपने कोष (Funds) को इकट्ठा करता है और किस प्रकार उस कोष का उपयोग करता है।

दुर्भाग्यवश बैंकों की लेनी-देनी के लेखे (Balance Sheet) का कोई ऐसा सर्वमान्य रूप प्रचलित नहीं हुआ है जिसको सब ने अपनाया हो। इंगलैंड में बड़े-बड़े बैंकों ने आपसी समझौते से लेनी-देनी के लेखे के एक रूप को स्वीकार कर लिया है। संयुक्तराज्य अमेरिका में बैंकिंग सम्बन्धी कानून के अनुसार बैंकों को अपने लेखे में कुछ मदों के बारे में नियमित रूप से रिपोर्ट देनी पड़ती है, इस कारण विवश होकर एक सा लेखा बनाना पड़ता है। परन्तु भारतवर्ष में बैंकों के लेनी देनी के लेखों में विभिन्नता पाई जाती है इस कारण बैंकों की तुलनात्मक आलोचना करना कठिन हो जाता है। फिर भी बैंकों का कारबार इस प्रकार का है कि मोटे रूप से ऐसा लेनी-देनी का लेखा तैयार किया जा सकता है जो कि सब बैंकों के लिए एक समान हो, यद्यपि उसमें जो भेद होंगे वे इस प्रकार के नहीं होंगे कि उनसे विस्तृत जानकारी हो सके।

साधारणतः बैंकों का लेनी-देनी का लेखा (Balance-Sheet) इस प्रकार होगा :—

देनी (Liabilities)	लेनी (Assets)
पूँजी (Capitals)	
१. अधिकृत पूँजी (Authorised Capital)	१. नक़दी, तथा अन्य बैंकों और रिज़र्व बैंक में जमा किया हुआ रुपया
२. विक्रित पूँजी (Subscribed Capital)	२. याचना-द्रव्य (Call money) तथा बहुत थोड़े समय के लिये दिया हुआ ऋण (Money at short notice)

३. परिदत्त पूँजी या चुकता पूँजी (Paid up Capital)

४ सुरक्षित कोष (Reserve Fund)

५ चालू खाता तथा मुद्दती जमा तथा अन्य खाते (Current Deposits, Fixed Deposit and other accounts)

६ बिलों का स्वीकार करने तथा उन पर बेचान करने से उत्पन्न होने वाला दायित्व Liabilities for Acceptance and Endorsements, etc.)

३. खरीदे तथा भुनाये हुए बिल (Bills discounted and purchased)

४. विनियोग (Investments)

५. ग्राहकों को दिया हुआ ऋण

६. बिलों को स्वीकार करने तथा उन पर बेचान करने के सम्बन्ध में ग्राहकों का दायित्व (Liabilities of Customers for acceptances, endorsements, etc.)

७. बैंक की इमारतें तथा अन्य अचल सम्पत्ति

लेनी देनी के लेखे का अध्ययन करते समय हम पहले देनी (Liabilities) का अध्ययन करेंगे क्योंकि इससे हमें यह ज्ञात होगा कि बैंक को कोष Fund) कहाँ से प्राप्त होता है जिसे वह ऋण स्वरूप अपने ग्राहकों को देकर अपना कारबार करता है।

१ पूँजी (Capital) :—अधिकृत या निर्धारित पूँजी (Authorised Capital) उस रकम को कहते हैं जिसे बैंक का स्मारक पत्र या अधिकार पत्र (Memorandum of Association) में निर्धारित कर दिया गया हो। जब कोई मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी (Joint Stock Company) स्थापित की जाती है तो एक स्मारक पत्र तैयार किया जाता है। उसमें उस कम्पनी के उद्देश्य आदि के अतिरिक्त अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) की रकम भी दी रहती है। उससे अधिक के हिस्से नहीं बेचे जा सकते। प्रचारित पूँजी (Issued Capital) उस रकम को कहते हैं जितने मूल्य के हिस्से (Shares) जनता को बेचने की बैंक ने घोषणा की हो। विक्रित पूँजी (Subscribed Capital) उसे कहते हैं जितने मूल्य के हिस्से जनता ने खरीद लिए हों। और परिदत्त या चुकता पूँजी (Paid up Capital) उस राशि को कहते हैं जितनी हिस्से खरीदने वालों अर्थात् हिस्सेदारों से प्राप्त हो चुकी हो। एक उदाहरण से यह भेद भली भांति समझा जा सकता है।

कल्पना कीजिए कि हम एक बैंक स्थापित करते हैं। जब हम बैंक की रजिस्ट्री करावेंगे तो एक स्मारक पत्र या अधिकार पत्र (Memorandum of Association) तैयार करना होगा। उसमें हम जितनी पूँजी निर्धारित कर देंगे उससे अधिक के हिस्से नहीं बेंचे जा सकते। इस पूँजी को अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) कहेंगे। हमारे कल्पित बैंक की अधिकृत पूँजी ४ करोड़ रुपया है जो ४ लाख साधारण हिस्सों में (प्रत्येक हिस्सा १०० रु० का है) बंटी हुई है। आरम्भ में बैंक के डायरेक्टर ४ लाख हिस्सों को न बेंच कर केवल २ लाख हिस्से बेचने की घोषणा करते हैं। इसे हम प्रचारित पूँजी (Issued Capital) कहेंगे। मान लीजिये कि जनता सभी हिस्सों को खरीद लेती है तो २ करोड़ रुपये की पूँजी विक्रित पूँजी (Subscribed Capital) कहलावेगी। इन २ लाख हिस्सों पर डायरेक्टर पूरा मूल्य अर्थात् १०० रु० न माँग कर केवल ५० रु० प्रति हिस्सा माँगते हैं और शेष ५० रु० आगे वसूल करने के लिए छोड़ देते हैं। तो जो २ लाख हिस्सों पर ५० रु० प्रति हिस्से के हिसाब से हिस्सेदार चुकावेंगे उस १ करोड़ रुपये को परिदत्त या चुकता पूँजी (Paid up Capital) कहा जावेगा। बहुत से बैंक हिस्सों का पूरा मूल्य वसूल न करके उसका आधा या एक भाग ही वसूल करते हैं। प्रति हिस्से पीछे जो शेष रहता है उसे हिस्सेदार देने के लिए उत्तरदायी रहते हैं और वह बैंक में रुपया जमा करने वालों के लिए विशेष प्रकार की सुरक्षा का काम देता है।

किन्तु इस सम्बन्ध में सब बैंकों की एक सी नीति नहीं है। भारत में बहुत से बैंकों ने अपने हिस्सों के मूल्य का केवल पचास प्रतिशत ही वसूल किया है और ५० प्रतिशत हिस्सेदारों का सुरक्षित दायित्व (Reserve Liability) है जो उन्हें आवश्यकता पड़ने पर देना हो सकता है। परन्तु कोई भी बड़ा और पुराना बैंक उस शेष पूँजी को कभी व्यवहार में वसूल नहीं करता। यह शेष पूँजी केवल बैंक के दिवालिया होने पर ही वसूल की जाती है। अन्य देशों में भी बैंक अपने हिस्सों के पूरे मूल्य को वसूल नहीं करते और सुरक्षित पूँजी (Reserve Capital) छोड़ रखते हैं जो बैंक के दिवालिया होने की दशा में ही वसूल की जाती है।

सुरक्षित कोष (Reserve Fund) :—प्रति वर्ष बैंक अपने लाभ का एक भाग सुरक्षित कोष में जमा करते हैं। प्रत्येक अच्छा बैंक अपने लाभ का एक अंश सुरक्षित कोष में अवश्य ही जमा करता है क्योंकि उससे बैंक की

आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है बैंक की प्रतिष्ठा बढ़ती है, और बैंक की निजी पूँजी में वृद्धि होती है। यह ध्यान में रखने की बात है कि सुरक्षित कोष (Reserve Fund) और न बसूल की हुई पूँजी या सुरक्षित दायित्व (Reserve Liability) में बहुत अन्तर है। सुरक्षित कोष को हिस्सेदार नहीं देते हैं वरन् वह वार्षिक लाभ में से एक भाग अलग निकाल कर रखने से बनता है। सुरक्षित कोष प्रथम श्रेणी की सिक्यूरिटी में लगाया जाता है। परिदत्त पूँजी (Paid up Capital) और सुरक्षित कोष मिलकर बैंक की कार्यशील पूँजी (Working Capital) बनता है। यदि कभी बैंक को भारी हानि हो जाय तो वह अपने सुरक्षित कोष में से उसकी पूर्ति कर सकते हैं। इस प्रकार सुरक्षित कोष ग्राहकों के लिए सुरक्षा का काम देता है। यद्यपि सुरक्षित कोष हिस्सेदारों की सम्पत्ति होता है और उस का उपयोग हिस्सेदारों को बोनस हिस्से (Bonus Shares) देने तथा लाभ की दर को समान करने (Equilization of Dividend) में किया जा सकता है।

लेना देनी के लेखे (Balance Sheet) में जो सुरक्षित कोष (Reserve Fund) प्रकट रूप से दिखलाया जाता है उसके अतिरिक्त बहुत से बैंक गुप्त सुरक्षित कोष (Secret Reserves) का भी निर्माण करते हैं जिन्हें लेना देना के लेखे (Balance Sheet) में नहीं दिखलाया जाता। गुप्त सुरक्षित कोष से बैंक की आर्थिक स्थिति और भी दृढ़ होती है और उसकी सुरक्षा तथा प्रतिष्ठा बढ़ती है। गुप्त सुरक्षित कोष का निर्माण सम्पत्ति या लेनी (Assets) का मूल्य कम निर्धारित करके किया जाता है। उदाहरण के लिए एक बैंक की इमारतों का ठीक मूल्य ६५० लाख रुपये है और लेनी देना के लेखे में केवल ५० लाख रुपये ही दिखलाया जाता है तो ५ लाख रुपये का गुप्त सुरक्षित कोष निर्माण हो जायेगा।

उदाहरण के लिए यदि बैंक की प्रतिभूति (Security) का मूल्य ऊँचा हो गया है तो बैंक लेना देना के लेखे में प्रतिभूति (Security) को ऊँचे मूल्य पर न दिखा कर पूर्व मूल्य पर दिखा कर गुप्त सुरक्षित कोष निर्माण कर सकता है। इस प्रकार के गुप्त सुरक्षित कोष का उपयोग ऐसे समय पर किया जा सकता है जब कि बैंक को विशेष हानि उठानी पड़े या आर्थिक मंदी (Economic Depression) का समय हो।

५ चालू खाता तथा अन्य खाते (Current Account and other Accounts) —जो रुपया बैंक में सर्व साधारण जमा करते हैं वह

इस शीर्षक में दिखलाया जाता है। यह बैंक की सबसे महत्त्वपूर्ण देनी (Liability) होती है। बैंक जमा रूप में पाई हुई इस धन राशि को अधिक सूद पर लगा देता है और इससे लाभ कमाता है। किन्तु इस जमा किये रुपये को लाभदायक ढंग से लगाने में बैंक को यह ध्यान रखना पड़ता है कि जमा करने वालों ने जो धन राशि बैंक के पास अमानत के रूप में रक्खी है वह सुरक्षित रहे, उसकी सुरक्षा को खतरा न पहुँचे।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि बैंक चालू खाते (Current Account) में रुपया लेते हैं। जमा करने वाला जब चाहे चेक काट कर इस खाते में से रुपया निकाल सकता है। इसके अतिरिक्त मुद्दती जमा (Fixed Deposit) भी बैंक स्वीकार करते हैं। मुद्दती जमा एक निश्चित समय का नोटिस देने के उपरान्त ही निकाली जा सकती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में बैंक सेविंग्स डिपाज़िट लेते हैं और कैश सर्टिफिकेट भी बेचते हैं। सेविंग्स डिपाज़िट में से रुपया सप्ताह में एक या दो बार ही निकाला जा सकता है। कुछ बैंक सेविंग्स खाते पर भी चेक काटने की सुविधा देते हैं परन्तु कुछ बैंक यह सुविधा नहीं देते। यही नहीं सेविंग्स खाते में से एक बार में अधिक से अधिक कितना रुपया निकाला जा सकता है यह भी निर्धारित कर दिया जाता है। सेविंग्स खाते में कुल अधिक से अधिक कितना रुपया जमा किया जा सकता है यह भी निश्चित होता है। कैश सर्टिफिकेट २ वर्षों के लिए या ५ वर्षों के लिये होते हैं।

बिलों को स्वीकार करने तथा उन पर बेचान करने के सम्बन्ध में बैंक का दायित्व :—बैंक अपने ग्राहकों को ऋण देने तथा थोड़े समय के लिये साख देने के उद्देश्य से बिलों को स्वीकार करते हैं अथवा उन पर बेचान (Endorsement) करते हैं। किन्तु बैंक के बिलों पर हस्ताक्षर होने के कारण यदि बैंक का ग्राहक उस बिल के पकने पर उसका भुगतान न करे तो बैंक को उस बिल का भुगतान करना पड़ सकता है। वास्तव में इन बिलों का भुगतान बैंक के ग्राहक ही करते हैं और वे ही उनके लिए उत्तरदायी होते हैं। परन्तु यदि वे समय पर बिलों का भुगतान न करें तो बैंक को उनका भुगतान करना पड़ता है और बाद को बैंक अपने ग्राहक से उतनी रकम वसूल करते हैं। किन्तु इस देनी (Liability) के विपक्ष में लेनी (Assets) की ओर भी इतनी ही रकम दिखलाई जाती है क्योंकि उतनी रकम के लिए ग्राहक बैंक के लिये जिम्मेदार हैं।

बैंक की लेनी (Assets of a Bank) :—लेनी-देना के लेखे (Balance Sheet) के दाहिनी ओर की मदों तथा उनके आँकड़ों से हमें यह ज्ञात होता है कि जो रुपया बैंक ने अपने ग्राहकों से डिपाज़िट (जमा) के रूप में लिया है और हिस्सेदारों से पूँजी के रूप में प्राप्त किया है उसका किस प्रकार उपयोग किया गया है। बैंक की सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि बैंक के संचालक अपने कोष (Fund) को भिन्न प्रकार की विनियोग (Investments) में इस प्रकार लगायें कि बैंक अपनी कार्यशील पूँजी (Working Capital) पर अधिक से अधिक सूद कमा सकें, साथ ही आवश्यकता पड़ने पर विनियोग (Investment) को रोकड़ (Cash) में परिणत किया जा सके। बैंक की लेनी (Assets) को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है (१) चल लेनी (Liquid Assets) और (२) ऐसी लेनी जो शीघ्र ही रोकड़ में परिवर्तित नहीं की जा सकती। पहली श्रेणी अर्थात् चल लेनी में हम रोकड़ (Cash) तथा उस विनियोग (Investment) को रखते हैं जो तुरन्त रोकड़ में परिवर्तित हो सकें।

बैंक की लेनी देनी के लेखे (Balance Sheet) में लेनी (Assets) को इस प्रकार लिखा जाता है कि जो सब से अधिक चल लेनी (Liquid Asset) होती है वह सबसे पहले रक्खा जाती है और सबसे अधिक अचल लेनी (Fixed Asset) सबसे अन्त में लिखी जाती है। उदाहरण के लिए रोकड़ (Cash) सबसे पहले और इमारतें इत्यादि सबसे अन्त में लिखी जाती हैं।

बैंक के लेखे में लेनी की ओर रोकड़ (Cash), रिजर्व बैंक में शेष (Balance with Reserve Bank) ग्राहकों को ऋण, विनियोग (Investment) तथा भुगाये हुए बिलों के सम्बन्ध में हम विस्तार पूर्वक आगे लिखेंगे। बिलों को स्वीकार करने तथा उन पर बेचान (Endorsement) करने के सम्बन्ध में ग्राहकों का जो दायित्व है उसके सम्बन्ध में हम ऊपर लिख चुके हैं। यह वह राशि (रकम) है जिसके मूल्य के बिल बैंक ने अपने ग्राहकों के बदले में स्वीकार किये हैं। अस्तु देनी (Liability) और लेनी (Asset) दोनों ओर ही यह रकम दिखलाई जाती है। दोनों ओर यह रकम बराबर होती है।

बैंक की इमारतें तथा अन्य अचल सम्पत्ति एक प्रकार का अचल विनि-

योग (Fixed Investment) होता है जो शीघ्र ही रोकड़ में परिणत नहीं किया जा सकता। अधिकतर अच्छे बैंक प्रति वर्ष मूल्य ह्रास (Depreciation) के द्वारा इमारतों और अन्य सम्पत्ति के मूल्य को बहुत घटा देते हैं। इनका जो मूल्य लेनी (Asset) की ओर लिखा जाता है वह इनके वास्तविक मूल्य से कहीं बहुत कम होता है और इस प्रकार यह बैंक गुप्त सुरक्षित कोष का निर्माण करते हैं।

अब हम यहां संक्षेप में उन बातों पर विचार करेंगे जिनका हमें किसी बैंक की लेनी-देनी के लेखे (Balance Sheet) का अध्ययन करते समय ध्यान रखना चाहिए। बैंक के लेनी-देनी के लेखे में हमें तीन बातों का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए। (१) बैंक के लाभ देने की शक्ति, (२) सुरक्षा, (३) बैंक के कारबार का स्वरूप। इन तीन बातों का अध्ययन करने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा।

(१) **बैंक के लाभ देने की शक्ति :**—बैंक के लाभ देने की शक्ति का अनुमान लगाने के लिए हमें पिछले कुछ वर्षों में बैंक ने कितना लाभ (Dividend) बांटा है इसको जानना होगा तथा उसका सुरक्षित कोष (Reserve Fund) लाभ समकारी कोष (Dividend Equalisation Fund) तथा अविभाजित लाभ (Undivided Profits) पहले से बढ़ रहा है अथवा घट रहा है। यदि पिछले वर्षों में लाभ एक समान दिया गया है तथा सुरक्षित कोष, लाभ समकारी कोष, तथा अविभाजित लाभ की रकम प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि बैंक की लाभ देने की शक्ति अच्छी है। इसके अतिरिक्त बैंक की हिस्सा पूँजी (Capital) तथा डिपाज़िट का क्या अनुपात है इससे भी बैंक की लाभ देने की शक्ति का पता लगता है। यदि जमा (डिपाज़िट) हिस्सा पूँजी को देखते बहुत अधिक है तो बैंक की लाभ देने की शक्ति अधिक होगी।

(२) **सुरक्षा तथा तरलता** (Safety and Liquidity) बैंक की सुरक्षा (Safety) तथा तरलता (Liquidity) को जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि डिपाज़िट और विनियोग (Investments) तथा दिए हुए ऋण का क्या सम्बन्ध है। अर्थात् विनियोग इस प्रकार के हैं कि जो शीघ्रता पूर्वक रोकड़ में परिणत किये जा सकते हैं अथवा नहीं, और ऋण डिपाज़िटों की तुलना में बहुत अधिक तो नहीं हैं। बैंक का सुरक्षित कोष (Reserve Fund) समुचित है अथवा नहीं, इसके अतिरिक्त बैंक की

सुरक्षा को जानने के लिए उसकी हिस्सा पूँजी (Share Capital) और जमा (डिपाजिट) का क्या सम्बन्ध है। यदि पूँजी डिपाजिट को देखते यथेष्ट है तो सुरक्षा अच्छी है।

(२) बैंक के कारबार का रूप :—यह जानने के लिए कि बैंक का कारबार ठीक ढंग से चल रहा है अथवा नहीं हमें देखना होगा कि डिपाजिट और दिए हुए ऋण का क्या सम्बन्ध है, विनियोग और डिपाजिट का क्या सम्बन्ध है। यदि डिपाजिट पहले से बढ़ रहे हों और विनियोग तथा दिया हुआ ऋण भी पहले से बढ़ रहा हो तो यह समझना चाहिये कि बैंक का कारबार बढ़ रहा है।

ऊपर की बातें तो केवल संकेत मात्र हैं जिनका हमें किसी बैंक का अध्ययन करते समय ध्यान रखना चाहिये किन्तु उसके लिये कोई एक नियम नहीं बतलाया जा सकता। किसी एक बैंक की दृढ़ता का अनुमान करने के लिये हमें ऊपर की बातों का ध्यान रखते हुए उसकी तुलना उस देश के प्रथम श्रेणी के बैंकों से करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें यह भी देखना चाहिए कि बैंक डिपाजिट पर कितना सूद देता है। यह जमा अर्थात् डिपाजिटों की रकम तथा सूद के रूप में कितनी रकम दी गई है उसको मालूम करने से ज्ञात हो सकता है। जितनी ही डिपाजिटों पर कम सूद की दर दी गई हो उतना ही बैंक को अच्छा समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त दिये हुए ऋण पर तथा विनियोग (Investment) पर जितनी ही कम औसत सूद की दर होगी उतना ही बैंक को अच्छा समझना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि बैंक ने अपना रुपया सुरक्षित स्थान पर लगाया है और बैंक की लेनी तरल है।

अध्याय ६

विनियोग नीति तथा लेनी (Investment Policy andAssets)

इससे पहले हम बैंक की लेनी (Assets) के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक लिखें यह आवश्यक है कि बैंक की विनियोग नीति का अध्ययन कर लें। क्योंकि बैंक जिस प्रकार अपने रुपये को लगावेगा उस पर ही यह निर्भर होगा कि बैंक की लेनी या सम्पत्ति किस प्रकार की होगी। बैंक के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह अपनी पूँजी (Capital) तथा जमा (Deposit) को इस प्रकार लगावे कि वह अधिक से अधिक आय प्राप्त कर सके, साथ ही उसके विनियोग (Investments) ऐसे हों जो आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र ही रोकड़ में परिणत किए जा सकें। दूसरे अर्थों में उसकी लेनी तरल हों।

विनियोग नीति के मुख्य आधार :—सभी देशों में बैंक एक सी नीति नहीं बर्तते। जिस देश की जैसी आर्थिक दशा होती है उसी प्रकार की नीति बैंक अपनाते हैं। प्रत्येक देश में डिपाज़िट तथा ऋण सम्बन्धी नीति एक सी नहीं हो सकती। यहाँ तक एक देश के भिन्न भागों में डिपाज़िट का रूप तथा ऋण का रूप भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण के लिए भारत और ब्रिटेन की स्थिति में बहुत अन्तर है। भारत में चेक (Cheque) तथा बिल का व्यवहार ब्रिटेन की तुलना में बहुत कम है। इसके अतिरिक्त एक ही देश में गाँवों तथा व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्रों में बैंकों को भिन्न-भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। गाँवों में ऋण अपेक्षाकृत अधिक समय के लिए और कुछ थोड़ी सी आवश्यकताओं के ही लिए दिए जाते हैं क्योंकि वहाँ सबों का एक ही धंधा (अर्थात् खेती) होता है। किन्तु औद्योगिक केन्द्रों तथा व्यापारिक केन्द्रों में ऋण बहुत से कार्यों के लिए दिए जाते हैं। इन सब बातों का प्रभाव बैंक की विनियोग नीति (Investment Policy) पर पड़ता है।

जब कोई बैंक अपने रुपये को कहीं लगाता है तो उसको तीन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है, (१) सूद की आमदनी, (२) रुपया सुरक्षित रहे, (३) रुपया बहुत लम्बे समय के लिए अटक न जाय। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बैंक को अपना रुपया लगाते समय आय, सुरक्षा और तरलता (Liquidity) का ध्यान रखना पड़ता है।

हमें यह न भूल जाना चाहिए कि बैंक एक व्यापारिक संस्था है अतएव वह अपने हिस्सेदारों के लिए अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहता है। उसका मुख्य ध्येय अधिकतर लाभ कमाना है। किन्तु बैंक के पास जो कोष (Fund) होता है उसका अधिकांश भाग उसका न होकर जमा करने वालों का होता है जिसे वे बैंक के पास धरोहर के रूप में रख देते हैं। अस्तु बैंक उस रुपए को ऐसी जगह नहीं लगा सकता जहां उसके मारे जाने का खतरा हो। बैंक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है कि उसका लगाया हुआ रुपया सुरक्षित रहे। अतएव बैंक रुपया लगाने में अनावश्यक और अधिक खतरा नहीं उठा सकता। इसके अतिरिक्त क्योंकि बैंक की अधिकतर डिपाजिट इच्छानुसार जब चाहे निकाली जा सकती हैं इस कारण बैंक को अपनी यथेष्ट लेनी (Assets) तरल (Liquid) रखनी पड़ती है जिससे जब आवश्यकता पड़े उन्हें रोकड़ (Cash) में परिणत करके जमा करने वालों को उनका रुपया वापस किया जा सके।

बैंकिंग के कारबार में ये तीन आधारभूत सिद्धान्त हैं और इन तीनों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक बैंक इन तीनों आधारभूत सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर कार्य नहीं करता तब तक कभी सफल नहीं हो सकता। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि बैंक का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना है और बैंक दूसरों के जमा किये हुये रुपये को व्यापारियों को ऋण स्वरूप देकर लाभ कमाता है। इस कारण यह नितान्त आवश्यक है कि बैंक में रुपया जमा करने वालों को बैंक पर पूरा भरोसा तथा विश्वास हो। बैंक रुपया जमा करने वाले में अपने प्रति विश्वास तभी उत्पन्न कर सकता है जब रुपया जमा करने वाले के मांगने पर उनका रुपया तुरन्त देने में समर्थ हो। जमा करने वालों को मांगने पर नकद रुपया देने की क्षमता तभी हो सकती है जब बैंक की लेनी (Assets) तरल (Liquid) हो। बैंक ने अपना रुपया इस प्रकार बहुत लम्बे समय के लिए न अटका दिया हो कि आवश्यकता पड़ने पर उसके पास नकद रुपया देने को न रहे।

किन्तु तरलता (Liquidity) का अर्थ केवल यह नहीं है कि लेनी (Asset) को जब चाहे तब नकद रुपये में परिणत किया जा सके। इसके साथ ही तरलता का अर्थ यह भी है कि लेनी को बेंच कर अथवा दूसरे बैंकों अथवा व्यक्तियों को देकर नकद रुपये परिणत करने में घाटा न उठाना पड़े। अस्तु तरलता (Liquidity) का अर्थ यह है कि लेनी शीघ्रता

पूर्वक नकद रुपये में परिणत की जा सके, साथ ही उसको नकद रुपये में बदलने में कोई घाटा भी न हो। इसको हम एक उदाहरण से अच्छे प्रकार समझ सकते हैं। सरकार की लम्बे समय की प्रतिभूति (Security) को जब चाहें हम बाज़ार में बेंच सकते हैं क्योंकि सरकारी सिक्यूरिटी के लिए बाज़ार में ग्राहक सदैव मिल सकते हैं अतएव सरकारी सिक्यूरिटी को सरलता से रोकड़ में परिणत किया जा सकता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जिस मूल्य पर सिक्यूरिटी खरीदी गई थी उसी मूल्य पर वह बेंची जा सकेगी। हो सकता है कि वह अधिक मूल्य पर बिके अथवा कम मूल्य पर बिके। यदि वह कम मूल्य पर बिकती है तो बैंक को हानि होगी और यदि वह अधिक मूल्य पर बिकी तो बैंक को लाभ होगा। हां यदि बैंक अन्त तक ठहरे जब सरकार उस ऋण को चुकावेगी तब अवश्य बैंक को हानि नहीं हो सकती। अस्तु सरकारी सिक्यूरिटी यद्यपि रोकड़ में शीघ्र ही परिवर्तित की जा सकती है किन्तु उसमें भी हानि की सम्भावना बनी रहती है। इस दृष्टि से तो सरकारी सिक्यूरिटी भी आदर्श लेनी (Asset) नहीं है परन्तु फिर भी सरकारी सिक्यूरिटी एक उत्तम लेनी है। केवल रोकड़ (Cash) ही आदर्श तरल लेनी (Liquid Asset) है। जब बैंक किसी व्यक्ति की साख पर उसे ऋण देता है यदि वह व्यक्ति अत्यन्त विश्वसनीय, भरोसे वाला और ईमानदार है और इस जोखिम को कि उसके मर जाने से बैंक को हानि होगी उसका जीवन बीमा कराकर दूर कर दिया गया है तो उसको ऋण देने से जो लेनी (Asset) उत्पन्न हुई उसमें हानि की जोखिम तो नहीं रहती किन्तु उस लेनी को आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त रोकड़ में परिणत नहीं किया जा सकता।

जहां तक लेनी को रोकड़ में परिणत करने का प्रश्न है हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि कुछ लेनी (Asset) ऐसी होती हैं कि साधारण समय में तो वे सरलता पूर्वक रोकड़ में परिणत की जा सकती हैं, वे बाज़ार में आसानी से बिक जाती हैं, किन्तु असाधारण समय में, उदाहरण के लिये जब घोर आर्थिक मंदी (Economic Depression) हो अथवा जब सर्व साधारण बैंकों से अपना रुपया निकालने के लिए दौड़ रहे हों, तब ये लेनी भी आसानी से नहीं बिकतीं। और यदि सभी बैंक अपनी लेनी (Asset) बाज़ार में एक साथ बेंचना चाहेंगे तो उनका मूल्य बहुत गिर जावेगा। जब बैंकों पर इस प्रकार का संकट आता है तो राष्ट्र का केन्द्रीय बैंक (Central Bank) उनकी सहायता के लिए आगे आता है। केन्द्रीय बैंक इन बैंकों की

लेनी की ज़मानत पर उन्हें रुपया देता है और इस प्रकार बैंकों में रुपया जमा करने वाला की घबराहट को दूर कर देता है और साधारण स्थिति को वापस लाने का प्रयत्न करता है। किन्तु केन्द्रीय बैंक केवल कुछ विशेष प्रकार की लेनी (Assets) की ज़मानत पर ही बैंकों को ऋण देता है और कुछ विशेष प्रकार की लेनी को ही भुनाता है। केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के इस सम्बन्ध में निश्चित नियम होते हैं कि वह किस प्रकार की लेनी को स्वीकार करेगा। अस्तु बैंकों का अपना रुपया लगाते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि केन्द्रीय बैंक (Central Bank) किस प्रकार की लेनी को स्वीकार करेगा। क्योंकि जब बैंक पर असाधारण संकट आयेगा तो वही लेनी काम आवेगी जो केन्द्रीय बैंक को स्वीकार होगी क्योंकि उस समय बैंक का अन्य लेनी बाजार में नहीं बिक सकेगी। अस्तु बैंक की विनियोग नीति (Investment Policy) अर्थात् रुपया लगाने की नीति पर केन्द्रीय बैंक का बहुत प्रभाव पड़ता है।

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि बैंक अपना रुपया लगाते समय लाभ, सुरक्षा और तरलता का ध्यान रखता है किन्तु लाभ की अपेक्षा सुरक्षा और तरलता अधिक महत्वपूर्ण है। किसी ने ठीक ही कहा है कि सुरक्षा के पीछे पड़ने से बैंक को कोई खतरा नहीं होता वरन् अधिक लाभ के पीछे पड़ने से खतरा उत्पन्न हो जाता है। जब सुरक्षा और तरलता का पूरी तरह प्रबन्ध हो ले तभी लाभ की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि बैंक अपने कोष (Fund) को इस प्रकार लगाता है कि कुछ कोष तो नक़दी में रहे जिससे ग्राहकों की दैनिक माँग पूरी हो सके। नक़दी या रोकड़ सबसे तरल लेनी (Liquid Asset) होती है और क्रमशः बैंक कम तरल लेनी में अपना रुपया लगाता है। कुछ लेनी ऐसी होती है कि जो शीघ्र ही नक़दी में परिणत की जा सकती है और अन्त में कुछ लेनी अचल सम्पत्ति के रूप में होती है। बैंक को इस बात का पूरा ध्यान रखना पड़ता है कि कितना कोष किस प्रकार की लेनी में लगाया जावे। इसको बैंक की "विभागीय नीति (Portfolio Policy)" भी कहते हैं। अब हम यहाँ बैंक की मुख्य लेनी के सम्बन्ध में लिखेंगे।

(१) मुख्य कोष (Primary Reserve) :—इसमें नक़दी (Cash) जो बैंक में रहती है, *अन्य बैंकों तथा केन्द्रीय बैंक (Central Bank)* के पास जो शेष (Balance) है अर्थात् रुपया जमा है और जो चेक

इत्यादि समाशोधन (Clearing) या वसूली के लिए गए हैं—सम्मिलित होते हैं।

(२) गौण कोष (Secondary Reserve) :—इसमें याचना द्रव्य (Call-money) वह ऋण जो बहुत थोड़े दिनों (एक सप्ताह से कम) के लिए दिया गया हो अर्थात् अल्प सूचनाया द्रव्य (Money at short notice) तथा खरीदे हुए तथा भुनाये हुए बिल सम्मिलित होते हैं।

(३) विनियोग (Investments)

(४) ऋण (Loans) तथा अग्रिम (Advances) ऋण, सुरक्षित (Secured) भी होता है और अरक्षित (Unsecured) भी होता है।

(५) स्थायी अचल सम्पत्ति (Fixed Assets) इमारत, फरनीचर, सेफ तथा अन्य अचल सम्पत्ति।

(६) वे लेनी जिनके विरुद्ध बैंक का दायित्व है। उदाहरण के लिये ग्राहकों के बिलों पर बेचान करना अथवा उनको स्वीकार करना।

हम पहले चार के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। किन्तु इनके बारे में विचार करने से पूर्व हमें बैंक के कारबार में किन बातों का मुख्य रूप से विचार करना पड़ता है उसका वर्णन करेंगे।

बैंक का मुख्य कार्य साख (Credit) देना अर्थात् ऋण देना है, अस्तु बैंक का कारबार साख देने तथा साख सम्बन्धी अन्य बातों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। साख देने का कार्य ठीक ढंग से करने के लिए बैंक के लिए यह आवश्यक होता है कि वह सम्भावित ऋण लेने वालों की ईमानदारी, विश्वसनीयता, व्यापारिक कुशलता तथा आर्थिक स्थिति का ठीक पता लगावे जिससे ऋण देने में घाटा न हो। यदि बैंक ऊपर लिखी बातों की जाँच किए बिना ही ऋण दे दे तो रुपये के मारे जाने का भय रहता है और बैंक को हानि उठानी पड़ती है। बैंक का ऋण देने के सम्बन्ध में मुख्य कार्य यह है कि वह साख की जोखिम (Credit risk) को कम से कम कर दे।

यह सभी जानते हैं कि बैंक को अपना रुपया लगाने में उसकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। परन्तु सच तो यह है कि कोई भी ऐसा विनियोग (Investment) नहीं होता जिसमें थोड़ी बहुत जोखिम न उठानी पड़े। यह ठीक है कि सुरक्षित विनियोग (Secured Investments) में अरक्षित विनियोग (Unsecured Investments) से कम

जोखिम होती है। किन्तु कभी कभी सुरक्षित ऋण की सुरक्षा भी कर्जदार की ईमानदारी पर निर्भर होती है। किन्तु बैंक ने अरक्षित ऋण (Unsecured loans) भी बहुत अधिक होते हैं इस कारण बैंक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन कर्जदारों की साख की जाँच पड़ताल कर ली जावे। किसी किसी देश में अरक्षित ऋण बहुत अधिक दिये जाते हैं क्योंकि वे व्यापारिक कार्यों के लिये होते हैं अतएव वे शीघ्र ही चुका दिये जाते हैं इस कारण व्यापारिक बैंक उन्हें अच्छा समझते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा अन्य उन्नत राष्ट्रों में आधे से अधिक ऋण अरक्षित होते हैं इस कारण उन्हें एक ऐसा विभाग रखना पड़ता है जो ऋण लेने वालों की साख की जाँच पड़ताल कर सके।

साख के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के साधनः—बैंक किसी भी कर्जदार की साख को जानने के लिए दो साधनों पर निर्भर रहते हैं। (१) आभ्यन्तरिक। (२) बाहरी।

१. आभ्यन्तरिक साधन —(अ) ग्राहक के कारबार का लेखा अर्थात् उसका लाभ हानि खाता (Profit and loss account) लेनी देनी का लेखा (Balance Sheet) देखने से।

(क) यदि ग्राहक बैंक का पुराना ग्राहक है तो उसका पुराना इतिहास जो बैंक अपने रेकार्ड से मालूम कर सकता है।

(ख) बैंक के कर्मचारी ग्राहक के कारबार के स्थान पर जाकर उसके कारबार की जाँच करके तथा उसके कारबार को स्वयं देख कर उसकी साख के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(ग) ग्राहक से बात करके अथवा उससे पत्र द्वारा पूँछ ताँछ करके।

बाहरी साधन :—(अ) अन्य बैंक से उस ग्राहक के सम्बन्ध में पूछताछ करने उसकी साख के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(क) उन फर्मों से पूछ ताछ करके जिनसे ग्राहक ने कारबार किया हो।

(ख) उन व्यापारिक संस्थाओं से पूछ ताछ करने से जो व्यापारियों की साख के सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री जमा करती हैं ग्राहक की साख का पता लगाया जा सकता है।

(ग) साख विनिमय ब्यूरो से पूछने पर।

(घ) अदालती रेकार्ड, समाचार पत्रों, तथा प्रकाशित रिपोर्टों से भी व्यापारियों की साख के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

इन सब में कर्जदार के कारबार का आर्थिक लेखा सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। आर्थिक लेखे में लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) और लाभ-हानि खाता दोनों ही सम्मिलित हैं। यदि वह लेखा किसी अधिकारी आय-व्यय निरीक्षक (Auditor) द्वारा प्रमाणित किया गया हो तो और भी अच्छा है। जहां तक हो बैंक को दो-चार वर्षों का आर्थिक लेखा मांगना चाहिए क्योंकि उनके देखने से यह पता चल सकता है कि यह व्यक्ति अपने व्यापार में उन्नति कर रहा है अथवा नहीं। यदि कर्ज लेने वाला बैंक का पुराना ग्राहक हो तो पिछले रेकार्ड से उसकी आर्थिक स्थिति, ईमानदारी, उसकी साख और उसके कारबार के बारे में जानकारी प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलती है।

भावी कर्जदार की साख की जानकारी प्राप्त करने के बाहरी साधनों में पहले दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। बैंक एक दूसरे को आपस में साख सम्बन्धी सूचनाएँ देते हैं। परन्तु प्रत्येक बैंक इस प्रकार की सूचनाओं को गुप्त रखता है। इस प्रकार बैंक कम व्यय में और सरलतापूर्वक साख की जानकारी प्राप्त कर लेता है। साथ ही वह यह भी जान जाता है कि उस ग्राहक (जो कर्ज लेना चाहता है) ने किसी अन्य बैंक से भी कर्ज ले रक्खा है या नहीं। बैंक किसी व्यापारी की साख के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए व्यापारिक संस्थाओं की भी सहायता ले सकते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा अन्य योरोपीय देशों में कुछ ऐसी व्यापारिक एजेंसियां होती हैं जिनका एक मात्र कार्य यह होता है कि वे प्रमुख व्यापारियों, कम्पनियों, इत्यादि की आर्थिक दशा, उनके कारबार और धंधे के सम्बन्ध में तथा उनकी साख (Credit) के सम्बन्ध में पूरी जानकारी एकत्रित करती हैं और थोड़ी फीस लेकर बैंक इत्यादि को उस जानकारी को दे देती हैं।

बैंक की लेनी (Bank Assets) :—रोकड़ या नक़दी (Cash) बैंक की सब से तरल लेनी (Liquid Asset) होती है और बैंक उसको अपने ग्राहकों की मांग को पूरा करने के लिए रखते हैं। रोकड़ के अंदर वह नकद रुपया जो बैंक अपने पास रखता है अथवा जो उसने अन्य बैंकों तथा केन्द्रीय बैंकों में जमा कर रक्खा है सभी आ जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय व्यापारिक बैंक जो रुपया या कागजी नोट अपने पास रखते हैं, और जो रुपया उन्होंने अन्य बैंकों तथा रिजर्व बैंक में जमा कर रक्खा है सभी सम्मिलित होता है।

लेकिन नकदी वह लेनी है जिससे कुछ भी आय नहीं होती। एक व्यापारिक बैंक का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। इस कारण वह स्वभावतः यह चाहेगा कि उसकी अधिक से अधिक लेनी ऐसी हो जिनसे कुछ आमदनी हो। अतएव वह नक़द रुपये की रकम को जितना भी कम कर सकता है उतना कम करेगा। कुछ नक़द रुपया तो बैंक को रखना ही पड़ता है क्योंकि बिना नकद रुपया रक्खे बैंक का काम ही नहीं चल सकता। प्रतिदिन बैंक का जमा करने वालों के निकालने पर उन्हें नक़द रुपया देना पड़ता है, उसके लिए बैंक को थोड़ी नकदी रखनी ही पड़ती है। फिर यदि समाशोधन गृह (Clearing House) में बैंक का किसी दिन अधिक देना हो जाता है तो उसे नक़दी देकर चुकाना पड़ता है। होता यह है कि केन्द्रीय बैंक में जो उस बैंक का रुपया शेष (Balance) है उसमें से जितना क्लियरिंग हाउस को देना होता है उतना कम कर दिया जाता है। इस प्रकार बैंक का केन्द्रीय बैंक (Central Bank) में जमा शेष है उसमें कमी हो जाती है और हम यह पहले ही कह आये हैं कि जो रुपया केन्द्रीय बैंक में जमा होता है उसे भी रोकड़ (Cash) माना जाता है। यह तो साधारण दैनिक नक़दी की आवश्यकता है जो बैंक के रोजाना कारबार में काम आती है, किन्तु कुछ नकदी इसलिए भी रखना आवश्यक होती है कि जिससे असाधारण नकदी की माग को पूरा किया जा सके। कुछ असाधारण नक़दी की माँग को तो पहले से ही अनुमान किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जब बैंक की छुट्टियां होने को होती हैं उसके पूर्व नक़द रुपये की असाधारण माग होती है। परन्तु जब ऐसे कारणों से नक़दी की असाधारण मांग होती है जिनके बारे में पहले से कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता तब बैंक अपनी रक्षा का दूसरी पक्ति अर्थात् याचना द्रव्य (Call money) बहुत थोड़े समय के लिए दिए हुए ऋण, और बिलों पर निर्भर रहता है। जैसे ही नकदी की असाधारण माग हुई कि बैंक याचना द्रव्य तथा अल्पकालीन ऋण को वसूल कर लेता है नये बिलों को भुनाना या खरीदना बन्द कर देता है, पुराने बिल पकते जाते हैं और प्रतिदिन बैंक को बहुत अधिक नक़द रुपया प्राप्त होता जाता है।

बैंक कितनी रोकड़ रक्खेगा यह बहुत सी बातों पर निर्भर है। उनका उल्लेख यहां कर देना आवश्यक है। बैंक जिस स्थान में काम कर रहा है वहाँ की स्थानीय स्थिति तथा उसके ग्राहकों के स्वभाव का इस बात पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है कि बैंक को कितनी रोकड़ या नक़दी रखना चाहिए।

(१) जिस देश में विनिमय (Exchange) बहुत अधिक होता हो और द्रव्य के द्वारा होता हो वहाँ बैंकों को उन स्थानों की अपेक्षा अधिक नकदी या रोकड़ रखनी होगी जहाँ द्रव्य का चलन कम है अथवा द्रव्य (Money) की सहायता से कम विनिमय होता है। (२) जिस समाज में चेक (cheque) का चलन बहुत अधिक होता है अर्थात् जहां के व्यक्ति अपना लेन-देन सिक्कों या कागजी नोटों द्वारा नहीं चुकाते किन्तु चेक के द्वारा करते हैं वहाँ बैंकों को कम नक़दी रखनी पड़ती है। किन्तु जहां चेक का चलन कम होता है और लेना-देना सिक्कों या कागजी नोटों के द्वारा अधिकतर चुकाया जाता है वहाँ बैंकों को अपेक्षाकृत अधिक नक़दी रखनी पड़ती है। (३) जहाँ समाशोधन गृह अर्थात् क्लियरिंग हाउस (Clearing House) मौजूद होता है वहाँ बैंकों का काम नकदी से चल जाता है। क्योंकि क्लियरिंग हाउस में प्रत्येक बैंक पर काटे गये चेक अन्य दूसरे बैंकों द्वारा उपस्थित किये जाते हैं। बैंकों को सारे चेकों को जो उस पर काटे गए हैं मूल्य न चुका कर केवल अन्तर को लेना या देना पड़ता है जो उस दिन उसके पक्ष या विपक्ष में हों। उदाहरण के लिए एक बैंक को किसी दिन अन्य बैंकों से १२ लाख रुपया लेना है और १२½ लाख रुपये देना है तो वह केन्द्रीय बैंक (Central Bank) पर जिसमें सभी बैंकों का हिसाब रहता है चेक काट कर चुका देता है। अर्थात् उस दिन केवल उसके केन्द्रीय बैंक के हिसाब में ५० हजार रुपये कम हो जावेंगे। यदि दूसरे दिन उसको देना कम हो और लेना अधिक हो तो केन्द्रीय बैंक में उसके हिसाब में उतना ही अधिक जमा हो जावेगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी बैंक में थोड़े से ही जमा करने वाले होते हैं और विशेष रूप से जब वे एक प्रकार का कार-बार करते हैं तो बैंक को अधिक नक़दी रखनी पड़ती है क्योंकि विशेष अवसरों पर बैंक को अपने जमा करने वाले को बहुत अधिक रुपया देना पड़ सकता है जब उन जमा करने वालों के कारबार का समय आता है। किसी एक स्थान में जितनी नक़दी और बैंक रखते हैं उसका भी प्रभाव प्रत्येक बैंक पर पड़ता है, उसको भी उसी अनुपात में नक़दी रखना पड़ती है क्योंकि साधारण जनता का ऐसा विश्वास है कि जो बैंक जितनी ज्यादा नक़दी रखता है वह उतना ही अधिक सुरक्षित और अच्छा है। यदि कोई बैंक किसी स्थान में अधिक नक़द कोष (Cash Reserve) रखता है तो अन्य बैंकों को भी अपने नक़द कोष को बढ़ाना पड़ता है जिससे उनकी प्रतिष्ठा को ठेस न पहुँचे। यहां यह कह देना उचित होगा कि वास्तव में नक़द कोष (Cash Rese-

rve) ही किसी बैंक की अच्छाई का द्योतक नहीं है। बैंक की सुरक्षा इस बात पर निर्भर होती है कि बैंक ने अपना रुपया सुरक्षित स्थान पर लगाया है अथवा नहीं। यदि किसी बैंक ने अपना अधिकांश रुपया ऐसी लेनी (Assets) में लगाया है जो शीघ्र ही नक़दी में बदली जा सकती है तो उसको अधिक नक़द कोष रखने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु अधिक नकद कोष इस बात का द्योतक हो सकता है कि बैंक का अधिक कोष कम तरल लेनी (Less Liquid Assets) में लगा हुआ है।

नकद कोष (Cash Reserve) का अनुपात :—अब प्रश्न यह है कि बैंकों को नक़द कोष कितना रखना चाहिए। जमा के अनुपात में जितना नक़द कोष रक्खा जाता है उसी को नक़द कोष का अनुपात कहते हैं। क्योंकि नक़द कोष की आवश्यकता केवल रुपया जमा करने वालों की मांग पूरी करने के लिए होती है। व्यापारिक बैंक जमा की तुलना में कितना नकद कोष रखते हैं उसका अनुपात भिन्न देशों में भिन्न है। ब्रिटेन और संयुक्तराज्य अमेरिका में यह सबसे कम अर्थात् डिपाज़िट (जमा) का ६ प्रतिशत होता है किन्तु भारतवर्ष में १५ से २० प्रतिशत नक़द कोष रक्खा जाता है। इसका कारण यह है कि ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में चेक का चलन बहुत अधिक है और भारत में उसका चलन कम है।

कुछ देशों में कानून द्वारा कम से कम एक निश्चित अनुपात में नक़द कोष रखना पड़ता है। इसे कानूनी नक़द कोष (Statutory Cash Reserve) कहते हैं। कानून नक़द कोष का अनुपात बहुत थोड़ा निर्धारित करता है। भारतवर्ष में कानून के अनुसार बैंकों को अभियाचन जमा (Demand Deposit) का ५ प्रतिशत तथा मुद्दती जमा (Fixed Deposit) का २ प्रतिशत नकद कोष रखना पड़ता है। परन्तु जिन देशों में कानून द्वारा नक़द कोष का न्यूनतम अनुपात निर्धारित कर दिया गया है वहां बैंक बहुधा उससे कहीं अधिक नक़द कोष रखते हैं।

याचना द्रव्य (Call-money) तथा अल्पकालीन ऋण (Money at short notice) :—नक़द कोष के बाद द्रव्य बाजार को जो बहुत अल्प काल के लिए ऋण दिया जाता है वह सबसे अधिक तरल लेनी होती है। नकद कोष की अपेक्षा उनका एक लाभ यह है कि उस रुपये

पर कुछ सूद मिल जाता है। द्रव्य बाज़ार (Money Market) को जो ऋण दिये जाते हैं उन्हें हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं। एक प्रकार का ऋण तो वह होता है जो बिल बाज़ार (Bill Market) को दिया जाता है। ब्रिटेन में बिल ब्रोकर तथा डिसकाऊन्ट हाऊस (जो बिल भुनाने का काम करते हैं); बिल खरीद लेते हैं। उन्हें कभी-कभी थोड़े दिनों के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ जाती है। वे बैंकों से रुपया उधार लेते हैं। इसके अतिरिक्त स्टाक ऐक्सचेंज (जहां कम्पनियों के हिस्से का क्रय-विक्रय होता है) के ब्रोकरों को भी बहुधा कुछ दिनों के लिए ऋण की आवश्यकता होती है। यह दूसरे प्रकार का ऋण होता है। इस प्रकार के ऋण एक या दो सप्ताह से अधिक के लिए नहीं दिये जाते। तीसरे प्रकार का ऋण वह होता है जो बैंक एक दूसरे को देते हैं और उसको जब चाहे तो मांगा जा सकता है। भारतवर्ष में बिल बाज़ार नहीं है, और स्टाक ऐक्सचेंज के ब्रोकरों को जो ऋण दिया जाता है वह याचना-द्रव्य (Call-money) के रूप में नहीं दिया जाता है। वह साधारण ऋण के रूप में दिया जाता है। अस्तु वह साधारण ऋण माना जाता है। भारत में इस श्रेणी में केवल वह ऋण आते हैं जो बैंक एक दूसरे को थोड़े समय के लिये देते हैं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तथा अन्य प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में ही केवल याचना-द्रव्य बाज़ार (Call money Market) है जहां बैंक एक दूसरे बैंकों से क्षणिक आवश्यकताओं के लिए ऋण लेते हैं। यदि कारबार बहुत अधिक है और इस प्रकार के ऋण की बहुत अधिक मांग है तो सूद की दर कुछ अधिक होती है और यदि कारबार मंदा है तो सूद की दर कम होती है। मई, जून से सूद की दर कम होने लगती है और नवम्बर और दिसम्बर से सूद की दर ऊंची उठने लगती है। साधारण तौर पर सूद की दर ½ प्रतिशत से १ प्रतिशत तक बढ़ती है।

भुनाये हुए तथा खरीदे हुए बिल (Bills Discounted and Purchased) :—इसमें प्रामिसरी नोट, बिल (व्यापारिक) तथा सरकारी हुंडी (Treasury Bill) सभी सम्मिलित होते हैं। प्रामिसरी नोट तो बैंक कम ही भुनाते या खरीदते हैं किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बिल (International Bills), देशीय बिल (Inland Bill) तथा सरकारी हुंडी (Treasury Bills) ही अधिकतर भुनाते या खरीदते हैं। ब्रिटेन में इनका और जमा (Deposit) का अनुपात १२ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक होता है। नक़द कोष (Cash Reserve) याचना-द्रव्य, तथा अल्प कालीन ऋण (Call money and at short notice) तथा बिल, बैंक की तरल

लेनी (Liquid Assets) होती हैं। ब्रिटेन में इनका अनुपात जमा (Deposit) की तुलना में ३० से ३३½ प्रतिशत होता है।

भारतवर्ष में बैंक बिलों में अधिक रुपया नहीं लगाते। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में अभी तक बिल बाजार (Bill Market) का निर्माण नहीं हुआ। हां यहां एक्सचेंज बैंक अवश्य विदेशी बिल बहुत अधिक रखते हैं। भारतीय बैंक व्यापारिक बिलों में बहुत कम रुपया लगाते हैं। भारतीय बैंकों द्वारा भुनाये अथवा खरीदे हुए बिलों का डिपाजिट की तुलना में अनुपात ५ से ६ प्रतिशत के लगभग ही होता है।

विनियोग (Investments) :—विनियोग (Investments) बैंकों की चौथी रक्षा पंक्ति होता है। विनियोग से याचना द्रव्य तथा बिलों की अपेक्षा अधिक सूद की आय होती है। यद्यपि ऋण पर जितना सूद मिलता है उससे तो इस पर कम ही सूद मिलता है। किन्तु साधारणतः उचित सूद पड़ जाता है। जब ऋण की मांग कम हो जाती है तो बैंक अपने कोष को परम प्रतिभूति (Gild Edged Securities) या सरकारी सिक्यूरिटी में लगाता है, और जब ऋण की मांग अधिक होती है तो इन सिक्यूरिटियों को बेचकर रुपया ऋण के रूप में दे दिया जाता है। संयुक्तराज्य और ब्रिटेन में अधिकतर बैंक सरकारी प्रतिभूति सिक्यूरिटी, में ही अपना रुपया लगाते हैं यद्यपि थोड़ा रुपया अन्य परम प्रतिभूति (Gild Edged Securities) में भी लगाते हैं। ब्रिटेन में इनका जमा की तुलना में अनुपात २७ प्रतिशत, संयुक्तराज्य अमेरिका में ६० प्रतिशत से भी अधिक है। भारतवर्ष में भी बैंक इसमें अपने कोष का बहुत बड़ा भाग लगाते हैं। भारतवर्ष में बैंक अपनी जमा का ४० प्रतिशत इसमें लगाते हैं। इसका कारण यह है कि भारत में बिल बाजार (Bill Market) तथा याचना-द्रव्य (Call Money Market) का अभाव है। इस कारण परम प्रतिभूति (Gild Edged Security) ही अधिक उपयुक्त और तरल लेनी (Liquid Asset) मानी जाती है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि जहां तक इनको नकदी में परिणत करने का प्रश्न है इनको सरलतापूर्वक नकदी में बदला जा सकता है किन्तु इन पर हानि होने की जोखिम रहती है। क्योंकि जिस समय बैंक इनको बेचना चाहता है हो सकता है कि बाजार में उनका मूल्य गिर गया हो। अधिकतर भारतीय बैंक सरकारी सिक्यूरिटी, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट तथा पोर्टट्रस्ट तथा म्यूनिसिपैलिटियों के बौंड में रुपया लगाते

हैं किन्तु पिछले दिनों में बैंकों ने मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों (Joint Stock Companies) के हिस्सों और डिबेंचरों (ऋण पत्र) में भी रुपया लगाना आरम्भ कर दिया है।

ऋण (Loans) :—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि ऋण देना बैंक का मुख्य कार्य है और इस कार्य के द्वारा ही बैंक का सीधा सम्बन्ध जनता से स्थापित होता है। जनता तथा व्यापार के लिए बैंक की उपयोगिता उसके इस कार्य से ही नापी जाती है। यदि बैंक धरोहर के रूप में उसके पास जमा किया हुआ रुपया बुद्धिमानी से ऋण के रूप में देता है तो वह समाज की बहुमूल्य सेवा करता है। ऋण बैंक की सब से लाभदायक लेनी (Asset) है क्योंकि ऋण पर बैंक को सबसे अधिक सूद मिलता है। यही कारण है कि बैंक जितना अधिक हो सके उतना कोष (Fund) ऋण के रूप में लगा देना चाहता है। साथ ही उसको इन ऋणों की सुरक्षा के लिए सावधानी करनी पड़ती है। वह ऐसे व्यक्तियों को और ऐसी प्रतिभूति (Security) के आधार पर ऋण देता है जिससे रुपये के मारे जाने का तनिक भी भय न रहे। यदि बैंक ऋण देने में बहुत उदारता से काम लेता है तो बट्टे खाते (Bad debts) के कारण उसको बहुत हानि उठानी पड़ सकती है और यदि बैंक ऋण देने में अत्यधिक भयभीत रहता है तो उसका कोष (Fund) बेकार पड़ा रहेगा वह यथेष्ट आय प्राप्त नहीं कर सकेगा। अपने कोष को सावधानी से ऋण के रूप में अच्छे कर्जदारों को उठाने की योग्यता ही बैंक के संचालकों की सफलता का कारण बनती है। यदि किसी बैंक की ऋण देने की नीति ठीक है तो बैंक की सफलता में तनिक भी संदेह नहीं हो सकता।

यद्यपि ग्राहकों को दिये हुए ऋण से बैंक को सबसे अधिक लाभ होता है किन्तु यह लेनी (Asset) सबसे कम तरल है अर्थात् आवश्यकतानुसार नक़दी में परिणत नहीं की जा सकती। यद्यपि नाम के लिए बैंक ऋण देते समय यह शर्त रख सकता है कि मांगने पर कर्ज लेने वाले को रुपया देना होगा परन्तु व्यवहार में यह कठिन होता है कि बैंक की सूचना मिलते ही कर्जदार रुपया देने का प्रबंध कर सके। उदाहरण के लिये कल्पना कीजिए कि किसी व्यापारी ने कपास खरीदने के लिये ऋण लिया है तो वह बैंक के मांगने पर उस ऋण को नहीं चुका सकता क्योंकि जब तक वह कपास को बेंच कर रुपया वसूल न कर ले तब तक वह बैंक का कर्ज चुकाने में असमर्थ

होगा। अस्तु कोई भी बैंक आवश्यकता पड़ने पर अपने कर्जदारों से रुपया नहीं पा सकता और न वह कर्जदारों पर निर्भर ही रह सकता है। यदि सभी बैंक अपने-अपने कर्जदारों से ऋण को चुकाने के लिये दबाव डालने लगें तो और भी अधिक आर्थिक संकट (Economic Crisis) उत्पन्न हो जावे और जनता का बैंकों पर से विश्वास उठ जावे। प्रत्येक व्यक्ति ऐसी दशा में अपना जमा किया हुआ रुपया निकालने के लिये और भी उत्सुक और आतुर हो उठे और बैंकों से अपना रुपया निकालने के लिए दौड़ पड़े। उस दशा में बैंकों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है।

ऋण बहुत से रूपों में दिये जाते हैं। किन्तु बिना प्रतिभूति या जमानत (Security) के कोई ऋण नहीं दिया जाता। जमानत या प्रतिभूति भी कई प्रकार की होती है। ऋण के स्वरूप और जमानत में चाहे कितनी भिन्नता हो किन्तु व्यापारिक बैंक थोड़े ही समय के लिए ऋण देते हैं। कोई भी ऋण अधिक लम्बे समय के लिए नहीं दिया जा सकता। ब्रिटेन और संयुक्त राज्य में बैंक थोड़े ही समय के लिए ऋण देते हैं और भारतीय बैंक भी उसी नीति को अपनाये हुए हैं। भारतवर्ष, ब्रिटेन तथा संयुक्तराज्य में इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया है कि व्यापारिक बैंकों का यह कार्य नहीं है कि वे अपने ग्राहकों को अधिक लम्बे समय के लिए या अचल पूँजी (Fixed Capital) की व्यवस्था करें। उनका काम तो केवल इतना है कि वे जनता को थोड़े समय के लिए पूँजी दें अथवा कार्यशील पूँजी (Working Capital) की व्यवस्था करें। जब कोई व्यक्ति बैंक से ऋण लेने का प्रस्ताव करता है तो बैंक पहली बात यह देखता है कि ऋण कितने समय के लिए चाहिये, और दूसरी बात यह देखता है कि उस समय के व्यतीत हो जाने पर उसकी अदायगी की क्या सम्भावना है। बैंक को इस बात का अधिक महत्व होना चाहिए कि समय व्यतीत होने पर ऋण के चुकाये जाने की कितनी सम्भावना है। बैंक के लिए ऋण की तरलता (Liquidity) अधिक महत्त्वपूर्ण है उसे अच्छा जमानत और अच्छे सूद के लालच में न पड़ना चाहिये और लम्बे समय के लिए रुपया न फसाना चाहिये। इसके अतिरिक्त बैंक इस बात की भी जांच करता है कि ऋण किस लिए लिया जा रहा है। बैंक जोखिम के व्यापारों तथा सट्टे के लिए रुपया देने से हिचकता है। वह इस प्रकार के ऋण लेने वालों का उत्साहित नहीं करता। संसार के सभी मुख्य देशों में व्यापारिक बैंक जमा

(Deposit) किये हुए कोष का ५० प्रतिशत ऋण के रूप में दे देते हैं। भारत में ५० प्रतिशत से भी अधिक ऋणों के रूप में दे दिया जाता है।

ऋण का स्वरूप :—बैंक अपने ग्राहकों को तीन प्रकार से ऋण देते हैं। पहला साधारण कर्ज के रूप में, दूसरा नक़द साख (Cash Credit) के रूप में, तीसरा अधिविकर्ष (Over Draft) के रूप में। पिछले दो प्रकार के ऋण चालू खाते (Current Account) के द्वारा दिये जाते हैं और साधारण ऋण का हिसाब बिलकुल अलहदा रहता है। यदि किसी व्यक्ति का बैंक में खाता नहीं है वह भी बैंक से साधारण ऋण ले सकता है। यद्यपि व्यवहार में बैंक साधारणतः उन लोगों को ऋण नहीं देते जो उसके ग्राहक नहीं होते अर्थात् उनका बैंक में खाता नहीं होता। नक़द साख (Cash Credit) अथवा अधिविकर्ष (Over Draft) लेने के लिए बैंक के साथ चालू खाता होना आवश्यक है। यदि देखा जावे तो व्यवहार में नक़द साख और ओवर ड्राफ़्ट (अधिविकर्ष) एक से होते हैं। दोनों में ही ग्राहक को यह सुविधा दी जाती है कि वह जितना रुपया उसके हिसाब में है उससे अधिक निकाल सके। वह कितना रुपया अधिक निकाल सकेगा यह पहले निश्चित हो जाता है। जब किसी को बैंक साधारण ऋण देता है तो ऋण का हिसाब अलग खोला जाता है और जितना रुपया कर्ज़ देना तय हुआ है उतना बैंक कर्ज़ लेने वाले के ऋण खाते में उसके नामे (Debit) कर देगा। और या तो कर्ज लेने वाला उतना रुपया नक़द बैंक से ले लेगा अथवा उतना रुपया उसके चालू खाते में उसके नाम जमा कर दिया जावेगा। कर्ज़ लेने वाला जब जितना चाहे उसमें से निकाल सकेगा। ऋण के पहले दो स्वरूप अर्थात् नक़द साख और ओवर ड्राफ़्ट (अधिविकर्ष) अधिक सुविधा जनक और प्रचलित हैं क्योंकि इनमें ग्राहक को उतनी ही रक़म पर सूद देना पड़ता है जितनी कि वह निकालता है। पूरी रक़म पर (जितने तक वह निकाल सकता है) सूद नहीं देना पड़ता। साधारण ऋण में कर्ज लेने वाले को पूरी रकम पर सूद देना पड़ता है। उदाहरण के लिए मान लें कि एक व्यापारी को कुछ खरीद करनी है और उसके चालू खाते में केवल दस हज़ार रुपया है वह बैंक के पास जाता है और पुराना ग्राहक होने के कारण बैंक उसको दस हज़ार रुपये की नक़द साख अथवा ओवर ड्राफ़्ट (अधिविकर्ष) दे देता है अर्थात् वह अब अपने चालू खाते में से २० हज़ार रुपये तक निकाल सकता है। किन्तु आगे चलकर ग्राहक ने अपने रुपये से केवल पाँच हज़ार रुपये ही अधिक निकाले तो उसको केवल

पांच हजार रुपये ही पर सूद देना होगा। परन्तु यह भी हो सकता है कि ग्राहक दस हज़ार रुपये (जो उसके चालू खाते में जमा था) से अधिक निकाले ही नहीं और बैंक ने जो उसको नकद साख (Cash Credit) या ओवर ड्राफ्ट (अधिविकर्ष) दिया है उसके लिए नक़द कोष (Cash Reserve) रखना पड़े और उस प्रकार बैंक की उस रुपये पर सूद की हानि हो। इस हानि से बचने के लिए बैंक नक़द साख या ओवर ड्राफ्ट देते समय एक न्यूनतम रकम रख देते हैं जिस पर ग्राहक को सूद हर हालत में देना होगा चाहे वह उसको निकाले या न निकाले। यह कुल रक़म (जिसके लिए नः द साख या ओवर ड्राफ्ट दिया गया है) की एक तिहाई या एक चौथाई होती है।

साधारण ऋण तथा नक़द साख और ओवर ड्राफ्ट में एक भेद यह है कि साधारण ऋण अधिकतर लम्बे समय के लिए (अधिक लम्बे समय के लिए नहीं) लिए जाते हैं और नक़द साख तथा ओवर ड्राफ्ट अपेक्षाकृत कम समय के लिए। साधारण ऋण अपने निज व्यय के लिए अथवा धंधों के लिए उसकी मशीनों इत्यादि की ज़मानत पर लिए जाते हैं। ओवर ड्राफ्ट कम्पनियों के हिस्सों, सोना, कपास जूट इत्यादि की ज़मानत पर अथवा कर्ज़दार के प्रोनोट पर बिना किसी गारंटी करने वाले के हस्ताक्षर के ही दे दिया जाता है। परन्तु बिना आनुसंगिक ज़मानत (Collateral Security) के प्रोनोट पर ओवर ड्राफ्ट नहीं दिया जाता। नक़द साख, खेती की पैदावार, अन्य वस्तुओं तथा तैयार माल की ज़मानत पर दी जाती है। नक़द साख लेने वाले को अपना माल बैंक के गोदामों में रख देना पड़ता है।

ज़मानत या प्रतिभूति (Security) का स्वरूप:—ग्राहक की व्यक्तिगत ज़मानत पर भी उसे ओवर ड्राफ्ट या नक़द साख दे दी जाती है और उससे प्रोनोट लिखा लिया जाता है। यह अरक्षित कर्ज़ (Unsecured) कहलाता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि बैंक अपने रुपये की सुरक्षा का ध्यान किये बिना ही ऋण दे देता है। इस प्रकार के ऋण की ज़मानत कर्ज़दार की तत्कालीन आर्थिक स्थिति तथा भविष्य में कर्ज़दार के व्यापार या कारबार की कैसी सम्भावना है इस पर निर्भर होती है। इस प्रकार का ऋण देने से पूर्व बैंक कर्ज़दार से पिछले कुछ वर्षों का उसका लाभ हानि खाता (Profit & Loss Account) तथा लेनी देनी का लेखा (Balance Sheet) मांगता है। इनका एक विश्वसनीय आय-व्यय-निरीक्षक द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है। बैंक इनका अध्ययन करता है और कर्ज़ लेने वाले की आर्थिक स्थिति का

अनुमान लगाता है। इसके अतिरिक्त उस कर्जदार की बाज़ार में कैसी साख है तथा उसका चरित्र कैसा है इसकी जानकारी प्राप्त करता है। यदि कर्ज़ लेने वाला बैंक का ग्राहक रहा है तो उसकी ईमानदारी उसके कारबार की स्थिति तथा आर्थिक अवस्था का बैंक को ज्ञान होता ही है इन पर अवलम्बित होकर बैंक व्यक्तिगत जमानत पर ऋण देना स्वीकार करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ऋण देते समय बैंक कर्ज़ लेने वाले के चरित्र, योग्यता तथा पूँजी इन तीन बातों की जानकारी प्राप्त करता है।

यदि बैंक कर्ज़ लेने वाले की व्यक्तिगत ज़मानत को यथेष्ट नहीं समझता और कर्ज़ माँगने वाला कोई अन्य आनुसंगिक ज़मानत (Collateral Security) भी नहीं दे सकता तो बैंक गारंटी मांगता है। ऐसा कोई व्यक्ति जिसकी साख में बैंक का विश्वास हो कर्ज़ मांगने वाले की गारंटी दे अर्थात् यदि कर्ज़ मांगने वाला रुपया न चुकावे तो गारंटी देने वाला व्यक्ति बैंक के लिए उत्तरदायी होगा अर्थात् उस रुपये को स्वयं चुकावेगा। गारंटी कर्ज़ मांगने वाले के लिए भी सुविधा जनक है और बैंक के लिए भी एक अच्छी ज़मानत होती है। इसका एक दुर्गुण भी है। यदि गारंटी का लेख अच्छे प्रकार से ठीक-ठीक नहीं तैयार किया गया है तो आगे चल कर बहुत झंझट खड़ी हो सकती है और इस ज़मानत की उपयोगिता ज़मानत करने वाले की आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर होती है। यदि गारंटी देने वाला दिवालिया हो जावे तो वह बेकार हो जाती है। बैंक को गारंटी देने वाले के चरित्र, उसकी योग्यता तथा साख का पता भी लगाना पड़ता है। बैंक को जब गारंटी पत्र पर गारंटी करने वाले से हस्ताक्षर कराने हों तब उसे उसकी शर्तों को बता देना चाहिये जिससे वह आगे चल कर यह न कह सके उसे शर्तों का पता न था अथवा गारंटी पत्र में क्या लिखा है यह न मालूम था। साथ ही गारंटी पत्र में इस बात का भी उल्लेख कर दिया जाता है कि कर्ज़ की राशि चाहे घटती बढ़ती रहे किन्तु गारंटी पूरे ऋण के बराबर रहेगी।

व्यक्तिगत ज़मानत तथा गारंटी के अतिरिक्त अन्य आनुसंगिक ज़मानत (Collateral Security) भी ली जाती है। कर्ज़ लेने वाला कंपनियों के हिस्से, डिबेंचर, तथा बांड इत्यादि कच्चा माल तथा तैयार माल अथवा उस माल सम्बन्धी कागज़-पत्र (जिनसे माल का स्वामित्व हस्तांतरित होता है) तथा अचल सम्पत्ति इमारत इत्यादि ज़मानत के रूप में बैंक के पास रखता है। हम आगे चल कर ज़मानत के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक विचार करेंगे।

बैंकों का संगठन —संगठन की दृष्टि से बैंक दो प्रकार के होते हैं (१) यूनिट बैंकिंग (२) ब्रांच बैंकिंग। संयुक्तराज्य अमेरिका में यूनिट बैंकिंग की प्रधानता है। वहाँ प्रत्येक बैंक का एक ही आफिस होता है। बैंक जहाँ स्थापित होता है केवल वहीं कारबार करता है ब्रांच स्थापित नहीं करता। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में कुछ बैंकों को बहुत संकुचित क्षेत्र में कतिपय ब्रांचें खोलने की आज्ञा दे दी गई है किन्तु अधिकांश बैंकों की वहां कोई भी ब्रांच नहीं है। इसके विपरीत अन्य उन्नत राष्ट्रों में बहुत बड़े बैंक होते हैं और उनकी हजारों शाखायें देश भर में फैली हुई होती हैं। इंगलैण्ड के बड़े पांच बैंकों की ६,५०० से अधिक ब्रांच हैं और देश की तीन चौथाई डिपाजिट उनके पास रहती है। कनाडा में चार बड़े बैंकों में देश की ८० प्रतिशत डिपाजिट है। यही दशा जर्मनी में है।

बहुत से लेखक भारत के सम्बन्ध में लिखते हुए कहते हैं कि भारत में भी यूनिट बैंक हैं। पहले इस कथन में कुछ सत्यता रही हो किन्तु अब यह सत्य नहीं है। पिछले युद्ध में भारत में ब्रांच बैंकिंग का अभूत पूर्व विस्तार हुआ है। पुराने बैंकों ने शीघ्रता पूर्वक अपनी ब्रांचों को देशभर में फैला दिया है और अनेक नये बैंक स्थापित हो गए हैं जिन्होंने अपनी ब्रांचों को फैलाना आरम्भ कर दिया है। अतएव अब यह कहना कि भारत में यूनिट बैंकिंग है ठीक नहीं है।

यूनिट और ब्रांच बैंकिंग की तुलना —यूनिट बैंक और ब्रांच बैंकिंग की तुलना ठीक वैसी ही है जैसी बड़ी मात्रा की उत्पत्ति (Large Scale Production) और छोटी मात्रा की उत्पत्ति। ब्रांच बैंकों को बड़ी मात्रा में काम करने के लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए ब्रांच बैंक में श्रम विभाजन (Division of Labour) का पूरा उपयोग किया जा सकता है जो यूनिट बैंक में सम्भव नहीं है। ब्रांच बैंक में योग्य कर्मचारी बैंक के महत्त्वपूर्ण कार्यों को करते हैं और उसकी नीति को निर्धारित करते हैं। जैसे एक योग्य कर्मचारी केवल इस बात पर अपना सारा समय लगावेगा कि बैंक का कोष ठीक जगह लगाया जा रहा है। रुपया ऐसी जगह तो नहीं लगाया जा रहा है कि जहां जोखिम हो। एक दूसरा योग्य कर्मचारी उन नियमों को निर्धारित करने और लागू करने के लिए नियुक्त किया जा सकता है जो किसी कर्ज़दार को ऋण देने पर जमानत स्वीकार करने के लिए आवश्यक है। एक

तीसरा, कर्मचारियों को भरती करने के लिए रक्खा जा सकता है। किन्तु एक यूनिट बैंक में यह सम्भव नहीं होता, उसका कारबार सीमित होता है, इस कारण एक ही व्यक्ति को सारा काम करना पड़ता है। ब्रांच बैंक कम नकद कोष रखकर भी काम चला सकता है क्योंकि एक ब्रांच दूसरी ब्रांच से आवश्यकता पड़ने पर नकद रुपया ले सकती है किन्तु यूनिट बैंक को अपेक्षा कृत अधिक नकद कोष रखना पड़ता है। ब्रांच बैंक एक स्थान से दूसरे स्थान को कोष (Fund) भेजने का काम कम व्यय में और सरलता पूर्वक कर सकता है। यद्यपि यूनिट बैंक यह कार्य अन्य बैंकों के द्वारा करते हैं परन्तु उसमें ब्रांच बैंक के समान सरलता और कम व्यय नहीं होता। यही नहीं ब्रांच बैंक को एक बड़ा लाभ यह भी है कि उसकी जोखिम एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैली होती है जहां उद्योग-धंधे और व्यापार भिन्न-भिन्न होते हैं। अतएव यदि एक व्यापार या धंधा मंदा है अर्थात् उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो उस क्षेत्र की ब्रांच का रुपया डूबने या अटकने की सम्भावना हो सकती है। किन्तु अन्य ब्रांचों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वरन् सम्भव है कि उनकी दशा अच्छी रहे क्योंकि बहुत सम्भव है कि उनके क्षेत्र के धंधे या व्यापार खूब सफल हो रहे हों। किन्तु यूनिट बैंक का कारबार तो एक ही केन्द्र में सीमित होने से यदि वहां के धंधे की आर्थिक स्थिति खराब हो जावे तो यूनिट बैंक को बहुत हानि उठानी पड़ेगी। हां यदि सभी धंधों और व्यापार में आर्थिक मंदी एक समान हो तो दोनों प्रकार के बैंकों की स्थिति एक सी ही होगी। उदाहरण के लिए १६२६ की आर्थिक मंदी के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में खेती की पैदावार का मूल्य बहुत घट गया इस कारण बहुत से (सैकड़ों) छोटे यूनिट बैंक दिवालिया हो गए। किन्तु उस समय लंकाशायर के सूती कपड़े के धंधे की दशा अत्यन्त ही दयनीय थी। इंगलैंड के बड़े बैंकों का बहुत रुपया उस धंधे में डूब चुका था, उन्हें बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी थी, किन्तु उनका कारबार अन्य स्थानों में भी फैला हुआ था और वहाँ के धंधे पनप रहे थे इस कारण वे इस हानि को सहन कर सके। अब तक हमने ब्रांच बैंकों के लाभों का वर्णन किया। किन्तु एक बात ध्यान रखने की है कि श्रम विभाजन (Division of Labour) की भी एक सीमा होती है और उस सीमा को पार करने पर लाभ नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार ब्रांच बैंकिंग के लाभ तब तक तो बहुत अधिक होते हैं जब तक ब्रांच एक ही देश के अन्दर खोली जाती हैं। किन्तु जब ब्रांच विदेशों में खोली जाने लगती हैं तो कठिनाई बढ़ जाती है और लाभ नष्ट हो जाते हैं। कारण यह है कि व्यापार

सम्बन्धी कानून व्यापारिक रीति रिवाज, तथा आर्थिक स्थिति प्रत्येक देश की भिन्न होती है। फिर प्रत्येक देश का सिक्का भिन्न होता है और भाषा भी भिन्न होती है इस कारण अधिकतर बैंक विदेशों में ब्रांच नहीं खोलते। यदि वे विदेशों में कारबार करते हैं तो एक पृथक् सहायक बैंक (Subsidiary Bank) उस देश के लिए स्थापित करते हैं। वह सहायक बैंक लगभग स्वतंत्र संस्था होते हैं।

अब हम तनिक यूनिट बैंकों के लाभों पर भी दृष्टि डाल लें। भिन्न भिन्न व्यापारिक केन्द्रों में स्थानीय भिन्नता इतनी अधिक होती है कि यूनिट बैंक उसके लिए अधिक उपयुक्त है। उदाहरण के लिए मानलें कि एक यूनिट बैंक एक बड़ी कपास की मंडी में स्थापित है तो उसको कपास के व्यापारियों से ही कारबार करना होगा। अस्तु यूनिट बैंक कपास के सम्बंध में बैंकिंग सम्बन्धी जितनी भी समस्याएं उठेंगी उनको ब्रांच बैंक की अपेक्षा सुगमता से हल कर सकेगा और कपास के व्यापारियों से बराबर कारबार करने के कारण वह ब्रांच बैंक से इस कार्य में अधिक कुशल हो जावेगा। यूनिट बैंक के संचालक स्थानीय व्यापारियों की साख, उनकी ईमानदारी तथा उनके धंधे की आर्थिक स्थिति को बहुत नजदीक से देखते हैं और वे उनको व्यक्तिगत रूप से भली भांति जानते हैं। अतएव ऋण देने में उन्हें जोखिम कम रहता है और उन्हें यह जानकारी प्राप्त करने में ब्रांच बैंकों की तरह व्यय नहीं करना पड़ता। किन्तु उसके साथ ही एक भय भी रहता है। पीढ़ी दर पीढ़ी एक व्यापारी बैंक से कारबार करता चला आता है। यह स्वाभाविक ही है कि उस व्यापारिक परिवार और बैंक के संचालकों का घनिष्ठ सामाजिक संबंध भी स्थापित हो जावे और उस दशा में बैंकर यह समझते हुए भी कि व्यापारी के कारबार की स्थिति अच्छी नहीं है शिष्टाचार तथा संबंध के नाते कभी कभी ऋण देना अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु ब्रांच मैनेजर अपने ग्राहकों से क्लबों तथा अन्य स्थानों में खूब मिलजुल कर तथा उस स्थान के समाजिक जीवन में खूब घुल मिल कर एक ओर तो बैंक के कारबार को बढ़ाता है और अपने ग्राहकों की साख, उनके कारबार, तथा आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरी ओर यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिससे ब्रांच मैनेजर की घनिष्ठता है और उसको ऋण देना उचित नहीं है, यदि बैंक से ऋण चाहता है तो ब्रांच मैनेजर हेड आफिस की आड़ लेकर ऋण अस्वीकार कर सकता है और उसके सामाजिक सम्बन्ध पर भी आघात नहीं पहुँचता।

ऊपर लिखी सारी बातों को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रांच बैंकिंग के गुण अधिक हैं और दोष कम हैं तथा यूनिट बैंक की अपेक्षा ब्रांच बैंकिंग के गुण कहीं अधिक हैं। यही कारण है कि आधुनिक समय में सर्वत्र ब्रांच बैंकिंग का प्रचार है।

अध्याय ७

केन्द्रीय बैंक (Central Bank)

यह तो हम पहले परिच्छेद में पढ चुके हैं कि द्रव्य (Money) और साख (Credit) का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार की द्रव्य सम्बन्धी नीति देश में अपनाई जावेगी उसका साख पर प्रभाव पडेगा और इस प्रकार धन के उत्पादन अर्थात् उद्योग धधों तथा व्यापार सभी को वह प्रभावित करेगी। साथ ही हम यह भी कह आये हैं कि बैंक साख (Credit) का निर्माण करते हैं और द्रव्य का बहुत सा कार्य साख पत्र (Credit Instruments) ही करते हैं। आज उन्नतिशील देशों में चेक और बिल इत्यादि का, जितना उपयोग होता है मुद्रा तथा कागज़ी मुद्रा का दसवां हिस्सा भी नहीं होता। अतएव यह बात स्पष्ट हो गई कि द्रव्य (Money) और साख (Credit) का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है और इन दोनों का देश के आर्थिक संगठन को बनाने या बिगाड़ने में बहुत हाथ रहता है। अस्तु द्रव्य सम्बन्धी नीति और साख सम्बन्धी नीति का देश के आर्थिक हितों को ध्यान में रखते हुए संचालन और नियन्त्रण होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त देश में भिन्न भिन्न प्रकार के उत्पादन कार्य होते हैं और उनमें प्रत्येक प्रकार के उत्पादन कार्य अर्थात् खेती, उद्योग धंधे, व्यापार इत्यादि की पूँजी और साख सम्बन्धी विशेष आवश्यकताएं होती हैं इस कारण बहुत प्रकार के बैंक स्थापित हो गए हैं। कृषि बैंक, सहकारी (Co operative Bank) भूमि बधक बैंक (Land Mortgage Banks) खेती के लिए, औद्योगिक बैंक (Industrial Banks) अधिक लम्बे समय के लिए उद्योग धंधों को तथा व्यापारिक बैंक (Commercial Banks) थोड़े समय के लिए व्यापारियों तथा व्यवसायियों को पूँजी (Capital) देने का प्रबंध करते हैं। राष्ट्र की बचत (Savings) यह बैंक अपने पास इकट्ठा कर लेते हैं और उस पूँजी को साख निर्माण करने की पद्धति के अनुसार कई गुना करके उत्पादन कार्य (Production of wealth) को सहायता पहुँचाते हैं। परन्तु यदि इन बैंकों का आपस में कोई सम्बन्ध न हो तो यह

राष्ट्रीय पूँजी (National Capital) छोटे छोटे भागों में बंटी रहे और देश को पूरा पूरा उपयोग न मिल सके। उदाहरण के लिए हम सहकारी बैंकों को लें। जब बीज बोने का समय होता है तब खेती के धंधे को पूँजी की बहुत आवश्यकता रहती है और यह बैंक पूँजी किसानों को उधार देते हैं। किन्तु जब फसल तैयार हो जाती है और किसान उसको मंडी में बेच कर ऋण चुका देता है तो इन बैंकों के पास बहुत कोष जमा हो जाता है और वे उसको खेती के धन्धे में नहीं लगा सकते क्योंकि खेती को उस समय पूँजी की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु सहकारी बैंक (Co-operative Banks) उस कोष को व्यापार तथा उद्योग-धन्धों में लगाने की योग्यता नहीं रखते क्योंकि वे उस कार्य को करते ही नहीं है। इसका परिणाम यह होगा कि वह कोष राष्ट्र के उत्पादन कार्य (Production of Wealth) में सहायक न होगा और बेकार रहेगा। इसी प्रकार व्यापारिक बैंकों (Commercial Banks) के पास वर्ष में कुछ दिनों कोष बेकार रहता है उसकी अधिक मांग नहीं होती, और कुछ महीने ऐसे भी होते हैं जिनमें व्यापार को बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। यदि इन सभी प्रकार के बैंकों का आपसी सम्बन्ध स्थापित किया जा सके तो राष्ट्र की पूँजी को सरलता से एक धन्धे से दूसरे धन्धे में भेजा जा सकता है। इस प्रकार जिस धन्धे में पूँजी की अधिक आवश्यकता होगी वहीं पूँजी प्रवाहित कर दी जा सकेगी और उत्पादन कार्य के लिये उसका पूरा-पूरा उपयोग हो सकेगा।

अतएव द्रव्य और साख का देश के हित में ठीक-ठीक नियन्त्रण करने तथा द्रव्य बाजार (Money Market) अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार के बैंकों में आपसी सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता होती है। केन्द्रीय बैंक की विशेषता यह है कि वह अन्य बैंकों का इस प्रकार नियन्त्रण करता है जिससे राज्य की द्रव्य नीति (Monetary policy) देश में लागू हो सके और द्रव्य का मूल्य जल्दी-जल्दी न बदले। अन्य बैंकों की भाँति लाभ कमाना केन्द्रीय बैंक का लक्ष्य नहीं होता वरन् देश के द्रव्य परिमाण (Monetary Standard) को स्थायित्व प्रदान करना और साख का इस प्रकार नियन्त्रण करना उसका लक्ष्य होता है जिससे देश के आर्थिक हितों की रक्षा और उन्नति हो। भारत के रिजर्व बैंक ऐक्ट में रिजर्व बैंक का लक्ष्य इस प्रकार बताया गया है। "रिजर्व बैंक आव इंडिया को स्थापित करना इसलिये आवश्यक है कि जिससे कागजी नोटों को

निकालने का कार्य भली भाँति हो सके और वह देश के सुरक्षित कोष (Reserves) को भारत में द्रव्य का स्थायित्व (Monetary Stability) उत्पन्न करने की दृष्टि से रक्खे, और भारत के हित के लिये साख तथा करसी का नियन्त्रण करे।"

इस कार्य को करने के लिये बैंक को कुछ विशेष अधिकार दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए केन्द्रीय बैंक को कागजी नोट (Paper currency) निकालने का एकाधिकार प्राप्त होता है। देश में अन्य कोई बैंक नोट नहीं निकाल सकता। केन्द्रीय बैंक देश की सरकार का सारा कारबार करता है, वह सरकार का बैंकर होता है। वह राष्ट्र के कोष (Reserves) को रखता है और अंतिम स्थिति में ऋण देने वाला होता है (Lender of the last resort)। अर्थात् जब व्यापारिक बैंक भी साख देने में अपने को असमर्थ पाते हैं तो वे केन्द्रीय बैंक (Central Bank) से अन्त में ऋण लेते हैं।

किन्तु जहां केन्द्रीय बैंक को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए कुछ विशेषाधिकारों की आवश्यकता होती है वहां कुछ बंधन भी उस समय पर लगाना आवश्यक हो जाता है। केन्द्रीय बैंक को अन्य व्यापारिक बैंकों की भांति लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से कारबार नहीं करने दिया जा सकता क्योंकि उसको तो देश के आर्थिक स्वार्थों की रक्षा करनी होती है। केन्द्रीय बैंक अन्तिम स्थिति में ऋण देने वाला होता है इस कारण उसे अपनी लेनी (Assets) को बहुत तरल (Liquid Form) में रखना पड़ता है। केन्द्रीय बैंक को अन्य व्यापारिक बैंकों का प्रतिस्पर्द्धा (Competition) करना न तो उचित है और न न्यायपूर्ण। अन्य बैंकों से केन्द्रीय बैंक प्रतिस्पर्द्धा करे तो वह न्यायपूर्ण न होगा क्योंकि केन्द्रीय बैंक के पास सरकारी कोष (Goverment Balances) रहते हैं वह उन पर कोई सूद नहीं देता और यदि वह अन्य बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करे तो वे उसके सामने नहीं टिक सकते। यह अनुचित भी है क्योंकि यदि केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करने लगेंगे तो वे केन्द्रीय बैंक के प्रति द्वेषभाव रखने लगेंगे और केन्द्रीय बैंक के नेतृत्व को वे स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसी दशा में केन्द्रीय बैंक (Central Bank) साख (Credit) का ठीक प्रकार से नियंत्रण नहीं कर सकेगा। साख का नियंत्रण बिना अन्य बैंकों के सहयोग के सम्भव नहीं है।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक के पास कुछ ऐसे साधन भी होने चाहिए कि वह व्यापारिक बैंकों का नियंत्रण कर सके। इसका दूसरे शब्दों में यह अर्थ होता है कि केन्द्रीय बैंक जिस प्रकार की नीति निर्धारित करे उसे व्यापारिक बैंकों को स्वीकार करना पड़े। तभी वह साख (Credit) का भली प्रकार नियंत्रण कर सकता है और देश के द्रव्य परिमाण (Monetary Standard) को स्थायित्व प्रदान कर सकता है। केन्द्रीय बैंक किस प्रकार साख का तथा व्यापारिक बैंकों का नियंत्रण करता है इस पर हम आगे विचार करेंगे। यहाँ हम केन्द्रीय बैंक तथा उस देश की सरकार का क्या संबंध होता है इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

केन्द्रीय बैंक (Central Bank) और सरकार :—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि केन्द्रीय बैंक सरकार की मुद्रा नीति को प्रचलित करने में सहायक होता है इस कारण केन्द्रीय बैंक फिर चाहे वह हिस्सेदारों का बैंक ही क्यों न हो राज्य के आदेशानुसार और उसकी अधीनता में कार्य करता है और सरकार द्वारा निर्धारित नीति को चलाता है। १६२० के उपरान्त बहुत से लेखकों ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि केन्द्रीय बैंक सरकार के प्रभाव से मुक्त होना चाहिये और इसी कारण केन्द्रीय बैंकों को हिस्सेदारों का बैंक बनाया गया। किन्तु फिर भी हमें यह न भूल जाना चाहिये कि कोई भी केन्द्रीय बैंक राज्य के आदेशों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। राज्य की नीति को उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। वास्तव में मुद्रा का नियंत्रण करने का काम सरकार का है। हां यह आवश्यक है कि राज्य की अर्थ नीति (Financial Policy) के सम्बन्ध में केन्द्रीय बैंक की सलाह अवश्य ली जाती है और यदि केन्द्रीय बैंक की देश में अधिक प्रतिष्ठा है तो राज्य उसकी सलाह पर गम्भीरता पूर्वक ध्यान भी देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक के अधिकारी यदि योग्य व्यक्ति हैं तो वह परोक्ष रूप से सरकार की अर्थ नीति को प्रभावित करता है। परन्तु यदि सरकार और केन्द्रीय बैंक (Centra Bank) में किसी प्रश्न पर मतभेद हो तो केन्द्रीय बैंक को सरकार द्वार निर्धारित नीति को स्वीकार करना ही होगा।

आधुनिक काल में सरकार का द्रव्य बाजार (Money Market) प बहुत अधिक प्रभाव होता है। क्योंकि सरकार लम्बे समय के लिये ऋ निकालती है और इस प्रकार लम्बे समय के लिये सूद की दर को प्रभावि करती है और सरकारी हुंडियाँ (Treasury Bills) बेंच कर थोड़े समय

लिये सूद की दर को प्रभावित करती है। जहाँ विनिमय सरकारी कोष (Exchange Equalisation Fund) होता है जिसका प्रबन्ध विशेष कर सरकारी विभाग द्वारा करता है वहाँ तो सरकार बहुत तरह से द्रव्य बाजार को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश में राज्य के आर्थिक कार्य राष्ट्र के एक चौथाई आर्थिक कार्यों के लगभग होते हैं। इनका देश की करसी और साख (Credit) पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि करसी और साख का नियन्त्रण ही केन्द्रीय बैंक का मुख्य कार्य है। अतएव सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अपनी आर्थिक नीति को निर्धारित करने से पूर्व वह केन्द्रीय बैंक से सदैव परामर्श कर ले। कुछ देशों में तो राज्य का केन्द्रीय बैंक से करसी और साख सम्बंधी विषयों पर परामर्श करना कानून द्वारा अनिवार्य कर दिया गया है। और जहाँ कानून द्वारा सरकार को केन्द्रीय बैंक (Central Bank) से परामर्श करने पर विवश किया गया है वहाँ इस प्रकार की एक परिपाटी या परम्परा स्थापित हो गई है। केन्द्रीय बैंक सरकार की नीति पर कितना प्रभाव डाल सकेगा यह उसकी प्रतिष्ठा तथा उसके अधिकारियों की योग्यता पर निर्भर होता है। परन्तु यह समझना भूल होगी कि यदि सरकार शून्य और विचार गलत नीति स्वीकार करे जिससे उसकी साख गिर जावे तो केन्द्रीय बैंक स्वय अपने आप स्वतन्त्र रूप से द्रव्य तथा साख को ठीक प्रकार से नियन्त्रित कर सकेगा।

सरकार तथा केन्द्रीय बैंक में नीति के सम्बन्ध में मतभेद भी हो सकता है। सरकार के अर्थ विभाग के स्वार्थों तथा केन्द्रीय बैंक के विचारों में अन्तर हो सकता है। उदाहरण के लिये सरकार यदि एक बड़ा ऋण निकालना चाहती है तो स्वभावत अर्थविभाग सूद की दर को नीचा रखना चाहेगी। सके विपरीत केन्द्रीय बैंक का यह मत हो सकता है कि देश के आर्थिक हित ो देखते हुए यह आवश्यक है कि सूद की दर को बढ़ाया जावे या कम से कम तना ही रक्खा जावे जितना कि उस समय है। या फिर सरकार केन्द्रीय बैंक इतना अधिक ऋण लेना चाहती है जितना कि केन्द्रीय बैंक उचित नहीं मझता। इसी प्रकार अर्थनीति के सम्बन्ध में सरकार तथा केन्द्रीय बैंक में तभेद हो सकता है। ऐसी दशा में केन्द्रीय बैंक के अधिकारी सरकार के अर्थ भाग (Finance Department) को अपने विचारों से सहमत कराने लिए पूरा प्रयत्न करेंगे किन्तु यदि सरकार ने उनकी बात को स्वीकार न या तो केन्द्रीय बैंक को सरकारी नीति के सामने झुकना होगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जब सरकार और केन्द्रीय बैंक में इस बात पर मतभेद हो कि देश के हित में कौन सी नीति अच्छी है तो पहली आवश्यकता तो इस बात की है कि दोनों के बीच में उस प्रश्न को लेकर निर्भीकतापूर्वक विस्तृत विचार और वादविवाद हो और सरकार केन्द्रीय बैंक की बात को ध्यान पूर्वक सुने। परन्तु यदि दोनों एक मत न हो सकें तो केन्द्रीय बैंक को सरकारी नीति को स्वीकार करना होगा। अवश्य ही केन्द्रीय बैंक की उस नीति के लिए जिम्मेदारी न होगा।

'केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के कार्य :—पिछले २५ वर्षों में केन्द्रीय बैंक का संसार के प्रत्येक देश में विकास हुआ है और नीचे लिखे कार्य केन्द्रीय बैंक के मुख्य कार्य माने जाते हैं :—

(१) देश के व्यापार तथा साधारण जनता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए करंसी (Currency) का नियंत्रण करना। बैंक इस कार्य को भली भांति कर सके इसके लिए उसे कागज़ी नोट निकालने का एकाधिकार दे दिया जाता है।

(२) देश की सरकार को बैंकिंग तथा एजेंसी की सुविधाएँ प्रदान करना अर्थात् सरकार के बैंकर का कार्य करना।

(३) देश के व्यापारिक बैंकों (Commercial Banks) के नक़द कोष (Cash Reserves) को रखना।

(४) राष्ट्र के पास कितनी अंतर्राष्ट्रीय करंसी (International Currency) का कोष (Reserve) है उसको रखना और उसका प्रबन्ध करना।

(५) बैंकों का बैंकर बनना, उन्हें स्वीकृत प्रतिभूति (Approved Securities) के आधार पर ऋण देना तथा उनके भुनाये हुए बिलों, प्रामिसरी नोटों, तथा दूसरे व्यापारिक कागज पत्रों (Commercial papers) को पुनः भुनाकर (Re-discount) व्यापारिक बैंकों को आर्थिक सहायता देना, बैंकों के अतिरिक्त बिल ब्रोकर तथा आर्थिक संस्थाओं को भी ऊपर बताये गए तरीके से आर्थिक सहायता देना, और अन्तिम ऋण दाता (Lender of the last resort) होने का साधारण उत्तरदायित्व स्वीकार करना।

(६) क्लियरिंग हाऊस अर्थात् समाशोधन गृह (Clearing House) का काम करना।

(७) व्यापार की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए तथा सरकार द्वारा निर्धारित द्रव्य नीति (Monetary policy) को चलाने के उद्देश्य से साख (Credit) का नियन्त्रण करना।

अब हम इन कार्यों के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

केन्द्रीय बैंक (Central Bank) और कागजी नोट निकालने का कार्य :— लगभग प्रत्येक केन्द्रीय बैंक को अपने देश में कागजी नोट निकालने का एकाधिकार प्राप्त है। या तो करसी निकालने का कार्य राज्य का रहा है। परन्तु अब लगभग सभी देशों में धातु के सिक्के (Metallic Coins) राज्य निकालता है किन्तु कागजी नोट (Paper Currency) निकालने का एक मात्र अधिकार केन्द्रीय बैंकों को सौंप दिया है। यह आवश्यक भी है क्योंकि द्रव्य (Money) और साख (Credit) का घनिष्ठ सम्बन्ध है और क्योंकि केन्द्रीय बैंक को साख (Credit) का नियन्त्रण करना पड़ता है अस्तु यदि केन्द्रीय बैंकों को नोट निकालने का एकाधिकार न दिया जावे तो वे साख का ठीक प्रकार से नियन्त्रण नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए यदि केन्द्रीय बैंक देश में वस्तुओं के मूल्य को बढ़ने नहीं देना चाहता अथवा मूल्य स्तर (Price Level) को गिराना चाहता है तो आवश्यकता इस बात की है कि साख (Credit) को कम किया जावे और द्रव्य को भी कम किया जावे। अब यदि कागजी नोट निकालने का काम केन्द्रीय बैंक नहीं करता तो हो सकता है कि कागजी नोट निकालने वाले अधिकारी, बैंक की नीति के साथ सहयोग न करें और इस प्रकार नोट अधिक प्रचलित कर दिए जावें। उस दशा में न तो साख (Credit) ही कम की जा सकती है और न वस्तुओं का मूल्य ही गिर सकता है। क्योंकि लोग चेक इत्यादि का उपयोग न करके नोटों से अपना काम चला लेंगे। किसी भी देश में कागजी नोट तथा चेक इत्यादि ही विनिमय के साधन (Medium of Exchange) होते हैं। अतएव केन्द्रीय बैंक को दोनों के नियन्त्रण का अधिकार होना चाहिए। पिछड़े देशों में तो बिल इत्यादि का चलन कम होता है इस कारण कागजी नोट ही अधिकतर चलन में रहते हैं। अस्तु उनको निकालने का एकाधिकार (Monopoly) मिलने से बैंक को द्रव्य की पूर्ति (Supply of money) पर नियन्त्रण करने की बहुत सुविधा

हो जाती है। और जो देश व्यापारिक दृष्टि से उन्नत हैं और जहां चेक इत्यादि का बहुत अधिक चलन है वहां केन्द्रीय बैंक साख (Credit) पर नियंत्रण करके द्रव्य पूर्ति (Supply of Money) पर नियंत्रण स्थापित कर ही लेता है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि बैंक को विदेशी व्यापार (Foreign Trade) की सुविधा के लिए कुछ नोट तो स्वतः निकालने या चलन में से खींचने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए यदि देश में स्वर्ण मान (Gold Standard) प्रचलित है और कोई व्यापारी जिसने विदेश से माल मंगाया है उसे विदेशी व्यापारी को मूल्य चुकाने के लिए विदेशी बिल (Foreign Bill) नहीं मिलता या अत्यधिक मूल्य पर मिलता है तो वह नोट देकर केन्द्रीय बैंक (Central Bank) से स्वर्ण ले लेगा और स्वर्ण को भेज कर मूल्य चुका देगा। यदि देश में स्वर्ण विनिमय मान (Gold Exchange Standard) प्रचलित है तो वह व्यापारी केन्द्रीय बैंक को नोट देकर स्वर्ण ले सकता है। भारतवर्ष में कोई भी व्यापारी रिजर्व बैंक को नोट देकर स्टर्लिंग (Sterling) खरीद सकता है। इसी प्रकार यदि किसी व्यापारी को जिसने अपना माल बाहर भेजा है सोना या उस देश की करंसी मूल्य रूप में मिलती है तो वह केन्द्रीय बैंक को बेंचकर उसके मूल्य के नोट ले लेता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक को विदेशी व्यापार के कारण कुछ हद तक नोट निकालने पड़ते हैं और कभी-कभी नोटों को सिक्के में भुनाना पड़ता है। किन्तु केन्द्रीय बैंक के पास नोट निकालने के तथा चलन में से नोट खींच लेने के लिए और भी साधन और उपाय हैं। उदाहरण के लिए यदि केन्द्रीय बैंक अधिक नोट चलाना चाहता है तो वह व्यापारिक बैंकों द्वारा भुनाये हुए बिलों को पुनः भुना कर, उन्हें ऋण देकर या सरकारी प्रतिभूति या सिक्यूरिटी (Securities) को खरीद कर और मूल्य रूप में नोट देकर अधिक नोटों को चलन में ला सकता है। इसके विपरीत यदि केन्द्रीय बैंक नोटों को चलन में कम करना चाहता है तो अपने ऋण को वापस माँग कर ऋण निकालकर, अर्थात् देकर या सरकारी सिक्यूरिटी को बेंचकर मूल्य रूप में नोट पाता है और उन्हें अपने पास रोक लेता है। इस प्रकार वह नोटों को चलन में से खींच लेता है।

नोटों के निकालने में तीन मुख्य बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं (१) नोट एक प्रकार के हों, बहुत प्रकार के न हों, अर्थात् नोटों के निकालने वाली एक ही संस्था हो। नहीं तो यदि कल्पना कीजिए कि दस रुपये का नोट कई बैंकों द्वारा निकाला जावे उसका साइज, रंग, इत्यादि भिन्न हो तो सर्व साधारण को

बड़ी कठिनाई होगी। केन्द्रीय बैंक को नोट निकालने का एकाधिकार दे देने से यह बात पूरी हो जाती है। (२) दूसरा गुण जो नोटों के चलन में होना चाहिए वह है लोचपन (Elasticity)। अधिकांश देशों में यह कानून है कि केन्द्रीय बैंक जो नोट निकाले उसका ४० प्रतिशत स्वर्ण कागजी मुद्रा कोष (Paper Currency Reserve) में रक्खे, और शेष व्यापारिक बिल, (Trade Bills) सरकारी सिक्यूरिटी, या अन्य व्यापारिक कागज पत्र (Commercial paper) में हो। इस प्रकार यदि अधिक नोटों की आवश्यकता हो तो केन्द्रीय बैंक उन नोटों के मूल्य का ४० प्रतिशत स्वर्ण कागजी मुद्रा कोष में रखकर नोट छाप सकता है। इस प्रकार नोटों के निकालने में लोचपन (Elasticity) उत्पन्न की जा सकती है। (३) तीसरा गुण जो कि नोट के चलन में होना चाहिए वह है सुरक्षा (Security)। इसके लिए ४० प्रतिशत स्वर्ण कागजी मुद्रा कोष में रक्खा जाता है। (कभी-कभी इस ४० प्रतिशत में स्वर्ण के अतिरिक्त विदेशी करन्सी भी सम्मिलित होती है) शेष कोष व्यापारिक बिल या सरकारी सिक्यूरिटियों के रूप में रक्खा जाता है।

२. सरकार के बैंकर तथा आर्थिक एजेंट का काम करना:— सरकार के पास जो भी कोष (Funds) होता है वह केन्द्रीय बैंक के पास जमा रहता है। सरकार जो खर्च करती है उसको केन्द्रीय बैंक ही चुकाता है। जब सरकार कोई ऋण लेती है तो केन्द्रीय बैंक ही उसको निकालता और बेंचता है उस पर नियमित रूप से सरकार की ओर से सूद देता है। संक्षेप में वह सरकारी कर्ज का सारा प्रबंध करता है। कभी-कभी जब सरकार को थोड़े समय के लिए रुपये की आवश्यकता होती है तो केन्द्रीय बैंक सरकार को थोड़े समय के लिये ऋण देता है। उदाहरण के लिए कभी कभी सरकार को कुछ रुपये की आवश्यकता हो सकती है क्योंकि व्यय अधिक हो गया हो और करों (Taxes) से उस समय तक अधिक रुपया वसूल न हो पाया हो। ऐसी दशा में सरकार केन्द्रीय बैंक से थोड़े समय के लिए ऋण ले लेती है और जब करों (Taxes) से रुपया वसूल हो जाता है तो वापस कर देती है। इसके लिए केन्द्रीय बैंक सरकार को सीधे ऋण दे देता है अथवा सरकारी हुंडियों (Treasury Bills) को भुना देता है। किन्तु यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि केन्द्रीय बैंक को सरकार को अधिक लम्बे समय के लिए ऋण कदापि न देना चाहिए केवल थोड़े समय के लिए देना चाहिए और ऋण की रकम भी बहुत अधिक न होनी चाहिए, सरकार की वार्षिक आय का एक निश्चित अंश ही होना चाहिए।

- देश के व्यापारिक बैंकों के नक़द कोष (Cash Reserve) को रखना :—प्रत्येक देश में व्यापारिक बैंक अपने नक़द कोष (Cash Reserve) का एक भाग केन्द्रीय बैंक के पास जमा कर देते हैं। कुछ देशों में तो वे कानून द्वारा ऐसा करने के लिए विवश हैं और कहीं-कहीं इस प्रकार की परिपाटी बन गई है कि प्रत्येक व्यापारिक बैंक अपने नक़द कोष का एक भाग केन्द्रीय बैंक में जमा करता है। इंगलैंड तथा योरोप के अन्य देशों में इस प्रकार का कोई कानून नहीं है कि व्यापारिक बैंक (Commercial Banks) निश्चित न्यूनतम नक़द कोष केन्द्रीय बैंक में जमा करें। किन्तु वहां ऐसी सुदृढ़ परम्परा है कि प्रत्येक बैंक नक़द कोष का एक भाग केन्द्रीय बैंक के पास अवश्य रखता है। १६२० के उपरान्त जो भिन्न-भिन्न देशों में केन्द्रीय बैंकों की स्थापना हुई वहां यह नियम बना दिया गया कि प्रत्येक बैंक को एक निश्चित न्यूनतम नक़द कोष (Minimum Cash Reserve) केन्द्रीय बैंक के पास रखना ही होगा। केन्द्रीय बैंक के पास नक़द कोष रखने से नीचे लिखे लाभ हैं :—

(अ) व्यापारिक बैंकों के द्वारा अपने नक़द कोष को केन्द्रीय बैंक में जमा करने का परिणाम यह होता है कि बैंकों की तरलता (Liquidity) में वृद्धि होती है और बैंकों पर मांग होने के समय वे इस कोष पर निर्भर हो सकते हैं। देश के सभी बैंकों का नक़द कोष (Cash Reserve) जब एक स्थान पर इकट्ठा होता है तो प्रत्येक बैंक कम नक़द कोष रख कर भी जमा करने वालों की मांग को पूरा कर सकते हैं और उनकी सुरक्षा का उचित प्रबंध हो जाता है।

(ब) केन्द्रीय बैंक के पास सभी बैंकों का नक़द कोष होने से वह उन बैंकों की साख निर्माण (Creation of Credit) शक्ति को प्रभावित कर सकता है। जब बैंक का नक़द कोष बढ़ जाता है तो उससे साख (Credit) के विस्तार को प्रोत्साहन मिलता है और जब नक़द कोष घट जाता है तो साख को संकुचित करने की आवश्यकता होती है। यही नहीं साख के निर्माण को प्रभावित करने के लिये व्यापारिक बैंकों को जितने प्रतिशत नक़द कोष (Cash Reserve) रखने की आवश्यकता होती है उसमें भी केन्द्रीय बैंक हेर-फेर कर देता है और इस प्रकार साख के निर्माण पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है।

(स) इन लाभों के अतिरिक्त व्यापारिक बैंकों के नक़द कोष को केन्द्रीय

बैंक में रखने का एक यह लाभ भी है कि उसके पास अपेक्षाकृत तरल लेनी (Liquid Assets) बहुत अधिक राशि में इकट्ठी हो जाती है।

राष्ट्र के पास जितना अन्तर्राष्ट्रीय करेंसी (International Currency) का कोष है उसको सुरक्षित रखना और उसका प्रबन्ध करना :—यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि केन्द्रीय बैंक नोट निकालता है और उनकी सुरक्षा के लिए स्वर्ण कोष रखता है। यदि देश में स्वर्णमान (Gold Standard) प्रचलित होता है तब तो प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार होता है कि वह केन्द्रीय बैंक को नोट देकर निश्चित दर पर स्वर्ण ले ले। इस प्रकार चाहे व्यवहार में या व्यापार में कागजी नोटों से ही लेन देन होता रहे किन्तु वास्तव में स्वर्ण ही प्रमाणिक द्रव्य (Standard Money) होता है, क्योंकि देश में जो भी कागजी मुद्रा तथा अन्य धातु के सिक्के होते हैं उनका सम्बन्ध स्वर्ण से होता है और कोई भी व्यक्ति नोटों के बदले केन्द्रीय बैंक से स्वर्ण पा सकता है। अतएव जब देश में स्वर्ण मान (Gold Standard) होता है तब तो विशेष रूप से केन्द्रीय बैंक को यथेष्ट स्वर्ण कोष (Gold Reserve) रखना पड़ता है क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर जनता नोट के बदले स्वर्ण मांग सकती है। साधारण स्थिति में जनता नोटों को स्वर्ण में नहीं बदलती किन्तु यदि देश में विदेशों से आयात (Import) अर्थात् माल अधिक आया है और निर्यात (*Export*) कम हुआ है तो व्यापारी अपनी विदेशी देनदारी (Foreign Debt) को चुकाने के लिये केन्द्रीय बैंक से स्वर्ण लेकर विदेशों को भेज देते हैं। अस्तु स्वर्ण मान (Gold Standard) के होते तो केन्द्रीय बैंक को अपने नोटों को स्वर्ण में बदलने का उत्तरदायित्व पूरा करने के लिये यथेष्ट स्वर्ण कोष रखना ही पड़ता है। किन्तु जब देश में स्वर्ण मान (Gold Standard) प्रचलित नहीं होता तब भी केन्द्रीय बैंक को नोटों की सुरक्षा के लिये कुछ (४० प्रतिशत) स्वर्ण तो रखना ही पड़ता है।

१६३१ के उपरान्त *संसार के किसी देश में भी स्वर्ण मान प्रचलित* नहीं है और लगभग सभी देशों में कागजी मुद्रा प्रमाण (Paper Currency Standard) प्रचलित है अर्थात् नोटों का स्वर्ण में नहीं बदला जा सकता। कागजी मुद्रा (Paper Currency) ही प्रमाणिक द्रव्य (Standard Money) होता है। किन्तु विदेशी व्यापार की सुविधा के लिए प्रत्येक देश अपनी करंसी और अन्य देशों की करंसी के पारस्परिक मूल्य को निर्धारित कर देता है। इसे विदेशी विनिमय दर

(Foreign Exchange Rates) कहते हैं। केन्द्रीय बैंक इस विनिमय दर को स्थायी बनाये रखने का प्रबन्ध करता है और इस उद्देश्य से अन्य देशों की करंसी का कोष अपने पास रखता है। जब देश के व्यापार का संतुलन (Balance of Trade) देश के विरुद्ध होता है अर्थात् विदेशों से माल अधिक मँगाया गया और कम माल भेजा गया तो केन्द्रीय बैंक निश्चित दर पर उन देशों की करंसी व्यापारियों को बेच देगा। व्यापारी नोट देकर विदेशों की करंसी केन्द्रीय बैंक से निर्धारित दर पर पा सकेंगे। जब देश से निर्यात अधिक होता है अर्थात् अधिक माल बाहर भेजा जाता है और कम मँगाया जाता है तो देश के व्यापारियों के पास विदेशी करंसी अधिक आ जाती है, किन्तु विदेशी करंसी तो साधारण कारबार में देश में चल नहीं सकती। अस्तु वे विदेशी करंसी को निर्धारित दर पर केन्द्रीय बैंक को बेच देते हैं और नोट ले लेते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक अपने देश की करंसी की विनिमय दर (Exchange Rates) का नियंत्रण करता है और उसको स्थायित्व प्रदान करता है। परन्तु ऐसा करने के लिए उसे अंतर्राष्ट्रीय करंसी (International Currency) का कोष रखना पड़ता है।

बैंकों का बैंकर बनना (To act as Banker's Bank) :— केन्द्रीय बैंक बैंकों द्वारा भुनाये हुए या खरीदे हुए बिलों, हुंडियों, प्रामिसरी नोटों या अन्य व्यापारिक कागज़ पत्र को पुनः भुनाता है और इस प्रकार व्यापारिक बैंकों को आवश्यकता पड़ने पर रुपया देता है या फिर स्वीकृति प्रतिभूति (सिक्यूरिटी) पर उन्हें ऋण देता है। केन्द्रीय बैंक का यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके द्वारा केन्द्रीय बैंक बैंकों को साख (Credit) देता है और अन्तिम ऋणदाता बनाने का कार्य करता है। केन्द्रीय बैंक के इस कार्य से देश की साख पद्धति (Credit System) ठीक प्रकार से चलती है और उसमें कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। अन्यथा यदि बैंकों को साख की आवश्यकता हो और उन्हें साख न मिले तो उन्होंने अपने ग्राहकों को जो साख दे रक्खी है उसे संकुचित करना पड़े इससे व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़े बिना न रहे। यही नहीं केन्द्रीय बैंक की मितीकाटे की दर (Discount Rate) जिस पर वह बैंकों के बिल भुनाता है साख पर बहुत अधिक प्रभाव डालती है। उदाहरण के लिए यदि केन्द्रीय बैंक मितीकाटे की दर (Discount Rate) को ऊंचा कर देता है तो इसका अर्थ यह होगा कि व्यापारिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक से अधिक सूद

पर साख (Credit) मिलेगी। अस्तु उन्हें भी अपने ग्राहकों से अधिक सूद लेना होगा। दूसरे शब्दों में द्रव्य बाजार (Money Market) में सूद की दर ऊँची उठ जावेगी और साख संकुचित होगी अर्थात् कम साख दी जावेगा। इसके विपरीत यदि केन्द्रीय बैंक मितीकाटे की दर घटा देता है तो साख का विस्तार होगा अर्थात् साख का बहुत अधिक निर्माण होगा। इस प्रकार मितीकाटे की दर को घटा बढ़ा कर केन्द्रीय बैंक साख के निर्माण पर गहरा प्रभाव डालता है।

अधिकतर केन्द्रीय बैंक केवल बैंकों से ही कारबार करते हैं व्यक्तियों से नहीं करते। केवल बैंक आव इंगलैंड बैंकों से कारबार न कर के बट्टा गृह (Discount Houses) से कारबार करता है। अधिकतर केन्द्रीय बैंक प्रथम श्रेणी के व्यापारिक बिल को जिनकी अवधि तीन महीने से अधिक नहीं होती स्वीकार करते हैं। किन्तु कृषि बिल (Agricultural Bills) के सबंध में तनिक छूट दी जाती है। कृषि बिल ६ से ६ महीने तक के लिए स्वीकार कर लिए जाते हैं। भारत का रिजर्व बैंक ६ महीने की अवधि के कृषि बिलों को स्वीकार कर सकता है। यह बात ध्यान में रखने की है केन्द्रीय बैंक उसी व्यापारिक कागज (Commercial paper) को स्वीकार करता है जो कि तरल (Liquid) हो और जो स्वत अवधि के समाप्त होने पर रोकड़ (Cash) में परिणत हो जावे। क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो केन्द्रीय बैंक का कोष (Fund) अटक जावेगा और वह देश में साख का नियन्त्रण करने में असमर्थ हो जावेगा। इसी कारण केन्द्रीय बैंक जिस प्रकार की देनी (Assets) के आधार पर बैंकों को ऋण देता है वह देनी (Assets) ऐसी होनी चाहिये कि शीघ्र ही नक्दी में परिणत की जा सके। केन्द्रीय बैंक ऐसी देनी के विरुद्ध ऋण नहीं देता है जो शीघ्र ही नक़दी में परिणत न की जा सकेगी। केन्द्रीय बैंक का मुख्य कार्य व्यापारियों को ऋण देना नहीं है किन्तु साख का नियन्त्रण करना है।

क्लियरिंग हाउस अर्थात् समाशोधन गृह (Clearing House) का काम करना — केन्द्रीय बैंक अन्य बैंकों के लिये क्लियरिंग हाऊस का काम करता है। प्रत्येक बैंक केन्द्रीय बैंक पर चेक काट कर अपनी देनदारी को चुकाता है। यदि किसी दिन किसी बैंक को क्लियरिंग हाऊस से रुपया लेना होता है तो क्लियरिंग हाऊस केन्द्रीय बैंक पर उसके पक्ष में चेक काट देता है।

व्यापार की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर साख

(Credit) का नियंत्रण करना और सरकार द्वारा निर्धारित द्रव्य को चलाना :—व्यापार की आवश्यकता को पूरा करने के लिये केन्द्रीय बैंक साख (Credit) का नियंत्रण करता है। यदि व्यापार के लिये अधिक साख की आवश्यकता होती है तो वह साख (Credit) का विस्तार करता है और यदि व्यापार को कम साख की आवश्यकता होती है तो साख को संकुचित कर देता है। केन्द्रीय बैंक यह कार्य राष्ट्र के आर्थिक हितों को ध्यान में रख कर करता है। इसी उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक देश में द्रव्य की पूर्ति (Money Supply) का भी नियंत्रण करता है। वह जितने द्रव्य की व्यापार के लिये आवश्यकता समझता है उतना निकालता है। यदि किसी समय अधिक द्रव्य की आवश्यकता होती है तो अधिक द्रव्य जनता को देता है नहीं तो द्रव्य (Money) को चलन में से खींच लेता है। केन्द्रीय बैंक राष्ट्र के आर्थिक हितों की रक्षा करने तथा उन्हें बढ़ाने के उद्देश्य से करंसी तथा साख (Credit) दोनों का नियंत्रण करता है। परन्तु क्योंकि बैंकों द्वारा निर्माण की हुई साख (Credit) ही विनिमय (Exchange) अर्थात् व्यापार का मुख्य माध्यम है और द्रव्य (Money) का उसकी अपेक्षा बहुत कम उपयोग होता है इस कारण साख का नियंत्रण ही केन्द्रीय बैंक का सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण कार्य है। केन्द्रीय बैंक किस प्रकार साख (Credit) तथा द्रव्य (Money) का नियंत्रण करता है यह आगे के परिच्छेद में हम विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

अध्याय ८

केन्द्रीय बैंक द्वारा साख (Credit) तथा द्रव्य (Money) का नियन्त्रण

सच तो यह है कि केन्द्रीय बैंक का यह कार्य सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है और उसके अन्य सब कार्य इससे सम्बन्धित हैं। पिछले वर्षों में क्रमशः व्यापार की उन्नति के साथ-साथ सभी देशों में द्रव्य (Money) की अपेक्षा साख (Credit) व्यापार का मुख्य माध्यम बन गया। आज व्यापारी तथा सर्वसाधारण जितने चेक इत्यादि का उपयोग अपने लेन देन में करते हैं उतना सिक्कों या कागज़ी नोटों का नहीं करते। यदि पिछड़े देशों को छोड़ दें तो चेक इत्यादि का उपयोग नोटों तथा सिक्कों से दस गुने से भी अधिक होता है। अब क्रमशः भारत में भी चेक का उपयोग बढ़ रहा है। और क्योंकि साख (Credit) का वस्तुओं के मूल्य पर तथा व्यापार पर प्रभाव पड़ता है इस कारण उसका नियन्त्रण करना आवश्यक हो जाता है।

साख तथा द्रव्य नियन्त्रण के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं। देश की करंसी की विनिमय दर (Exchange rates) को स्थायित्व प्रदान करना और देश के अन्दर मूल्य स्तर (Price Level) को स्थायित्व-प्रदान करना अर्थात् जल्दी जल्दी मूल्य स्तर को न बदलने देना। १८१७ से १९१४ तक तथा सीमा तक १९२५ से १९३१ तक केन्द्रीय बैंक देश की करंसी की विनिमय दर (Exchange rates) को स्थायित्व प्रदान करना अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण समझते थे, इस कारण साख का नियन्त्रण इसी उद्देश्य से किया जाता था। उस समय सभी देशों में यह धारणा प्रचलित थी कि विनिमय दर का स्थायित्व अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास को बनाये रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने के लिये आवश्यक है, तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि तथा उन्नति में ही सबों की आर्थिक उन्नति और हित छिपा हुआ है। आज भी बहुत से अर्थशास्त्री तथा बैंकर इसी मत के हैं कि विनिमय दर के स्थायी रहने से प्रत्येक देश को लाभ है और उनकी आर्थिक उन्नति होती है।

१९३१ के उपरान्त संसार के सब देशों ने स्वर्ण मान (Gold

Standard) को छोड़ दिया और तब से एक बहुत बड़ी संख्या में अर्थशास्त्री तथा बैंकर इस मत को स्वीकार करने लगे हैं कि केन्द्रीय बैंक के साख नियंत्रण का उद्देश्य मुख्यतः देश के भीतर मूल्य-स्तर (Price Level) को स्थायित्व प्रदान करना है। उनका कहना है कि यदि विनिमय दर (Exchange rates) तथा देश के भीतर मूल्य-स्तर (Price-Level) को एक साथ स्थायित्व (Stability) प्रदान करना असम्भव हो तो केन्द्रीय बैंक को मूल्य-स्तर को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि उनका कहना है कि देश के अन्दर मूल्य-स्तर के घटने बढ़ने से देश के अन्दर आर्थिक संबंधों में बड़ी गड़बड़ फैल जाती है। उदाहरण के लिए यदि मूल्य-स्तर (Price-Level) ऊँचा हो जाता है तो उत्पादकों (Producers) को अधिक लाभ होने लगता है तथा उपभोक्ताओं (Consumers) को हानि होती है। जिन्होंने ऋण लिया है उनका ऋण भार बहुत हल्का होता है और लेनदारों (Creditors) जिन्होंने ऋण दिया है उन्हें घाटा होता है। साथ ही निश्चित वेतन वालों का वास्तविक वेतन (Real wages) बहुत कम हो जाता है। इसी प्रकार जब मूल्य-स्तर घटने लगता है तो उत्पादकों को हानि होने लगती है, उपभोक्ताओं को लाभ होता है, ऋण लेने वाले का भार बढ़ जाता है और ऋण देने वाले को लाभ होता है तथा निश्चित वेतन या मज़दूरी वालों की वास्तविक मज़दूरी बढ़ जाती है। इससे उद्योग-धंधों तथा व्यापार पर भी बुरा असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन लोगों का यह भी मत है कि जब विनिमय दर (Exchange Rates) को स्थायित्व प्रदान किया जाता है तो देश अन्य देशों की द्रव्य नीति (Monetary Policy) के ऊपर निर्भर हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि संयुक्तराज्य अमेरिका की करंसी अर्थात् डालर से अन्य देशों ने अपनी विनिमय दर निश्चित कर दी है तो यदि संयुक्तराज्य अमेरिका मुद्रा प्रसार (Currency Inflation) अथवा मुद्रा संकोचन (Currency Deflation) की नीति अपनाता है तो इसका प्रभाव उन देशों पर पड़े बिना नहीं रह सकता जिन्होंने अपनी करंसी की विनिमय दर (Exchange Rates) को डालर से निश्चित कर दिया है। इस कारण उनका मत है कि केन्द्रीय बैंक की साख नियंत्रण (Control of credit) का उद्देश्य देश के अन्दर मूल्य-स्तर को स्थायित्व प्रदान करना होना चाहिए। देश के अन्दर मूल्य-स्तर (Price-Level) के स्थायी होने से देश अन्य देशों की द्रव्य सम्बंधी नीति के प्रभाव से स्वतंत्र हो जावेगा।

रहा देश की करंसी की विनिमय दर का प्रश्न वह आवश्यकता पड़ने पर घटा बढ़ा कर ठीक कर ली जावेगी।

इन दोनों मतों के विरुद्ध एक तीसरा मत भी है। उस मत के लोगों का कहना है कि विनिमय दर का स्थायी होना अथवा मूल्य-स्तर (Price Level) का स्थायी होना आवश्यक है। परन्तु उससे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि देश में आर्थिक स्थायित्व (Economic Stabilisation) स्थापित हो और देश के उद्योग धंधे तथा व्यापार में शिथिलता न आवे। यह जो आर्थिक मंदी (Economic Depression) आती है जिससे उत्पादन (Production) को धक्का लगता है, उद्योग धंधे और व्यापार ठप्प सा हो जाता है, बेकारी फैल जाती है, अत्यन्त कष्टसाध्य होती है और देश की आर्थिक गति को रोक देती है। इस कारण देश की साख तथा द्रव्य का नियंत्रण इस उद्देश्य को रख कर किया जावे कि आर्थिक मंदी (Economic Depression) को बचाया जा सके।

दूसरे महायुद्ध के उपरान्त (१९४५) विद्वानों का एक चौथा मत भी इस संबंध में हमारे सामने आया है। वह मत यह है कि द्रव्य तथा साख संबंधी नीति का नियंत्रण का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय दर (International exchange rates) को जहां तक हो सके स्थायित्व प्रदान करना, देश में बेकारी को दूर करना तथा देश की वास्तविक आय को बढ़ाना है। एक प्रकार से इस मत के लोग पहले तथा तीसरे उद्देश्यों को एक में मिलाने के पक्ष में हैं। अंतर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष (International Monetary Fund) जो दूसरे महायुद्ध के उपरान्त बना उसका उद्देश्य यही है। अभी हाल में संयुक्तराज्य अमेरिका इत्यादि देशों ने इस बात की घोषणा की है कि उनकी द्रव्य नीति तथा साख नीति (Monetary and Credit Policy) का उद्देश्य देश की बेकारी का दूर करना तथा देश की आय को बढ़ाना है।

केन्द्रीय बैंक द्रव्य और साख पर किस प्रकार नियंत्रण स्थापित करता है :— यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि किसी देश में द्रव्य (Money) और बैंकों की डिपाजिट ही विनिमय (Exchange) का माध्यम होता है। अर्थात् दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यापार तथा लेन-देन के लिए जो भी विनिमय का साधन या द्रव्य हमें मिलता है वह करंसी और डिपाजिट के द्वारा ही मिलता है और बैंक साख (Credit) देकर डिपाजिट

निर्माण करते हैं। केन्द्रीय बैंक को कागज़ी नोट निकालने का एकाधिकार प्राप्त होता है, इस कारण भुगतान के इस माध्यम का जहां तक प्रश्न है केन्द्रीय बैंक इसका सरलता से नियंत्रण कर सकता है। जहां स्वर्ण मान (Gold Standard) होता है वहाँ लोगों को यह छूट रहती है कि वे सोना देकर कागज़ी नोट ले लें। उस दशा में केन्द्रीय बैंक का कागज़ी नोटों के निकालने पर सीधा नियंत्रण तो नहीं रहता किन्तु बैंक अन्य उपायों से उस पर नियंत्रण स्थापित करता है। उदाहरण के लिए केन्द्रीय बैंक यदि चाहता है कि अधिक नोट निकाले तो वह बाजार में सिक्यूरिटियों को खरीदने लगेगा। उसका परिणाम यह होगा कि सर्व साधारण को सिक्यूरिटियों के मूल्य स्वरुप कागज़ी नोट दिए जावेंगे और नोट चलन में आ जावेंगे। यदि केन्द्रीय बैंक नोटों को चलन में से कम करना चाहेगा तो वह सिक्यूरिटियों को बेंचने लगेगा और इस प्रकार उसके पास मूल्य रूप में नोट आ जावेंगे जिनको वह चलन से निकाल कर रख लेगा। इसी प्रकार अन्य तरीकों से भी केन्द्रीय बैंक कागज़ी मुद्रा का नियंत्रण करता है।

किन्तु आज के समाज में अपनी देनदारी का भुगतान करने का मुख्य माध्यम व्यापारिक बैंकों की डिपाजिट है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि व्यापारिक बैंक ऋण देकर डिपाजिट निर्माण करते हैं, अस्तु केन्द्रीय बैंक का मुख्य कार्य व्यापारिक बैंकों द्वारा निर्मित हुई साख (Credit) पर नियंत्रण स्थापित करना है।

यह तो हम ऊपर कह चुके हैं कि व्यापारिक बैंक ही साख (Credit) का निर्माण करते हैं अतएव यदि केन्द्रीय बैंक देश में साख का नियंत्रण करना चाहता है तो उसे व्यापारिक बैंकों के कार्यों का नियंत्रण करना होगा। बैंकों के कार्यों पर नियंत्रण स्थापित करने में केन्द्रीय बैंक को दो बातों से बड़ी सहायता मिलती है। एक तो यह कि बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति उनके नक़द कोष (Cash Reserves) पर निर्भर होती है और दूसरी यह कि केन्द्रीय बैंक नक़दी को आसानी से घटा-बढ़ा सकता है। इस प्रकार वह बैंकों के साख निर्माण की शक्ति को नियंत्रित कर देता है।

बैंकों का नक़द कोष (Cash Reserve) :—उस नक़दी को कहते हैं जो व्यापारिक बैंकों के पास रहती है तथा उस रुपये को कहते हैं जो केन्द्रीय बैंक में उनके हिसाब में जमा रहता है। अस्तु व्यापारिक बैंकों के नक़द कोष (Cash Reserves) में सिक्के कागज़ी नोट तथा केन्द्रीय बैंक के पास

जमा किये हुए रुपये होते हैं। इसमें सिक्के महत्त्वहीन हैं और कागज़ी नोट भी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होते। कागज़ी नोट तथा सिक्के व्यापारिक बैंकों के लिए उसी प्रकार होते हैं जिस प्रकार एक बड़े दूकानदार के लिए छोटे सिक्के एक आना, दो आना इत्यादि, जिससे माल बेचने में झंझट न हो। अस्तु बैंकों का नकद कोष मुख्यतः केन्द्रीय बैंक के पास जमा किया हुआ कोष होता है। ब्रिटेन इत्यादि उन्नतिशील देशों में तो *व्यापारिक बैंक मुख्यतः* केन्द्रीय बैंक के पास अपने जमा किए हुए रुपये पर ही निर्भर रहते हैं। अपने पास नोट या सिक्के तो केवल काम चलाने के विचार से बहुत थोड़ी मात्रा में रखते हैं। हाँ भारत तथा अन्य देशों में अवश्य व्यापारिक बैंक अपने पास भी यथेष्ट नक्दी रखते हैं। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि व्यापारिक बैंक नकद कोष (Cash Reserve) को जितना भी कम हो सकता है उतना कम रखते हैं क्योंकि उस पर उन्हें कोई लाभ नहीं होता। परन्तु कानून के अनुसार अथवा परिपाटी के अनुसार उन्हें अपनी डिपाजिट का एक निश्चित प्रतिशत नक्द कोष (Cash Reserve) के रूप में अर्थात् केन्द्रीय बैंक के पास रखना पड़ता है। हम यह भी कह चुके हैं कि व्यापारिक बैंक साख (Credit) देकर डिपाजिटों का निर्माण करते हैं। किन्तु उनके डिपाजिट निर्माण करने की शक्ति उनके नकद कोष (Cash Reserve) पर निर्भर होती है। दूसरे अर्थों में यदि बैंक अपनी डिपाजिटों को बढ़ाना चाहता है तो उसके पास अधिक नकद कोष होना चाहिए। जितना ही अधिक नकद कोष अर्थात् केन्द्रीय बैंक के पास व्यापारिक बैंकों का रुपया जमा होगा उतनी ही अधिक डिपाजिट बैंक निर्माण कर सकेंगे। अस्तु यदि केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को विवश कर सके कि वह कितना रुपया उसके पास जमा रक्खें तो वह उनके द्वारा निर्माण का जाने वाला डिपाजिटों पर भी नियत्रण स्थापित कर सकता है। दूसरे शब्दों म केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के नक्द कोष का नियत्रण करके उनकी डिपाजिटों पर नियत्रण स्थापित कर सकता है।

केन्द्रीय बैंक किस प्रकार नकदी पर नियंत्रण स्थापित करता है:— केन्द्रीय बैंक तीन प्रकार से व्यापारिक बैंक के उसके पास जमा किए हुए रुपये पर नियत्रण स्थापित करता है (१) बाजार में सरकारी सिक्यूरिटियों (प्रतिभूति) तथा सरकारी हुडियों (Treasury Bills) को खरीदकर, (२) बाजार से सोना खरीद कर, (३) और सरकारी खर्च को इस

प्रकार नियंत्रित करके कि सरकार को जो कर रूप में आमदनी हो वह उसके खर्च से कम रहे।

बाज़ार में सरकारी हुंडियों और सरकारी सिक्यूरिटियों को खरीदने का परिणाम यह होगा कि केन्द्रीय बैंक को उनके मूल्य को जनता, बैंकों तथा अन्य संस्थाओं को चुकाना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि केन्द्रीय बैंक जो चेक उन व्यक्तियों, बैंकों तथा संस्थाओं को मूल्य रूप में देगा वे चेक अन्त में व्यापारिक बैंकों के पास आ जावेंगे और वह उतना रुपया केन्द्रीय बैंक से वसूल करेंगे। केन्द्रीय बैंक उतना रुपया उन बैंकों के हिसाब में जमा कर देगा। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यापारिक बैंकों की जो केन्द्रीय बैंक के पास डिपाजिट (जमा) है उसमें वृद्धि होगी अर्थात् उनके नकद कोष (Cash Reserves) में वृद्धि हो जावेगी और व्यापारिक बैंक अधिक साख (Credit) देकर अधिक डिपाजिटों का निर्माण करेंगे। यह तो हम पहले हा कह चुके हैं कि डिपाजिटों का उपयोग किसी देनदारी का भुगतान करने में द्रव्य (Money) के समान होता है और जहां तक विनिमय के माध्यम (Medium of exchange) का प्रश्न है वे कागज़ी नोटों या सिक्कों का वैसा ही कार्य करते हैं। अतएव दूसरे शब्दों में डिपाजिटों की वृद्धि होने से द्रव्य में वृद्धि हो जावेगी।

जब बैंक बाजार में सोना खरीदेगा तो भी वही परिणाम होगा जो सरकारी हुंडियों के खरीदने या सरकारी सिक्यूरिटियों के खरीदने से हुआ। सोना खरीदने पर उसके मूल्य स्वरूप केन्द्रीय बैंक उन व्यापारियों को चेक देगा जो वे अपने बैंकों को केन्द्रीय बैंक से वसूल करने के लिये दे देंगे। व्यापारिक बैंक उन चेकों को केन्द्रीय बैंकों के पास भेजेंगे और केन्द्रीय बैंक उतना रुपया व्यापारिक बैंकों के हिसाब में जमा कर देगा। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यापारिक बैंकों का नकद कोष बढ़ जावेगा और वे साख (Credit) देकर अधिक डिपाजिट का निर्माण करेंगे, दूसरे शब्दों में द्रव्य (Money) की वृद्धि हो जावेगी।

जब कि केन्द्रीय बैंक सरकार के खर्चे की इस प्रकार व्यवस्था करता है कि जितनी सरकारी कर (Tax) से उन दिनों आमदनी होती है उससे कहीं अधिक सरकारी खर्च होता है तो इसका परिणाम पहले दोनों तरीकों से बिलकुल मिलता-जुलता होता है। इसका परिणाम यह होगा कि व्यापारिक बैंकों के ग्राहकों (जनता) को करों (Taxes) के रूप में जितना रुपया

सरकार को देना पडता है वह उससे कहीं कम होता है जो उन्हें सरकार से वेतन तथा सरकार को बेंचे माल के रूप में मिलता है। इसका फल यह होगा कि व्यापारिक बैंकों की केन्द्रीय बैंकों के पास जो डिपाजिट है वह बढ जावेगी। क्योंकि जनता अपने करों (Taxes) को चेकों द्वारा देगी और वे चेक व्यापारिक बैंकों के ऊपर काटे गए होंगे। इन चेकों के कारण व्यापारिक बैंकों की केन्द्रीय बैंकों के पास रक्खी हुई डिपाजिट (जमा) कम हो जावेगी। किन्तु साथ ही सरकार के अत्यधिक व्यय के फल स्वरूप जनता को केन्द्रीय बैंक पर जो चेक मिलेंगे उनको वसूल करने के लिये वे उन्हें अपने बैंकों को दे देंगे। व्यापारिक बैंक उन चेकों को केन्द्रीय बैंक (Central Bank) से वसूल करेंगे और केन्द्रीय बैंक उतना रुपया व्यापारिक बैंकों के हिसाब में जमा कर देगा। क्योंकि करों (Taxes) की आमदनी से खर्च अधिक किया गया है इसलिये व्यापारिक बैंकों का केन्द्रीय बैंक के पास डिपाजिट (जमा) में वृद्धि हो जावेगी अर्थात् उनके नकद कोष (Cash Reserve) में वृद्धि होगी और वे अधिक डिपाजिटों का निर्माण करेंगे। दूसरे शब्दों में द्रव्य (Money) की वृद्धि हो जावेगी।

इसके विपरीत यदि केन्द्रीय बैंक सरकारी सिक्यूरिटियों, सरकारी हुडियों (Treasury Bills) को बेंचे, सोने को बेंचे, अथवा सरकारी व्यय की इस प्रकार व्यवस्था करे कि करों (Taxes) इत्यादि से होने वाली आय सरकारी व्यय से कहीं अधिक हो तो ऊपर बतलाये हुए परिणाम के सर्वथा विरुद्ध परिणाम होगा। ऊपर लिखे कार्यों का फल यह होगा कि जनता को केन्द्रीय बैंक को सरकारी सिक्यूरिटियों, सोने अथवा सरकारी हुडियों का मूल्य चुकाने के लिए अपने बैंकों पर चेक (Cheque) देने होंगे। यदि सरकारी व्यय की अपेक्षा करों (Taxes) से होने वाली आमदनी अधिक है तो भी जनता करों (Taxes) को अपने बैंकों पर चेक काट कर और केन्द्रीय बैंक को देकर चुकावेगी। फल यह होगा कि व्यापारिक बैंकों को यह सारा रुपया केन्द्रीय बैंक को चुकाना होगा। किन्तु व्यवहार में इसका परिणाम केवल यही होगा कि व्यापारिक बैंकों का केन्द्रीय बैंक में रुपया जमा है उसमें कमी हो जावेगी। इस प्रकार जब व्यापारिक बैंकों के नकद कोष (Cash Reserve) में कमी हो जावेगी तो वे अपने नकद कोष को बढाने के लिए दिए हुए ऋणों को वापस माँगेंगे तथा साख देकर नई डिपाजिटों का निर्माण करना रोक देंगे या बहुत कम कर देंगे। दूसरे शब्दों में द्रव्य (Money) की कमी हो जावेगी।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया कि केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के नकद कोष को जिस प्रकार चाहे घटा बढ़ा कर द्रव्य राशि (Quantity of money) को नियंत्रण कर सकता है। किन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता भी है। व्यापारिक बैंक बट्टा बाजार (Discount Market) के द्वारा केन्द्रीय बैंक के पास ऋण लेने के लिए पहुँच सकते हैं और इस प्रकार केन्द्रीय बैंक से अपने भुनाये हुए बिलों को पुनः भुना कर (Re-discount) अपने नकद कोष को पूरा कर सकते हैं। व्यापारिक बैंक दो में से एक काम कर सकते हैं। उन देशों में जैसे इंगलैंड जहां बट्टा बाजार (Discount Market) उन्नत अवस्था में है और जहां व्यापारिक बैंक व्यापारिक बिलों को सीधे न भुनाकर बट्टा बाजार के ब्रोकरों (दलालों) को ऋण दे देते हैं और वे व्यापारिक बिलों को भुनाते हैं, वहां व्यारिक बैंक बट्टा बाजार को दिए हुए ऋण को वापस माँग सकते हैं। इसका फल यह होगा कि बट्टा बाजार उन बिलों को बैंक आफ इंगलैंड से भुनाकर ऋण प्राप्त करेगा और व्यापारिक बैंकों को उनका ऋण वापस कर देगा। इसका परिणाम यह होगा कि व्यापारिक बैंकों की बैंक आफ़ इंगलैंड (इंगलैंड का केन्द्रीय बैंक) में डिपाजिट बढ़ जावेगी अर्थात् व्यापारिक बैंकों के नकद कोष में वृद्धि होगी। जहाँ बट्टा बाज़ार उन्नत अवस्था में नहीं होता है वहाँ व्यापारिक बैंक स्वयं सीधे व्यापारिक बिलों को भुनाते हैं। अस्तु यदि केन्द्रीय बैंक उनके नकद कोष को घटाने की युक्ति करे तो वे अपने भुनाए हुए बिलों को लेकर केन्द्रीय बैंक के पास पहुँच सकते हैं और उन बिलों को केन्द्रीय बैंक से पुनः भुना कर उससे ऋण प्राप्त कर सकते हैं और अपने नकद कोष को घटने से बचा सकते हैं। यदि ऐसा हो तब तो केन्द्रीय बैंक (Central Bank) व्यापारिक बैंकों के नकद कोष का नियंत्रण करने में असमर्थ सिद्ध हो और द्रव्य को घटा बढ़ा न सके। परंतु जब व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के पास सीधे या बट्टा बाजार (Discount Market) के द्वारा ऋण लेने पहुँचते हैं तो केन्द्रीय बैंक की बट्टा दर (Discount rate) प्रभावशाली हो जाती है। बट्टा दर (Discount rate) वह दर है जिस पर बैंक बिलों को पुनः भुना कर बैंकों को ऋण देता है। यदि बैंक चाहता है कि व्यापारिक बैंक कम साख का निर्माण करें तो वह बट्टा दर (Discount rate) को ऊँचा कर देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब व्यापारिक बैंकों को ऋण ऊँची दर पर मिलेगा तो वे अपनी सूद की दर को और ऊँचा उठावेंगे इसका फल यह होगा कि ऋण कम लिया जावेगा

और साख (Credit) का कम निर्माण होगा। यदि बैंक चाहता है कि साख का निर्माण अधिक हो तो वह अपनी दर (Rate) को कम कर देगा। अस्तु केन्द्रीय बैंक उस दशा में जब व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के पास ऋण के लिये पहुँचते हैं तो वह अपनी दर को ऊँचे उठा कर या नीचा गिरा कर देश में साख (Credit) के निर्माण का नियन्त्रण करता है।

साख (Credit) नियन्त्रण के तरीके :—जिन तरीकों से केन्द्रीय बैंक साख का नियन्त्रण करता है वे नीचे लिखे हैं :—

(१) अपनी बट्टा दर और सूद की दर को घटाना या बढ़ाना जिससे देश में साधारणतः सूद की दर घटे या बढ़े और साख का विस्तार या संकोच हो।

(२) सिक्यूरिटियों (प्रतिभूति) को तथा बिलों को खुले बाजार में इस उद्देश्य से खरीदना या बेचना जिससे बाजार में अधिक द्रव्य दिया जावे अथवा बाजार से से द्रव्य खींचा जा सके और उस प्रकार साख (Credit) को बढ़ाया या कम किया जाता है।

(३) साख का राशनिंग (Rationing of Credit) करके भी साख का नियन्त्रण किया जाता है। कभी कभी केन्द्रीय बैंक बट्टा दर या सूद की दर को बढ़ाने के साथ ही साख का राशनिंग कर देते हैं और कभी स्वतन्त्र रूप से साख के राशनिंग के द्वारा ही उसका नियन्त्रण करते हैं।

(४) उन बैंकों के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करके जो केन्द्रीय बैंक से अधिक लम्बे समय के लिए तथा अत्यधिक मात्रा में ऋण लेते हैं या जिनके बारे में केन्द्रीय बैंक को यह शिकायत हो कि वे उससे ऋण लेकर सट्टा या फाटका (Speculation) के लिए पूँजी देते हैं अथवा उन धंधों को साख देते हैं जो आवश्यक या महत्त्वपूर्ण नहीं है अथवा उपभोग के लिए साख (Consumer Credit) देते हैं।

(५) केन्द्रीय बैंक अपना नैतिक प्रभाव डाल कर तथा विज्ञप्ति करके भी साख को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करता है।

(६) केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के द्वारा उसके पास रक्खे गये न्यूनतम नक़द कोष (Minimum Reserve) को अधिक करके अथवा घटा करके व्यापारिक बैंकों को इस बात के लिए विवश करता है कि वे साख का निर्माण कम करें या अधिक करें।

(७) साख का नियंत्रण करने के ऊपर लिखे तरीकों में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण पहले दो तरीके हैं। अर्थात् केन्द्रीय बैंक सूद की दर को घटा बढ़ा कर तथा खुले बाजार में बिलों और सिक्यूरिटियों को खरीद बेंच कर अधिकतर साख (Credit) का नियंत्रण करता है। किन्तु यहां एक बात समझ लेने की है कि केन्द्रीय बैंक द्वारा 'बट्टा दर' (Discount Rate) को ऊँचा कर देने से स्वतः ही साख का निर्माण कम नहीं हो जावेगा। हां यदि केन्द्रीय बैंक की सूद की दर ऊँची होने से द्रव्य बाजार (Money Market) में सूद की दर ऊँची हो जावे तब अवश्य साख का निर्माण कम होगा। और इसी प्रकार बैंक की दर गिरने से यदि द्रव्य बाजार में सूद की दर गिर जावे तो साख का अधिक विस्तार होगा। अस्तु साख का बढ़ना या घटना इस बात पर निर्भर होता है कि द्रव्य बाजार में सूद की दर केन्द्रीय बैंक की दर के साथ साथ घटती बढ़ती है। यदि केन्द्रीय बैंक की दर (Bank Rate) में परिवर्तन होने से द्रव्य बाजार की सूद की दर में कोई परिवर्तन न हो तो साख के निर्माण पर केन्द्रीय बैंक की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अस्तु केंद्रीय बैंक का दर (Bank rate) केवल इसीलिये साख (Credit) के नियंत्रण में सफल हो पाती है क्योंकि यह एक परिपाटी स्थापित हो गई है कि द्रव्य बाजार में व्यापारिक बैंक अपनी सूद का दर को केंद्रीय बैंक की दर के आधार पर ही निर्धारित करते हैं। यदि केंद्रीय बैंक की दर (Bank Rate) ऊँची चढ़ती है तो व्यापारिक बैंक भी अपनी सूद की दर चढ़ा देते हैं और यदि केन्द्रीय बैंक की दर नीचे गिरती है तो वे भी अपनी सूद की दर नीचे गिरा देते हैं। व्यापारिक बैंक यह भी जानते हैं कि यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो केन्द्रीय बैंक के पास और भी अस्त्र हैं जिससे वह अपनी सूद की दर को प्रभावशाली बना सकता है। अस्तु वे केन्द्रीय बैंक के नेतृत्व को स्वीकार कर लेते हैं और अपनी सूद की दर को केन्द्रीय बैंक को दर के अनुसार निश्चित करते हैं, फिर चाहे द्रव्य बाज़ार की स्थिति को देखते हुए सूद की दर में परिवर्तन की आवश्यकता हो या न हो।

(८) केन्द्रीय बैंक अपनी सूद की दर को प्रभावशाली बनाने के लिये अथवा स्वतंत्र रूप से साख का नियंत्रण करने के लिये खुले बाज़ार में बिलों तथा सिक्यूरिटियों का विक्रय करता है। इसको 'खुले बाज़ार की क्रिया' (Open Market Operations) कहते हैं। 'खुले बाज़ार की क्रिया' नीचे लिखी तरह से होती है। यदि केन्द्रीय बैंक चाहता है कि साख का निर्माण कम हो तो वह अपने पास की सिक्यूरिटियों को बाज़ार में बेंच देगा।

सिक्यूरिटी खरीदने वाले व्यापारिक बैंक होंगे या उनके ग्राहक होंगे। इसका परिणाम यह होगा कि व्यापारिक बैंकों की केन्द्रीय बैंक के पास डिपाजिट कम हो जावेगा और उनके नकद कोष (Cash Reserve) के कम होने से उन्हें साख (Credit) को कम करना होगा। यदि केन्द्रीय बैंक बाजार में सिक्यूरिटियों को खरीदने लगेगा तो इसका उलटा परिणाम होगा अर्थात् व्यापारिक बैंक अधिक साख का निर्माण करने लगेंगे। 'खुले बाज़ार की क्रिया' (Open Market Operations) केन्द्रीय बैंक निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिये करता है:—

(क) केन्द्रीय बैंक की सूद की दर (Bank Rate) को प्रभावशाली बनाने के लिये खुले बाजार की क्रिया से व्यापारिक बैंकों का नकद कोष घट या बढ़ जाता है। अस्तु उन्हें केन्द्रीय बैंक की दर के अनुसार अपनी दर को निश्चित करना पड़ता है।

(ख) द्रव्य बाज़ार में द्रव्य के मौसमी हेर-फेर से तथा सरकारी कोषों (Funds) के हेर फेर से होने वाली गड़बड़ को कम करने के लिए भी 'खुले बाजार की क्रिया' (Open Market Operations) की जाती है। उदाहरण के लिए वर्ष के कुछ महीनों में व्यापार की तेज़ी होती है और व्यापार को अधिक द्रव्य की आवश्यकता होती है। उस समय केन्द्रीय बैंक बिल तथा सिक्यूरिटियों को खुले बाज़ार में खरीद कर बाजार में अधिक द्रव्य दे देता है, क्योंकि व्यापारिक बैंक भी केन्द्रीय बैंक के ऐसा करने पर अधिक साख का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार यदि सरकार 'कर' (Tax) रूप में बहुत अधिक द्रव्य (Money) बाजार में से खींच ले तो भी बाजार में द्रव्य की कमी हो जावे। उस समय भी केन्द्रीय बैंक (Central Bank) बिल तथा सिक्यूरिटी खरीद कर द्रव्य की कमी को पूरा करता है।

(ग) स्वर्ण का आयात (Import) तथा निर्यात (Export) जो देश की करंसी पर प्रभाव पड़ता है उसको रोकने के लिए भी 'खुले बाजार की क्रिया' की जाती है। उदाहरण के लिए यदि किसी देश में स्वर्ण-मान (Gold Standard) हो और व्यापार का अन्तर (Balance of Trade) देश के विरुद्ध हो और स्वर्ण का निर्यात (Export) होने लगे तो जनता कागज़ी नोट केन्द्रीय बैंक (Central Bank) को देकर उससे स्वर्ण लेकर बाहर भेजेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि बाज़ार में करंसी की कमी हो जावेगी उस समय केन्द्रीय बैंक 'खुले बाजार की क्रिया' (Open Market

Operation) के द्वारा अर्थात् बिल और सिक्यूरिटी खरीद कर बाज़ार में द्रव्य (Money) की कमी को पूरा करता है। यदि स्वर्ण देश में आ रहा हो तो उसका परिणाम यह होगा कि लोग केन्द्रीय बैंक को स्वर्ण देकर उससे नोट लेंगे। देश में कागज़ी नोट अर्थात् करंसी आवश्यकता से अधिक हो जावेगी उस समय केन्द्रीय बैंक बिल तथा सिक्यूरिटी को बेंचकर अनावश्यक द्रव्य या करसी को चलन में से खींच लेता है।

(घ) 'खुले बाजार की क्रिया' (Open Market Operations) इसलिए भी की जाती है कि जिससे सूद की दर गिर जावे और सरकार अपने ऋण को कम सूद पर बेंच सके अथवा पुराने ऋण को जो ऊँची दर पर लिया गया था कम सूद के ऋण में बदल सके।

(ङ) खुले बाजार की क्रिया का एक उद्देश्य यह भी होता है कि सूद की दर नीची रहे जिससे व्यापार पनपे और उन्नत हो।

(३) साख का राशनिंग करना :—कभी-कभी केन्द्रीय बैंक साख का राशनिंग करके साख का नियंत्रण करता है। जब व्यापारिक बैंक अथवा बट्टा-गृह (Discount Houses) अपने बिलों को भुनाने के लिए केन्द्रीय बैंक से प्रार्थना करते हैं और उन सब बिलों का कुल मूल्य उस रकम से अधिक होता है जितने मूल्य के बिल किसी एक दिन में केन्द्रीय बैंक भुनाना तय करता है तो प्रत्येक बैंक या बट्टा-गृह के प्रार्थना पत्र में से केन्द्रीय बैंक कुछ कमी कर देता है और भुनाता है, और इस प्रकार साख का नियंत्रण किया जाता है।

(४) सीधी कार्यवाही करके (Direct Action) :—कभी-कभी बट्टा-दर (Discount Rate) या खुले बाजार की क्रिया (Open Market Operations) के स्थान पर केन्द्रीय बैंक सीधी कार्यवाही (Direct Action) करता है, कभी ऊपर लिखे दोनों उपायों के साथ-साथ भी सीधी कार्यवाही की जाती है। जब केन्द्रीय बैंक देखता है कि कोई बैंक अपनी पूँजी (Capital) तथा सुरक्षित कोष (Reserve Fund) को देखते हुए केन्द्रीय बैंक से अधिक ऋण लेता है अथवा वह बैंक सट्टा या फटका (Speculation) के लिए ऋण देता है अथवा अनावश्यक धंधों को ऋण देता है अथवा उपभोग के लिए साख देता है, तो केन्द्रीय बैंक उस बैंक या ऐसे बैंकों के बिलों को भुनाना अस्वीकार कर देता है, और

यदि उनके बिल भुनाता था है तो उनसे ऊँची दर लेकर उन्हें दण्डित करता है।

(५) नैतिक दबाव (Moral Suasion) ।—जब केन्द्रीय बैंक देखता है कि साख का अधिक विस्तार न होने देना देश के आर्थिक हित में है और व्यापारिक बैंक अधिक साख निर्माण कर रहे हैं तो वह उन्हें अपनी बताई हुई नीति को बरतने के लिए कहता है। इसी प्रकार यदि केन्द्रीय बैंक समझता है कि साख (Credit) का विस्तार होना चाहिए तो वह व्यापारिक बैंकों को वैसा ही करने के लिए कहता है। केन्द्रीय बैंक (Central Bank) का द्रव्य-बाजार में इतना अधिक नैतिक प्रभाव होता है कि प्रत्येक व्यापारिक बैंक उसकी बात को मानता है। इस प्रकार अपने नैतिक दबाव से ही केन्द्रीय बैंक साख को नियमण करने में सफल होता है। कहीं-कहीं केन्द्रीय बैंक साख सम्बन्धी नीति को घोषित कर देते हैं और व्यापारिक बैंक उसी के अनुसार अपनी नीति में परिवर्तन कर लेते हैं।

(६) नकद कोष के अनुपात (Cash Ratio) को बदल कर :— यह युक्ति उन देशों में विशेष रूप से उपयोग में लाई जाती है जहाँ कानून के अनुसार प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपनी डिपाज़िटों का एक निश्चित प्रतिशत केन्द्रीय बैंक में रखना पड़ता है और केन्द्रीय बैंक को यह अधिकार दे दिया जाता है कि वह उस अनुपात (Ratio) को बदल दे। उदाहरण के लिये यदि किसी देश में कानून के अनुसार प्रत्येक बैंक के लिये अपनी डिपाज़िटों की ५ प्रतिशत नकदी केन्द्रीय बैंक में जमा करना आवश्यक है और केन्द्रीय बैंक साख को कम करना चाहता है तो और उसको व्यापारिक बैंकों की नकदी के अनुपात (Cash Ratio) को बदलने का अधिकार है तो वह व्यापारिक बैंकों से अपनी डिपाज़िटों का १० प्रतिशत जमा करने के लिये कह सकता है। केन्द्रीय बैंक के नकदी के अनुपात (Cash Ratio) को बढ़ाते ही व्यापारिक बैंकों को दिये हुए ऋण को वापस माँगना होगा और नई साख देना कम करना होगा। केन्द्रीय बैंक के इस कार्य से ही साख (Credit) का निर्माण कम हो जावेगा। इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक नकदी के अनुपात को घटा कर साख (Credit) का विस्तार भी कर सकता है।

केन्द्रीय बैंक की सूद की दर (Bank Rate) का आर्थिक प्रभाव :—यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि केन्द्रीय बैंक अपनी बट्टा-दर या सूद की दर (Bank Rate) को ऊँचा कर देता है तो द्रव्य-बाजार में

सूद की दर ऊँची हो जावेगी। यदि सूद की दर इतनी अधिक हो जाती है कि व्यापारी और व्यवसायियों को उधार ली हुई पूँजी पर अधिक सूद देने के कारण लाभ (Profit) कम होने लगता है तो सम्पत्ति का उत्पादन कम होने लगेगा तथा बेकारी बढ़ जावेगी। बेकारी बढ़ने का परिणाम यह होगा कि लोगों की क्रय शक्ति कम होगी और वस्तुओं का मूल्य नीचे गिरने लगेगा। इसके विपरीत यदि केन्द्रीय बैंक सूद की दर घटा दे तो द्रव्य-बाज़ार में सूद की दर घट जावेगी, व्यापारी तथा व्यवसायी सस्ती पूँजी पा सकेंगे। इससे व्यापार तथा व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलेगा।

केन्द्रीय बैंक की सूद की दर केवल देश के भीतर ही प्रभाव नहीं डालती वरन् बाहर भी डालती है। जब केन्द्रीय बैंक की सूद दर (Bank Rate) ऊँची उठती है अर्थात् द्रव्य महँगा (Dear Money) हो जाता है तो उसका नीचे लिखा प्रभाव होता है :—

(१) महँगे द्रव्य का प्रभाव यह होता है कि देश विदेशों को कम उधार देता है और उनसे अधिक उधार लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि देश में सोना आने लगता है अथवा जाने वाला सोना रुक जाता है। जब कोई देश स्वर्ण मान (Gold Standard) पद्धति पर होता है और उस देश का आयात (Import) निर्यात (Export) से अधिक होता है तो स्वभावतः उस देश की करंसी का अन्य देशों की करंसी की तुलना में मूल्य गिरने लगता है और स्वर्ण बाहर जाने लगता है। उस समय केन्द्रीय बैंक सूद की दर को ऊँचा कर देता है। केन्द्रीय बैंक का सूद की दर ऊँची चढ़ने से देशों में सूद की दर ऊँची उठ जाती है और विदेशी व्यापारी अपने रुपये को स्वर्ण के रूप में न मँगवा कर उसी देश में अधिक सूद का लाभ उठाने के लिए अपना रुपया बैंकों इत्यादि में जमा कर देते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि स्वर्ण बाहर जाने से रुक जाता है और विनिमय दर (Exchange Rates) नहीं गिरता।

यही नहीं जब देश में सूद की दर ऊँची उठ जाती है तो क्रय शक्ति (Purchasing Power) कम होती है और देश में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं की देश में खपत न होने के कारण उनका निर्यात (Export) होने लगेगा। इससे देश का निर्यात व्यापार (Export Trade) बढ़ेगा और विदेशी व्यापार का अन्तर (Balance of Trade) देश के पक्ष में होगा और स्वर्ण का बाहर जाना रुक जावेगा।

इसके अतिरिक्त ऊँचे सूद की दर के कारण वस्तुओं का मूल्य गिरता है क्योंकि साख का निर्माण कम होता है) तो व्यवसायियों को स्वभावतः अपने उत्पादन व्यय (Cost of production) को कम करना पड़ता है। उससे देश का भी निर्यात व्यापार (Export trade) बढ़ता है और विदेशी व्यापार का अन्तर देश के पक्ष में होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि केन्द्रीय बैंक की सूद की दर का देश के आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

असंगठित द्रव्य बाजार पर केन्द्रीय बैंक का नियंत्रण :— ऊपर हमने केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के साख नियंत्रण (Credit Control) का विवरण दिया वह संगठित द्रव्य बाजार (Organised money market) का है। किन्तु सब द्रव्य-बाजार संगठित नहीं होते। ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका, फ्रांस, जरमनी इत्यादि देशों में द्रव्य बाजार संगठित है। वहाँ केन्द्रीय बैंक ऊपर लिखे अनुसार ही साख का नियंत्रण करते हैं। किन्तु भारत तथा अन्य देशों में जहाँ द्रव्य-बाज़ार असंगठित है वहाँ केन्द्रीय बैंक इस प्रकार साख का नियंत्रण नहीं कर सकता।

इस प्रकार के असंगठित द्रव्य-बाजार की विशेषता यह होती है कि वहाँ बैंकिंग व्यवसाय उन्नत नहीं होता, जनता में बैंकिंग की आदत नहीं होती, अल्पकालीन द्रव्य-बाजार (Short term money market) या तो होता ही नहीं अथवा उसका संगठन संतोषजनक नहीं होता। केन्द्रीय बैंक नई संस्था होने के कारण अधिक प्रभावशाली नहीं होता। वह व्यापारिक बैंक के ऊपर कानून द्वारा बिठाया जाता है। उसके पीछे कोई परम्परा नहीं होती इस कारण उसका प्रभाव कम हो जाता है। भारतवर्ष में पिछले वर्षों में बहुत से नये बैंकों की स्थापना हुई है, चेक का चलन भी बढ़ता जाता है फिर देश के विस्तार को देखते बैंकिंग की यह उन्नति यथेष्ट नहीं, कही जा सकती। भारतवर्ष में और सभी देशों में जहाँ द्रव्य-बाजार असंगठित होता है सबसे बड़ी कमी यह होती है कि द्रव्य बाजार में सारे अल्पकालीन कोष (Short term funds) को एकत्रित करने और उसका व्यापार के लिए उपयोग करने की कोई व्यवस्था या संगठन नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि यह धन कोष (Funds) द्रव्य-बाजार (Money Market) के भिन्न-भिन्न विभागों में ठीक तरह से नहीं बट पाता। किसी भाग में तो पूँजी की कमी प्रतीत होती है और वहाँ कारबार पूँजी के कारण रुक जाता है और

दूसरे भाग में आवश्यकता से अधिक पूँजी होती है जिसका पूरा उपयोग नहीं हो पाता। इस प्रकार के असंगठित द्रव्य-बाजार में भिन्न-भिन्न सूद की दरें प्रचलित होती हैं जिनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

असंगठित द्रव्य-बाजार में केन्द्रीय बैंक की सूद की दर (Bank Rate) इतनी अधिक कारगर नहीं होती जितनी संगठित द्रव्य-बाजार में होती है। केन्द्रीय बैंक की सूद की दर तभी कारगर होती है जब व्यापारिक बैंक उसके ऋणी हों। उस दशा में केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को सूद की दर के सम्बन्ध में अपना नेतृत्व मानने पर विवश कर सकता है। किन्तु जहाँ केन्द्रीय बैंक पुराने स्थापित व्यापारिक बैंकों पर ऊपर से थोप दिया जाता है तो उसका नेतृत्व प्रभावशाली नहीं होता और अन्य व्यापारिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक का शीघ्र ऋणी बनाना आसान नहीं होता। असंगठित द्रव्य-बाजार 'खुले बाजार की क्रिया' (Open Market Operations) का भी क्षेत्र सीमित ही होता है क्योंकि उन देशों में शेयर या स्टाक एक्सचेंज (शेयर बाजार) इतना उन्नति नहीं होता कि उसमें बहुत बड़ा कारबार हो सके।

ऐसी दशा में केन्द्रीय बैंक सरकारी अर्थ विभाग से सहयोग करके ऐसी व्यवस्था करे कि सरकार की 'कर'(Tax) इत्यादि की आय उसके तत्कालीन व्यय से अधिक हो। इसका परिणाम यह होगा कि केन्द्रीय बैंक में सरकारी डिपाजिट बढ़ जावेगी और व्यापारिक बैंकों का नकद कोष (Cash Reserve) कम हो जावेगा। इस प्रकार उन्हें साख (Credit) को घटाना होगा। इसके अतिरिक्त ऐसे देशों में केन्द्रीय बैंकों को यह अधिकार दे देना चाहिए कि वे व्यापारिक बैंकों द्वारा जमा किया जाने वाला नक़द कोष (Cash-Reserve) का अनुपात घटा बढ़ा सकें। यदि केन्द्रीय बैंक साख (Credit) को घटाना चाहता है तो व्यापारिक बैंकों द्वारा केन्द्रीय बैंक में जमा किये जाने वाले नक़द कोष के अनुपात को बढ़ा देगा और यदि साख को बढ़ाना चाहता है तो नकद कोष के अनुपात को घटा देगा।

साथ ही हमें यह न भूल जाना चाहिये कि यद्यपि केन्द्रीय बैंक की बट्टा-दर (Discount Rate) अर्थात् सूद की दर असंगठित द्रव्य-बाज़ार में बहुत कारगर नहीं होती किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि केन्द्रीय बैंक के सूद की दर का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। असंगठित-द्रव्य-बाजार में भी केन्द्रीय बैंक की सूद की दर का उपयोग होता है और उसका

प्रभाव पड़ता है। व्यापारिक बैंक परोक्ष रूप से केन्द्रीय बैंक की सूद की दर से प्रभावित होते हैं। फिर वे यह तो जानते ही हैं कि यदि उन्हें केन्द्रीय बैंक से ऋण लेना होगा तो उन्हें उस ऋण पर मिलेगा। अतएव वे भी केन्द्रीय बैंक के सूद की दर के अनुसार ही अपनी सूद की दर को घटाते बढ़ाते हैं। सच तो यह है कि केन्द्रीय बैंक की सूद की दर (Bank Rate) प्रभावशाली होगी या नहीं यह इस बात पर निर्भर रहता है कि केन्द्रीय बैंक की द्रव्य बाजार में कितनी प्रतिष्ठा है और उसे अन्य व्यापारिक बैंकों का कितना सहयोग प्राप्त है।

अध्याय ६

समाशोधन गृह या क्लियरिंग हाउस (Clearing House)

प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र में बहुत से व्यापारिक बैंक होते हैं और उन सब बैंकों के भिन्न-भिन्न ग्राहक होते हैं। अतएव प्रत्येक बैंक को दूसरे बैंकों पर चेक, बिल इत्यादि वसूल करने के लिए मिलते हैं। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए कि कलकत्ते में 'अ' भारत बैंक में अपना हिसाब रखता है और 'ब' सेन्ट्रल बैंक आफ़ इंडिया में अपना हिसाब रखता है। 'अ' ने पांच हज़ार रुपये का जूट 'ब' के हाथ बेंचा। 'ब' ने अपने बैंक अर्थात् सेन्ट्रल बैंक आफ इन्डिया पर पाँच हज़ार रुपये का चेक काट कर 'अ' को दे दिया। अब 'अ' प्रति दिन जो भी चेक उसे मिलते हैं अपने बैंक अर्थात् भारत बैंक के पास भेज देता है। अस्तु इस चेक को भी वह भारत बैंक के पास सेन्ट्रल बैंक आफ इन्डिया से वसूल करके उसके हिसाब में जमा करने के लिए भेज देगा। इसी प्रकार प्रत्येक बैंक के ग्राहकों को व्यापार तथा कारबार में प्रति दिन भिन्न-भिन्न बैंकों पर चेक मिलते हैं। वह अपने बैंक के पास वसूल करके उसके हिसाब में जमा करने के लिए भेज देता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक बैंक के पास अन्य बैंकों पर काटे गए चेक इत्यादि वसूल होने के लिए आते हैं।

एक दूसरे पर कटे हुए चेकों को वसूल करने का एक उपाय यह है कि प्रति दिन प्रत्येक बैंक अपने एक क्लर्क और चपरासी को केवल इसीलिए नियुक्त करे कि वह सब चेकों को लेकर प्रत्येक बैंक के दफ़्तर जावे और वहाँ उस चेक का रुपया वसूल करे। इस प्रकार प्रत्येक बैंक के कर्मचारियों को बार बार चेक तथा ड्राफ्ट इत्यादि का रुपया वसूल करने के लिए भिन्न-भिन्न बैंकों को जाना पड़ता है। इससे कर्मचारियों का समय तो नष्ट होता ही है, सवारी इत्यादि का व्यय भी होता है और रुपये को लाने और ले जाने में उसके खो जाने या लुट जाने का भी भय रहता है। इसके अतिरिक्त जब प्रत्येक बैंक को अपने ऊपर काटे गये चेकों या ड्राफ्टों का नक़द रुपया देना पड़ता है तो उन्हें अपने पास नक़दी भी अधिक रखनी पड़ती है। ऊपर का तरीका अवैज्ञानिक, कष्ट साध्य, और जोखिम का है। साथ ही इसमें व्यय अधिक होता है और बैंकों को अपने पास नक़दी अधिक रखनी पड़ती है। यही कारण है कि जब बैंकिंग कारबार बढ़ा

और अधिकांश लोग अपना कारबार बैंकों की सहायता से करने लगे तो इस बात की आवश्यकता हुई कि एक दूसरे पर काटे हुए चेकों की वसूली का अधिक सुविधाजनक और सरल तरीक़ा निकाला जावे और क्लियरिंग हाउस अथवा समाशोधन गृह की व्यवस्था की गई। चेकों के निष्कासन (Clearing) में एक बैंक की दूसरे बैंक पर जितनी माँग होती है उसको काट कर शेष (Balance) को चुका दिया जाता है। निष्कासन (Clearing) एक क्लियरिंग हाउस (समाशोधन गृह) के द्वारा होता है। इस ढंग से बहुत से लाभ होते हैं। क्लियरिंग हाउस की व्यवस्था होने से बैंक के कर्मचारियों को चेक इत्यादि की वसूली के लिए बार बार अन्य बैंकों के चक्कर नहीं लगाने पड़ते और न चेकों तथा ड्राफ्टों को नक़दी में वसूल करने की आवश्यकता पड़ती है। इससे लाभ यह होता है कि मार्ग में रुपये के लूटे या मारे जाने की जोखिम नहीं रहती। यही नहीं बैंकों को अपने पास अधिक नक़दी रखने की आवश्यक्ता नहीं पड़ती। यह पद्धति बहुत ही सुविधाजनक, सरल, जोखिम रहित और लाभदायक है।

अब हम यहाँ क्लियरिंग हाउस का एक उदाहरण दे कर यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि क्लियरिंग हाउस किस प्रकार काम करता है। प्रत्येक बैंक जो क्लियरिंग हाउस का सदस्य होता है अपने प्रतिनिधि को क्लियरिंग हाउस में नियुक्त कर देता है। उसके पास एक रजिस्टर होता है जिसमें वह उन सब चेकों, बिलों, ड्राफ्टों, डिवीडेंड वारंट तथा तार की हुन्डी (Telegraphic Transfer) को चढ़ा देता है जिन्हें उसे क्लियरिंग हाउस के अन्य सदस्यों से वसूल करना है। प्रत्येक बैंक का प्रतिनिधि इनकी एक प्रथम सूची भी बनाता है। वस्तुतः यह सूची रजिस्टर के भिन्न भिन्न कालमों की नक़ल होती है। प्रत्येक कालम में उन चेकों, बिलों, ड्राफ्टों को चढ़ाया जाता है जो एक बैंक के ऊपर काटे गए हैं। इन सूचियों को जोड़ लिया जाता है और उतनी रक़म को रजिस्टर में उक्त बैंक के नाम चढ़ा दिया जाता है। प्रत्येक बैंक का प्रतिनिधि इसी प्रकार अपने रजिस्टर में उन चेकों और बिलों इत्यादि को चढ़ा लेता है और अन्य दूसरे बैंकों के नाम चढ़ा देता है। जोड़ने का काम मशीनों द्वारा होता है। क्लियरिंग हाउस में यह मशीनें बराबर यह काम करती हैं क्योंकि करोड़ों, अरबों का जोड़ और घटाना होता है और दिन में चार बार निष्कासन (Clearing) होता है। प्रत्येक बैंक का प्रतिनिधि इन सूचियों को क्लियरिंग हाउस के अधिकारी को देता है और साथ ही उन चेकों, बिलों और ड्राफ्टों के बंडल भी उनके सुपुर्द कर देता है। प्रत्येक बैंक का प्रतिनिधि जो भी चेक और बिल दूसरे बैंकों

पर उसे अपने बैंक से वसूल करने के लिए मिलते हैं उनको एक बंडल में अलहदा बांध देता है और उसके साथ उन चेकों की सूची भी क्लियरिंग हाऊस के अधिकारी को दे देता है। क्लियरिंग हाऊस का अधिकारी प्रत्येक बैंक के प्रतिनिधि को उसके नाम के चेकों, बिलों और ड्राफ्टों के बंडल तथा उसकी सूचियाँ उन्हें सुपुर्द कर देता है। प्रत्येक प्रतिनिधि उन सूचियों तथा बंडलों को मिलाकर उन्हें अपने रजिस्टर में चढ़ा लेता है। अब प्रत्येक बैंक का प्रतिनिधि उनको जोड़ कर और जितने के चेक इत्यादि उसने दूसरों पर दिये हैं उनमें से घटा कर यह मालूम कर लेता है कि उसके बैंक को अन्य बैंकों से कुल मिलाकर कितना लेना है अथवा देना है। और रजिस्टर में यह सारा हिसाब लगाकर वह अपने रजिस्टर को क्लियरिंग हाऊस के अधिकारियों को सौंप देता है। क्लियरिंग हाऊस के अधिकारी उनको मशीनों से फिर जांच लेते हैं और फिर वे यह हिसाब लगाते हैं कि प्रत्येक बैंक को आज सब मिलाकर कितना लेना अथवा देना है।

प्रत्येक बैंक का हिसाब केन्द्रीय बैंक (Central Bank) में होता है और क्लियरिंग हाऊस का हिसाब भी केन्द्रीय बैंक में होता है। जिस बैंक को किसी दिन क्लियरिंग हाऊस के हिसाब में देना निकलता है तो केन्द्रीय बैंक उस बैंक के हिसाब में से उतना रुपया कम करके क्लियरिंग हाऊस के हिसाब में जमा कर देता है। और जिस बैंक को क्लियरिंग हाऊस के हिसाब में लेना होता है उसे क्लियरिंग हाऊस उतने का केन्द्रीय बैंक पर चेक काट देता है। केन्द्रीय बैंक उतना रुपया क्लियरिंग हाऊस के हिसाब में लिख कर उस बैंक के हिसाब में जमा कर देता है। इस प्रकार क्लियरिंग हाऊस का हिसाब प्रति दिन पूरा सन्तुलित (Balance) हो जाता है और प्रत्येक सदस्य बैंक की केन्द्रीय बैंक में जमा (Deposit) घटती बढ़ती रहती है।

अध्याय १०

द्रव्य-बाज़ार (Money Market)

द्रव्य बाज़ार में थोड़े समय के लिए रुपये का लेन देन होता है। द्रव्य बाजार के द्वारा ही किसी देश के आर्थिक व्यवहार (Financial Transactions) का निबटारा (Clearing) होता है। द्रव्य-बाजार (Money Market) शब्द का उपयोग दो अर्थों में हो सकता है। विस्तृत अर्थों में इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के आर्थिक व्यवहार आ जाते हैं किन्तु संकुचित अर्थों में उसके अन्तर्गत केवल अल्पकालीन आर्थिक व्यवहार (Short term financial transactions) ही आते हैं। जब हम द्रव्य बाजार के सम्बन्ध में साधारणत कहते या लिखते हैं तो हमारा तात्पर्य इस संकुचित अर्थ से होता है। दूसरे अर्थों में द्रव्य बाजार अल्पकालीन कोष का भंडार है जहाँ से व्यापार इत्यादि को अल्पकालीन समय के लिए कोष (Funds) मिलता है। द्रव्य-बाजार में थोड़े समय के लिए कोष की खरीद बिक्री होती है।

हमें यह न भूलना चाहिए कि द्रव्य-बाजार (Money Market) पूँजी के बाजार (Capital Market) से भिन्न है। यों इन दोनों का घनिष्ठ संबंध है क्योंकि बहुत से व्यवहारों (Transaction) का आरंभ एक बाज़ार में होता है किन्तु वे दूसरे बाजार में पूरे होते हैं। उदाहरण के लिए सूद या कम्पनियों के लाभ (डिवीडेंड) की अदायगी का प्रादुर्भाव तो पूँजी के बाजार में होता है और समाप्ति द्रव्य-बाजार में होती है। सूद या डिवीडेंड की अदायगी का द्रव्य-बाजार पर वही प्रभाव पड़ता है जो हुँडी या बिल इत्यादि का पड़ता है। द्रव्य बाजार और पूँजी के बाजार में घनिष्ठ संबंध तो होता है किन्तु ये दो पृथक् कार्य भी करते हैं। द्रव्य बाजार का संबंध अल्पकालीन कोष (Short Term Funds) से होता है जिसका उपयोग व्यापारिक कारबार में होता है अथवा सरकार को यदि अल्पकाल के लिए कोष की आवश्यकता होती है तो उसको पूरा करने में होता है। इसके विपरीत पूँजी के बाजार (Capital Market) का संबंध दीर्घ कालीन (Long Term) कोष (Funds) से होता है जिसकी उद्योग धन्धों (Industries) या सरकार को आवश्यकता होती है।

कार्यों की भिन्नता के अतिरिक्त इन बाज़ारों में काम करने वाली संस्थायें भी भिन्न होती हैं। प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न संस्थायें दोनों बाज़ारों में कार्य करती हैं। उदाहरण के लिये पूँजी के बाज़ार (Capital Market) में औद्योगिक बैंक (Industrial Banks) विनियोग ट्रस्ट (Investment Trusts) ब्रोकर इत्यादि होते हैं और द्रव्य-बाज़ार में केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंक, बिल बाज़ार अथवा बिल ब्रोकर होते हैं।

द्रव्य-बाज़ार का रूप :—द्रव्य-बाज़ार और वस्तु बाज़ार (Commodity market) में भेद है। न तो वह इतनी सरल और न वह इतनी अधिक संगठित होती है जितनी कि वस्तु-बाजार। द्रव्य बाजार में कारबार का कोई निश्चित स्थान नहीं होता जैसा वस्तु बाजार में होता है। उदाहरण के लिए कपास के बाजार (Cotton Exchange) में कपास को खरीदने और बेचने वाले एक निश्चित स्थान पर इकट्ठे होकर कारबार करते हैं। किन्तु जहाँ द्रव्य को खरीदने और बेचने वाला मिलता है और सौदा तय हो जाता है वहीं-द्रव्य बाज़ार स्थापित हो जाता है। द्रव्य-बाजार में कारबार का कोई निश्चित स्थान नहीं होता। इन दोनों प्रकार की बाजारों में दूसरा भेद यह है कि द्रव्य-बाजार में जो लोग कारबार करते हैं वे बराबर बदलते रहते हैं केवल कुछ ही संस्थायें ऐसी होती हैं जो अल्पकालीन कोष (Short term funds) का ही विशेष रूप से कारबार करती हैं; उदाहरण के लिए ब्रोकर या एजेंट। नहीं तो द्रव्य-बाजार में काम करने वाली संस्थायें भिन्न-भिन्न प्रकार की साख (Credit) का प्रबंध करती हैं। अस्तु द्रव्य-बाजार एक कम संगठित संस्था है जिसकी कई शाखायें और उपशाखायें होती हैं और प्रत्येक शाखा अथवा उपशाखा एक विशेष प्रकार की साख (Credit) का प्रबंध करती है। वस्तुतः प्रत्येक शाखा अथवा उपशाखा एक स्वतंत्र बाजार होती है। परन्तु द्रव्य-बाजार की प्रत्येक शाखा अथवा उपशाखा एक दूसरे से सम्बन्धित होती है और एक दूसरे को प्रभावित करती है।

द्रव्य बाज़ार की बनावट :—विस्तृत अर्थों में द्रव्य-बाजार के अन्तर्गत बहुत सी स्वतंत्र रूप से संगठित बाजारों का समावेश होता है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पूँजी के बाजार (Capital Market) से सम्बंधित होती हैं। इन विस्तृत अर्थों में द्रव्य-बाजार के अन्तर्गत नीचे लिखी स्वतंत्र बाजारें होती हैं :— (१) द्रव्य बाजार (Money Market) खास, (२)

पूँजी का बाजार (Capital Market), (३) वस्तुओं का बाजार (Commodities Market), (४) विदेशी विनिमय बाजार (Foreign Exchange Market), सोना चाँदी का बाजार (Bullion Market) बीमा बाजार (Insurance Market) और कुछ हद तक जहाज रानी का बाजार (Shipping Market)।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि खास द्रव्य बाजार तथा अन्य बाजारों में भेद है किन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि इनमें आपस में घनिष्ठ सबंध है। अन्य दूसरी बाजारें खास द्रव्य बाजार की सहायक होती हैं। इन दूसरा बाजारों के कारबार तथा व्यवहारों (Transactions) के लिए जो अर्थ प्रबंध की आवश्यकता होती है उसका प्रबंध द्रव्य-बाजार ही करती है। यदि यह अन्य बाजारें न हों तो सम्भवतः द्रव्य-बाजार की आवश्यकता ही न पड़े।

खास द्रव्य-बाजार भी (Money Market Proper) जिसका संबंध अल्पकालीन कोष (Short Term Funds) से होता है और जिसका अध्ययन करना हमारा विशेष उद्देश्य है भिन्न भिन्न विभागों में बाँटी जा सकती है। यह विभाग भिन्न भिन्न देशों में परिस्थितिवश भिन्न भिन्न महत्त्व के होते हैं परन्तु मोटे रूप में हम उन्हें नीचे लिखे अनुसार बाँट सकते हैं। (१) बट्टा बाजार (Discount Market), स्वीकृत बिल बाजार (Acceptance Market), सरकारी प्रतिभूति (Government Security) या सिक्यूरिटी बाजार अत्यन्त अल्पकाल के लिए शेयर बाजार के लिए ऋण देने का प्रबंध करने वाला बाजार इत्यादि।

द्रव्य बाजार की आवश्यकताएँ —द्रव्य बाजार की पहली आवश्यकता यह है कि बाजार में अतिरिक्त कोष (Surplus Funds) अधिक मात्रा में होना चाहिए। इसकी आवश्यकता इसलिए और भी है क्योंकि 'कोष' वापस माँगा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि व्यापारिक बैंकों ने अल्पकालीन ऋण दिया है तो बैंकों के जमा करने वालों द्वारा अपना जमा (Deposit) को निकालने पर उन्हें धारक बैंकों को अपना रुपया वापस माँगना पड़ सकता है। अतएव द्रव्य बाजार को उधार देने वाले अपने रुपये को अधिक समय के लिए फँसा नहीं सकते। कई बैंकों को उस रुपये की बहुधा अधिक समय तक आवश्यकता न पड़ने पर फिर भी बैंक को कभी एकाएक उस रुपये को वापस माँगना पड़

1) Surplus funds and deposits . 2) ...

सकता है। बैंकों को यह तो मालूम नहीं होता कि जमा करने वाले अपना रुपया कब निकालेंगे। अस्तु द्रव्य-बाजार को उधार दिया हुआ रुपया तभी शीघ्रतापूर्वक और आसानी से वापस मिल सकता है जब अल्पकाल के लिए उधार दिए जाने वाले कोष की मात्रा बहुत अधिक हो। उदाहरण के लिए यदि उधार लिया हुआ रुपया प्रथम श्रेणी के बिलों या सरकारी सिक्यूरिटी की जमानत पर दिया गया है और यदि वह ऋण वापस माँगा जाता है वरन् उधार लेने वाला ब्रोकर अन्य किसी से उधार लेकर अपने पहले ऋण को चुका देता है। यह तभी सम्भव है कि द्रव्य बाज़ार में यथेष्ट अतिरिक्त कोष (Surplus Funds) हो। यदि किसी समय द्रव्य-बाज़ार से जो कोष (Funds) वापस लिया जाता है यदि उसकी मात्रा अधिक नहीं होती तो उसकी कमी उस द्रव्य कोष से पूरी हो जाती है जो द्रव्य-बाज़ार में बेकार पड़ा होता है अथवा उस कोष से होती है जो नये स्थानों से द्रव्य-बाज़ार की ओर आता रहता है। ऐसी दशा में सूद की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता। किन्तु यदि द्रव्य-बाज़ार से वापस लिया जाने वाला द्रव्य कोष मात्रा में बहुत अधिक होता है तो सूद की दर ऊँची हो जाती है। जितनी ही द्रव्य कोष द्रव्य-बाज़ार में अधिक होता है उतनी ही सूद की दर के बढ़ने की सम्भावना कम रहती है।

अभी तक हमने द्रव्य कोष (Funds) की पूर्ति का अध्ययन किया किन्तु अब हम माँग (Demand) का अध्ययन करेंगे। द्रव्य-बाज़ार के लिए दूसरी प्रमुख आवश्यकता इस बात की है कि जो व्यापारिक-पत्र (Commercial papers) जिनका द्रव्य-बाज़ार में कारबार हो वे शीघ्र ही नकदी (Cash) में परिणत हो सकने वाले हों। यदि कोई पत्र (Paper) बहुत अच्छा और सुरक्षित हो किन्तु शीघ्र ही नकदी में परिणत न हो सके तो वह द्रव्य-बाजार के काम का नहीं होगा। यह इसलिए आवश्यक है कि ऋण लेने वाले को कभी-कभी अल्प सूचना पर ही उस पत्र (Paper) को नकदी में परिणत करना पड़ सकता है। अतएव अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूति या सिक्यूटरी प्रथम श्रेणी के बैंक बिल, अथवा वे खेती की पैदावारें जिनकी बाज़ार में सदैव तेज माँग रहती है द्रव्य-बाज़ार के लिए उपयुक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त द्रव्य-बाज़ार के लिए वही पत्र (Paper) उपयुक्त होता है जो अल्पकालीन हो क्योंकि बैंक इत्यादि जो इन पत्रों के आधार पर ऋण देते हैं उन्हें कभी भी अपना रुपया वापस माँगना पड़ सकता है। अस्तु वे उन पत्रों

के मूल्य में सूद का घट बढ़ से होने वाले परिवर्तन की जोखिम नहीं उठा सकते। यह जोखिम तभी दूर की जा सकती है जब द्रव्य बाज़ार के पत्र (Paper) इतने अल्प समय में ही पक जावें और सूद की दर के परिवर्तन से उन पत्रों के मूल्य में अधिक घट बढ़ न हो।

द्रव्य बाज़ार का संगठन :—द्रव्य बाज़ार में भिन्न भिन्न संस्थायें होती हैं जो अल्पकालीन कोष की खरीद बिक्री का काम करती हैं। ये संस्थायें अल्पकालीन कोष को उधार भी लेती हैं और उधार देती भी हैं। परन्तु कुछ संस्थायें विशेष रूप से उधार देती हैं और कुछ विशेष रूप से उधार लेती हैं। उधार देने वालों में मुख्य संस्थायें नीचे लिखी हैं :—

(१) केन्द्रीय बैंक (Central Bank) :—केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता होता है। कहीं-कहीं केन्द्रीय बैंक केवल बैंकों से ही कारबार करता है। इंगलैंड और अमेरिका में जनता से भी कारबार करता है।

(२) व्यापारिक बैंक (Commercial Banks) :—द्रव्य-बाज़ार को ऋण देने वाली संस्थाओं में व्यापारिक बैंक सब से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। वे कभी कभी केन्द्रीय बैंक से उधार भी लेते हैं। जो द्रव्य कोष यह बैंक द्रव्य बाज़ार को उधार देते हैं वह डिपाज़िटों (जमा) द्वारा प्राप्त करते हैं और यह डिपाज़िट जब चाहें तो जमा करने वाले निकाल सकते हैं। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि बैंक इस जमा किये हुए धन को द्रव्य-बाज़ार को देते हैं। कहीं कहीं बैंक बिल ब्रोकरों को तथा बट्टा गृहों (Discount Houses) को ऋण देते हैं और सरकारी हुंडियों (Treasury Bills) तथा स्वीकृत बिलों में रुपया लगाते हैं तो कहीं स्टाक बाज़ार इत्यादि को ऋण देते हैं।

(३) विनियोग (Investment) करने वाले :—इस श्रेणी में सेविंग्स बैंक, बीमा कम्पनियाँ, विनियोग ट्रस्ट (Investment Trusts) तथा ट्रस्ट कम्पनियों की गणना होती है। इन संस्थाओं का कोष जब चाहे निकाला नहीं जा सकता परन्तु फिर भी वे अपने कोष का कुछ अंश तरल लेनी (Liquid Assets) में लगाते हैं। यह कोष द्रव्य बाज़ार में आता है।

(४) व्यक्ति, कंपनियाँ या फर्म :—अधिकतर ये संस्थायें द्रव्य-बाज़ार में अपना रुपया नहीं लगातीं क्योंकि द्रव्य बाज़ार में सूद की दर

बहुत कम होती है। परन्तु यदि कभी द्रव्य-बाजार में सूद की दर ऊँची उठ जाती है तब ये संस्थायें अपना रुपया द्रव्य-बाजार में भेजती हैं।

द्रव्य-बाजार में उधार लेने वाले स्वभावतः थोड़े ही होते हैं क्योंकि उन्हें बहुत कठोर शर्तों को पूरा करना पड़ता है। उनका पत्र (Paper) तरल और थोड़े समय में ही पकने वाला होना चाहिए। ये शर्तें बिल ब्रोकर, बट्टा-गृह (Discount Houses) तथा सरकारी हुंडियों तथा स्वीकृत बिलों का कारबार करने वाले पूरी करते हैं। अतएव ये लोग मुख्यतः द्रव्य-बाजार में ऋण लेते हैं।

प्रत्येक द्रव्य-बाजार वस्तुतः केन्द्रीय बैंक (Central Bank) की अधीनता और नियंत्रण में काम करता है। जैसा हम केन्द्रीय बैंक के परिच्छेद में कह चुके हैं कि केन्द्रीय बैंक बहुत तरह से द्रव्य-बाजार का नियन्त्रण करता है।

द्रव्य बाज़ार के कार्य :– द्रव्य-बाजार का किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है और वह राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिए एक अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक संस्था है। द्रव्य-बाज़ार के द्वारा ही देश का अतिरिक्त कोष एक स्थान पर एकत्रित होता है। द्रव्य-बाज़ार बैंकों तथा अन्य आर्थिक संस्थाओं को अपने अतिरिक्त कोष को लगाने की सुविधा प्रदान करता है तथा साथ ही एक ऐसा द्रव्य भंडार उपस्थित कर देता है जहाँ से आवश्यकता पड़ने पर द्रव्य कोष लिया जा सके। द्रव्य-बाज़ार की एक देश को वही उपयोगिता है जो एक स्थान के लिए बैंक की होती है। यही नहीं सरकार के लिए भी द्रव्य-बाज़ार का बहुत बड़ा उपयोग होता है। जब सरकार को अल्प काल के लिए द्रव्य कोष (Funds) की आवश्यकता होती है तो वह द्रव्य-बाज़ार से ले लेती है। यदि द्रव्य-बाज़ार न हो तो सरकार को या तो केन्द्रीय बैंक से ऋण लेना पड़े अथवा कागजी मुद्रा (Paper Currency) निकाल कर काम चलाना पड़े। इन दोनों तरीकों से मुद्रा प्रसार (Inflation) होता है जो देश की आर्थिक व्यवस्था के लिए हानिकर सिद्ध हो सकता है। एक अच्छे द्रव्य-बाज़ार में बहुधा विदेशी सरकारें भी अल्प काल के लिए आवश्यकता पड़ने पर ऋण ले लेती हैं। इसके अतिरिक्त यदि द्रव्य-बाजार का सगठन अच्छा है तो उसका पूँजी के बाजार (Capital Market) पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। द्रव्य-बाजार पूँजी के बाजार

का सहायक सिद्ध होता है। द्रव्य बाजार की स्थिति और सूद की दर का प्रभाव पूँजी के बाजार पर पड़े बिना नहीं रह सकता। अतएव देश की आर्थिक उन्नति के लिए एक सुसंगठित द्रव्य बाजार की नितान्त आवश्यकता होती है।

अध्याय ११

अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष (International Fund)तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank)

द्वितीय संसार व्यापी महायुद्ध (१६३६ से १६४५) के समय संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन के अर्थशास्त्रियों ने यह अनुभव किया कि संसार के प्रत्येक देश की करंसी को स्थायित्व प्रदान करना तथा भिन्न-भिन्न देशों की करंसी की विनिमय दर (Exchange Rates) को अधिक घटने या बढ़ने न देना देशों की आर्थिक उन्नति तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के लिए आवश्यक है। अतएव जुलाई १६४४ में संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्रेटेन वुड्स नामक स्थान पर एक अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य सम्मेलन (International Monetary Conference) हुआ जिसमें एक 'अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष' तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना का निश्चय हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष का मुख्य उद्देश्य एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा पद्धति या द्रव्य पद्धति (Monetary System) की पुनः स्थापना करना है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य सम्बन्धी सहयोग स्थापित हो सके। अर्थशास्त्रियों का यह दृढ़ विचार था कि बिना इसके संसार के भिन्न-भिन्न देशों में उत्पादन को तेजी से बढ़ाया नहीं जा सकता और न बेकारी को ही दूर किया जा सकता है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष (International Monetary Fund) के साथ ही एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की भी स्थापना आवश्यक समझी गई जो भिन्न-भिन्न देशों की औद्योगिक उन्नति में सहायक होगा। अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष सदस्य देशों की अल्पकालीन साख (Short Term Credit) की आवश्यकताओं को पूरा करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक सदस्य देशों के औद्योगिक विकास के लिये लम्बे समय के लिए पूँजी की व्यवस्था करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में उपस्थित सभी विद्वानों का मत था कि संसार व्यापी महायुद्ध से अधिकांश देशों का आर्थिक ढांचा जर्जर हो गया है। अस्तु यदि प्रत्येक देश युद्ध की समाप्ति के उपरान्त अपनी अपनी करंसी का स्वतन्त्र रूप से प्रबन्ध करेगा तो विनिमय दर (Exchange Rates) में बहुत घट-बढ़ होगी और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की गति अवरुद्ध होगी। इसका

प्रभाव उन देशों की आर्थिक स्थिति पर बुरा होगा और उनकी आर्थिक उन्नति नहीं होगी। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि भिन्न भिन्न देशों की करसी तथा उनकी विनिमय दर (Exchange Rates) को स्थायित्व प्रदान किया जावे।

१६३१ के पूर्व स्वर्ण प्रमाप (Gold Standard) के द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न देशों की करसी की विनिमय दर को स्थायित्व (Stability) प्रदान होता था। किन्तु एक के बाद दूसरे देश ने स्वर्ण प्रमाप को छोड़ दिया और अब अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मत है कि स्वर्ण प्रमाप (Gold Standard) बहुत ही कम लचीला और अव्यवहार्य है अस्तु इस बात की आवश्यकता हुई कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य पद्धति (International Monetary System) को जन्म दिया जावे जो अधिक लचीली हो। इसी उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की गई है।

अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष और विनिमय दर का स्थायित्व:—यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष का मुख्य उद्देश्य सदस्य देशों का करसी का विनिमय दरों का स्थायित्व प्रदान करना है। इसके लिए आवश्यक है कि भिन्न भिन्न देशों की करसी के लिए एक सर्व मान्य आधार हो। अस्तु प्रत्येक सदस्य देश को अपनी करसी का मूल्य सोने में निश्चित कर देना होगा। अस्तु सोने के द्वारा संसार के प्रत्येक देश की करसी की विनिमय की सममूल्य दर (Parity of Exchange) निर्धारित हो जावेगी। अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष के द्वारा (International Monetary Fund) भिन्न भिन्न सदस्य देशों की विनिमय दरों को एक सीमा के अन्दर ही रखने का आयोजन किया जावेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि देशों की करसी की विनिमय दर एक निश्चित सीमा से अधिक घट बढ़ न सकेगी।

युद्ध के कारण बहुत से देशों का आर्थिक ढाँचा जर्जर हो गया है इस कारण आरम्भ में बहुत से देशों का व्यापार सन्तुलन (Balance of Trade) उनके विपक्ष में होगा अर्थात् वे जितने मूल्य का माल बाहर भेजेंगे उससे बहुत अधिक मूल्य की वस्तुएँ बाहर से मंगावेंगे ऐसी दशा में उन देशों को विदेशों की करसी का बहुत अधिक आवश्यकता होगी और यदि उनकी

विदेशों की करंसी को निश्चित विनिमय दर (Exchange Rates) पर देने का प्रबन्ध न किया गया तो उनकी करंसी की विनिमय दर कभी स्थिर नहीं रह सकती। यदि युद्ध जनित आर्थिक गड़बड़ी को छोड़ भी दें तो भी साधारण व्यापार में भी कभी-कभी व्यापार का संतुलन (Balance of Trade) किसी समय किसी देश के पक्ष में हो सकता है और किसी देश के विपक्ष में। ऐसी अवस्था में उन देशों को जिनका व्यापार सन्तुलन उनके विपक्ष में है यदि अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष से सहायता न मिली तो उनकी करंसी की विनिमय दर स्थिर नहीं रह सकती।

अस्तु इस अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष उन देशों को अन्य देशों की करंसी ऋण स्वरूप दे देगा और वे अपनी देनी का भुगतान कर सकेंगे। इस कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष (International Monetary Fund) सफलता पूर्वक कर सके इस उद्देश्य से प्रत्येक सदस्य देश अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष में जो उसका भाग निर्धारित है उसका कुछ भाग सोने में और शेष अपनी करंसी (मुद्रा) में चुकावेगा। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष के पास प्रत्येक सदस्य देश की करंसी यथेष्ट मात्रा में रहेगी जिसमें से आवश्यकता पड़ने पर सदस्य देशों को एक दूसरे की करंसी उधार दी जा सकेगी। अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष में भिन्न-भिन्न प्रमुख देशों का भाग इस प्रकार है।

ब्रेटेन वुड्स-द्रव्य-सम्मेलन में जो ४४ राष्ट्र सम्मिलित हुए थे (शत्रु राष्ट्र उस समय सम्मिलित नहीं हो सके थे) उनके लिए सम्मेलन ने कुल ८,८००,०००,००० डालर का कोटा निर्धारित किया था। और १,२००,०००,००० डालर का कोष शत्रु राष्ट्रों के लिए छोड़ दिया गया था कि युद्ध के उपरांत वे भी कोष में सम्मिलित हों तो उनको उसमें हिस्सा दिया जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष में प्रमुख राष्ट्रों का भाग इस प्रकार है:—संयुक्त राज्य अमेरिका २,७५०,०००,००० डालर, यूनाइटेड किंगडम १,३००,०००,००० डालर, सोवियत रूस १,२००,०००,००० डालर, चीन ५५०,०००,००० डालर, फ्रांस ४५०,०००,००० डालर, भारतवर्ष ४००,०००,००० डालर, कनाडा ३००,०००,००० डालर, निदरलैंड २७५,०००,००० डालर बैलजियम २२५,०००,००० डालर, आस्ट्रेलिया २००,०००,००० डालर, जेकोस्लावाकिया तथा पोलैंड १२५,०००,००० डालर दक्षिण अफरीका

यूनियन १००,०००,००० डालर, मैक्सिको ६०,०००,००० डालर, चाइल और कोलम्बिया ५०,०००,००० डालर इत्यादि।

अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने भाग का २५ प्रतिशत अथवा सदस्य राष्ट्र के पास कुल जितना सोना होगा उसका १० प्रतिशत सोना देना होगा (जो भी उस समय कम हो) और शेष रकम प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपनी करंसी (मुद्रा) में चुकायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष के पास सभी सदस्य राष्ट्रों की करंसी (मुद्रा) यथेष्ट राशि में इकट्ठी हो जावेगी और जब किसी सदस्य राष्ट्र का व्यापार सतुलन (Balance of Trade) उसके विपक्ष में होगा और उसके पास अपने विदेशी व्यापार ऋण को चुकाने के कोई साधन नहीं रहेंगे तो वह अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष से उसी देश की करंसी को खरीद लेगा और अपने व्यापार ऋण को चुका देगा। इस प्रकार उस देश की करंसी की विनिमय दर (Exchange Rates) में विशेष घट बढ़ न होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र आरम्भ से ही अपने विदेशी व्यापार के ऋण को चुकाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष पर निर्भर रहेगा। साधारणतः प्रत्येक देश अपने व्यापारिक बैंकों के द्वारा अपने लेन-देन का भुगतान करते रहेंगे और जब कोई देश विदेशी व्यापार का सतुलन (Balance of Foreign Trade) अपने विपक्ष में होने के कारण किसी विदेशी करंसी को साधारणतः पाने में असमर्थता अनुभव करे तभी वह अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष से करंसी को खरीद लेगा।

साधारणतः अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष (International Monetary Fund) के पास प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की करंसी इतनी मात्रा में होगी कि उसकी कमी नहीं पड़ेगी। परन्तु विशेष परिस्थितियों में यह सम्भव है कि किसी देश विशेष का व्यापार सतुलन (Balance of Trade) इतना अधिक उसके पक्ष में हो और अन्य सदस्य राष्ट्रों को उस देश विशेष की करंसी को अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष से इतना अधिक राशि में खरीदना पड़ जावे कि उस देश विशेष की जितनी भी करंसी अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष के पास है वह सभी समाप्त हो जावे ऐसी स्थिति में कठिनाई उपस्थित हो सकती है। उदाहरण के लिये पिछले महायुद्ध में सयुक्त राज्य अमेरिका का व्यापार सतुलन उसके इतना अधिक पक्ष में था और संसार के अन्य राष्ट्र उसके इतने अधिक देनदार हो गए थे कि प्रत्येक देश को अमेरिका की करंसी अर्थात् डालर की आवश्यकता

थी और डालर का टोटा पड़ गया था। यदि कभी ऐसी स्थिति खड़ी हो जावे कि किसी देश विशेष की करंसी का संसार में टोटा पड़ जावे और अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष के पास भी वह करंसी कम होने लगे तो अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष उस करंसी का टोटा है ऐसी घोषणा कर देगा और जितनी भी उस देश की करंसी 'कोष' के पास होगी वह प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को उनकी आवश्यकता को ध्यान में रख कर बाँट देगा। अन्य सदस्य राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष से परामर्श करके थोड़े समय के लिये अस्थायी रूप से उस देश से माल के आयात (Import) पर रोक लगा सकेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि उस देश से अन्य देशों को निर्यात (Export) कम हो जावेगा और उस की करंसी की माँग कम हो जावेगी। किन्तु व्यापार पर यह रोक केवल उतने समय के लिये लगाई जा सकेगी जितने से करंसी की यह कमी दूर की जा सके। जब अन्तर्राष्ट्रीय-द्रव्य-कोष इस बात की घोषणा कर देगा कि उक्त देश की करंसी की अब कमी नहीं है तो फिर इस देश के व्यापार पर कोई बन्धन नहीं लगाया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष के पास किसी देश की करंसी की कमी को दूर करने के और भी उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि 'कोष' उस देश में जिसकी करंसी की कमी है अपना सोना बेंचे या उस देश में ऋण ले। ऐसा करने से अन्तर्राष्ट्रीय-द्रव्य-कोष के पास उस देश की करंसी अधिक मात्रा में आ जावेगी और फिर वह उन सदस्य राष्ट्रों को दी जा सकेगी जिनको उस करंसी की आवश्यकता हो। ऊपर लिखे उपायों के अतिरिक्त दो उपाय और भी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank) उन देशों को न्यून करंसी (Scarce Currency) में ऋण दे सकता है जिन्हें 'न्यून करंसी' की आवश्यकता हो या फिर वह देश जिसकी करंसी न्यून है स्वयं ही अन्य देशों को ऋण दे दे नहीं तो उसके निर्यात (Export) पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो जावेगा। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष प्रत्येक देश की विनिमय दर (Exhange Rates) को स्थायी बनाने का प्रयत्न करेगा।

कोई भी सदस्य राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष से एक सीमा तक अपनी करंसी देकर अन्य किसी भी राष्ट्र की करंसी खरीद सकता है और उस सीमा के उपरान्त वह सोना देकर कभी भी किसी देश की करंसी खरीद सकता है।

जहाँ तक अपनी करसी देकर किसी अन्य देश की करसी खरीदने का प्रश्न है प्रत्येक देश अपने भाग (कोटा) का केवल २५ प्रतिशत तक एक वर्ष के अन्दर खरीद सकता है। जब कोई देश अपनी करसी देकर दूसरे देश की करसी 'कोष' से खरीदेगा तो 'कोष' के पास खरीदने वाले देश की करसी अधिक बढ़ जावेगा। परन्तु एक वर्ष में उस देश का 'कोष' में जो भाग (कोटा) है उसकी २५ प्रतिशत से अधिक उस देश (खरीदने वाले) की करसी कोष के पास बारह महीने में इकट्ठी नहीं होनी चाहिए और कुल मिला कर २०० प्रतिशत अर्थात् दुगुने से अधिक उस देश (खरीदने वाले) की करसी 'कोष' में कभी भी इकट्ठी न होनी चाहिए।

जब कोई देश अन्य देश की करसी खरीदेगा तो समयमूल्य दर (Parity) के अनुसार मूल्य देने के अतिरिक्त उस देश को ¾ प्रतिशत खर्चे का देना होगा। परन्तु यदि किसी देश का करसी उस देश के भाग (कोटा) से अधिक 'कोष' के पास लगातार तीन महीने से अधिक इकट्ठी रही तो सदस्य राष्ट्र को तीन महीने व्यतीत हो जाने के उपरान्त जितनी करसी उसके भाग से अधिक 'कोष' के पास होगी उस पर सदस्य राष्ट्र को बढ़ती हुई दर से सूद देना होगा।

पहले तीन महीने तक कोई सूद नहीं लिया जावेगा। तीन महीने के उपरान्त शेष ६ महीने के लिए ½ प्रतिशत अतिरिक्त (¾ प्रतिशत के ऊपर) सूद लिया जावेगा और उसके उपरान्त प्रतिवर्ष के हिसाब से ½ प्रतिशत अधिक सूद देना होगा। इस प्रकार जितने अधिक समय के लिए करसी ली जावेगी उतनी ही प्रतिवर्ष के हिसाब से सूद की दर ½ प्रतिशत बढ़ती चली जावेगी। यही नहीं यदि किसी देश की करसी उस देश के भाग (कोटा) से २५ प्रतिशत से अधिक इकट्ठी हो जावे किन्तु ५० प्रतिशत से कम रहे तो ½ प्रतिशत अधिक सूद लिया जावेगा और उसके उपरान्त प्रति २५ प्रतिशत के लिए ½ प्रतिशत अधिक सूद देना होगा। इस प्रकार करसी की राशि और जितने अधिक समय के लिए करसी ली जावेगी उसी हिसाब से सूद की दर बढ़ती जावेगी। अधिक सूद लेने की व्यवस्था इस कारण की गई है जिससे विदेशी की करसी खरीदने वाले देश जल्दी से जल्दी उस करसी को वापस करने का प्रबन्ध करें। अन्य देशों की करसी लेने वाले देश को केवल अधिकाधिक सूद ही नहीं देना पड़ता वरन् उसका अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष में जितने वोट (मत)

देने का अधिकार है वह भी क्रमशः कम होता जाता है और जिस देश की करंसी उसने उधार ली है उसकी वोट बढ़ती जाती है।

सममूल्य परिवर्तन (Changes in Par Values):—प्रत्येक देश को अपनी करंसी की सममूल्य दर (Par of Exchange) में तभी परिवर्तन करने का अधिकार होगा जब अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष उसकी अनुमति दे दे। जब तक कोई सदस्य राष्ट्र अपनी करंसी के सममूल्य (Par of Value) में केवल १० प्रतिशत वृद्धि या कमी करता है तब तक कोष उसमें कोई आपत्ति नहीं करेगा, अर्थात् १० प्रतिशत तक प्रत्येक देश में अपनी करंसी के सममूल्य में परिवर्तन कर सकेगा। किन्तु इसके उपरान्त परिवर्तन तभी हो सकेगा जब अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष उसकी अनुमति दे दे।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank):—अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों की आर्थिक उन्नति और उनके पुनर्निर्माण में सहायता पहुँचाना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए उन्हें ऋण देगा और अन्य देशों द्वारा दिए गए ऋण की गारंटी देगा। इस प्रकार सदस्य राष्ट्रों के औद्योगिक विकास के लिए पूँजी (Capital) की व्यवस्था करेगा, यही उसका मुख्य कार्य होगा।

साधारणतः जब कोई सदस्य राष्ट्र अपने प्राकृतिक साधनों का औद्योगिक उन्नति के लिए उपयोग करना चाहेगा और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए पूँजी चाहेगा तो वह अन्तर्राष्ट्रीय बैंक को अपनी योजनायें बतला कर उससे गारंटी की व्यवस्था करा लेगा। यह सब हो जाने के उपरान्त वह सदस्य राष्ट्र संसार के प्रमुख द्रव्य-बाजारों (Money Markets) में उदाहरण के लिए लंदन या न्यूयार्क के द्रव्य-बाजार में ऋण लेने की व्यवस्था करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उस ऋण की गारंटी कर देगा। जब किसी सदस्य राष्ट्र को व्यक्तिगत रूप से द्रव्य-बाजारों में ऋण नहीं मिल सकेगा तब बैंक उस राष्ट्र को सीधा अपने पास से ऋण देगा। जब तक किसी देश को अन्य देशों से साधारणतः ऋण मिल सकेगा तब तक बैंक उसे स्वयं ऋण नहीं देगा। इस व्यवस्था का परिणाम यह होगा कि पिछड़े और निर्धन राष्ट्र जिनको अपने उद्योग-धंधों के विकास के लिए पूँजी की आवश्यकता होगी पूँजी पा सकेंगे और जिन राष्ट्रों के पास यथेष्ट अतिरिक्त पूँजी (Surplus

Capital) इसकी दो जावेगी वे बैंक की गारटी होने के कारण उन राष्ट्रों को ऋण स्वरूप दे सकेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उस ऋण की अदायगी की गारटी देगा और अपनी इस सेवा के पारिश्रमिक स्वरूप वह कर्ज लेने वाले राष्ट्र से गारटी किये हुये ऋण पर कम से कम १ प्रतिशत और अधिक से अधिक १½ प्रतिशत फीस लेगा। कर्ज लेने वाले राष्ट्र को प्रचलित सूद की दर अपने ऋण दाताओं को देनी होगी। जब कर्ज लेने वाले राष्ट्र को साधारण तौर पर अपनी आर्थिक योजनाओं को पूरा करने के लिए ऋण न मिल सके तो अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उन्हें अपने पास से ऋण दे देगा।

किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ऋण की गारटी तभी करेगा या स्वयं तभी ऋण देगा जब वह उस योजना को देख लेगा और ऋण लेने वाले देश की अदायगी की क्षमता की जाँच कर लेगा। साथ ही वह ऋण लेने वाले देश के केन्द्रीय बैंक (Central Bank) से उस ऋण की अदायगी की गारटी ले लेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की पूँजी:—अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) १०,०००,०००,००० है। उसमें से ब्रेटनवुड्स द्रव्य सम्मेलन ने ९, १००,०००,०००, डालर मित्र राष्ट्रों (उन ४४ राष्ट्रों में जो सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे) में बाँट दी और शेष शत्रु राष्ट्रों के लिए छोड़ दी गई। प्रत्येक राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की पूँजी में उतना ही भाग मिला जितना उसको अन्तर्राष्ट्रीय कोष में मिला था। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका को ४२५, ०००,००० डालर, चीन को ५०, ०००,००० डालर, और कनाडा को २५, ०००, ००० डालर की पूँजी अधिक दी गई और दक्षिणी अमेरिका के देशों, यूगोस्लाविया, ग्रीस और मिस्र को कुल मिला कर २००, ०००, ००० डालर की पूँजी कम दी गई। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक का वही राष्ट्र सदस्य हो सकता है जो अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष का भी सदस्य हो।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की पूँजी का जितना भाग प्रत्येक देश को दिया गया है उसकी केवल २० प्रतिशत पूँजी ही सदस्यों ने चुकाई है। शेष ८० प्रतिशत पूँजी सुरक्षित गारटी के तौर पर है जिसे बैंक जब चाहे माँग सकता है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय बैंक का मुख्य कार्य सदस्य देशों द्वारा लिए हुए ऋण की गारटी देना है। अस्तु अन्तर्राष्ट्रीय बैंक को बहुत अधिक पूँजी

इकट्ठी करने की आवश्यकता नहीं थी। यदि कोई देश अपना ऋण न चुका सके तभी अन्तर्राष्ट्रीय बैंक को उस ऋण का मूलधन तथा उसका सूद देना होगा क्योंकि उसने उस ऋण की गारंटी दी है। ऐसी स्थिति बहुत कम उपस्थित होगी। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के लिए यह जरूरी नहीं था कि वह प्रत्येक देश से उसके हिस्से की पूरी रकम वसूल कर लेता। अस्तु बैंक ने प्रत्येक देश से उसके हिस्से की २० प्रतिशत रकम ही वसूल की है। शेष ८० प्रतिशत जब बैंक चाहे तो वसूल कर सकता है।

प्रत्येक देश ने अपने हिस्से की २० प्रतिशत रकम को इस प्रकार चुकाया है:—२ प्रतिशत स्वर्ण या अमेरिकन डालर के रूप में और शेष उस देश की अपनी मुद्रा में। यदि कभी बैंक को शेष ८० प्रतिशत पूँजी को माँगना पड़ा तो सदस्य देश की सुविधानुसार स्वर्ण में, अथवा अमेरिकन डालर में अथवा उस मुद्रा में जिसकी बैंक को भुगतान करने के लिए उस समय आवश्यकता हो चुकाया जावेगा।

यह तो हम ऊपर कह आये हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने प्रत्येक देश से उसके भाग की केवल २० प्रतिशत रकम ही वसूल की है। यही अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की कार्यशील पूँजी है। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इससे ही बैंक की सदस्य देशों को ऋण देने की शक्ति सीमित हो जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ऋण की गारंटी देने अथवा सीधा ऋण देने के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर किसी सदस्य देश के बाजार में अपनी सिक्यूरिटी (ऋण पत्र) बेंचकर धन प्राप्त कर सकता है और उस धन को ऋण स्वरूप अन्य देश को दे सकता है। उदाहरण के लिए मान लें कि पाकिस्तान को अपनी औद्योगिक उन्नति के लिए ऋण चाहिए और उसे अमेरिका से अधिकतर मशीनें मँगाना है तो स्वभावतः पाकिस्तान अमेरिका से ऋण लेना चाहेगा। यदि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक पाकिस्तान की योजनाओं को ठीक समझे तो पाकिस्तान को सीधे अपने पास से ऋण दे सकता है, अथवा पाकिस्तान द्वारा अमेरिका में लिए जाने वाले ऋण की अदायगी की गारंटी दे सकता है। यदि इस प्रकार ऋण न मिल सके तो अन्तर्राष्ट्रीय बैंक अमेरिका की सहमति से अपने ऋण-पत्र अथवा सिक्यूरिटी अमेरिका के बाज़ार में बेचेगा और इस प्रकार उसे जो धन प्राप्त होगा वह उसे पाकिस्तान को ऋण के रूप में दे देगा। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की ऋण देने की शक्ति केवल उसकी कार्यशील पूँजी से सीमित नहीं है।

किसी भी दशा में अन्तर्राष्ट्रीय बैंक गारंटी के रूप में अथवा ऋण के रूप में बैंक की विक्रित पूँजी (Subscribed Capital) सुरक्षित कोष तथा अन्य बचत से अधिक ऋण नहीं देगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक सदस्य देशों से उस देश के केन्द्रीय बैंक, अथवा सरकारी खजाने (Treasury) के द्वारा ही कारबार करेगा और प्रत्येक सदस्य राष्ट्र भी अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से अपने केन्द्रीय बैंक द्वारा ही कारबार करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक नीचे लिखी दशाओं में ही ऋण देगा:—

(१) यदि कोई सदस्य राष्ट्र की सरकार स्वयं ऋण लेना चाहे तब तो अन्तर्राष्ट्रीय बैंक बिना केन्द्रीय बैंक की गारंटी के ही ऋण दे देगा अन्यथा जिस देश में कोई योजना कार्यान्वित की जा रही है उसको ऋण देने के पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उस देश के केन्द्रीय बैंक से ऋण की अदायगी की गारंटी लेगा।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उसी दशा में आर्थिक सहायता देगा जब उसको विश्वास हो जावे कि वर्तमान स्थिति में उचित सूद पर उस कार्य के लिये किसी देश में ऋण नहीं मिल सकता।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उस योजना की जाँच के लिये विशेषज्ञों की एक समिति बिठावेगा और जब उस समिति की सम्मति में वह योजना ठीक होगी तभी वह आर्थिक सहायता देगा। बैंक किसी देश के पुनर्निर्माण अथवा आर्थिक उन्नति के लिये ही ऋण देगा।

यदि बैंक स्वयं किसी सदस्य राष्ट्र को ऋण देगा तब तो वह उचित सूद लेगा ही। परन्तु यदि बैंक किसी राष्ट्र को दिये गये ऋण की अदायगी की गारंटी देगा तो भी वह इस जोखिम के बदले में कुछ गारंटी कमीशन लेगा।

बैंक इस बात की देख भाल रखेगा कि किसी राष्ट्र ने जिस योजना को कार्यान्वित करने के लिये ऋण लिया है वह रकम उसी योजना पर व्यय होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक का प्रबन्ध:— अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य-कोष (International Monetary Fund) के १२

संचालक (Directors) होंगे। उनमें से पाँच डायरैक्टर तो क्रमशः संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन के प्रतिनिधि होंगे। इन पाँचों राष्ट्रों को एक-एक स्थायी सदस्य रखने का अधिकार होगा। दो डायरैक्टर अमेरिकन प्रजातंत्रों की ओर से चुने जावेंगे और शेष पाँच डायरैक्टर अन्य सब देशों की ओर से चुने जावेंगे। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि फंड पर बड़े राष्ट्रों का ही प्रभाव रहेगा। भारतवर्ष ने इस योजना का इसी प्रश्न को लेकर विरोध किया था कि भारतवर्ष का व्यापारिक महत्त्व फ्रांस तथा चीन से अधिक है। इन देशों का कोटा राजनैतिक कारणों से अधिक रक्खा गया और भारत का कम रक्खा गया। फिर भारतवर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य के प्रबन्ध सचालक बोर्ड पर कोई स्थायी जगह भी नहीं दी गई। परन्तु बाद को भारतवर्ष को संचालक बोर्ड में एक जगह मिल गई। परन्तु यह कहना कठिन है कि जब सभी देश उसके सदस्य हो जावेंगे तो भारतवर्ष की चुनाव में क्या स्थिति रहेगी। उसे शेष पाँच जगहों में से एक जगह के लिये चुनाव लड़ना पड़ेगा। होना तो यह चाहिये कि भारत के महत्त्व को देखते हुये उसे एक स्थायी जगह दी जावे। यदि कोई सदस्य चाहे तो नोटिस देकर फंड से पृथक् हो सकता है।

जो स्वर्ण कोष में इकट्ठा होगा वह सयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियत रूस, फ्रांस या चीन में रहेगा। कोष का प्रधान कार्यालय संयुक्त-राज्य अमेरिका में रहेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के भी १२ डायरैक्टर होंगे। उनमें से पाँच डायरैक्टर क्रमशः संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और चीन नियुक्त करेंगे और ७ डायरैक्टर शेष सदस्यों द्वारा चुने जावेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के बोर्ड आफ डायरैक्टर पर भी भारत को कोई स्थाई स्थान नहीं मिला।

रूस अन्तर्राष्ट्रीय बैंक का सदस्य नहीं बना इस कारण भारत पाँच बड़े राष्ट्रों की श्रेणी में आ गया और उसको बैंक के बोर्ड पर एक स्थायी स्थान मिल गया। अब सयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और भारत को स्थायी स्थान प्राप्त है और शेष ७ स्थानों को शेष सदस्यों में से चुनकर भरा जाता है।

डायरैक्टर एक प्रेसीडेन्ट का चुनाव करते हैं। प्रेसीडेन्ट बोर्ड का अध्यक्ष होता है। बोर्ड ही वास्तव में बैंक का संचालन करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा ३० अक्टूबर १९४९ तक दिए गए ऋण की तालिका
(हज़ार अमेरिकन डालरों में)

	फ्रांस	हालैंड	डैनमार्क	लक्सम बर्ग	बैलजियम	फिनलैंड	चाइल	मैक्सिको	ब्राजील	कोलम्बिया	भारत	यूगोस्लाविया
१ कृषि	२०,३००	३०,८००	११,५००				२,८००			५,०००	१०,०००	
२ उद्योग धंधे	१८५,५००	११३,१००	२३,७००	७,५००	१०,३००	१२,६५०						२,७००
३ यातायात	३३,३००	७८,१००	४,८००	४,५००					२२,१४०		३४,०००	
४ विद्युत् शक्ति	९००				५,७००	२,०००	११,८९३	३४,१००	५२,८००			
५ अन्य						१५०	१,३०७					
जोड़	२५०,०००	२२२,०००	४०,०००	१२,०००	१६,०००	१४,८००	१६,०००	३४,१००	७५,०००	५,०००	४४,०००	२,७००

बैंक का कार्य:—जैसे ही बैंक स्थापित हुआ डालर ऋण के लिये कई देशों के प्राथना पत्र आये किन्तु मई १६४७ में जाकर कहीं बैंक ने पहला ऋण दिया। शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो गई कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक को ऋण देने के लिये संयुक्तराज्य अमेरिका के द्रव्य बाजार में ऋण लेना होगा। ब्रिटेन वुड्स सम्मेलन मे लोगों का यह विचार था कि प्रत्येक देश जो डालर ऋण लेना चाहेगा वह अपने बांड संयुक्तराज्य अमेरिका में बेचेगा और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक उनकी अदायगी की गारंटी दे देगा। विद्वानों का विचार था कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की गारंटी अमेरिकन पूँजीपतियों को उन देशों के बौंडों में अपना धन लगाने के लिये प्रोत्साहित करेगी। परन्तु बैंक ने द्रव्य-बाजार की अव्यवस्थित दशा के कारण अन्य देशों के बौंडों की गारंटी न देकर स्वयं अपने बौंड संयुक्तराज्य अमेरिका के द्रव्य-बाजार में बेंचकर धन प्राप्त करना आरम्भ किया।

अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने जो ऋण भिन्न-भिन्न देशों को दिये हैं उनकी तालिका पृष्ठ १४० पर दी गई है :—

इस दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने अभी तक योरोपीय देशों को ही अधिकतर ऋण दिया है।

भारतवर्ष को पहला ऋण ३४,०००,००० डालर का रेलवे ऐंजिन, बायलर्स, तथा रेलवे ऐंजिन के हिस्सों को खरीदने के लिये दिया गया। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने की है कि भारत सरकार ने रेलों का सुधार करने के लिये जितना व्यय किया उसका यह ऋण एक अंश मात्र था। भारत सरकार ने रेलों के सुधार में होने वाले भारी व्यय का अधिकाश भाग स्वयं अपने साधनों से प्राप्त किया। सितम्बर १६४६ में भारत सरकार को बैंक ने एक दूसरा ऋण १०,०००,००० डालर का कृषि के लिये ट्रैक्टर तथा अन्य यंत्र खरीदने के लिये दिया। बात यह है कि भारत सरकार खाद्य पदार्थों को अधिक उत्पन्न करने के लिये उस भूमि पर जहाँ आज जंगली वनस्पति, घास इत्यादि उत्पन्न हो रही है साफ करके खेती के योग्य बनाने का प्रयत्न कर रही है। भूमि को खेती के योग्य बनाने के लिये ट्रैक्टरों इत्यादि की आवश्यकता थी।

अभी हाल में अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने दामोदर घाटी योजना के लिए भी भारत को एक ऋण दिया है।

दूसरा भाग

भारतीय बैंकिंग

अध्याय १२

गाँवों के लिये साख की आवश्यकता तथा महाजन और साहूकार

ग्रामीण ऋणः—यों तो भारत के ग्रामीण ऋण के सबंध में पहले भी कुछ अटकलें लगाई गई थीं किन्तु सब से पहले १६२६ में प्रामाणिक रूप से प्रान्तीय बैंकिंग कमेटियों ने अपने-अपने प्रान्तों में ग्रामीण ऋण का जो अनुमान लगाया उसके अनुसार सब प्रान्तों का ऋण ६०० करोड़ रुपया था। कभी किसी सरकारी जाँच कमेटी ने देशी राज्यों में ग्रामीण ऋण का पता नहीं लगाया और न कभी देशी राज्यों ने ही यह जानने का प्रयत्न किया कि उनके किसानों पर कितना ऋण है। देशी राज्यों के किसानों की आर्थिक स्थिति प्रान्तों से भी गिरी हुई है। अस्तु देशी राज्यों का ग्रामीण ऋण सब प्रान्तों के ग्रामीण ऋण का एक तिहाई माना जा सकता है। अतएव १६२६-३० में समस्त भारत (हिन्दुस्तान और पाकिस्तान) का ग्रामीण ऋण १२०० करोड़ रुपये के लगभग था। किन्तु १६२६ के उपरान्त घोर आर्थिक मंदी के कारण खेती की पैदावार का मूल्य बहुत घट गया अस्तु ऋण का भार लगभग ड्योढ़ा हो गया। १६३० के उपरान्त घोर आर्थिक मंदी के फल स्वरूप ग्रामीण ऋण की वृद्धि का अनुमान लगाते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री थामस महोदय का कहना था कि केवल प्रान्तों का ग्रामीण ऋण १२०० करोड़ रुपये

के लगभग था। यदि इसमें देशी राज्यों का भी ग्रामीण ऋण जोड़ दिया जावे तो १९३९ के पूर्व समस्त भारत का ग्रामीण ऋण १८०० करोड़ रुपये के लगभग रहा होगा।

१९३९ के उपरान्त दूसरे महायुद्ध के फल स्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बढ़ता गया अतएव ग्रामीण ऋण कुछ कम अवश्य हुआ है। किन्तु अभी तक इस संबंध में प्रामाणिक आंकड़े प्राप्त नहीं हैं। किन्तु यह कहना भी ग़लत है कि युद्ध काल में खेती की पैदावार की बढ़ी हुई कीमत का लाभ उठा कर किसान ने अपना सारा ऋण चुका दिया है। युद्ध काल में ग्रामीण ऋण कितना घटा इसकी जाँच के लिए केवल मदरास सरकार ने डाक्टर नायडू को नियुक्त किया था। डाक्टर नायडू ने १९० गाँवों में ग्रामीण ऋण की जाँच की और १९४६ में अपनी रिपोर्ट मदरास सरकार के सामने उपस्थित कर दी। रिपोर्ट के अनुसार मदरास प्रान्त का १९३९ में कुल ग्रामीण ऋण २७२ करोड़ रुपये था जो १९४५ में घट कर २१८ करोड़ रुपये रह गया। दूसरे शब्दों में २० प्रतिशत ऋण में कमी हो गई। परन्तु उस रिपोर्ट के देखने से यह ज्ञात होता है कि बड़े किसानों के ऋण में अधिक कमी हुई। १९३९ में कुल ग्रामीण ऋण ५१.४% बड़े किसानों पर था जो १९४५ में घट कर केवल १०.८ प्रतिशत रह गया। मध्यम श्रेणी के किसानों पर १९३९ में १३.५% ऋण था जो घट कर ४१ प्रतिशत रह गया अर्थात् केवल २.५ प्रतिशत की ही कमी हुई और बहुत छोटे किसानों पर कुल ऋण का १९३९ में ३५.३% ऋण था जो १९४५ में बढ़ कर ३८.७% हो गया अर्थात् जहाँ तक बहुत छोटे किसानों का प्रश्न था उनका ऋण पहले से बढ़ गया।

यदि हम गाँवों के रहने वालों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करें तो हमें लगभग यही स्थिति सभी प्रान्तों में मिलेगी। भारतीय गाँवों में मज़दूर वर्ग है जिसके पास भूमि नहीं होती वह अपने पड़ोसी किसानों के खेतों पर काम करके मज़दूरी प्राप्त करता है। जब खेतों पर काम नहीं मिलता तो वह घास छील कर, लकड़ियाँ बेंच कर, भट्टों में काम करके तथा समीपवर्ती उद्योग-धंधों या शहरों में काम करके अपनी गुजर करता है। इन खेत मज़दूरों के पास तो खेती की पैदावार बेंचने को थी ही नहीं इस कारण खेती की पैदावार का मूल्य ऊँचा उठने से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। जो छोटे किसान हैं जिनके पास पाँच दस बीघा भूमि है

उनके पास भी खेती की पैदावार इतनी अधिक नहीं थी कि वे अपनी आवश्यकताओं से बचाकर उसे बेचते और खेती की पैदावार के ऊँचे मूल्य से लाभ उठाते। हाँ बड़े किसानों को खेती की पैदावार के बढ़े हुए मूल्य से बहुत लाभ हुआ किन्तु उन्होंने भी इस समृद्धि का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया। उन्होंने सोना चाँदी खरीदने में और धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों पर अनाप शनाप व्यय किया। फिर भी यह मानना होगा कि उनके ऋण में बहुत कमी हुई है।

ग्रामीण ऋण के कारण.—भारतीय ग्रामीण के ऋणी होने के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं:—

(१) **पैतृक ऋण**—भारतीय ग्रामीण ऋणी जन्म लेता है। अपने जीवन काल में ऋण को बढ़ाकर मरते समय उत्तराधिकार में ऋण का भारी बोझ अपने पुत्र के सिर पर छोड़ जाता है। बात यह है कि पैतृक ऋण इतना अधिक होता है कि छोटा किसान उसे कभी भी चुका नहीं सकता।

(२) **साहूकारी और महाजनी की दूषित पद्धति:**—गाँवों में २५ से ३७ प्रतिशत तो साधारणतः सूद लिया जाता है और कहीं-कहीं तो ७५ से १०० प्रतिशत तक सूद लिया जाता है। भारतीय अदालतों में ऐसे भी मुकदमें आये जिनमें एक हजार प्रतिशत तक सूद लिया गया था। किसान इतना अधिक सूद कभी भी नहीं चुका सकता। फल यह होता है कि एक बार ऋण लेने के बाद उसका सूद बढ़ता ही जाता है और ऋण इतना अधिक हो जाता है कि उसका सामर्थ्य के बाहर हो जाता है। ऐसी बहुत सी घटनाएँ गाँवों में सुनी जा सकती हैं। यदि किसी किसान ने २५० रु० उधार लिया और वह पाँच सौ दे चुका है किन्तु एक हजार देना शेष है। कभी-कभी महाजन बेई-मानी करके अपने बही खाते में ली हुई रकम को बढ़ा कर लिख लेता है और उस पर किसान का अँगूठा लगवा लेता है।

(३) **किसान की निर्धनता**—भारतीय किसान अत्यन्त निर्धन है उसके पास लाभदायक खेती के लिए यथेष्ट भूमि नहीं होती। गृह उद्योग धंधों के नष्ट हो जाने से तथा जनसंख्या के लगातार बढ़ते रहने से देश में भूमि का अकाल हो गया है। अतएव अधिकांश किसानों के पास बहुत कम भूमि है जिस पर लाभदायक खेती नहीं हो सकती और जो कुछ थोड़ी भूमि किसानों के पास है वह छोटे-छोटे टुकड़ों में बटी हुई है। इस कारण उस पर गहरी खेती (Intensive cultivation) नहीं हो सकती। अस्तु साधारणतः किसान

को खेती से उतनी आय नहीं होती कि वह अपने परिवार का उचित रूप से पालन-पोषण कर सके, फिर आये दिन फसल नष्ट होती रहती हैं। कभी सूखा पड़ जाने से तो कभी अत्यधिक वर्षा हो जाने से, कभी बाढ़ से कभी टीडी या फसलों के कीड़ों से और कभी ओले या तुषार से उसकी फसल मारी जाती है और उसे ऋण लेने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता। ढोरों की छूत की बीमारियों से अत्यधिक मृत्यु होना भी उसके ऋणी होने का एक कारण है। जब किसान का पशु मर जाता है तो उसे ऋण लेकर दूसरा बैल खरीदना पड़ता है।

सामाजिक कारण:—ग्रामीण विवाह, जनेऊ,मृतक संस्कार तथा अन्य धार्मिक और सामाजिक कृत्यों पर अंधाधुंध रुपया व्यय करता है और मुकदमे बाजी में भी उसका बहुत व्यय होता है। कभी-कभी मुकदमेबाजी में वह नष्ट हो जाता है। सामाजिक कृत्य तथा मुकदमेबाजी उसके ऋणी होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

लगान और मालगुजारी :—लगान और मालगुजारी जिस कठोरता से वसूल की जाती है उसके कारण भी किसान को कभी-कभी ऋण लेने पर विवश होना पड़ता है। विशेष कर जिस वर्ष फसल नष्ट हो जाती है अथवा खेती की पैदावार का मूल्य बहुत गिर जाता है तो लगान को चुकाने के लिए भी किसान को ऋण लेना पड़ता है।

ऋण का दुष्परिणाम :—ऋण का दुष्परिणाम यह होता है कि जहाँ किसान का भूमि पर स्वामित्व है वहाँ भूमि उसके हाथ से निकल कर महाजन के हाथ में चली जाती है और किसान भूमि रहित हो जाता है उससे खेती की अवनति होती है और किसान के रहन-सहन का दर्जा गिरता है। फल स्वरूप खेती की पैदावार प्रति एकड़ गिर जाती है और इससे देश निर्धन होता है। यही नहीं कि ऋणी होने से खेती पर बुरा प्रभाव पड़ता है किन्तु किसान की अपनी फसल कम मूल्य पर अपने महाजन या साहूकार को बेचने पर विवश होना पड़ता है। उदाहरण के लिए खंडसारी धंधे को ले लीजिये। किसान को कुछ रुपया पेशगी दे दिया जाता है, उस पर सूद नहीं लिया जाता किन्तु उसकी फसल को बाज़ार भाव से बहुत कम पर खरीद लिया जाता है। यही दशा अन्य फसलों की होती है क्योंकि महाजन या साहूकार खेती की पैदावार की खरीद बिक्री का काम भी करता है। किसान उसके चंगुल में होता है अस्तु उसको अपनी फसल महाजन को कम मूल्य पर बेच देनी पड़ती है।

अतएव ऋणी होने के कारण किसान की आर्थिक स्वतन्त्रता जाती रहती है। वह अपने साहूकार का एक प्रकार से आर्थिक दास बन जाता है और उसका सारा उत्साह जाता रहता है। वह खेती के सुधार और उसकी उन्नति के किसी भी सुझाव को स्वीकार करने के लिए उत्साहित नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि यदि मैंने अपने खेत में अधिक पैदावार की तो उसके पास न रह कर वह महाजन के पास चला जावेगा। उसका सूद इतना भयंकर होता है कि किसान उसको चुका ही नहीं सकता। अस्तु जिस वर्ष फसल अच्छी होती है तो महाजन को अधिक देना पड़ता है और यदि फसल कम हो गई तो महाजन को कम स्वीकार करना पड़ता है। किसान को तो प्रत्येक दशा में ८ या १० महीने का भोजन ही मिलता है अतएव वह खेती की पैदावार को बढ़ाने का पूरा प्रयत्न नहीं करता। ग्रामीण ऋण पिछड़ी हुई खेती का एक प्रधान कारण है और जब तक ग्रामीणों को ऋण मुक्त नहीं किया जाता तब तक खेती की उन्नति नहीं हो सकती और न किसान के रहन सहन का दर्जा ऊँचा उठ सकता है। क्योंकि वह जो कुछ भूमि पर पैदा करता है उसका अधिकांश भाग महाजन के पास चला जाता है।

ऋण समझौता बोर्ड (Debt Conciliation Boards) :— केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने प्रांतीय सरकारों को यह राय दी थी कि इस ग्रामीण ऋण का समझौता करा कर उसको चुकाने का प्रयत्न करना चाहिए। फलस्वरूप कुछ प्रान्तों में ऋण समझौता कानून बन गए हैं। मध्यप्रदेश, बंगाल आसाम, पंजाब तथा कुछ देशी राज्यों में इस प्रकार का कानून बना दिया गया है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रांतों के कानूनों में कुछ भेद अवश्य है परन्तु मुख्य धारायें एक समान हैं। इस कानून के अन्तर्गत ऋण समझौता बोर्ड की स्थापना की जाती है। यह बोर्ड किसान के सभी लेनदारों अर्थात् महाजनों से किसान पर उनका कितना लेना है उसका हिसाब उपस्थित करने को कहते हैं और जब यह मालूम हो जाता है कि किसान पर कितना ऋण है तो महाजनों से ऋण की रकम को जितना भी कम हो सके उतना कम करा कर समझौता कराया जाता है और यदि महाजन एक उचित प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता तो ऋणी किसान को एक सर्टिफिकेट दे दिया जाता है। इस सर्टिफिकेट या प्रमाण पत्र का प्रभाव यह होता है कि वह महाजन यदि अदालत में उस किसान पर डिगरी करावे तो उसे न्यायालय का व्यय नहीं मिलता और एक निश्चित सूद से अधिक नहीं मिल सकता। बंगाल के ऋण समझौता ऐक्ट के

अनुसार यदि किसान के ४० प्रतिशत महाजन समझौता बोर्ड के फैसले को मान लेते हैं तो समझौता बोर्ड को यह अधिकार है कि वह किसान को एक प्रमाण पत्र इस आशय का दे दे कि जब तक किसान उन महाजनों का ऋण नहीं चुका देता. जिन्होंने समझौता बोर्ड के फैसले को स्वीकार कर लिया है तब तक वे महाजन जिन्होंने फैसले को नहीं माना है न्यायालय से भी किसान से रुपया वसूल नहीं कर सकते। इस प्रकार समझौता बोर्ड उन महाजनों को अप्रत्यक्ष रूप से विवश कर सकता है कि वे समझौता बोर्ड के फैसले को स्वीकार करें।

यद्यपि ऋण समझौता बोर्डों से कुछ लाभ अवश्य हुआ किन्तु शीघ्रता पूर्वक ऋण का समझौता नहीं हो सकता क्योंकि इसमें महाजन का राजी होना आवश्यक है। और कभी-कभी सभी महाजन मिलकर एक हो जाते हैं इस कारण इन बोर्डों से अधिक सफलता नहीं मिली। इस कारण बहुत से विद्वानों का विचार था कि बिना कानून द्वारा ऋण को कम किए किसान का ऋण नहीं चुकाया जा सकता।

अभी प्रान्तीय तथा भारत सरकार इस समस्या पर विचार कर ही रही थी कि काठियावाड़ की छोटी सी रियासत भावनगर ने जिस प्रकार अपने किसानों को ऋण मुक्त कर दिया उससे सारे देश का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। भावनगर के दीवान स्वर्गीय प्रभाशंकर पट्टानी ने किसानों को ऋण मुक्त करने के उद्देश्य से एक आज्ञा निकाली कि जिस किसी महाजन का किसी भी किसान पर कर्जा हो वह राज्य को उसका पूरा ब्योरा निश्चित तारीख तक दे दे नहीं तो उसका कर्ज़ा गैर कानूनी घोषित कर दिया जावेगा राज्य ने हिसाब लगाकर देखा तो भावनगर राज्य के तमाम किसानों का ऋण ८६,२८,८७४ रु० निकला। स्वर्गीय प्रभाशंकर पट्टानी ने महाजनों के सामने एक प्रस्ताव रखा कि राज्य उनके समस्त ऋणों के बदले २०,५६, ४७३ रु० देकर किसान को ऋण मुक्त कर देना चाहता है। पहले तो महाजन इस समझौते के लिए तैयार नहीं थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि राज्य किसान को ऋण मुक्त कर देने पर तुला हुआ है और हमारे द्वारा इस प्रस्ताव को न मानने का फल यह होगा कि राज्य ऐसा कानून बना देगा कि उन्हें अपना रुपया वसूल करना कठिन हो जावेगा तो वे राजी हो गये। राज्य ने २०,५६,४७३ रु० देकर किसानों को ऋण मुक्त कर दिया। ध्यान रहे कि भावनगर का किसान उस तमाम कर्ज़ पर साल भर में २५ लाख रुपये केवल

सूद में दे देता था राज्य ने किसान से इस रकम को किश्तों में वसूल कर लिया। ऋण मुक्त होने का फल यह हुआ कि भावनगर में खेती की बहुत उन्नति हुई किसान अच्छे हल बैल और खाद का उपयोग करने लगा है, कुयें खोदकर उसने वैज्ञानिक ढग की खेती को अपनाया है क्योंकि अब उसको विश्वास हो गया कि उसकी पैदावार उसके पास ही रहेगी। भविष्य में किसान फिर महाजन के चगुल में न फँस जावे इसलिये राज्य ने एक कानून बना कर किसान की साख को बहुत सीमित कर दिया है। राज्य ने तकावी देने का समुचित प्रबन्ध किया है।

यद्यपि प्रान्तों में अभी तक ग्रामीण ऋण को चुकाने का भावनगर जैसा कोई क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाया गया किन्तु सभी प्रान्तों में ग्रामीण ऋण का कानून द्वारा भार हलका करने का प्रयत्न किया गया। अधिकांश प्रान्तों में किसानों के ऋण भार को हलका करने के लिए कानून बना दिए गये। इन कानूनों के अन्तर्गत सूद की दर निर्धारित कर दी गई है उससे अधिक सूद की दर गैर कानूनी होगी। यही नहीं कि भविष्य मे महाजन अधिक से अधिक कितना सूद ले सकता है वरन् पिछले ऋण पर भी सूद की दर क्या होना चाहिये यह निश्चित कर दिया है और कहीं कहीं दाम दुपट का नियम भी लागू कर दिया गया है।

उत्तरप्रदेश में १६४० के कानून के अनुसार ऋण को कम करने के लिए ४½ प्रतिशत सूद सुरक्षित ऋण पर ६ प्रतिशत अरक्षित ऋण पर लगाया जावेगा। इसक अतरिक्त जो सूद नहीं चुकाया गया है उसके सबध में दामदुपत का नियम लगाया जावेगा। किसान की भूमि का एक निश्चित अश ऋण के बदले कुर्क नहीं करवाया जा सकता बहुत से प्रांतों में इसी आधार पर ऋण को कम करने के लिये कानून बने हैं।

भविष्य के लिए भिन्न भिन्न प्रान्तों में निश्चित की हुई सूद की दरें इस प्रकार हैं :—

प्रान्त	सुरक्षित ऋण		अरक्षित ऋण	
	सादा ब्याज	दर सूद	सूद	दर सूद
मदरास	६¼%	मना है	६¼%	मना है
बम्बई	६	मना है	१२	मना है
बगाल	१५	१०	२५	१०

पंजाब	१२	६	१८	१४
बिहार	६	मना है	१२	मना है
मध्य प्रदेश	७	५	१०	५
आसाम	१२½	मना है	१८¾	मना है
उड़ीसा	६	मना है	१२	मना है

उत्तर प्रदेश में व्याज की दर ऋण ली हुई रक़म पर निर्भर है। जिस दर पर भारत सरकार प्रान्तीय सरकार को ऋण देगी उससे नीचे लिखी हुई अधिक दर पर ऋण दिया जा सकेगा :—

	(सुरक्षित) सूद दर	सूद	(अरक्षित) सूद दर	सूद
रक़म ५०० रु० से कम	क+५½	क+३	क+१०½	क+७½
,, ५०१ से ५,००० रु० तक	क+४½	क+२½	क+८	क+६
,, ५००१से२०,००० रु० तक	क+३½	क+२	क+६½	क+४½
,, २०,००० रु० से अधिक	क+२½	क+१½	क+५	क+३½

इनके अतिरिक्त मदरास, बम्बई और मध्य प्रदेश में ऋण की रक़म को भी कानून द्वारा घटाने का प्रयत्न किया गया है।

मदरास किसान रिलीफ ऐक्ट के अनुसार १ अक्टोबर १६३२ के पहले लिए हुए ऋण पर १ अक्टोबर १६३७ तक का बकाया सूद माफ कर दिया गया है और केवल मूल ही देना होगा। यदि मूल अथवा सूद की अदायगी के रूप में मूल से दुगुनी रक़म अदा कर दी गई हो तो सारा ऋण चुक गया मान लिया जावेगा। और यदि अदा की हुई रक़म मूल ऋण के दुगुने से कम हो तो शेष देकर किसान ऋण मुक्त हो जावेगा। जो ऋण १ अक्टोबर १६३२ के उपरांत लिया गया हो उसके मूल पर ५ प्रतिशत सूद लगाकर कुल रक़म मालूम करली जाती है और उसमें से जितना ऋण किसान ने अदा कर दिया है उसको घटा कर जो रकम शेष रहती है वह कर्जदार को देनी पड़ती है। इस रक़म पर किसान को भविष्य में केवल ६½ प्रतिशत सूद देना पड़ता है।

मध्य प्रदेश के कानून के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि यदि ऋण ३१ दिसम्बर १६२५ के पूर्व लिया गया हो तो ऋण की रक़म ३० प्रतिशत कम कर दी जावेगी। यदि ऋण १ जनवरी १६२६ के उपरांत और १ अक्टोबर १६२६ के पहले लिया गया हो तो २० प्रतिशत और यदि ऋण १

अक्टोबर १६२६ के बाद और ३१ दिसम्बर १६३० के पहिले लिया गया हो तो १५ प्रतिशत कम कर दिया जावेगा।

बम्बई में १२ प्रतिशत सूद के हिसाब से जो रकम ३१ दिसम्बर १६३० को देना है उसमें ४० प्रतिशत कमा कर दी जावेगी और १ जनवरी १६३१ के बाद जो रकम देनी होगी उस पर ३० प्रतिशत कमी कर दी जावेगी।

इन कानूनों के अतिरिक्त बहुत से प्रान्तों में महाजनी हिसाब पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए कुछ कानून बनाये गये हैं। यह कानून पंजाब, बंगाल, बिहार, उड़ीसा उत्तर प्रदेश, आसाम, मदरास और मध्य प्रदेश में बन गया है। इन कानूनों के अनुसार महाजन को मूल धन और सूद का पृथक् ठीक ठीक हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्जदार को उसके कर्ज के ब्योरे की एक प्रतिलिपि (नकल) निश्चित समय पर देनी होगी। इन कानूनों द्वारा महाजनों को विवश कर दिया गया है कि जब कर्जदार कुछ रुपया अदा करे तो उसकी रसीद कर्ज़दार को अवश्य दी जावे। जो महाजन ठीक ठीक हिसाब नहीं रक्खेंगे उन्हें दण्ड दिया जावेगा। किन्तु इन कानूनों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि उनके निरीक्षण या जाँच का कोई प्रबंध नहीं किया गया।

इन कानूनों के अतिरिक्त कुछ प्रान्तों में महाजन लायसैंस कानून भी पास कर दिए गए हैं। बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश, बिहार, बम्बई और पंजाब में महाजन कानून (Money Lenders License Act) बन गए हैं। इन कानूनों के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसैंस लेना होगा। कुछ प्रान्तों में लायसैंस लेना आवश्यक है और शेष प्रान्तों में यह महाजन की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। परन्तु उन प्रान्तों में यदि महाजन ने लायसैंस नहीं लिया तो वह अपने रुपये के लिए अदालत में नालिश नहीं कर सकता। प्रत्येक लायसैंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्ज़दार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिखकर देना होगा। जब कभी कर्ज़दार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी। यदि कोई महाजन इन नियमों का पालन न करे तो उसे दण्ड मिलेगा।

भारतीय किसान के ऋण के सम्बन्ध में यह संक्षिप्त विवेचन करने के उपरान्त अब हम कृषि के लिये साख (Credit) की आवश्यकता तथा उसके प्रबंध का अध्ययन करेंगे।

खेती की विशेषता:—इससे पहले कि खेती की साख के सम्बन्ध में अध्ययन करें हमें यह जान लेना चाहिए कि खेती और उद्योग-धंधों में बहुत भेद है। इसी कारण खेती के लिए आर्थिक प्रबन्ध करने में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं।

(१) जहाँ अन्य धंधों में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति (Large Scale Production) होती है और बड़े-बड़े कारखाने तथा भीमकाय पुतलीघर होते हैं खेती में बहुधा छोटे-छोटे खेत होते हैं। यह छोटे-छोटे खेत बिखरे हुए एक दूसरे से पृथक् और असंगठित होते हैं। फिर खेती का कार्य एक समान नहीं होता। खेती का धंधा अनिश्चित धंधा है। वह प्रकृति पर इतना अधिक निर्भर है कि किसान के सब कुछ करने पर भी फसल नष्ट हो सकती है। अतएव खेती में जो जोखिम है उसका अनुमान लगाना कठिन है अतएव फसल को ऋण की जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत कारखानों की यदि व्यवस्था ठीक है तो उनके माल की उत्पत्ति निश्चित होती है। यही कारण है कि कारखानों को तो हिस्से तथा डिबेंचर (ऋण पत्र) बेंचकर यथेष्ट पूँजी मिल जाती है और यदि उन्हें अन्य आवश्यकताओं के लिये साख चाहिए तो वह अपने माल की जमानत पर बैंकों से साख पा जाते हैं किन्तु किसान को अपनी पूँजी ही से काम चलाना पड़ता है। व्यापारिक बैंक उसको इसलिए साख देना पसन्द नहीं करते क्योंकि एक तो जितना ऋण वह लेना चाहता है वह बहुत थोड़ा होता है दूसरे उसकी फसल अनिश्चित होती है इस कारण उसकी जमानत (Security) स्वीकार योग्य नहीं होती।

(२) यदि खेती की पैदावार का मूल्य गिर गया है तब भी किसान खेती को छोड़ नहीं सकता। उसे खेतों पर फसल पैदा करना ही होगा नहीं तो भूमि बेकार पड़ी रहेगी और उस पर जंगली पौधे उग आवेंगे। इस कारण यदि खेती लाभदायक न भी हो तो भी किसान को फसल पैदा ही करनी पड़ती है। अतएव उसकी साख की आवश्यकता एकसी बनी रहती है और उसका ऋण बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि मूल्य गिर रहा हो तो अन्य धंधों में पैदावार को कम किया जा सकता है अथवा कुछ समय के लिए रोका जा सकता।

(३) यदि किसी समय उत्पत्ति आवश्यकता से अधिक हो गई हो तो

कारखाने अपने माल की जमानत पर बैंकों से ऋण लेकर उसको अपने गोदामों में रोक रख सकते हैं और पैदावार को कम करके उसके मूल्य को अधिक गिरने से बचा सकते हैं। किन्तु खेती में लगा हुआ किसान ऐसा नहीं कर सकता। उसका कारण यह है कि उसका धंधा असंगठित है उसकी फसल अनिश्चित है।

(४) खेती तथा द्रव्य बाज़ार में सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है क्योंकि व्यापारिक बैंक किसान को ऋण देने के लिए तैयार नहीं होते। इसका मुख्य कारण यह है कि किसान या तो फसल को अथवा भूमि को जमानत रूप में दे सकता है। व्यापारिक बैंकों के लिए ये दोनों प्रकार की जमानतें अनुपयुक्त हैं। फसल अनिश्चित होती है और भूमि लम्बे समय के लि ', लिए हुए ऋण के लिए तो उपयुक्त जमानत हो सकती है किन्तु व्यापारिक बैंकों के लिए उपयुक्त जमानत नहीं है क्योंकि वह शीघ्र ही आवश्यकता पड़ने पर बेंची नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त किसान ऋण लेकर समय पर नहीं चुका पाता क्योंकि उसकी फसल का कोई ठीक नहीं रहता। अतएव व्यापारिक बैंक उसे ऋण नहीं देते क्योंकि उनकी डिपाज़िट बहुत थोड़े समय के लिए होता है वे उस रुपये को अनिश्चित काल के लिए नहीं अटका सकते।

(५) खेती के सम्बन्ध में जो ऊपर लिखी कठिनाइयाँ हैं वे भारतवर्ष में और भी अधिक भयकर रूप में उपस्थित हुई हैं क्योंकि यहाँ का किसान अशिक्षित और निर्धन है तथा भयकर ऋण के बोझ से दबा हुआ है और उसके पास आर्थिक जोत (Economic Holding) न होने के कारण खेती लाभदायक धंधा नहीं है। यही कारण है कि खेती के लिए सहकारी साख समितियों (Co-operative Credit Societies) का आयोजन किया गया है।

किसान की साख की आवश्यकता—यह हम पहले ही कह चुके हैं कि खेती के लिए तीन प्रकार की साख की आवश्यकता होती है—(१) थोड़े समय के लिए साख, (२) साधारण समय के लिए साख, (३) और लम्बे समय के लिए साख। थोड़े समय के लिए साख की आवश्यकता बीज, खाद, हल तथा अन्य औज़ारों को खरीदने तथा खेती की पैदावार को मंडी तक ले जाने के लिए तथा खेती की अन्य क्रियाओं के करने के लिए होती है। किसान को खेती के कार्यों के लिए ६ महीने के लिए साख की आवश्यकता

होती है। साधारण समय के लिए साख की आवश्यकता पशुओं को खरीदने, मूल्यवान औजारों को मोल लेने, सिंचाई करने, बाढ़ बनाने तथा अन्य सुधार करने के लिए आवश्यक होती है। लम्बे समय के लिए ऋण की आवश्यकता पुराने पैतृक ऋण को चुकाने, अधिक मूल्यवान खेती के यंत्रों को खरीदने, नई भूमि खरीदने के लिए होती है।

महाजन और साहूकार (पेशेवर और गैर-पेशेवर) देशी बैंकर, सहकारी बैंक, निधी, और चिट-फंड (Chit Funds) व्यापारिक बैंक, इम्पीरियल बैंक, रिजर्व बैंक और सरकार, ग्रामीण साख का प्रबंध करते हैं अतएव हम अब इनके सम्बन्ध में लिखेंगे।

महाजन अथवा साहूकार (Money Lender): भारतवर्ष में प्रत्येक गाँव में महाजन या साहूकार होता है जो लेन-देन का काम करता है। इन पेशेवर महाजनों और साहूकारों के अतिरिक्त और बहुत से गैर-पेशेवर लोग जैसे जमींदार, नौकरी करने वाले, वकील, व्यापारी इत्यादि जिसके पास भी कुछ रुपया इकट्ठा हो जाता है वही लेन-देन करने लगता है।

गाँवों का पेशेवर महाजन या साहूकार छोटी रक़म का ऋण केवल अपनी बही में लिख कर दे देता है और न कोई उसकी गवाही होती है। किन्तु जब रक़म अधिक होती है तो प्रामिसरी नोट लिखा लिया जाता है। वे किसान को बिना किसी ज़मानत के इस आधार पर ऋण दे देते हैं कि कर्ज़दार किसान अपनी फसल को महाजन को बेंच देगा अथवा महाजन के द्वारा बेंचेगा। एक प्रकार से वह फसल को गिरवी रख लेता है। किन्तु जब रकम अधिक होती है और बहुत लम्बे समय के लिए होती है तो भूमि, जेवर या मकान बंधक रख दिए जाते हैं। महाजन को इस बात की कोई चिन्ता नहीं होती कि किसान किस कार्य के लिए ऋण ले रहा है। वह खेती के लिए ऋण ले रहा है अथवा विवाह-शादी या अन्य अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण लेता है इससे महाजन को कोई मतलब नहीं होता। महाजन सूद दर सूद लगाता है और शीघ्र ही वह रक़म बढ़ कर एक बहुत बड़ी रक़म हो जाती है।

इन महाजनों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी महाजन इस देश में उत्पन्न हो गए हैं जो एक स्थान पर लेन-देन न करके एक विस्तृत क्षेत्र में लेन देन करते हैं वे गाँवों में समय समय पर आते रहते हैं और किसानों से लेन-देन करते हैं। उदाहरण के लिए पठान और काबुली सर्वत्र यह कार्य करते हैं।

विलवाले उत्तरप्रदेश में, रोहिला मध्य प्रदेश में, गोसाई और नागा बिहार और उड़ीसा में लेन देन का काम करते हैं। ये लोग ऋण देकर कर्ज लेने वाले का अँगूठे का निशान अपनी बही पर ले लेते हैं और प्रति मास एक रुपये के हिसाब से वसूल करते रहते हैं। यदि उन्होंने ८ रु० कर्ज दिये हैं तो वे एक रुपया प्रति मास वसूल करके वर्ष भर में १२ रुपये वसूल कर लेंगे। यह तो हम ऊपर ही कह आये हैं कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में सूद की दर भिन्न है। बैंकिंग कमेटियों के अनुसार सुरक्षित ऋण पर १२ प्रतिशत से ३७½ प्रतिशत तक सूद लिया जाता है। काबुली तथा अन्य महाजन पिछड़े प्रदेशों में तथा गरीब आदमियों से अरक्षित ऋण पर ७५ प्रतिशत से १५० प्रतिशत तक ऋण लेते हैं। कहीं कहीं ३०० प्रतिशत तक सूद लिया जाता है। कहीं-कहीं महाजन के अतिरिक्त और कोई साख देने वाली संस्था नहीं होती इस कारण वह मनमाना सूद लेता है। यही नहीं कभी कभी महाजन किसान को ठग भी लेता है। कोरे कागज पर अगूठा लगा कर वह उसमें मनमानी रकम लिख लेता है। जब किसान थोड़ा थोड़ा करके रुपया चुकाता है तो उसको नहीं चढ़ाता। कर्जदार से बहुत सी वस्तुयें मुफ्त लेता है। कहीं-कहीं तो कर्जदार की स्थिति दास की तरह हो जाती है। वह अपने महाजन का दास बनकर उसकी सेवा करता है। महाजनी लेन देन के इन्हीं दोषों के कारण प्रान्तीय सरकारों को उनके कारबार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए कानून बनाने पड़े।

पिछले दिनों महाजनी कारबार कम होता जा रहा है क्योंकि प्रत्येक प्रान्त में किसान की ऋण से रक्षा के लिए कानून बन गए हैं। महाजन को अपना रुपया वसूल करने में कठिनाई होने लगी है अतएव बहुत से महाजनों ने लेन देन का काम बंद कर दिया है। भविष्य में लेन देन का काम और भी कम हो जावेगा।

सरकार द्वारा दिये गए तक़ावी ऋण—भारतवर्ष में प्रान्तीय सरकारें किसान को लम्बे समय के लिए तथा थोड़े समय के लिए तकावी ऋण देती हैं। लम्बे समय के लिए तकावी ऋण १८८३ के भूमि सुधार ऋण कानून (Land Improvement Loans Act) के अन्तर्गत दिया जाता है और थोड़े समय के लिए तकावी ऋण किसान ऋण कानून (Agriculturists Loan Act) के अन्तर्गत दिया जाता है। पहले कानून के अन्तर्गत भूमि का सुधार करने, कुआँ खोदने

या बाँध बनाने के लिए लम्बे समय के लिए ऋण दिया जाता है और दूसरे कानून के अन्तर्गत खेती-बारी के लिए उदाहरण के लिए बीज, हल, खाद, बैल इत्यादि खरीदने के लिए थोड़े समय के लिए ऋण दिया जाता है। पहले कानून के अनुसार ऋण अधिक से अधिक ३५ वर्षों के लिए दिया जा सकता है किन्तु व्यवहार में २० वर्षों से अधिक के लिए ऋण नहीं दिया जाता। दूसरे कानून के अन्तर्गत ऋण १ वर्ष या २ वर्ष के लिए दिया जाता है और फसल तैयार होने के उपरान्त वसूल कर लिया जाता है। इन दोनों कानूनों के अन्तर्गत सब प्रान्तीय सरकारों द्वारा दिए गए ऋण की रकम क्रमशः ३५ लाख और ६० लाख रुपये वार्षिक होती है। भारत जैसे विशाल देश में इतना कम ऋण लिया जावे यह इस बात को सिद्ध करता है कि यह ऋण अधिक आकर्षक नहीं है और किसान सरकार द्वारा दी गई इस सुविधा का प्रयोग नहीं करते। इसके मुख्य कारण नीचे लिखे हैं:—

(१) किसानों की आवश्यकता को देखते हुए ऋण बहुत कम दिया जाता है।

(२) जब किसान ऋण के लिए प्रार्थना पत्र देता है तो उसे महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती है तब कहीं जा कर उसे ऋण मिलता है।

(३) यद्यपि सूद बहुत उचित लिया जाता है (६ प्रतिशत) परन्तु तहसील के कर्मचारी जो ऋण देने का कार्य करते हैं वे किसान से रिश्वत और नज़राना लेकर ही उसके प्रार्थना पत्र पर सिफारिश लिखते हैं। अतएव किसान को ६ प्रतिशत से बहुत अधिक देना पड़ता है।

(४) ऋण को वसूल करने में बड़ी कठोरता का व्यवहार किया जाता है। कभी-कभी किसान को महाजन से ऋण लेकर तकावी का रुपया चुकाना पड़ता है।

(५) इसके अतिरिक्त यह जानकारी कि तक़ावी किस प्रकार ली जा सकती है अधिकाँश किसानों को नहीं है इस कारण भी तक़ावी ऋण का भारतीय किसान ने अधिक उपयोग नहीं किया।

यदि ऋण का प्रबंध ठीक तरह से हो, ऋण लेने वाले को अधिक समय तक प्रतीक्षा न करनी पड़े, उसे तहसील के अधिकारियों को रिश्वत और नज़राना न देना पड़े, यदि फसल नष्ट हो जावे तो वसूली रोक दी जावे, तकावी की वसूली में कम कठोरता बरती जावे, तकावी किस प्रकार

मिल सकती है इसकी जानकारी किसानों को करादी जावे, तथा सरकार यथेष्ट रकम ऋण देने के लिए रक्खे तो इनका अधिक उपयोग हो सकता है। अन्यथा तक़ावी ऋणों का ग्रामीण साख में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है।

महायुद्ध और ग्रामीण ऋणः— महायुद्ध के फल स्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य आकाश छूने लग गया इससे विद्वानों की तथा सर्व साधारण की यह धारणा होने लगी कि या तो गाँव वालों का ऋण बिलकुल हो चुक गया होगा अथवा बहुत कम शेष रह गया होगा। किन्तु इस सम्बध में प्रामाणिक आँकड़े प्राप्त नहीं थे जिसके आधार पर कुछ कहा जा सके। हर एक व्यक्ति केवल अटकल से ही काम लेता था। अगस्त १९४३ में रिजर्व बैंक ने सब प्रान्तीय सरकारों को एक पत्र लिख कर ग्रामीण ऋण की जाँच की आवश्यकता बतलाई और प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। रिजर्व बैंक का कहना था कि युद्ध के फल स्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बढ़ गया है, इस कारण गाँवों के रहने वालों और विशेषकर किसानों के ऋण का भार हलका हो गया होगा। अस्तु इस समय किसी योजना के अनुसार इस समस्या को हल करने का प्रयत्न नहीं किया गया तो यह बहुत सम्भव है कि किसान फिर भयकर ऋण में डूब जावें। इसी अभिप्राय से रिज़र्व बैंक चाहता था कि ग्रामीण ऋण की जाँच की जावे और ऐसे उपाय किए जावें कि किसान फिर १९३९ की स्थिति में न पहुँच जावे। इस पत्र के आधार पर केवल मदरास प्रान्त की सरकार ने १९४४ में डाक्टर नायडू को ग्रामीण ऋण की जाँच के लिए नियुक्त किया। डाक्टर नायडू ने प्रान्त के १६० गाँवों के ऋण की जाँच करके प्रान्त भर के ऋण का अनुमान लगाया। गाँव के परिवारों को पाँच श्रेणियों में बाँटा गया और उनकी जाँच की गई।

ऋण सबंधी जाँच का परिणाम यह निकला कि जहाँ प्रान्त का ऋण १९३९ में २७२ करोड़ रुपये था अब २१८ करोड़ रुपये है। प्रति मनुष्य पीछे जहाँ १९३९ में ५.१ रु० ऋण था अब ४८ रुपये है। अस्तु मदरास में कुल ऋण तथा प्रति मनुष्य पीछे ऋण केवल २० प्रतिशत घटा है। ऋण में जो कमी हुई है वह भी केवल ज़मींदारों तथा बड़े और सम्पन्न किसानों के ऋण में। छोटे किसानों तथा खेत मज़दूरों का पूर्ववत है। उसमें तनिक सा कमी नहीं हुई वरन् कुछ दशाओं में छोटे किसानों तथा खेत

मज़दूरों के ऋण में वृद्धि ही हुई है। रिज़र्व बैंक आव इन्डिया ने जो फुटकर गाँवों के ऋण की जाँच करवाई तो वह भी इसी निर्णय पर पहुँचा कि ज़मींदारों तथा बड़े और सम्पन्न किसानों के ऋण में कुछ कमी अवश्य हुई है परन्तु छोटे किसानों और खेत मज़दूरों की दशा पूर्ववत है। कहीं-कहीं उनके ऋण में वृद्धि ही हुई। अभी हाल में (१९५० में) बिहार सरकार ने खेत मज़दूरों की आर्थिक स्थिति की जो जाँच करवाई उससे पता चलता है कि वहाँ खेत मज़दूर की वार्षिक आय ४४४ रुपये है और उसका न्यूनतम व्यय ६१६ रुपये है। अतएव उसकी आर्थिक स्थिति गिरती जाती है और वह अधिकाधिक कर्ज़दार होता जा रहा है। लेखक का भी यही मत है कि बड़े और सम्पन्न किसानों तथा जमींदारों के ऋण भार में तो कमी अवश्य हुई है किन्तु साधारण छोटे किसान तथा खेत मज़दूरों के ऋण में कोई कमी नहीं हुई। अब हम इस संबंध में विस्तार पूर्वक विचार करेंगे।

सच तो यह है कि भारत में अधिकाँश किसानों के पास भूमि बहुत कम है। उस भूमि पर किसान के परिवार के योग्य अनाज ही उत्पन्न होता है। चार छः बीघे में जो पैदावार होती है वह उसके परिवार के लिए ही हो जाती है अस्तु उसके पास बेचने के लिए बहुत कम बचता है। खेती की पैदावार के मूल्य की वृद्धि से लाभ तो उन बड़े और सम्पन्न किसानों को हुआ जिनके पास उनकी आवश्यकता से अधिक पैदावार होती है और जो उसको बेचते हैं। अब प्रश्न यह हो सकता है कि छोटा किसान जिसके पास केवल अपने परिवार के पोषण योग्य ही पैदावार होती है वह लगान इत्यादि के खर्चे किस प्रकार करता था। बात यह था कि युद्ध के पूर्व वह भूखा रहकर तथा केवल एक समय भोजन करके अपनी कुछ पैदावार को बेंच कर आवश्यक खर्चे करता था। आज वह उतना भूखा नहीं रहता और दोनों समय रोटी खाता है क्योंकि वह दो चार मन अनाज़ या थोड़ी सरसों, कपास या गन्ना बेंचकर लगान तथा अन्य आवश्यक खर्चे चुका देता है। गाँवों में एक वर्ग खेत मज़दूरों का भी है जिनके पास भूमि नहीं होती और जो गाँव के किसानों के खेतों पर मज़दूरी करके अपनी उदर पूर्ति करते हैं। खेती की पैदावार का मूल्य आकाश छूने से इस वर्ग को तो कुछ लाभ हुआ नहीं क्योंकि उनके पास बेंचने को कुछ होता ही नहीं। अतएव केवल सम्पन्न किसान तथा ज़मींदारों को ही खेती की पैदावार का मूल्य बढ़ने से विशेष लाभ हुआ है और उनका ही ऋण घटा है।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान में रखने की है और वह यह है कि जो कुछ भी युद्ध के फलस्वरूप गाँव वालों की आर्थिक समृद्धि हुई है उसका ग्रामीण जनसंख्या ने पूरा लाभ नहीं उठाया। किसान ने विवाह, मृतक भोज, धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में तथा तीर्थ यात्रा में अनाप शनाप व्यय किया। बहुत से गाँव वालों ने उन आवश्यकताओं को बढ़ा लिया जो शहरों के शौकीन लोगों तक सीमित थी। इन शौकीनी तथा विलास की वस्तुओं पर भी उनका व्यय बढ़ गया जो भविष्य में उनके लिए कष्ट साध्य होगा। जिन लोगों ने कुछ बचाया भी वह चाँदी सोने के रूप में बचाया जिसका मूल्य बहुत ऊँचा चढ़ गया है और भविष्य में जब सोने और चाँदी का मूल्य गिरेगा तो उनकी बचत आधी रह जावेगी। ऊपर के संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट है कि जो कुछ भी समृद्धि युद्ध के कारण ग्रामीण जन संख्या को प्राप्त हुई उसका ठीक उपयोग वह नहीं कर सका।

आवश्यकता इस बात की थी कि किसान के ऋण की जाँच करवाई जाती तथा उनके महाजनों से ऋण को कम करवा कर एक समझौता करवा दिया जाता और सरकार किसी भी किसान की लगान या मालगुजारी के साथ ऋण की किस्तों को किसान से वसूल करके उनका ऋण चुका देती। किसानों को विवश किया जाता कि वे अपनी पैदावार को बेच कर जो नकदी पावें उसका एक अंश सहकारी साख समिति अथवा सरकार के पास जमा किया जाय। किन्तु ऐसा नहीं हुआ नहीं तो ऐसा अवसर था कि किसान को ऋण मुक्त किया जा सकता था और सम्पन्न किसानों के पास कुछ पूँजी इकट्ठी की जा सकती थी। अब यदि भविष्य में खेती की पैदावार का मूल्य गिरा तो किसान की स्थिति दयनीय हो जावेगी, उसका ऋण भार असहनीय हो जावेगा और उसकी अनावश्यक खर्चीली आदतें जो उसने इन दिनों में डाल ली है उसे विशेष कष्ट दायक होगी।

अध्याय १३

देशी बैंकर (Indigenous Bankers)

भारतवर्ष में बैंकिंग व्यवसाय अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। वैदिक युग के साहित्य (ईसा से २००० वर्ष पूर्व से १४०० वर्ष पूर्व तक) में इसका उल्लेख मिलता है किन्तु बैंकिंग के सम्बन्ध में विस्तृत और क्रमबद्ध विवरण ईसा के ५०० वर्ष पूर्व के पहले नहीं मिलता। ईसा के ५०० वर्ष पूर्व से आगे हमें भारतीय प्राचीन बैंकिंग व्यवसाय का पूरा विवरण प्राप्त है। उस समय भारत का बैंकिंग व्यवसाय उन्नति दशा में था। तत्कालीन साहित्य के पढ़ने से हमें ज्ञात होता है कि उस समय के देश के सभी व्यापारिक केन्द्रों में 'श्रेष्ठी या बैंकर' होते थे और उनकी व्यापारिक तथा औद्योगिक संघों और व्यापारी समाज में बहुत प्रतिष्ठा और सम्मान था। ये लोग विदेशों से व्यापार करने वाले व्यापारियों, बहुमूल्य पदार्थों की खोज में जाने वाले साहसी व्यक्तियों, तथा युद्ध इत्यादि अवसरों पर राजाओं और सम्राटों को ऋण देकर आर्थिक सहायता देते थे।

मनुस्मृति से यह पता चलता है कि देश में लेन-देन का कार्य बहुत बढ़ गया था। इसी कारण मनुजी को सूद इत्यादि की दर को निर्धारित करने की आवश्यकता पड़ी। यही नहीं उस समय देशी बैंकर जमा (डिपाजिट) भी लेने लग गए थे। कौटिल्य अर्थशास्त्र में चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री कौटिल्य ने जमानती ऋण पर अधिक से अधिक १५ प्रतिशत और गैर ज़मानती ऋण पर ६० प्रतिशत सूद की व्यवस्था की थी। किन्तु उस समय सूद की दर भिन्न-भिन्न वर्गों से भिन्न थी। ब्राह्मण को सब से कम सूद पर ऋण मिल जाता था किन्तु नीचे वर्ण के लोगों को अधिक सूद देना पड़ता था।

हुंडियों का भारतवर्ष में चलन बारहवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ। प्रारम्भिक मुस्लिम-शासन काल में तथा मुग़ल बादशाहत में देशी बैंकरों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था। उस समय वे देश के अन्दरूनी तथा विदेशी व्यापार के लिए साख का प्रबंध करते थे तथा शासकों को आवश्यकता पड़ने पर ऋण

देते थे। मुगल शासन काल में देश के भिन्न भिन्न भागों में बहुत प्रकार के धातु के सिक्के प्रचलित थे अतएव देश के अन्दरूनी व्यापार के लिए यह आवश्यक था कि इन सिक्कों का एक दूसरे में विनिमय हो सके। अस्तु इन बैंकरों ने सिक्कों के विनिमय का काम भी अपने हाथ में ले लिया। सिक्कों की अदला बदला से इन्हें बहुत लाभ होता था। मुगल शासन काल में प्रमुख बैंकरों का राज्य की ओर से टकसाल का अध्यक्ष, मालगुजारी वसूल करने वाला तथा राज्य का बैंकर और सिक्के का विनिमय करने वाला नियुक्त कर दिया जाता था। मध्य कालीन भारत में कोई ऐसा दरबार नहीं था जहाँ कोई प्रमुख बैंकर न हो। शासक इन्हें जगत सेठ और नगर सेठ इत्यादि की उपाधियों से विभूषित करते थे और आवश्यकता पड़ने पर ये शासकों को ऋण देते थे। इन सेठों का समाज और दरबार में बहुत मान और प्रतिष्ठा होती था।

किन्तु मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाने से देशी बैंकरों के कारबार और उनकी प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न हो जाने के उपरान्त भारतवर्ष में राजनैतिक अशान्ति और लड़ाइयों का काल आरम्भ हुआ। उसका स्वभावतः बैंकिंग के कारबार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। बहुत से शासक अपने ऋण को चुकाने में असमर्थ हो गए, राजनैतिक अशान्ति के कारण देश का व्यापार ठप्प हो गया और उसका बैंकिंग पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का देश में राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित हो गया तो देशी बैंकरों का कारबार और प्रभाव और भी कम हो गया। यद्यपि अंग्रेजों ने आरम्भ में देशी बैंकरों से भी ऋण लेना आरम्भ किया किन्तु अंग्रेजी एजेंसी गृहों की स्थापना के उपरान्त बैंकिंग का अधिकतर कारबार उनके द्वारा होने लगा। यही नहीं १८३५ के उपरान्त देश में जितने सिक्के प्रचलित थे गैर कानूनी घोषित कर दिए गए और चाँदी का रुपया सर्व ग्राह्य सिक्का बनाया गया। इस परिवर्तन से देशी बैंकरों का लाभदायक धंधा अर्थात् सिक्कों की अदला बदली नष्ट हो गया। इसका भी देशी बैंकरों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। क्रमशः देश में रेलों, पोस्ट आफिस का विस्तार हुआ और जहाजों के द्वारा विदेशों से व्यापार अधिक होने लगा। व्यापार में मूल भूत परिवर्तन हो जाने के कारण भी देशी बैंकरों के कारबार पर बुरा प्रभाव पड़ा। देशी बैंकरों की अवनति के साथ साथ यहाँ पश्चिमीय ढंग के व्यापारिक बैंकों की स्थापना होने लगी तथा सरकार ने स्थान-स्थान पर खजाने स्थापित करके मालगुजारी तथा करों की

वसूली का प्रबंध कर दिया। अपने कारबार के कम हो जाने के कारण तथा व्यापारिक बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण देशी बैंकरों की इस देश में अवनति होना आरम्भ हो गई। परन्तु फिर भी वे देश में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और आज भी उनका कारबार बहुत विस्तृत और व्यापारिक बैंकों से सर्वथा स्वतंत्र है। आज स्थिति यह है कि एक तो देशी बैंकर हैं जिनके काम करने का ढंग पुराना और सर्वथा अपना है। उन्होंने पश्चिमीय ढंग के व्यापारिक बैंकों से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं समझी। दूसरे प्रकार के व्यापारिक बैंक हैं जिन्होंने देशी बैंकरों की अच्छाइयों को स्वीकार नहीं किया। अस्तु यह दोनों प्रकार की बैंकिंग संस्थायें सर्वथा एक दूसरे से स्वतन्त्र और भिन्न हैं।

देशी बैंकरों की परिभाषा :—इससे पहले कि हम देशी बैंकिंग का अध्ययन करें हमें महाजन और बैंकर का भेद जान लेना चाहिये। महाजन तो केवल अपने पूँजी को ऋण स्वरूप देता है किन्तु बैंकर ऋण देने के अतिरिक्त जमा (डिपाजिट) भी स्वीकार करता है और हुंडी का कारबार भी करता है। किन्तु यह परिभाषा बहुत संतोषजनक नहीं है क्योंकि बहुत से बैंकर उदाहरण के लिए मुलतानी बैंकर डिपाजिट नहीं लेते किन्तु वे मुख्यतः बैंकिंग का ही कारबार करते हैं। कभी-कभी महाजनी और बैंकिंग के कारबार इतने मिले-जुले होते हैं कि उनमें भेद करना कठिन हो जाता है। भिन्न-भिन्न बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों के मत के अनुसार डिपाजिट लेना देशी बैंकर का मुख्य लक्षण नहीं है बरन् हुंडी का काम करना उसका मुख्य लक्षण है। अस्तु हुंडी का कारबार करना देशी बैंकर का मुख्य लक्षण है।

साहूकारी और महाजनी का काम (अर्थात् लेन-देन करना) तो सभी जाति के लोग करते हैं किन्तु बैंकिंग का काम कुछ विशेष जातियाँ ही करती हैं। उनमें मारवाड़ी, वैश्य, जैनी, चेट्टी, खत्री और शिकारपुरी मुलतानी मुख्य हैं। मारवाड़ी राजपूताना के मारवाड़ प्रदेश से निकल कर भारत के प्रत्येक प्रमुख औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्र में फैल गए हैं। उनका कारबार कलकत्ता, बम्बई के अतिरिक्त सभी केन्द्रों में फैला हुआ है। चेट्टियों का बैंकिंग कारबार मुख्यतः मदरास तथा बर्मा में है। खत्री पंजाब में अपना कारबार करते हैं और शिकारपुरी मुलतानी सिंध और बम्बई प्रान्त में अपना कारबार करते हैं। बोहरे गुजरात और उत्तर प्रदेश के उत्तर पश्चिमीय भाग

में बैंकिंग का कारबार करते हैं। देशी बैंकर कोठीवाल, शराफ, श्राफ, तथा चेट्टी इत्यादि नामों से पुकारे जाते हैं।

इनमें से बड़े बैंकर अपने कार्यालय और एजेंसियाँ बम्बई, कलकत्ता, मदरास, देहली, रंगून, इत्यादि प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में भी रखते हैं। इन शाखाओं को उनके मुनीम या गुमाश्ते चलाते हैं। इन मुनीमों को बहुत अधिक अधिकार होते हैं और वे अत्यन्त कुशल, ईमानदार और परिश्रमी होते हैं। ये लोग अपने प्रधान कार्यालय को कारबार की रिपोर्ट भेजते रहते हैं और वहां से आज्ञा लेते रहते हैं। समय-समय पर बैंकर स्वयं आकर हिसाब की जाँच करता है।

यद्यपि अधिकांश देशी बैंकर स्वतंत्र रूप से काम करते हैं किन्तु उनमें से कुछ अब भी संघों (Guilds) के सदस्य हैं जिन्हें 'महाजन' कहते हैं और जो उत्तर और दक्षिण भारत में अब भी पाये जाते हैं। यद्यपि इन 'महाजनों' अर्थात् संघों का मुख्य कार्य धार्मिक तथा सामाजिक होता है किन्तु वे दो बैंकरों के आपसी झगड़े को निबटाने और दिवानिया अदालत का काम भी करते हैं। पिछले दिनों में देशी बैंकरों ने अपने कुछ परिषद (Associations) स्थापित की हैं। उदाहरण के लिए बम्बई, कलकत्ता और अहमदाबाद में श्राफ एसोशियेशन और मारवाड़ी चैम्बर आव कामर्स स्थापित हो गई हैं और बम्बई में मुलतानी और शिकारपुरी ऐसोशियेशन स्थापित है। रंगून में भी एक मारवाड़ी एसोशियेशन है और देहली में बैंकर्स ऐसोशियेशन है। इन एसोशियेशनों के द्वारा इन बैंकरों के आपसी झगड़े तय हो जाते हैं तथा उनका संगठन दृढ़ हो गया है। कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर दो एसोशियेशनों की सम्मिलित सभा होती है क्योंकि एक एसोशियेशन का सदस्य दूसरे एसोशियेशन के सदस्य से कारबार करता है। इसके अतिरिक्त देशी बैंकरों का ऐसा कोई संगठन नहीं है जिसके द्वारा उन्हें ग्राहकों की साख सम्बन्धी जानकारी का आदान प्रदान हो और वे साख अथवा सूद के सम्बन्ध में एक सी नीति निर्धारित कर सकें। भिन्न भिन्न बैंकरों में कोई सहयोग नहीं होता। हां मारवाड़ी और चेट्टियर बैंकरों में आपस में सहयोग अवश्य होता है और वे समय पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करते हैं।

इन बैंकरों का कारबार पारिवारिक होता है और पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। अतएव इनको बैंकिंग की व्यावहारिक शिक्षा अनायास ही अपनी फर्म का काम देखने से प्राप्त हो जाती है। हां उन्हें बैंकिंग की सैद्धान्तिक

शिक्षा प्राप्त नहीं होती । देशी बैंकर का कारबार सरल और झंझटों से मुक्त होता है इस कारण देशी बैंकर से काम करने में देरी नहीं लगती और न कोई विशेष झंझट ही होती है। ग्राहक हर समय बैंकर के पास जा सकता है। उसके काम का समय कोई निश्चित नहीं होता, वह हर समय काम करता है। उनके काम करने का ढंग बहुत कम खर्चीला और उनके दफ्तर इत्यादि का खर्चा बहुत कम होता है। उसके कार्यालय में कोई विशेष फरनिचर या बहुत से क्लर्क नहीं होते। केवल कुछ मुनीम और एक-आध तिजोरी होती है। उनका हिसाब रखने का ढंग सरल और कम खर्चीला होता है किन्तु हिसाब बहुत ठीक रहता है उसमें कोई गड़बड़ नहीं होती। हिसाब की जाँच की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती और न कभी लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) ही तैयार किया जाता है। देशी बैंकर बैंकिंग के साथ और भी व्यापार करता है किन्तु दोनों के हिसाब पृथक् नहीं रहते और न दोनों का रुपया ही अलग रक्खा जाता है। इन बैंकरों का कारबार भी अधिकतर पुश्तैनी पुराने ग्राहकों से ही होता है। ऐसे व्यापारी अधिक मिलेंगे जिनकी कई पुश्तें एक ही बैंकर की फर्म से कारबार करती रही हों।

बैंकर अपने पुराने ग्राहकों के परिवार से, उनकी आर्थिक स्थिति और उनके व्यापार की दशा से भली भांति परिचित होता है। इस कारण उसे इस बात का निश्चय करने में देरी नहीं लगती कि किस ग्राहक को कितना ऋण देना चाहिए अथवा नहीं देना चाहिए। ऋण देने के उपरान्त भी वह बैंकर अपने कर्जदारों के कारबार को समीप से देखभाल सकते हैं जैसा कि व्यापारिक बैंकों के लिए सम्भव नहीं है। यही कारण है कि उनका रुपया बहुत कम मारा जाता है। देशी बैंकरों से जब भी जमा किया हुआ रुपया वापस मांगा जाता है वे तुरन्त ही वापस कर देते हैं। ऐसा बहुत कम होता है कि कोई बैंकर मांगने पर तुरन्त जमा किया हुआ रुपया वापस न करे। यही नहीं वे अपनी फर्म की साख और प्रतिष्ठा को बचाने के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं। इससे यह पता चलता है कि वे यथेष्ट नक़द कोष (Cash Reserves) रखते हैं। वे अपने ग्राहकों को उनका लिखित हिसाब समय-समय पर देते हैं। यह बैंकर अपने उत्तरदायित्व को निबाहने और ईमानदारी से कारबार करने के लिए प्रसिद्ध होते हैं। यही कारण है कि उनकी साख (Credit) बहुत ऊँची होती है और व्यापारी उन पर विश्वास रखते हैं।

यह बैंकर चालू जमा (Current Deposits) और मद्दती जमा लेते हैं। सूद की दर सीजन, रक़म और कितने समय के लिए जमा की जा रही है इसके अनुसार भिन्न होती है। परन्तु यहां यह न भूल जाना चाहिए कि आधुनिक ढंग के बैंक जितना जमा (डिपाजिटों) पर निर्भर रहते हैं उतने देशी बैंकर निर्भर नहीं रहते। वे अपनी पूँजी पर ही अधिक निर्भर रहते हैं। मुलतानी और मारवाड़ी बैंकर तो साधारणतः जनता से डिपाजिट स्वीकार ही नहीं करते। वे अपनी पूँजी (Capital) से ही कारबार करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर अपने ज तिमाइयों से जो शिकारपुर तथा राजपूताने में रहते हैं ऋण ले लेते हैं। मुलतानी इम्पीरियल बैंक से भी अधिकतर आवश्यकता पड़ने पर ऋण ले लेते हैं। पिछले दिनों में सहकारी बैंकों (Co operative Banks), मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों (Joint Stock) तथा सरकार की प्रतिस्पर्द्धा के कारण देशी बैंकरों को कम डिपाजिट मिलने लगी है। पोस्ट आफिस कैश सर्टिफिकेट, सरकारी ऋण, नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट, तथा सहकारी बैंकों तथा मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों की कार्य पद्धति अधिक आकर्षक है। वे डिपाजिट आकर्षित करने के लिए विज्ञापन का सहारा लेते हैं। इस कारण जनता उनकी ओर अधिक आकर्षित होती है और उन्हें डिपाजिट अधिक मिल जाती है। यह देशी बैंकर इन लोगों की डिपाजिट लेते हैं। उन्हें मांगने पर नक़दी में ही रुपया निकालने की सुविधा नहीं देते। कुछ देशी बैंकर अवश्य ही चेक बुक और पास बुक देते हैं किन्तु व्यापारिक बैंक तथा इम्पीरियल बैंक उनके चेकों को स्वीकार नहीं करते इस कारण उन पर काटे गए चेकों का चलन सीमित ही होता है। जब सीज़न आने पर इन्हें अधिक रुपये की आवश्यकता होती है तो वे एक दूसरे से उधार ले लेते हैं और बड़े बड़े केन्द्रों और शहरों में वे कुछ हद तक इम्पीरियल बैंक तथा अन्य मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों से प्रामिसरी नोट पर ऋण ले लेते हैं या फिर हुंडियों को बैंकों से भुना कर अधिक कोष (Fund) प्राप्त करते हैं।

देशी बैंकर किसानों को सीधे ऋण नहीं देते परन्तु स्थानीय महाजन अथवा साहूकार को आवश्यकता पड़ने पर ऋण देते हैं। यह महाजन किसानों को ऋण देते हैं। यही नहीं देशी बैंकर व्यापारियों और आढ़तियों को भी ऋण देते हैं जो खेती की पैदावार को खरीदते हैं। देशी बैंकर व्यापारियों और व्यवसायियों को साख देने का कार्य विशेष रूप से करते हैं। वे हुंडी भुनाते हैं, हुंडियां खरीदते हैं, पैदावार पर ऋण देते हैं और डिपाजिट स्वीकार

करते हैं। कुछ औद्योगिक केन्द्रों में देशी बैंकर मिलों में अपना रुपया जमा कर देते हैं। रुपया मुद्दती जमा (Fixed Deposit) के रूप में जमा किया जाता है। इसके अतिरिक्त देशी बैंकर बड़े-बड़े कारखानों को और कोई आर्थिक सहायक नहीं देते। हां आप कारखानों के डिबेंचर खरीद कर, तथा कंपनियों के शेयरों को अपने पास रख कारखानों को अधिक समय के लिए ऋण देते हैं।

देशी बैंकर बहुधा प्रामिसरी नोट पर ऋण दे देते हैं। यदि रकम बहुत अधिक हुई तो प्रामिसरी नोट पर ज़मानती के हस्ताक्षर ले लेते हैं नहीं तो बहुत अधिक सूद लेते हैं। एक दूसरा तरीका यह है कि ऋण लेने वाला प्रामिस्री नोट लिखने के स्थान पर ऋण को स्वीकार करते हुए एक रसीद लिख देता है जिसमें सूद की दर का भी उल्लेख रहता है। एक तीसरा तरीका स्टाम्प पर पुर्ज़ा लिखाकर ऋण देने का है। इस बांड में ऋण के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक सभी शर्तों का उल्लेख रहता है। एक चौथा तरीका ऋण देने का यह भी है कि ऋण लेने वाला बैंकर की बही में ही हस्ताक्षर करदे और उस पर स्टैम्प लगा दिए जावें। जब बैंकर बहुत बड़ी रकम ऋण देते हैं तो भूमि तथा इमारत इत्यादि को बन्धक रख लेते हैं किन्तु उस दशा में सूद की दर कम कर दी जाती है।

ऋण देने के अतिरिक्त देशी बैंकर हुंडी का कारबार बहुत अधिक करते हैं। हुंडियां कई प्रकार की होती हैं। (१) दर्शनी हुंडी का भुगतान तुरन्त करना पड़ता है। मुद्दती हुंडी की एक अवधि होती है (११, २१, ३१, ४१ दिन इत्यादि ३६१ दिन तक)। धनीजोग और शाहजोग हुंडियां भी होती हैं। उनका भुगतान करने से पूर्व बैंकर को यह निश्चय कर लेना पड़ता है कि वह जिस व्यक्ति को भुगतान कर रहा है वही उस हुंडी का न्यायोचित स्वामी है। यदि वह गलत व्यक्ति को भुगतान कर देता है तो वह वास्तविक स्वामी के लिए फिर भी देनदार रहेगा। किन्तु दर्शनी हुंडी और मुद्दती हुंडी को जो भी व्यक्ति उपस्थित करे उसे भुगतान कर देने से बैंकर का कोई उत्तरदायित्व नहीं रहता। हुंडियां देखनहार (Bearer) और फरमानजोग (Payable to Order) भी होती हैं। कभी-कभी यह लोग हुंडियों को अपने एजेंट तथा अन्य व्यापारियों पर केवल इसलिए लिख देते हैं जिससे उन्हें रुपया प्राप्त हो जावे। उदाहरण के लिए एक व्यापारी को दस हज़ार रुपये की आवश्यकता है। वह अपने एजेंट तथा किसी अन्य व्यापारी

पर जिससे उसका सम्बन्ध है दस हज़ार की हुंडी लिख देता है और उसको किसी देशी बैंकर से भुना कर रुपये प्राप्त कर लेता है। जिस सूद की दर पर देशी बैंकर हुंडी भुनाते हैं उसको बाज़ार-दर कहते हैं। यह बाज़ार-दर घटती-बढ़ती रहती है और भिन्न भिन्न व्यापारिक केन्द्रों की बाज़ार-दर में बहुत भिन्नता रहती है। हुंडियों के द्वारा देशी बैंकर रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजते हैं।

बैंकिंग का काम करने के अतिरिक्त देशी बैंकर अन्य व्यापार भी करते हैं। उनकी जो पूँजी बैंकिंग के कारबार में लगी होती है उसमें तथा व्यापार में लगी हुई पूँजी में कोई भेद नहीं किया जा सकता। जब भी आवश्यकता हुई इधर की पूँजी उधर लगा दी जाती है। केवल मदरास प्रान्त के नट्टकोट्टाई चेट्टी और बम्बई प्रान्त के मुलतानी ही ऐसे देशी बैंकर हैं जो बैंकिंग के साथ अन्य व्यापार नहीं करते हैं। नहीं तो अधिकांश देशी बैंकर अनाज, कपास, जूट तथा अन्य खेती की पैदावारों, कपड़े और सोना-चाँदी का व्यापार या सट्टा या फाटका करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जनरल मर्चेंट, आढ़त ब्रोकर, ज्वेलर्स (जेवर का) का भी काम करते हैं। व्यापार के साथ-साथ वे शक्कर, तेल, आटे के कारखानों तथा कपास, जूट, धान, रेशम तथा शीशे के कारखानों को भी चलाते हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि देशी बैंकर बैंकिंग के साथ और भी व्यापार तथा व्यवसाय करते हैं और बहुधा उनको अपने व्यापारिक तथा व्यवसायिक कारबार से बैंकिंग की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि पिछले दिनों में देशी बैंकरों का बैंकिंग कारबार कम होता जा रहा है इस कारण उन्होंने अपना ध्यान व्यापार तथा व्यवसाय की ओर अधिक लगाना आरम्भ कर दिया है।

देशी बैंकरों की अवनति के कारण :—देशी बैंकरों की क्रमशः अवनति हो रही है। उसके नीचे लिखे कारण मुख्य हैं :—

(१) इम्पीरियल बैंक, मिश्रित पूँजी के व्यापारिक बैंकों (Joint Stock Banks) तथा सहकारी बैंकों (Co-operative Banks) की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्द्धा। इम्पीरियल बैंक को रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए बहुत सुविधा है इस कारण देशी बैंकर रुपये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में उससे होड़ नहीं कर सकते। सहकारी बैंकों का सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण वे सरलतापूर्वक डिपाज़िट आकर्षित

कर लेते हैं और मिश्रित पूँजी वाले बैंक ऋण देने में उनसे होड़ करते हैं। इस बढ़ती हुई प्रतिस्पर्द्धा के होते हुए भी देशी बैंकरों ने अपनी कार्यपद्धति में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जिससे वे इस प्रतिस्पर्द्धा का सामना कर सकते।

(२) उनकी अवनति का दूसरा कारण यह है कि हुंडियों पर स्टाम्प ड्यूटी बहुत अधिक है इस कारण हुंडियों का चलन और कारबार कम होता है।

(३) बैंकर्स साक्षी एक्ट (Bankers Evidence Act.) में जो बैंकों को कानूनी सुविधायें प्राप्त हैं वे देशी बैंकरों को प्राप्त नहीं हैं।

(४) वस्तुओं का निर्यात (Export) करने वाली फर्में अब प्रमुख मंडियों और व्यापारिक केन्द्रों में अपनी शाखायें स्थापित करने लगी हैं। वे अभी तक इनको ही अपना एजेंट बना देती थीं। इस परिवर्तन का फल यह हो रहा है कि देशी बैंकरों का एजेंसी का कारबार भी कम होता जा रहा है।

(५) देश में व्यापार का विस्तार होने के कारण देशी बैंकरों को व्यापार में अधिक लाभ दिखलाई देने लगा है अतएव वे सट्टा और व्यापार की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं।

पिछले कुछ वर्षों से कुछ ऊँचे दर्जे के देशी बैंकर अपनी कार्य पद्धति को बदलने लगे हैं और आधुनिक बैंकिंग के ढंग को अपनाने लगे हैं। वे चेक और पास बुक का उपयोग करते हैं और सेविंग्स डिपाज़िट भी स्वीकार करते हैं।

देशी बैंकरों तथा उनके ग्राहकों का सम्बन्ध :—सभी बैंकिंग इन-क्वायरी कमेटियों ने देशी बैंकरों की सचाई और ईमानदारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनके ग्राहक उनका बहुत आदर करते हैं और उन्हें अपना हितू और मित्र समझते हैं। वे केवल अपने ग्राहकों से बैंकिंग का कारबार ही नहीं करते वरन् उनको व्यापार सम्बन्धी सलाह और परामर्श भी देते हैं। वे अपने ग्राहकों के कारबार पर दृष्टि रखते हैं और इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि वे किस प्रकार का कारबार करते हैं। अपने ग्राहकों से ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उन्हें उनकी आर्थिक स्थिति का ठीक-ठीक पता रहता है जिसका वे अपने बैंकिंग कारबार में पूरा लाभ उठाते हैं।

देशी बैंकरों का व्यापारिक बैंकों (Commercial Banks) से सम्बन्ध :—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि साधारणतः देशी बैंकर अपनी पूँजी और डिपाज़िटों से ही काम चलाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे एक दूसरे से रुपया ले लेते हैं। किन्तु जब व्यापार की तेजी होती है और उनके ग्राहक अधिक ऋण की माँग करते हैं तो उनके यह साधन पर्याप्त नहीं होते। उन्हें इम्पीरियल बैंक, विनिमय बैंक (Exchange Banks) तथा व्यापारिक बैंकों के पास आर्थिक सहायता के लिए विवश होकर जाना पड़ता है। किन्तु यह बैंक उन्हीं बैंकरों को ऋण देते हैं जिनका नाम उनकी स्वीकृत सूची में है। इम्पीरियल बैंक तथा प्रत्येक व्यापारिक बैंक उन देशी बैंकरों की एक स्वीकृत सूची रखता है जिनको वह ऋण देना उचित समझता है। यही नहीं उस सूची में यह भी निर्धारित रहता है कि किस बैंकर को अधिक से अधिक कितना ऋण दिया जा सकता है। अधिकतर यह बैंक देशी बैंकरों की हुंडियां भुनाकर ही उन्हें ऋण देते हैं।

केन्द्रीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी तथा प्रान्तीय बैंकिंग कमेटियों के सामने साक्षी देते हुए देशी बैंकरों के प्रतिनिधियों ने बार-बार यह शिकायत की थी कि इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंक उनके साथ वैसा सहानुभूति का व्यवहार नहीं करते जैसा कि एक बैंकर होने के नाते उनके साथ होना चाहिए। जब वे इम्पीरियल बैंक से ऋण लेते हैं तो इम्पीरियल बैंक उनके कारबार की जिस भद्दे ढंग से जाँच पड़ताल करता है वह उनको बहुत अखरती है। फिर भी इम्पीरियल बैंक उन्हें वह सुविधायें प्रदान नहीं करता जो व्यापारिक बैंकों को प्रदान करता है। यही स्थिति बड़े व्यापारिक बैंकों की है। कभी-कभी बहुत ऊँचे दर्जे के प्रतिष्ठित देशी बैंकरों को भी ऋण देना अस्वीकार कर दिया जाता है। इन आरोपों के उत्तर में इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंकों का कहना यह है कि देशी बैंकर हमारे साथ कोई हिसाब नहीं रखते और वे बैंकिंग के अतिरिक्त अन्य व्यापार तथा सट्टे में इतने अधिक फँसे रहते हैं कि उनको अधिक ऋण देना जोखिम का काम है। उनकी ठीक-ठीक आर्थिक स्थिति को जान सकना कठिन होता है क्योंकि व कभी अपनी लेनी देनी का लेखा (Balance Sheet) तैयार नहीं करते। इस कारण उनको ऋण देने में सावधानी बरतना आवश्यक है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऊपर लिखे आक्षेपों में बहुत तथ्य है। जब इम्पीरियल बैंक तथा व्यापारिक बैंक को किसी देशी बैंकर की अच्छी आर्थिक

स्थिति के सम्बंध में विश्वास और भरोसा हो जाता है तो वे उसकी सब प्रकार आर्थिक सहायता करते हैं। उदाहरण के लिए मदरास के चेट्टियों और बम्बई के मुलतानी बैंकरों को इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंकों से ऋण प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं होती। बैंकिंग के सिद्धान्त के भी यह सर्वथा विरुद्ध है कि जो देशी बैंकर सट्टे तथा अन्य व्यापार में अधिक फँसा हो उसको अधिक ऋण दिया जावे।

देशी बैंकरों के संगठन के दोष और गुणः—यदि हम ध्यानपूर्वक देशी बैंकरों के कार्यों का अध्ययन करें तो हमें उनके संगठन में निम्नलिखित दोष दिखलाई पड़ेंगेः—

(१ उनमें से अधिकांश दकियानूसी और रूढ़िवादी हैं और आपस में एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। उनमें समय के साथ अपनी कार्य पद्धति को बदलने की क्षमता नहीं है और न वे नई दिशाओं में अपने कारबार को बढ़ाने की ही क्षमता रखते हैं। वे अपना कारबार पुराने ढंग से अकेले और बहुधा गुप्त रूप से करने के अभ्यस्त हैं। इस कारण सर्वसाधारण की दृष्टि को वे आकर्षित नहीं कर पाते और न उनका जनता पर अधिक प्रभाव ही पड़ता है। इसका सम्भवतः एक कारण यह है कि देशी बैंकिंग का कारबार केवल कुछ परिवारों में ही सीमित है इस कारण उसमें नया रुधिर नहीं आता। इस कारण उनमें नये विचारों का समावेश नहीं हो पाता। इनके दकियानूसी होने तथा पुराने ढंग से चिपटे रहने का एक कारण यह भी है कि वे आधुनिक बैंकों के सम्पर्क में बहुत कम आते हैं।

(२)उनके संगठन का दूसरा दोष यह है कि वे बहुत कम जमा (डिपाज़िट) लेते हैं जो आधुनिक संगठित बैंकों का मुख्य कार्य है। इसका फल यह होता है कि देशवासियों की बचत डिपाज़िट के रूप में आकर्षित नहीं होती और न उसका उपयोग अधिक उत्पादन के लिए हो पाता है। बहुत सी पूँजी देश में बेकार पड़ी रहती है।

(३) वे व्यापार में हुंडियों का उपयोग कम करते हैं। नक़द रुपये का उपयोग अधिक करते हैं।

(४) उनका व्यापारिक बैंकों से कोई सम्बन्ध नहीं होता इस कारण देश में दो द्रव्य-बाज़ार (Money Markets) साथ-साथ एक दूसरे से पृथक् रहकर काम करते हैं और दो सूद की दरें प्रचलित रहती हैं। यही नहीं रिज़र्व

बैंक का भी इन पर कोई नियन्त्रण नहीं है इस कारण देशी बैंकिंग असंगठित रहता है।

यद्यपि देशी बैंकरों के संगठन में ऊपर लिखे दोष हैं परन्तु फिर भी उनकी देश को बहुत आवश्यकता है क्योंकि देश में बड़े-बड़े नगरों को छोड़ कर छोटे स्थानों और मंडियों में व्यापारिक बैंकों की शाखायें नहीं हैं। वहां केवल देशी बैंकर ही बैंकिंग सुविधायें प्रदान करते हैं। यद्यपि पिछले वर्षों में देश में मिश्रित पूँजीवाले व्यापारिक बैंकों का विस्तार बहुत तेज़ी से हुआ है, नये बैंक खोले गए और पुराने बैंकों ने अपनी शाखाओं का खूब ही विस्तार किया, फिर भी देश के विस्तार को देखते हुए बैंकिंग की सुविधा कम है। और भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इस बात की तो कभी सम्भावना ही नहीं हो सकती कि बड़े गाँवों, कस्बों और छोटे मंडियों में बैंकों की ब्रांचें स्थापित हो सकें। वहाँ तो देशी बैंकर ही काम कर सकते हैं।

उनके पास शताब्दियों का बैंकिंग अनुभव है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनको मिला है। उनके काम करने का ढंग कम खर्चीला है और उनका बैंकिंग अनुभव बहुमूल्य है। अतएव उसको नष्ट न होने देना चाहिए और उसका उपयोग करना चाहिए। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर सेन्ट्रल बैंकिंग कमेटी ने देशी बैंकरों के सुधार के लिए सुझाव रक्खे थे। सेन्ट्रल बैंकिंग कमेटी ने इस बात पर जोर दिया था कि जब रिज़र्व बैंक की स्थापना हो जावे तो देशी बैंकरों का सम्बन्ध रिज़र्व बैंक से स्थापित कर देना चाहिए।

देशी बैंकर और रिज़र्व बैंक का सम्बन्ध—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि सेन्ट्रल बैंकिंग कमेटी ने इस बात पर जोर दिया था कि रिज़र्व बैंक के स्थापित हो जाने पर देशी बैंकरों का उससे सम्बन्ध स्थापित हो जाना चाहिए। अस्तु जब रिज़र्व बैंक की स्थापना हो गई तो रिज़र्व बैंक ने नीचे लिखी शर्तों पर देशी बैंकरों को अपने से सम्बन्धित करने का प्रस्ताव रक्खा :—

(१) जो भी देशी बैंकर रिजर्व बैंक से सम्बन्धित होना चाहेगा और रिजर्व बैंक से सुविधायें प्राप्त करना चाहेगा उसे शुद्ध बैंकिंग के अतिरिक्त अन्य व्यापार को छोड़ देना होगा।

(२) उन्हें अपना हिसाब ठीक प्रकार से जिस प्रकार रिज़र्व बैंक कहे उस प्रकार रखना होगा। अपने हिसाब की नियमित रूप से आय-व्यय परीक्षकों से जाँच (आडिट) करवानी होगी।

(३) रिज़र्व बैंक आवश्यकता समझने पर उनके हिसाब और कारबार का निरीक्षण कर सकेगा। उन्हें रिज़र्व बैंक को समय-समय पर अपने कारबार के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी और सूचनायें देनी होगी। रिज़र्व बैंक जिस प्रकार जानकारी उनसे चाहेगा उन्हें देनी होगी और रिज़र्व बैंक को उनके बैंकिंग के कारबार का नियंत्रण करने का अधिकार होगा।

(४) प्रत्येक देशी बैंकर की निज की पूँजी कम से कम पांच लाख रुपये होगी और उनको अपनी जमा का एक निश्चित प्रतिशत रिज़र्व बैंक के पास जमा करना होगा। फिर भी रिज़र्व बैंक उनसे सीधा सम्बन्ध स्थापित न करके अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के पक्ष में था।

ऊपर लिखा प्रस्ताव केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी के मत के विरुद्ध था। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी (Central Banking Committee) का यह मत था कि आरम्भ में देशी बैंकरों के साथ नरमी का व्यवहार करना चाहिए उन पर कड़ी शर्तें न लगाना चाहिए। उदाहरण के लिए आरम्भ में कुछ वर्षों तक देशी बैंकरों को रिज़र्व बैंक में अनिवार्य रूप से जमा (Deposit) रखने पर विवश न करना चाहिए। किन्तु पहली गश्ती चिट्ठी में रिज़र्व बैंक ने जो ऊपर लिखी शर्तें लिखकर भेजीं वे इतनी कठोर थीं कि कोई देशी बैंकर उनको स्वीकार करने के लिए तैयार न था।

इस पहले प्रस्ताव का ऐसा घोर विरोध हुआ कि रिज़र्व बैंक को २६ अगस्त १६३७ को एक दूसरी योजना उपस्थित करनी पड़ी जो केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी की सिफारिशों के अनुरूप थी और उसमें देशी बैंकरों का रिज़र्व बैंक से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाने की व्यवस्था थी। जिन शर्तों पर रिज़र्व बैंक देशी बैंकरों को अपने से सम्बन्धित करने के लिए तैयार था वे नीचे लिखी थीं :—जो देशी बैंकर रिज़र्व बैंक से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं उन्हें अपने कारबार को शुद्ध बैंकिंग तक ही सीमित रखना होगा, वे दूसरे प्रकार का व्यापार न कर सकेंगे। उन्हें अपने हिसाब को ठीक-ठीक रखना होगा और रजिस्टर्ड अकाउन्टैंट से उसकी जाँच करवानी होगी और जब रिज़र्व बैंक चाहेगा तो उनके हिसाब का निरीक्षण कर सकेगा। रिज़र्व बैंक उनकी आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए जो भी सूचना चाहेगा वह देनी होगी। शिड्यूल बैंक जो भी विवरण-पत्र (Statement) अपने कारबार के सम्बन्ध में समय-समय पर रिज़र्व बैंक को भेजते हैं वे उन्हें भी भेजने होंगे और लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet)

इत्यादि जो कम्पनी एक्ट के अनुसार बैंकों को प्रकाशित करना अनिवार्य है वे उन्हें भी प्रकाशित करने होंगे। जब देशी बैंकरों की जमा (Deposit) उनकी पूँजी से पांच गुनी व अधिक हो जावे तभी उन्हें रिज़र्व बैंक में अनिवार्य जमा (Compulsory Deposit) रखनी होगी अन्यथा उन्हें रिज़र्व बैंक में अनिवार्य जमा रखने की कोई आवश्यकता न होगी। प्रत्येक देशी बैंकर को कम से कम २ लाख की पूँजी (Capital) रखनी होगी जिसे ५ वर्षों में बढ़ा कर पांच लाख करना होगा। जो देशी बैंकर इन शर्तों को पूरा करेंगे रिज़र्व बैंक उनकी हुंडियां और बिलों को भुनावेगा, सरकारी सिक्यूरिटी की जमानत पर ऋण देगा और रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए वही सुविधायें देगा जो वह शिड्यूल (Scheduled) बैंकों को देता है।

इस प्रस्ताव को भी देशी बैंकरों ने स्वीकार नहीं किया। वे न तो अन्य व्यापार को छोड़ना ही चाहते हैं और न अपने हिसाब का निरीक्षण ही कराने के लिए तैयार हैं। रिज़र्व बैंक का इस प्रस्ताव से उद्देश्य यह था कि देशी बैंकर अन्य कारबार को छोड़कर अधिकाधिक डिपाज़िट बैंकिंग की ओर आवें और जिस प्रकार से मिश्रित पूँजी वाले बैंक (Joint Stock Banks) कारबार करते हैं वे भी कारबार करें। किन्तु देशी बैंकर अपने पुराने ढंग को छोड़ने को तैयार न थे और न वह यही पसन्द करते थे कि वे किसी को अपना हिसाब दिखलावें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त में देशी बैंकरों को रिज़र्व बैंक के बताये हुए मार्ग पर ही चलना होगा। किन्तु रिज़र्व बैंक के अधिकारियों को यह समझना चाहिये था कि देशी बैंकर एक रात्रि में अपनी पुरानी पद्धति को छोड़ कर आधुनिक बैंकिंग पद्धति को किस प्रकार अपना सकते हैं। रिज़र्व बैंक को आरम्भ में उन्हें कुछ छूट देनी थी। इस प्रकार अभी तक रिज़र्व बैंक और देशी बैंकरों का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। यद्यपि रिज़र्व बैंक ने अपनी ओर से ऊपर लिखी शर्तों पर देशी बैंकरों को सम्बन्धित करने का प्रस्ताव वापस नहीं लिया है।

रिज़र्व बैंक का कहना यह है कि यदि देशी बैंकर रिज़र्व बैंक से सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं करते तो भी भारतीय द्रव्य-बाज़ार (Indian Money Market) से उनका सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है यदि देश में एक खुला बिल बाजार (Open Bill Market) स्थापित हो जावे और उन्नति कर जावे। उस बिल बाजार में देशी बैंकरों के बिल भी स्वतन्त्रतापूर्वक बिना

रोक-टोक के प्रचलित हों और भुनाये जावें। रिज़र्व बैंक इस स्थिति को लाने के लिये स्वीकृत देशी बैंकरों के बिलों तथा हुंडियों को स्वीकार कर लेगा यदि वे किसी शिड्यूल बैंक के द्वारा उपस्थित की जावेगी। किन्तु रिज़र्व बैंक की यह आशा कि इस देश में खुला बिल बाज़ार स्थापित हो जावेगा संदेहात्मक है क्योंकि इसमें बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। हम इस सम्बन्ध में आगे विचार करेंगे।

१ अक्टूबर १६४० को रिज़र्व बैंक ने रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने की एक नई योजना निकाली। उस योजना के अनुसार रिज़र्व बैंक रुपया एक से दूसरे स्थान को रियायती दर पर भेजने की उन देशी बैंकरों और गैर-शिड्यूल (Non-Scheduled) बैंकों को सुविधा देगा जो कुछ शर्तों को पूरा करेंगे, और जो रिज़र्व बैंक की स्वीकृत सूची पर हैं। अभी तक जिन देशी बैंकरों ने इस सुविधा से लाभ उठाने का प्रयत्न किया है और जिन्हें रिज़र्व बैंक ने स्वीकृत किया है उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जाने लायक है।

अन्त में हमें यह न भूलना चाहिए की देशी बैंकरों का भविष्य उन्हीं के हाथ में है। उनके स्वार्थ में यही है कि वे अपने कारबार के ढंग में सुधार करें और व्यापारिक बैंकों के अनुसार ही अपनी कार्यपद्धति बनालें। साथ ही उन्हें अपने कारबार को भी मिश्रित पूँजी वाली कंपनियों (Joint Stock Companies) के रूप में संगठित करना चाहिये। अथवा जैसा कि रिज़र्व बैंक का मत है उन्हें बट्टा कंपनियों (Discount Companies) में संगठित हो जाना चाहिये और बिलों के भुनाने का कार्य विशेष रूप से करना चाहिए तभी वे पनप सकेंगे।

देशी बैंकरों का देशी व्यापार के लिए बहुत उपयोग है अतएव उनका संगठन उनके लिये तथा देश के व्यापार के लिए हितकर होगा। किन्तु जब तक इस प्रकार का व्यवस्था नहीं होती कि शुद्ध बैंकिंग व्यापार से ही उन्हें यथेष्ट लाभ हो तब तक उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वे अन्य व्यापार छोड़ देंगे। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें बड़े व्यापारिक बैंक अपना एजेंट बना लें। इस प्रकार उन स्थानों पर भी बैंकिंग सुविधा उपलब्ध हो जावे जहाँ बैंकों की ब्रांच कभी लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती, और देशी बैंकर बिलों तथा हुंडियों को भुनाने का अधिकाधिक काम अपने हाथ में लें। यह तभी हो सकता है जब देश में बिल बाज़ार उन्नत हो।

अध्याय १४

सहकारी साख समितियाँ और सहकारी बैंक

(Co operative Credit Societies and Co operative Banks)

कृषि सहकारी साख समितियाँ (Agricultural Co operative Credit Societies)—भारतीय किसान भयंकर ऋण के बोझ से दबा रहता है और महाजन के द्वारा लूटा जाता है। किसान को खेती-बारी के लिए साख की व्यवस्था करने के उद्देश्य से १६०४ में भारतवर्ष में कृषि सहकारी साख समितियाँ स्थापित की गई। इन समितियों के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो खेती-बारी में लगे हों तथा एक ही गाँव में रहते हों। प्रत्येक गाँव के निवासी एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से भली-भाँति परिचित होते हैं तथा एक दूसरे के चरित्र के विषय में भी जानकारी रखते हैं। यह साख समितियाँ असीमित उत्तरदायित्व (Unlimited Liability) वाली होती हैं। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि एक सदस्य दूसरे सदस्य के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति से भली भाँति परिचित हो। असीमित दायित्व के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिए बाध्य है। यही कारण है कि इन समितियों में नवीन सदस्य तभी लिया जा सकता है जब दूसरे सब सदस्य उसको सदस्य बनाने के पक्ष में हों। सहकारी साख समिति का सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के कार्यों का उत्तरदायी बन जाता है। इस कारण किसी नवीन सदस्य को सर्वसम्मति से ही चुना जाता है।

प्रायः एक गाँव में एक ही साख समिति स्थापित की जाती है। समिति का प्रबन्ध करने का अधिकार साधारण सभा (General Meeting) तथा प्रबन्धकारिणी समिति अर्थात् पंचायत को होता है। साधारण सभा सब महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत दे देती है और पंचायत साधारण सभा की आज्ञा का पालन करती है। वस्तुतः साधारण सभा केवल नीति निर्धारित करती है और पंचायत सारा कार्य करती है।

प्रबन्धकारिणी समिति निम्नलिखित कार्य करती है :

(१) वह सदस्यों को हिस्से देती है और उन्हें समिति का सदस्य बनाती है।

(२) वह गाँव में डिपाज़िट (जमा) इकट्ठी करने का प्रयत्न करती है और सेन्ट्रल तथा डिस्ट्रक्ट सहकारी बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है।

(३) वह यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए रुपया उधार दिया जावे। साथ ही वह उस अवधि के अन्त में ऋण के रुपये को वसूल करती है।

(४) वह समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है और सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार से लिखा-पढ़ी करती है।

(५) वह उन सदस्यों के लिए जो सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं तथा खेतो की पैदावार को बेंचना चाहते हैं दलाल का काम करती है।

(६) वह सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करती है तथा उन्हें अपनी बचत को जमा करने के लिए उत्साहित करती है। वह सरपंच तथा मंत्री का चुनाव करती है। सरपंच समिति के कार्य की देखभाल करता है तथा मंत्री समिति का हिसाब रखता है।

समिति प्रवेश-फीस, हिस्सों का मूल्य, डिपाज़िट, तथा ऋण के द्वारा कार्यशील पूँजी (Working Capital) इकट्ठा करती है। रक्षित कोष (Reserve Fund) भी समिति की कार्यशील पूँजी को बढ़ाता है। प्रवेश फीस नाम मात्र की होती है जो समिति की स्थापना में होने वाले व्यय के लिए ली जाती है। कुछ प्रान्तों में सदस्यों को समिति के हिस्से (Shares) खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रान्तों में हिस्से होते ही नहीं। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मदरास में साख समितियाँ हिस्से वाली होती हैं। अन्य प्रान्तों में हिस्से तथा गैर हिस्से वाली दोनों तरह की समितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ हिस्से वाली होनी चाहिए अथवा गैर हिस्से वाली, यह विचारणीय विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि समितियाँ हिस्से वाली होनी चाहिए, क्योंकि हिस्सों को बेचकर, थोड़ी कार्यशील पूँजी (Working Capital) इकट्ठी कर ली जाती है। समिति

अपनी पूँजी सदस्यों को ऋण स्वरूप देकर उस पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष (Reserve Fund) की वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों में विशेष रुचि से भाग लेते हैं, क्योंकि वे समिति को अपनी वस्तु समझते हैं। यह तर्क ठीक है, किन्तु भारतवर्ष के गाँवों में निर्धनता इतनी अधिक है कि ईमानदार परिश्रमी किसान को हिस्से का मूल्य चुकाने में कठिनाई हो सकती है और वह समिति की सदस्यता से वंचित रह सकता है। इस कारण कुछ प्रान्तों में तो हिस्से होते ही नहीं और जहाँ *हिस्से होते भी हैं वह दस रु से अधिक के नहीं होते जिन्हें सदस्य धीरे धीरे* किश्तों में चुकाता है।

साख समिति का कोई भी सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। प्रवेश फीस तथा हिस्सों के मूल्य से समिति के पास नाम मात्र की पूँजी (Capital) इकट्ठा होती है। इस कारण समितियाँ अधिकतर सेंट्रल अथवा डिस्ट्रिक्ट सहकारी बैंकों से ऋण लेकर काम चलाया करती हैं। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ अभी तक डिपाजिट आकर्षित करने में सफल नहीं हुई। वास्तव में कोई साख समिति जितनी ही अधिक डिपाजिट आकर्षित करे वह उतनी ही सफल समझी जानी चाहिए; क्योंकि डिपाजिट तभी जमा होगी जब जनता को समिति का भरोसा होगा। भारतवर्ष में बम्बई प्रान्त को छोड़ और किसी प्रान्त में अभी तक साख समितियाँ डिपाजिट आकर्षित नहीं कर पाई हैं। साख समितियाँ उन लोगों से भी डिपाजिट स्वीकार करती हैं जो समिति के सदस्य नहीं होते।

समिति के पंचों को कोई वेतन नहीं मिलता। केवल मंत्री को यदि वह सदस्य न हो तो थोड़ा सा वेतन दिया जाता है।

सहकारी साख समितियों की स्थापना लाभ की दृष्टि से नहीं की जाती। इसलिए अपरिमित दायित्व (Unlimited Liability) वाली समितियों का लाभ तो बाँटा ही नहीं जाता और यदि बाँटा भी जाता है तो जब रक्षित कोष (Reserve Fund) पूँजी के बराबर हो जाता है तब प्रांतीय सरकार से आज्ञा लेकर बाँटा जाता है फिर भी यथेष्ट भाग रक्षित कोष में जमा कर दिया जाता है। परिमित दायित्व (Limited Liability) वाली समितियों में लाभ बाँटा जा सकता है किन्तु उनको भी यथेष्ट धन रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियों का प्रबंध-व्यय बहुत कम होने के कारण तथा लाभ न बंटने के कारण रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिए रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। रक्षित कोष किसी भी अवस्था में सदस्यों में बांटा नहीं जा सकता। उसका उपयोग समिति के कार्य में हानि होने पर उसे पूरा करने में होता है। यदि किसी देनदार (Debtor) से रुपया वसूल नहीं होता अथवा किसी वस्तु को बेंचने में हानि हो तो उसको रक्षित कोष से पूरा किया जाता है। यदि साख समिति भंग हो जावे तो रक्षित कोष (Reserve Fund) या तो किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा या सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार की अनुमति से गाँव के सार्वजनिक हितकर कार्य में व्यय किया जावेगा। अपरिमित दायित्व वाली समितियाँ रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य में लगाती हैं बाहर जमा नहीं करतीं।

यदि किसी समिति को हानि हो जावे तो सर्वप्रथम उस सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा जिसने ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो जमानत देने वाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भर दी जावेगी। यदि उससे भी हानि पूरी न हुई तो समिति की पूँजी का उपयोग किया जावेगा। यदि समिति की पूँजी देकर भी हानि पूरी न हो सके तो समिति के सदस्यों को समिति के लेनदारों (Creditors) का रुपया चुकाना होगा। प्रत्येक सदस्य को कितना रुपया देना होगा इसका हिसाब लिक्वीडेटर (Liquidator) लगायेगा। व्यावहारिक दृष्टि से अपरिमित दायित्व से यही अर्थ निकलता है किन्तु सिद्धांत से प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सारे ऋण को चुकाने के लिये बाध्य है। यह उसी दशा में हो सकता है जब और सदस्यों से रुपया वसूल न हो सके।

साधारण सभा (General Meeting) अपनी बैठक में समिति की साख (Credit) निर्धारित कर देती है, पंचायत उससे अधिक ऋण नहीं ले सकता। समिति की साख को निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि समिति के सदस्यों की सम्पत्ति का हिसाब लगाया जावे। समिति के सब सदस्यों की सम्पत्ति की एक चौथाई से आधी तक साख निर्धारित की जाती है। समिति इस कार्य के लिए एक हैसियत रजिस्टर रखती है जिसमें प्रत्येक सदस्य की हैसियत का लेखा रहता है। हैसियत रजिस्टर का प्रतिवर्ष संशोधन

होता है और प्रत्येक सदस्य की हैसियत का यथार्थ लेखा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक कितना उधार ले सकता है। किसी भी अवस्था में सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रतिशत से अधिक उधार नहीं दिया जा सकता। रुपया उधार देते समय पंचायत कर्ज़ा लेने का उद्देश्य तथा सदस्य को चुकाने की शक्ति का अनुमान लगाकर ही कर्ज़ देना निश्चय करती है। ऋण केवल सदस्यों को ही दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक स अधिक कितना उधार ले सकता है। किसी भी दशा में सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रतिशत से अधिक ऋण नहीं दिया जाता। रुपया उधार देने क समय पंचायत कर्जा लेने का उद्देश्य तथा सदस्य की चुकाने की शक्ति का अनुमान लगाकर ही कर्जा देना निश्चय करती है।

सहकारी साख आन्दोलन का यह सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक तथा व्यर्थ कार्यों के लिए न दिया जावे। किन्तु भारत में सहकारी समितियां अनुत्पादक कार्यों के लिए विशेषकर धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों के लिए ऋण दे देती हैं। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करे कि सदस्य कर्ज़ किस कार्य के लिए ले रहा है। साथ ही पंचायत को इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि सदस्य ने उसी कार्य म धन व्यय किया है या नहीं। यदि सदस्य ने किसी अन्य काय में धन व्यय किया है तो पंचायत को रुपया वापस ले लेना चाहिये। परन्तु भारतवर्ष में इस ओर पंचायत कभी भी ध्यान नहीं देती। खेती के लिए धन लिया जाता है और व्यय होता है अनुत्पादक कार्यों पर, किन्तु पंचायत इसमे कभी भी रोक-टोक नहीं करती।

पंचायत ऋण देते समय सदस्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए किस्तें बाँध देता है, क्योंकि सदस्यों को किस्तों में रुपया अदा करने में सुविधा होती है। पंचायत का यह मुख्य कार्य है कि वह सदस्य से समय पर किस्त वसूल करे। यदि किसी अनिवार्य कारणवश (फसल नष्ट हो जाने पर) सदस्य किस्त न चुका सके तो उसकी मियाद बढ़ा देनी चाहिए।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे कार्यों के लिए ऋण देती हैं:—(१) खेती-बारी के लिए, मालगुजारी तथा लगान देने के लिए, (२) भूमि का

सुधार करने के लिए, (३) पुराने ऋण को चुकाने के लिए, (४) गृहस्थी के कार्यों के लिए, (५) व्यापार के लिए, (६) भूमि खरीदने के लिए। यह कह सकना कठिन है कि किन कार्यों के लिए कितना रुपया लिया जाता है। बहुधा सदस्य प्रार्थना पत्र में तो खेती-बारी के लिए रुपया लेने की बात लिखता है और उस रुपये को व्यय करता है किसी सामाजिक कार्य पर। साख समितियों ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया है।

खेती में तीन प्रकार का ऋण चाहिए:—(१) थोड़े समय के लिए, (२) साधारण समय के लिए ऋण और (३) लम्बे समय के लिए ऋण। जो ऋण थोड़े समय के लिए लिया जाता है वह बीज, खाद, हल इत्यादि औजार खरीदने, गृहस्थी का काम चलाने के लिए लिया जाता है और फसल कटने पर चुकाया जा सकता है। अस्तु अधिक से अधिक एक वर्ष में चुकाया जा सकता है। साधारण समय के लिए ऋण बैल लेने, कुआं बनाने, अच्छे यंत्र खरीदने के लिए लिया जाता है और दो या तीन वर्ष के लिए होता है। लम्बे समय के लिए लिया हुआ ऋण पुराना ऋण चुकाने, भूमि को खरीदने, भूमि में स्थायी सुधार करने तथा कीमती यंत्र इत्यादि खरीदने के लिए लिया जाता है। आरम्भ में तो सभी यह मानते थे कि सहकारी साख समितियां लम्बे समय के लिए भी ऋण दे सकती हैं और समितियों ने अधिक लम्बे समय के लिए ऋण दिया। किन्तु आज सहकारिता आन्दोलन से सम्बन्धित सभी विद्वानों तथा कार्य कर्ताओं का यह निश्चित मत है कि साख समितियां किसान को तीन वर्ष से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकतीं। बात यह है कि साख समितियां (Co-operative Credit Societies) डिस्ट्रिक्ट या सेन्ट्रल सहकारी बैंकों से ऋण लेकर सदस्यों को ऋण देती हैं और डिस्ट्रिक्ट या सेन्ट्रल बैंक एक वर्ष से तीन वर्ष तक के लिए मुद्दती जमा (Fixed Deposit) स्वीकार करके पूँजी (Capital) इकट्ठी करती हैं। यह बैंकिंग का पहला सिद्धान्त है कि थोड़े समय की डिपाज़िट (जमा) से अधिक समय के लिए ऋण नहीं देना चाहिये। अतएव अब साख समितियां लम्बे समय के लिए ऋण नहीं देतीं। अधिक दिनों के लिए ऋण देने का कार्य सहकारी भूमि बंधक बैंक ही कर सकते हैं।

समितियों का आय-व्यय निरीक्षण प्रान्तीय सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार की देख-रेख और उसकी अधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी विभाग के आडिटरों से साख समितियों के आय-व्यय का निरीक्षण करवाता है। यदि

आय-व्यय निरीक्षण (Auditing) का कार्य प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा किसी अन्य गैर सरकारी यूनियन को सौंप दिया गया हो जैसा बहुधा होता है तो रजिस्ट्रार उस संस्था के आडिटरों को लायसेन्स देता है तभी व आय व्यय निरीक्षण का कार्य कर सकते हैं। जो भी हो आय व्यय निरीक्षण का उत्तरदायित्व रजिस्ट्रार पर होता है।

१९४० के पूर्व सहकारी साख समितियों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। ५० प्रतिशत से अधिक ऋण ऐसा था जिसका अदायगी की तिथि कभी की निकल गई थी और सदस्यों ने उसको नहीं दिया था। वास्तव में कहीं कहीं तो स्थिति ऐसी बिगड़ गई कि सेन्ट्रल बैंकों को कुर्क समान रखने पड़े, जिन्होंने साख समितियों के सदस्यों की कुर्की की, फिर भी कर्ज का बहुत रुपया वसूल नहीं हो पाया। जब मूल ऋण की अदायगी की यह दशा था तब उस पर जो सूद इकट्ठा हो गया था उसका तो कहना ही क्या था। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से प्रान्तों में साख समितियाँ अत्यन्त शक्तिहीन और निष्प्राण हो गईं और लोगों को भय होने लगा कि आन्दोलन कहीं मर न जाय। किन्तु द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ हो जाने तथा सेना की पैदावार का मूल्य बहुत बढ़ जाने से किसान की आर्थिक दशा सुधरी और साख समितियों का ऋण भी वसूल हो गया।

भारतवर्ष में लगभग १,२०,००० कृषि साख सहकारी समितियाँ हैं। उनके सदस्यों की संख्या ४१ लाख से ऊपर तथा कार्यशील पूँजी १६ करोड़ रुपये से अधिक है। इस पूँजी में ४० प्रतिशत तो समितियों की हिस्सा पूँजी (Share Capital) और रक्षित कोष (Reserve Fund) है शेष ६० प्रतिशत उधार ली हुई पूँजी है जिसमें ८ प्रतिशत तो डिपाजिट और शेष सेन्ट्रल बैंकों से उधार पर ली हुई पूँजी है। इन आंकड़ों से ऐसा प्रतीत होता है कि साख समितियाँ सफल हो रही हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। साख समितियों की स्थिति भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न है। सहकारी साख समितियों का बम्बई, पंजाब और मदरास में अन्य प्रान्तों की तुलना में अधिक उन्नति हुई है और वहाँ साख समितियाँ सफल भी अधिक हुई हैं।

भारतवर्ष में जब कृषि सहकारी साख समितियों का वार्षिक आय-व्यय निरीक्षण होता है तब आडिटर उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उनका वर्गीकरण करते हैं। 'ए' वर्ग की समितियाँ बहुत अच्छी समझी जाती हैं, 'बी' वर्ग की अच्छी, 'सी' वर्ग की साधारण, 'डी' वर्ग की बुरी और 'ई' वर्ग की बहुत

बुरी जिन्हें दिवालिया कर दिया जाता है। प्रान्तीय सहकारिता विभागों की रिपोर्टों से पता चलता है कि समितियों में से एक बहुत बड़ी संख्या 'डी' और 'ई' वर्ग में है। किसी-किसी प्रान्त में ४० प्रतिशत समितियाँ 'डी' और 'ई' वर्ग में हैं और २५ प्रतिशत से तो किसी प्रान्त में कम नहीं हैं। ६ प्रान्तों में १० प्रतिशत से भी कम समितियाँ 'ए' और 'बी' वर्ग में हैं। अस्तु रिपोर्टों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि सहकारी साख समितियों की दशा संतोषजनक नहीं है। रिपोर्टों से यह भी ज्ञात होता है कि ९ प्रतिशत समितियाँ प्रतिवर्ष दिवालिया होती रहती हैं। समितियों की संख्या घटती नहीं है इसका कारण यह है कि नई समितियों का संगठन होता रहता है।

नगर सहकारी साख समितियाँ (Urban Co-operative Credit Societies) या म्यूनिसिपल बैंक :—हमने ऊपर कृषि साख सहकारी समितियों का वर्णन किया जो गाँवों में होती हैं। नगरों में निर्धन कारीगरों, मज़दूरों, खोमचे वाले तथा छुटपूँजिया दूकानदारों, कारखाने के मज़दूरों और दफ़्तरों के बाबू लोगों के लिए भी सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जाती हैं। इनकी संख्या इस देश में अधिक नहीं है। यद्यपि नगर साख समितियों की भी इस देश में अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि कारीगर किसान की ही भाँति महाजन के चंगुल में फंसा होता है। उनके माल को खरीदने वाले ही उनके महाजन होते हैं। यह व्यापारी करीगर को या तो कच्चा माल उधार देते हैं अथवा रुपया नकद उधार देते हैं, किन्तु शर्त यह होती है कि कारीगर को अपना तैयार माल महाजन व्यापारी को ही बेंचना पड़ेगा। फल यह होता है कि निर्धन कारीगर महाजन के चिर दास बन जाते हैं। व्यापारी कारीगर को कम से कम मज़दूरी देकर उसका शोषण करता है। छोटे खोमचे वाले तथा दूकानदारों को भी पूँजी की आवश्यकता होती है। मिश्रित पूँजी वाले बैंक (Joint Stock Banks) तो इन्हें ऋण देते नहीं और बिना साख के इनकी दशा शोचनीय रहती है इस कारण इन्हें भी साख की आवश्यकता होती है। कारखाने के मज़दूर भी दूकानदारों, महाजनों तथा काबुलियों के चंगुल में फंसे रहते हैं इस कारण उन्हें भी साख की आवश्यकता है; किन्तु अभी तक इस देश में नगर सहकारी साख समितियों की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसी कारण देश में नगर साख सहकारी समितियों की संख्या अधिक नहीं है।

नगर सहकारी साख समिति के सदस्यों को उसके हिस्से लेने पड़ते हैं

इस प्रकार समिति की कुछ हिस्सा पूँजी (Share-Capital) जमा हो जाती है। समिति का दायित्व परिमित (Limited Liability) होता है। प्रत्येक सदस्य को फिर उसने चाहे जितने हिस्से क्यों न खरीदे हों एक ही वोट देने का अधिकार होता है। सब सदस्यों की साधारण सभा होती है जो नीति निर्धारित कर देती है और प्रबन्धकारिणी समिति अथवा बोर्ड आव डाइरैक्टर समिति का प्रबन्ध करता है। नगर साख समिति में वार्षिक लाभ कम से कम २५ प्रतिशत रक्षित कोष (Reserve Fund) में रक्खा जाता है। शेष सदस्यों में बाटा जा सकता है। यह समितियाँ हिस्सा पूँजी (Share-Capital) के अतिरिक्त डिपाज़िट भी लेती हैं। अधिकांश समितियाँ केवल मुद्दती जमा (Fixed Deposit) लेती हैं। इनके अतिरिक्त रक्षित कोष भी उनकी कार्यशील पूँजी (Working Capital) को बढ़ाता है।

बगाल और बम्बई में नगर साख सहकारी समितियाँ सेविंग्स जमा (Savings Bank Deposit) और चालू जमा (Current Deposit) भी लेती हैं तथा हुंडी को भुनाने का काम भी करती हैं। यह समितियाँ वास्तव में एक छोटे बैंक हैं और बगाल तथा बम्बई में विशेष सफल हुए हैं।

औद्योगिक केन्द्रों में कारखानों के मजदूरों के लिए भी सहकारी साख समितियाँ स्थापित हुई हैं। यदि कारखानों के मालिकों का इन समितियों को सहयोग प्राप्त हो जाता है तो वे अधिक सफल हो जाती हैं। किन्तु इनमें एक दोष शीघ्र ही प्रवेश कर जाता है। यह अपने मुख्य कर्तव्य अर्थात् सदस्यों में मितव्ययिता के भाव प्रचार न करके केवल सदस्यों को ऋण देने का कार्य करने लगती हैं। इस दोष की ओर अब ध्यान गया है और इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि सदस्य समितियों में रुपया जमा भी करें।

भिन्न-भिन्न दफ्तरों तथा कारखानों में कार्य करने वाले वेतन भोगी कर्मचारियों की समितियाँ पृथक् होती हैं। इस प्रकार की साख समितियाँ अधिकतर सफल हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि सदस्य शिक्षित होते हैं तथा उनमें नियमों को पालन करने का जो अभ्यास होता है उसके कारण समिति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त यदि साख समिति को उस दफ़्तर के प्रधान अफसर की भी सहानुभूति प्राप्त हो जाती है तो

फिर कहना ही क्या है। उससे दिये हुए ऋण को वसूल करने में सहायता मिलती है।

नगर साख समितियाँ मदरास, बम्बई, बंगाल और पंजाब में विशेष रूप से हैं। बम्बई और मदरास में तो सभी बड़े-बड़े कस्बों में नगर साख सहकारी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इन बैंकों की संख्या इस प्रकार है:—आसाम १७०, बंगाल ६१०, बिहार ११०, बम्बई ७००, मदरास १, २००, पंजाब ७५०, सिंध १३१, उत्तर प्रदेश ५००, मैसूर ३०० से अधिक, बड़ौदा २६, काश्मीर २७। सब मिलाकर देश में लगभग ७,००० नगर साख सहकारी समितियाँ काम कर रही हैं।

नगर साख सहकारी समितियाँ कृषि साख सहकारी समितियों की अपेक्षा इस देश में अधिक सफल हुई हैं। वे अधिक मजबूत और स्वावलम्बी हैं। नगर साख समितियों के दिये हुए ऋण की किस्तें बहुत कम बकाया रहती हैं। एक विशेष बात इन समितियों के सम्बन्ध में यह है कि वे अपनी हिस्सा पूँजी और डिपाज़िट से ही इतना रुपया पा जाती हैं कि उनका काम अच्छी तरह से चल जाता है। उन्हें सेन्ट्रल सहकारी बैंकों तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भारत जैसे देश में जहां निर्धन नागरिक को बैंकिंग की सुविधा उपलब्ध नहीं है उनकी बड़ी आवश्यकता है। डाक तथा रेल विभाग के सरकारी कर्मचारियों में यह समितियाँ विशेष सफल हुई हैं।

सरकारी सेन्ट्रल बैंक (Co operative Central Bank) :— हम ऊपर ग्राम सहकारी साख समितियों तथा नगर साख सहकारी समितियों के सम्बन्ध में लिख चुके हैं। पहले लोगों का विचार था कि ग्राम समितियाँ डिपाज़िट आकर्षित करके पूँजी इकट्ठा कर लेंगी और आवश्यकता पड़ने पर नगर साख समितियों से ऋण ले लेंगी किन्तु यह आशा सफल नहीं हुई क्योंकि एक तो किसान ऋणी और निर्धन था दूसरे बैंकों में रुपया रखने का अभ्यस्त नहीं था। अस्तु यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि नगरों में सेन्ट्रल सहकारी बैंक खोले जावें जो ग्राम साख समितियों और गैर साख समितियों (Non-Credit Societies) के लिए पूँजी एकत्रित करें। १६०४ में जब पहला सहकारिता ऐक्ट पास हुआ था उस समय केवल ग्राम तथा नगर सहकारी साख समितियों के स्थापित करने का विधान था। अस्तु १६१२

में दूसरा सहकारिता ऐक्ट पास हुआ और सहकारी सेन्ट्रल बैंकों को स्थापित करने की सुविधा हो गई।

सेन्ट्रल बैंक दो प्रकार के होते हैं (१) ऐसे सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य उस क्षेत्र की केवल सहकारी साख समितियाँ ही हो सकती हैं। इन्हें बैंकिंग यूनियन (Co-operative Banking Union) भी कहते हैं (२) ऐसे सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य समितियाँ और व्यक्ति दोनों ही हो सकते हैं। देश में दूसरे प्रकार के बैंक ही अधिकतर हैं।

पहले प्रकार के सेन्ट्रल बैंक अर्थात् बैंकिंग यूनियन जिनके सदस्य केवल सहकारी समितियां ही हो सकती हैं वास्तव में आदर्श सहकारी सेन्ट्रल बैंक हैं। क्योंकि उससे सम्बन्धित सहकारी समितियाँ ही उसकी नीति निर्धारित करती हैं और बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं समितियों के हाथ में रहता है। किन्तु भारतवर्ष में गाँवों में शिक्षा का अभाव है। ग्राम सहकारी समितियों का प्रबंध करने के लिए योग्य पात्रों का मिलना कठिन होता है। ऐसी दशा में सेन्ट्रल बैंकों के संचालन के लिए उनमें से योग्य डायरैक्टरों का मिलना और भी कठिन हो जाता है। यही कारण है कि देश में अधिकतर मिश्रित सेन्ट्रल बैंक हैं जिनमें वे व्यक्ति भी सदस्य होते हैं जिनके सहयोग से बैंक का कार्य सुचारु रूप से चल सके।

सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त में भिन्न होता है। उस क्षेत्र की समस्त समितियां उस बैंक से सम्बन्धित होती हैं और उससे ऋण लेती हैं। दक्षिण तथा पश्चिम भारत में सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र एक जिला होता है किन्तु उत्तर भारत में अधिकांश में एक तहसील में एक सेन्ट्रल बैंक होता है। जब जिले में एक ही सहकारी सेन्ट्रल बैंक होता है तो उसे डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक कहते हैं।

साधारण सभा (General Meeting) :—सेन्ट्रल बैंक के हिस्सेदारों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। सभा के प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। साधारण सभा ही बैंक के डायरैक्टरों का चुनाव करती है। जिन बैंकों के सदस्य समितियों के अतिरिक्त व्यक्ति भी होते हैं उनके विधान में समितियों के डायरैक्टरों और व्यक्तियों में से चुने गये डायरैक्टरों की संख्या निश्चित रहती है। समितियों के प्रतिनिधि डायरैक्टरों की संख्या अधिक होती है जिससे उनके हितों की रक्षा हो सके।

बोर्ड आव डायरैक्टर :—संचालक (डायरैक्टर) बोर्ड बैंक का प्रबंध करता है। साधारणतः सेन्ट्रल बैंक के डायरैक्टर संख्या में अधिक होते हैं क्योंकि उसमें बहुत से स्वार्थों का प्रतिनिधित्व आवश्यक होता है। इससे यह कठिनाई होती है कि बोर्ड की मीटिंग करने में कठिनाई होती है इसलिए बोर्ड अपने सदस्यों में से एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करता है जो बैंक का कार्य चलाती है। बैंक का दैनिक कार्य मैनेजिंग डायरैक्टर अथवा चेयरमैन अथवा अवैतनिक मंत्री मैनेजर की सहायता और सलाह से चलाता है। डायरैक्टरों को फीस अथवा वेतन कुछ भी नहीं मिलता। अधिकांश डायरैक्टर समितियों के प्रतिनिधि होते हैं। किन्तु चेयरमैन और मंत्री व्यक्ति ही होते हैं। उत्तर भारत में और विशेषकर उत्तर प्रदेश में सेन्ट्रल बैंक का चेयरमैन सरकारी कर्मचारी होता है।

पूँजी (Capital) :—सेन्ट्रल बैंक की कार्यशील पूँजी (Working Capital) हिस्सा पूँजी (Share Capital) रक्षित कोष (Reserve Fund) डिपाज़िट तथा ऋण के ; रा प्राप्त होती है।

बैंकिंग यूनियन में केवल सहकारी समितियाँ ही हिस्से खरीद सकती हैं किन्तु मिश्रित सेन्ट्रल सहकारी बैंकों में व्यक्ति भी हिस्सा खरीद सकते हैं। सेन्ट्रल बैंकों के हिस्से ५० रु० से १०० रु० तक के होते हैं। सहकारी साख समितियाँ अपने ऋण के अनुपात में हिस्से लेती हैं। साधारणतः हिस्सेदारों का दायित्व (Liability) हिस्से के मूल्य तक ही सीमित होता है किन्तु कुछ प्रान्तों में हिस्सेदारों का दायित्व चार गुने से दस गुने तक है। प्रत्येक सेन्ट्रल बैंक को लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है। सेन्ट्रल बैंक इस २५ प्रतिशत के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए भी विशेष रक्षित कोष जमा करते हैं। हिस्सा पूँजी और रक्षित कोष तो बैंक की निजी पूजी होती है और डिपाज़िट तथा ऋण उधार ली हुई पूँजी होती है।

किन्तु सदस्यों तथा गैर सदस्यों की डिपाज़िट ही बैंक की कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सेन्ट्रल बैंक दो प्रकार की डिपाज़िट लेते हैं मुद्दती (Fixed) तथा सेविंग्स। किसी-किसी प्रान्त में चालू खाता (Current Account) भी रक्खा जाता है किन्तु चालू खाते में जोखिम अधिक है इस कारण अधिकांश बैंक उसे नहीं रखते। डिपाज़िट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन प्रान्तीय सहकारी बैंकों से ऋण लेते हैं। कभी-कभी सेन्ट्रल बैंक इम्पीरियल तथा अन्य बैंकों से

भी ऋण लेते हैं। यह बैंक एक वर्ष से लेकर ३ वर्ष तक के लिए मुद्दती जमा (Fixed Deposit) लेते हैं और अधिकतर उनकी कार्यशील पूँजी मुद्दती जमा से ही इकट्ठी होती ।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियों (Co operative Credit Societies) तथा गैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं। पजाब, मैसूर, ग्वालियर, तथा मदरास में व्यक्तियों को भी ऋण दिया जाता है किन्तु अब यह रिवाज़ बन्द किया जा रहा है। अपरिमित दायित्व (Unlimited Liability) वाली साख समितियों को सेन्ट्रल बैंक प्रो नोट अथवा बाँड पर ही ऋण दे देते हैं। अपरिमित दायित्व होने के कारण उनका प्रो-नोट ही यथेष्ट जमानत समझा जाता है। किन्तु अन्य सहकारी समितियों से उसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति भी गिरवी रखवाई जाती है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा सेन्ट्रल बैंक अपनी सम्बन्धित साख समितियों की हैसियत के अनुसार उन साख समितियों की अधिकतम साख (Maximum Credit) निश्चित कर देते हैं। उससे अधिक ऋण किसी साख समिति को नहीं दिया जाता। ऋण की स्वीकृति होने में बहुत सी कानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है इस कारण ऋण मिलने में देर हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिए कुछ सेन्ट्रल बैंक एक रकम निश्चित कर देते हैं जिससे समितियों को बिना किसी देरी के ऋण दे दिया जाता है।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर एक दो वर्षों के लिए ऋण देते हैं। कहीं-कहीं अब भी अधिक समय के लिए ऋण दिया जाता है। किन्तु अब अधिक लम्बे समय के लिए ऋण देने का कार्य केवल भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks) ही अधिक सफलता पूर्वक कर सकते हैं। अतएव अब जहाँ जहाँ भूमि बन्धक बैंक स्थापित हो गए हैं वहाँ सेन्ट्रल बैंक लम्बे समय के लिए ऋण बिलकुल नहीं देते। प्रत्येक प्रान्त में यह धारणा जोर पकड़ रही है कि सेन्ट्रल बैंक अधिक समय के लिए ऋण नहीं दे सकते। इसके लिए भूमि बन्धक बैंक स्थापित करना चाहिए।

सेन्ट्रल बैंक प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों से ७ प्रतिशत सूद लेते हैं और डिपाजिट पर ३ से ५ प्रतिशत सूद देते हैं। पहले सूद की दर

अधिक थी अब सूद की दर घटा दी गई है। जब सहकारी साख समितियाँ बैंक को ऋण चुकाती हैं तो बैंक के पास आवश्यकता से अधिक रुपया हो जाता है। यह स्थिति वर्ष में दो से चार महीने तक रहती है। उस समय बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों में रुपया जमा कर देते हैं। इसके अतिरिक्त जो रुपया स्थायी रूप से अधिक होता है और जो समितियों को ऋण देने में नहीं लगाया जाता उसको अधिक लम्बे समय के लिए जमा कर दिया जाता अथवा ट्रस्टी सिक्यूरिटी में लगा दिया जाता है।

सेन्ट्रल बैंक के वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा कर दिया जाता है। साधारण रक्षित कोष के अतिरिक्त कोई-कोई बैंक बट्टे खाता (Bad debt)-इमारत अथवा लाभ-हानि सन्तुलन (Dividend Equalisation Fund) के लिए विशेष कोष इकट्ठा करते हैं। शेष लाभ हिस्सेदारों में बाँट दिया जाता है। किन्तु इन बैंकों के उपनियमों में लाभ की अधिक से अधिक दर भी निश्चित कर दी जाती है जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों को नहीं बाँटा जा सकता। सेन्ट्रल बैंक ६ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक लाभ बाँटते हैं। अधिकतर प्रान्तों में ६ प्रतिशत लाभ बाँटा जाता है।

सेन्ट्रल बैंक अपने से सम्बन्धित साख समितियों की देख-भाल करने के अतिरिक्त उन पर अपना नियंत्रण भी रखते हैं। इस कार्य के लिए कुछ कर्मचारी रक्खे जाते हैं। यह कर्मचारी (सुपरवाइज़र) ऋण के प्रार्थना पत्रों की जाँच करते हैं साख समितियों के सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करते हैं और साख समितियों को अपने सदस्यों से रुपया वसूल करने में भी सहायक होते हैं। किसी-किसी प्रान्त में यह सुपरवाइज़र समितियों का हिसाब भी रखते हैं। जहां नवीन सहकारी साख समितियों को स्थापित करते हैं वह प्रचार कार्य भी करते हैं। किन्तु अब इनमें से बहुत सा कार्य प्रान्तीय सहकारी इन्स्टिट्यूट करने लगी हैं। कुछ प्रान्तों में समितियों की देख-भाल का काम सुपरवाइज़िंग यूनियनों को दे दिया गया है।

सेन्ट्रल बैंकों की आय-व्यय की जाँच सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त आडिटर करते हैं। यह सेन्ट्रल बैंक की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में भी रजिस्ट्रार को रिपोर्ट देते हैं। सेन्ट्रल बैंक का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा उसके अधीनस्थ सहकारी विभाग के अन्य कर्मचारी करते हैं। प्रान्तीय बैंक भी उनका निरीक्षण करते हैं।

भारतवर्ष में कुल मिलाकर (प्रान्तों और देशी राज्यों में) ६०० सहकारी सेन्ट्रल बैंक हैं। पंजाब १२०, बंगाल ११७, उत्तर प्रदेश ७, बिहार उड़ीसा ६८, मध्य प्रदेश ३५, मदरास ३०, आसाम २०, बम्बई ११, शेष देशी राज्यों में हैं। सब सेन्ट्रल बैंकों में लगभग ८०,००० व्यक्ति और १,४०,००० सहकारी समितियाँ सदस्य हैं। समस्त कार्यशील पूँजी ३० करोड़ रुपये के लगभग है, जिसमें हिस्सा पूँजी ९ प्रतिशत, रक्षित कोष १४ प्रतिशत, डिपाज़िट ५९ प्रतिशत, प्रान्तीय बैंकों से लिया हुआ ऋण १४ प्रतिशत और सरकार से लिया हुआ ऋण एक प्रतिशत से कुछ अधिक है।

प्रान्तीय सहकारी बैंक (Provincial Co operative Banks) या सर्वोपरि बैंक (Apex Banks):— देश में सहकारी साख आन्दोलन के क्रमशः फैलने पर यह अनुभव होने लगा कि यद्यपि सेन्ट्रल बैंक सहकारी समितियों का निरीक्षण तथा उनकी देख भाल करने में रजिस्ट्रार का हाथ बटाते हैं किन्तु जितनी पूँजी की आवश्यकता होती है उसका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। १९१५ में सहकारिता आन्दोलन की जाँच करने के लिए जो मैकलेगन कमेटी बिठाई गई थी। उसने प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। वास्तव में सेन्ट्रल बैंकों का आपस में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ऐसी संस्था की विशेष आवश्यकता थी। प्रान्तीय बैंकों से पूर्व यह कार्य रजिस्ट्रार करता था। यदि किसी सेन्ट्रल बैंक को पूँजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिस्ट्रार को सूचित करने पर वह सब सेन्ट्रल बैंकों के नाम एक गश्ती चिट्ठी लिख देता और जिस सेन्ट्रल बैंक के पास आवश्यकता से अधिक डिपाज़िट होती वह उस सेन्ट्रल बैंक को ऋण दे देता था। किन्तु एक तो इसमें बहुत सा समय नष्ट हो जाता था दूसरे कभी कभी इस प्रकार पूँजी का प्रबन्ध नहीं हो पाता था। अस्तु प्रान्तीय बैंक की कमी को आवश्यकता अनुभव हो रही थी। साथ ही द्रव्य बाज़ार (Money Market) और सहकारी साख आन्दोलन (Co-operative Credit Movement) के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी प्रान्तीय बैंक की स्थापना आवश्यक प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में इस समय निम्नलिखित प्रान्तीय सहकारी बैंक काम कर रहे हैं। मदरास, बम्बई, पंजाब उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश और बरार तथा आसाम प्रान्तों में तथा देशी राज्यों में हैदराबाद और मैसूर के सर्वोपरि बैंक (Apex Banks) प्रान्तीय सहकारी बैंकों की श्रेणी में आते

है। यों इंदौर, ग्वालियर, बड़ौदा, काश्मीर तथा भूपाल में भी कोई एक बड़ा सेन्ट्रल बैंक चुन लिया गया है जो सर्वोपरि बैंक का काम करता है। किन्तु प्रान्तीय सहकारी बैंक बैंकों की श्रेणी में नहीं आते।

सदस्यता:—इन बैंकों का संगठन एक सा नहीं है। पंजाब और बंगाल में सहकारी साख समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैंक ही उनके हिस्सेदार होते हैं। अन्य प्रान्तों में इनके अतिरिक्त व्यक्ति भी हिस्सेदार होते हैं।

संचालन:—प्रान्तीय सहकारी बैंकों को चलाने के लिए व्यापारिक बुद्धि तथा बैंकिंग की योग्यता चाहिए। इसलिए बैंक के डायरैक्टरों में व्यापारिक योग्यता रखने वाले व्यक्ति भी चाहिए। किन्तु अधिकतर डायरैक्टर तो सहकारिता आन्दोलन से सम्बन्धित व्यक्ति ही होने चाहिए। यही कारण है कि दो तीन प्रान्तों को छोड़ कर शेष सभी प्रान्तों में हिस्सेदारों के बाहर से भी डायरैक्टरों को नियुक्त करने की परिपाटी है। इसके अतिरिक्त अधिकतर प्रान्तों में सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार पदेन डायरैक्टर होता है अथवा वह कुछ डायरैक्टर मनोनीत करता है।

कार्यशील पूँजी:—प्रान्तीय बैंकों की कार्यशील पूँजी लगभग १५ करोड़ रुपये है, उसमें १६ प्रतिशत उनकी शेष उधार ली हुई है। उधार ली हुई पूँजी में सहकारी समितियों और सेन्ट्रल बैंकों की डिपाज़िट तथा व्यक्तियों की डिपाज़िट मुख्य हैं। प्रान्तीय सहकारी बैंक चालू (Current), सेविंग्स, तथा मुद्दती (Fixed) तीनों प्रकार की डिपाज़िट लेते हैं। अधिकांश डिपाज़िट या जमा तीन वर्षों के लिये ली जाती है। प्रान्तीय सहकारी बैंकों की साख (Credit) बहुत अच्छी है। वे सहकारिता आन्दोलन के बाहर से भी जमा आकर्षित करते हैं। वे अन्य व्यापारिक बैंकों से अधिक सूद डिपाज़िट पर नहीं देते और उनको यथेष्ट डिपाज़िट मिल जाती हैं। द्रव्य-बाजार (Money Market) के अनुसार ही वे भी अपने सूद की दर निर्धारित करते हैं।

पूँजी लगाना (Investment of Funds) :—भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों ने कुछ नियम बना दिये हैं, जिनके अनुसार प्रान्तीय सहकारी बैंकों को अपनी देनी (Liability) के एक निश्चित अनुपात में नकदी तथा शीघ्र भेज सकने वाली लेनी (Assets) रखनी पड़ती हैं। व्यवहार में प्रान्तीय सहकारी बैंक २० से ५० प्रतिशत तक कार्यशील पूँजी सरकारी सिक्यूरिटी में लगाते हैं। कुछ रुपया अन्य व्यापारिक बैंकों और अन्य प्रान्तीय

सहकारी बैंकों में जमा करते हैं और शेष अपने सदस्यों अर्थात् सहकारी सेन्ट्रल बैंकों तथा सहकारी साख समितियों को उधार देते हैं।

रिजर्व बैंक आव इंडिया ने प्रान्तीय सहकारी बैंकों को यह सलाह दी थी कि वह अपने सदस्यों को केवल ६ महीने के लिए ही ऋण दिया करें। यद्यपि रिजर्व बैंक की इस सलाह को प्रान्तीय सहकारी बैंक पूरी तरह से नहीं मान सके फिर भी वे अब प्रायः उत्पादन और खेती की पैदावार के क्रय-विक्रय के लिए ही थोड़े समय के लिए ऋण देते हैं। किन्तु किसान को जितनी आवश्यकता कम समय के लिए ऋण की है उतनी ही मध्यम समय अर्थात् दो या तीन वर्षों के लिए है। इस कारण प्रान्तीय सहकारी बैंकों को इन दोनों प्रकार की साख को देना पड़ता है। प्रान्तीय बैंक लम्बे समय के लिए अर्थात् १० या २० वर्षों के लिए ऋण नहीं दे सकते उसके लिए भूमि बंधक बैंक ही उपयुक्त संस्था है।

किसी किसी प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी बैंक प्रारम्भिक साख समितियों (Primary Co-operative Credit Societies) को सीधे ऋण दे देते हैं। यह उचित नहीं है। अधिकांश प्रान्तीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों को ही ऋण देते हैं और उनके द्वारा ही व साख समितियों को ऋण देते हैं। जहाँ तक सेन्ट्रल बैंकों का प्रश्न है प्रान्तीय बैंक उनका सन्तुलन केन्द्र (Balancing Centre) है। यदि उनके पास आवश्यकता से अधिक रुपया हुआ तो वे प्रान्तीय सहकारी बैंक में जमा कर देते हैं और यदि आवश्यकता हुई तो उधार ले लेते हैं। अब प्रान्तीय बैंक क्रय-विक्रय यूनियनों (Marketing Unions) को भी ऋण देती है जो क्रय-विक्रय समितियों (Marketing Societies) को साख देती हैं। औद्योगिक सहकारी समितियों (Industrial Co-operative Societies) को भी यह बैंक उनके कच्चे माल अथवा तैयार माल की ज़मानत पर ऋण दे देते हैं। प्रान्तीय सहकारी बैंक तीनों प्रकार की जमा लेने के अतिरिक्त वह सभी बैंकिंग का कारबार करते हैं जो व्यापारिक बैंक करते हैं।

जिन प्रान्तों में केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक (Central Land Mortgage Banks) नहीं हैं वहां प्रान्तीय सहकारी बैंक ही भूमि बंधक बैंकों के लिए डिबेंचर बेचते हैं और उन्हें लम्बे समय के लिए ऋण देते हैं।

प्रान्तीय बैंक और सेन्ट्रल बैंक :—प्रान्तीय सहकारी बैंक तथा सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा-जुदा है। वे सेन्ट्रल बैंकों

पर कोई नियंत्रण नहीं रखते। सेन्ट्रल बैंक अपना रुपया प्रायः प्रान्तीय बैंकों अथवा सुदृढ़ व्यापारिक बैंकों में जमा कर देते हैं। मदरास तथा मध्यप्रदेश में प्रान्तीय सहकारी बैंक अपने निरीक्षकों के द्वारा सेन्ट्रल बैंकों का निरीक्षण कराते हैं। उन सभी प्रान्तों में जहां प्रान्तीय बैंक हैं सेन्ट्रल बैंक एक दूसरे को सीधे कर्ज़ नहीं दे सकते। वास्तव में प्रान्तीय बैंकों का कार्य यह है कि वे सेन्ट्रल बैंकों के संतुलन केन्द्र का काम करें, उन्हें बैंकिंग, द्रव्य-बाज़ार, ऋण देने और सूद की दर निर्धारित करने के सम्बन्ध में परामर्श दें। यद्यपि प्रान्तीय बैंकों का सेन्ट्रल बैंकों पर नियंत्रण वांच्छनीय नहीं है परन्तु प्रान्तीय बैंकों द्वारा उनका निरीक्षण आवश्यक है।

आय-व्यय निरीक्षण (आडिट) :– प्रान्तीय सहकारी बैंकों का हिसाब सहकारिता विभाग को जांचना चाहिए क्योंकि कानून के अनुसार रजिस्ट्रार का यह मुख्य कार्य है। परन्तु बहुत से प्रान्तों में यह हिसाब पेशेवर आडिटरों द्वारा जचवाने की आज्ञा दे दी है। आय-व्यय परीक्षा के अतिरिक्त उन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा रजिस्ट्रार के द्वारा प्रान्तीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रगट करती है।

प्रान्तीय बैंक और रिज़र्व बैंक :—रिज़र्व बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों और उससे सम्बन्धित सेंट्रल बैंकों को सरकारी सिक्यूरिटी की जमानत पर नकद साख देता है। परन्तु जहां तक सहकारी कागज़ (Co-operative Paper) के भुनाने का प्रश्न है प्रान्तीय सहकारी बैंक तथा सेंट्रल बैंक जब रिज़र्व बैंक की इच्छानुसार अपनी आर्थिक स्थिति तथा कारबार को बना लेंगे तभी वह सहकारी कागज़ को भुनाने की सुविधा देगा। कुछ शर्तें पूरा करने पर रिज़र्व बैंक प्रान्तीय बैंकों को अपना रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की सुविधा प्रदान करेगा। इस कार्य के लिए उसने सहकारी सेन्ट्रल बैंकों को प्रान्तीय बैंकों की शाखा मान लिया है। कुछ प्रान्तीय बैंकों ने रिज़र्व बैंक की योजना को स्वीकार कर लिया है और वे उसमें सम्मिलित हो गए हैं। रिज़र्व बैंक ने प्रान्तीय बैंकों को अपना बैलेंसशीट (लेनी देनी का लेखा) एक निश्चित रूप में तैयार करने को कहा है और कुछ बैंक वैसा करने भी लगे हैं। जैसे-जैसे प्रान्तीय बैंक रिज़र्व बैंक की इच्छानुसार सुधार करते जावेंगे वैसे ही वैसे उनका आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ होता जावेगा। यद्यपि रिज़र्व बैंक की स्थापना से सहकारी बैंकों को वे सुविधायें अभी तक नहीं मिलीं जो वे

चाहते थे। किन्तु अब एक अखिल भारतीय सहकारी या सर्वोपरि बैंक की आवश्यकता नहीं रही।

अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी बैंक ऐसोशियेसन :—इस संस्था को १६२६ में जन्म दिया गया। इसका मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक सदस्य की कार्यशील पूँजी के बाहुल्य तथा कमी के आंकड़ों को जमा करे और सब सदस्यों को सूचित कर दे जिससे वे एक दूसरे से लेन देन कर सकें और उन्हें मालूम हो जावे कि किस बैंक के पास अधिक पूँजी है और किस बैंक को पूँजी की आवश्यकता है। सदस्य बैंकों को आर्थिक प्रश्नों पर राय देना, उनकी सहायता करना, व प्रान्तीय सहकारी बैंकों का समय-समय पर कानफ्रेंस बुलाना और उनमें प्रान्तीय बैंकों तथा साख आन्दोलन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना भी इस संस्था के कार्य हैं। जब कभी प्रान्तीय बैंकों को सरकार या रिजर्व बैंक का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यह संस्था उनसे लिखा-पढ़ी करती है।

प्रान्तीय बैंक सहकारी साख आन्दोलन के सन्तुलन केन्द्र होने के अतिरिक्त वे सभी कार्य करते हैं जो व्यापारिक बैंक करते हैं। साधारणतः प्रान्तीय बैंकों की शाखायें नहीं होतीं किन्तु बम्बई प्रान्तीय बैंक ने जहां सेन्ट्रल बैंक नहीं है अपनी शाखायें खोल दी हैं जो साख समितियों को ऋण देती हैं।

सहकारी भूमि बंधक बैंक (Co operative Land Mortgage Banks) भूमि बंधक बैंकों की आवश्यकता :—पहले बताया जा चुका है कि किसान को साधारण खेती-बारी के कारबार को चलाने के लिए थोड़े समय और मध्यम समय के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इसके अन्तर्गत वह सभी ऋण आ जाता है जो पशु, बीज, खाद, हल तथा अन्य औजार खरीदने के लिए, लगान देने के लिए, तथा अपने कुटुम्ब के पालन के लिए लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसान को पुराने ऋण को चुकाने के लिए, भूमि की चकबन्दी करने तथा उसको उपजाऊ बनाने के लिए अन्य सुधार करने के उद्देश्य से, भूमि खरीदने के लिए, कुआ बनाने के लिए तथा मूल्यवान यंत्र खरीदने के लिए अधिक समय के वास्ते भी ऋण चाहिए।

ग्राम्य सहकारी साख समितियां किसानों को थोड़े समय और मध्यम समय के लिए ऋण देती हैं। आरम्भ में जब सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था, लोगों की यह धारणा थी कि साख समितियां अधिक समय के

लिए भी ऋण दे सकेंगी। आरम्भ में ग्राम्य साख समितियों ने अधिक समय के लिए ऋण दिया था। किन्तु न तो साख समितियों के पास इतनी पूँजी थी कि वे सदस्यों के पुराने ऋण को चुका सकें और न यह उनके हित में ही था, इस कारण साख समितियों ने अधिक समय के लिए ऋण देना बंद कर दिया। सभी प्रान्तीय बैंकिंग जांच कमेटियों तथा विशेषज्ञों की यही सम्मति थी कि अधिक समय के लिए ऋण देना साख समितियों के लिए उचित नहीं है। कारण यह है कि सहकारी सेन्ट्रल बैंकों तथा साख समितियों में डिपाज़िट थोड़े समय के लिए ली जाती है और थोड़े समय के लिए जमा किए हुए रुपये से अधिक समय के लिए ऋण देना जोखिम से खाली नहीं है। यह बैंकिंग के सिद्धान्त के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त अधिक समय के लिए ऋण देने में सम्पत्ति की जमानत लेते समय उसके मूल्य को आंकने तथा उससे स्वामित्व की जांच करने के लिए अनुभवी कार्यकर्ताओं तथा कर्मचारियों की आवश्यकता होगी जो ग्रामीण समितियों के पास नहीं हैं। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि भूमि बन्धक रखने पर उसके सबंध के कागज ग्राम्य साख समितियों के पास रखने में जोखिम है और अन्तिम सब से बड़ी कठिनाई यह है कि सदस्यों के ऋण न चुकाने पर समिति की पूँजी फँस जावेगी और समिति को सदस्य के विरुद्ध डिगरी करा कर उस भूमि को नीलाम करवाना होगा। यह सब कानूनी काम ग्राम्य साख समिति सफलतापूर्वक नहीं कर सकती। फिर यदि ग्राम्य साख समितियाँ भूमि बंधक रख कर लम्बे समय के लिये ऋण दें तो व्यक्तिगत साख का महत्त्व कम हो जाने की सम्भावना रहेगी जो सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। यही कारण था कि सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी, प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों, रिज़र्व बैंक तथा बैंकिंग के विशेषज्ञों ने एक मत से यह निर्णय किया कि लम्बे समय के लिए ऋण केवल भूमि बंधक बैंक ही दे सकते हैं। साख समितियों को केवल थोड़े समय तथा मध्यम समय के लिये ही ऋण देना चाहिये। अब साख समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक लम्बे समय के लिए ऋण बिलकुल नहीं देते।

भूमि बन्धक बैंक तीन प्रकार के होते हैं :—(१) सहकारी (Co-operative), (२) गैर सहकारी अर्थात् मिश्रित पूँजीवाले (Joint Stock), (३) अर्ध-सहकारी (Semi-Co-operative)।

सहकारी भूमि बंधक बैंक केवल अपने सदस्यों को ही ऋण देता है।

बैंक की अपनी निजी पूँजी नहीं होती। जो भूमि बंधक रख दी जाती है उसी की जमानत पर 'बंधक बांड' (Mortgage Bonds) बेचे जाते हैं और उनसे पूँजी प्राप्त की जाती है। सहकारी भूमि बंधक बैंक लाभ को लक्ष्य करके कार्य नहीं करते वरन् सूद की दर को घटाने का प्रयत्न करते हैं।

गैर सहकारी भूमि बंधक बैंक मिश्रित पूँजी के होते हैं। जिस प्रकार अन्य व्यापारिक बैंक लाभ की दृष्टि से स्थापित किए जाते हैं वैसे यह बैंक भी हिस्सेदारों की सम्पत्ति होते हैं और लाभ की दृष्टि से चलाए जाते हैं। किसान तथा जमींदार अपनी भूमि बंधक रख कर उनसे ऋण लेते हैं। इस प्रकार मिश्रित पूँजी वाले भूमि बंधक बैंक योरोप में सर्वत्र पाए जाते हैं किन्तु राज्य उन पर नियंत्रण रखता है जिससे वे ऋण लेने वालों को मनमाने ढंग से लूटने न लगें और सूद की दर बहुत अधिक न रक्खें। अर्ध-सहकारी भूमि बंधक न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते हैं और न गैर सहकारी।

भारतवर्ष में जमींदारों के लिए गैर सहकारी तथा किसानों के लिए सहकारी भूमि बंधक उपयुक्त होंगे। किन्तु यहाँ जो भूमि बंधक स्थापित किए गए हैं वे अर्ध-सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। यह सहकारी भूमि बंधक बैंक परिमित दायित्व (Limited Liability) वाली संस्थाएँ हैं। उनके सदस्य अधिकतर ऋण लेने वाले ही होते हैं किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी ले लिये जाते हैं जो ऋण लेने वाले नहीं होते। इन सदस्यों को बैंक के प्रबंध में सहायता पहुँचाने तथा पूँजी आकर्षित करने के उद्देश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रान्त के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। क्रमशः ऐसे सदस्यों को हटा देने की नीति है जिससे बैंक पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे।

बैंक का उद्देश्य :—(१) किसानों की भूमि तथा मकानों को गिरवी से छुड़ाना, (२) खेती की भूमि तथा खेती बारी के धंधे की उन्नति करना तथा किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना (४) भूमि खरीदने के लिये रुपया देना, (५) तथा खेतों की चकबन्दी कराना। किन्तु व्यवहार में अभी भूमि बंधक बैंक केवल पुराने ऋण को चुकाने के लिए ही ऋण देते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि भूमि बंधक बैंक खेती की उन्नति करने और भूमि में स्थायी सुधार करने के लिए भी ऋण दें।

• **कार्य क्षेत्र** :—भूमि बंधक बैंक का कार्य क्षेत्र छोटा होना चाहिये किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध ही न हो सके और उसका व्यय न निकल सके। मदरास में एक भूमि बन्धक बैंक एक ताल्लुके में होता है। बम्बई में भी ताल्लुका ही भूमि बंधक बैंक का क्षेत्र है। पंजाब में भूमि बंधक का कार्य क्षेत्र जिला है। उत्तर प्रदेश में भी भूमि बंधक बैंक का कार्य क्षेत्र बहुत सीमित है। भूमि बंधक बैंक का कार्य क्षेत्र एक ताल्लुक या परगना ही ठीक है। ऐसा भूमि बंधक बैंक न तो इतना छोटा होगा कि सफलता पूर्वक चल न सके और न वह इतना बड़ा क्षेत्र ही होगा कि साधारण किसान भूमि बंधक बैंक के लाभ से वंचित रह जावे।

कार्य शील पूँजी (Working Capital) :—भूमि बंधक बैंकों की कार्यशाल पूँजी हिस्सा पूँजी से तथा डिबेंचर (ऋण पत्र) बेंच कर प्राप्त की जाती है। भूमि बंधक बैंक डिपाज़िट स्वीकार नहीं करते। उनके लिए डिपाज़िट स्वीकार करना उचित भी नहीं है क्योंकि वे १० वर्षों से लेकर ३० वर्षों तक के लिए ऋण देते हैं। कोई भी व्यक्ति इतने लम्बे समय के लिए अपना रुपया भूमि बंधक बैंकों में जमा करना पसंद न करेगा। दो-तीन वर्ष के लिए डिपाज़िट लेकर २० और ३० वर्ष के लिए ऋण देना उचित नहीं होगा अस्तु भूमि बन्धक बैंक डिपाज़िट नहीं लेते।

हिस्सा पूँजी (Share Capital) दो तरह से इकट्ठी की जाती है। एक तो आरम्भ में हिस्सा बेंच कर अथवा ऋण देते समय उस रकम में से कुछ काट कर हिस्से का मूल्य वसूल करने से हिस्सा पूँजी इकट्ठी की जाती है। किन्तु इन बैंकों की अधिकांश पूँजी डिबेंचर बेंच कर प्राप्त की जाती है। जो भूमि सदस्य बैंकों के पास बंधक रखते हैं उनकी जमानत पर बैंक डिबेंचर निकालते हैं और जनता उनको खरीद लेती है। डिबेंचर २० या ३० वर्षों के लिए होते हैं। अन्य देशों में भूमि बंधक बैंकों के डिबेंचर बहुत अधिक प्रचलित हैं और जनता इनमें प्रसन्नता पूर्वक अपना रुपया लगाती है। परन्तु भारतवर्ष में क्योंकि इस प्रकार के डिबेंचर प्रचलित और सर्वप्रिय नहीं थे इस कारण सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रारों के सम्मेलन ने यह माँग रक्खी थी कि सरकार स्वयं भूमि बंधक बैंकों के डिबेंचर खरीदे और उनको सफलता पूर्वक बेंचने के लिए सरकार डिबेंचर के मूलधन तथा सूद की गारंटी कर दे। साथ ही भूमि बन्धक बैंकों के निकाले हुए डिबेंचरों को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना दिया जावे। शाही कृषि कमीशन तथा सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने यह प्रश्न

उपस्थित किया गया था। यहाँ कृषि कमीशन की राय थी कि सरकार को इस प्रकार कोई गारंटी न देना चाहिए। सेन्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी का मत था कि सरकार को मूलधन की गारंटी देने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ सूद की गारंटी सरकार को अवश्य दे देना चाहिए। इतने से ही जनता इन डिबेंचरों को खरीदने लगेगी और भूमि बन्धक बैंकों को यथेष्ट पूँजी मिल जावेगी। सेन्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी का यह भी मत था कि यदि सरकार को इस बात का सतोष हो जावे कि बैंकों ने डिबेंचरों को चुकाने का प्रबन्ध कर लिया है तो इन डिबेंचरों को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिए। आरम्भ में काम चलाने के लिए जहाँ कहीं भी आवश्यकता हो सरकार भूमि बन्धक बैंकों को बिना सूद रुपया दे दे और डिबेंचर बिकने पर सरकार का रुपया वापस दे दिया जावे। यह ध्यान में रखने की बात है कि पूँजी की यह व्यवस्था बैंकों के प्रारम्भिक काल के लिए ही उपयुक्त होगी। विशेषज्ञों का कथन है कि आगे चल कर इन बैंकों को बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी। उस समय प्रान्तीय सरकारों को इन बैंकों के डिबेंचर खरीद कर इनको सहायता देनी चाहिए।

भूमि बन्धक बैंकों में से यदि प्रत्येक बैंक डिबेंचर बेंचने लगेगा तो उनमें आपस में ही प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो जावेगी। जो बैंक अधिक सुव्यवस्थित और मजबूत होगा वह कम सूद पर डिबेंचर बेंच सकेगा और दूसरे बैंकों को अधिक सूद देना होगा। इस समस्या को हल करने के लिए यह आवश्यक है कि ताल्लुका या जिला भूमि बन्धक बैंकों को डिबेंचर न बेचने दिए जावें वरन् प्रान्त में एक केन्द्रीय संस्था (प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक या सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक) स्थापित की जावे। यह केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक सब सम्बन्धित भूमि बन्धक बैंकों के लिए डिबेंचर निकाले और जिला या ताल्लुका भूमि बन्धक बैंक उनको बेचें। जो भूमि जिला या ताल्लुका बैंक बन्धक रक्खे उसकी जमानत पर वे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक से ऋण ले लें और प्रान्तीय भूमि बन्धक उस जमानत अर्थात् बन्धक रक्खी भूमि पर निर्भर होकर डिबेंचर निकालें। अभी तक केवल मदरास और बम्बई प्रान्तों में केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों की स्थापना की गई है। शेष प्रान्तों में या तो प्रान्तीय सहकारी बैंक भूमि बन्धक बैंकों के लिए डिबेंचर निकालते हैं अथवा भूमि बन्धक ही डिबेंचर निकालते हैं। बात यह है कि मदरास को छोड़ कर अन्य प्रान्तों में भूमि बन्धक बैंक बहुत कम हैं। इस कारण केन्द्रीय संस्था की आवश्यकता नहीं पड़ती और इसी प्रकार काम चल जाता है। किन्तु जब अधिक संख्या में भूमि बन्धक बैंक स्थापित हो जावेंगे तो बिना केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक के काम नहीं चल सकता।

बैंक का संचालन :—भूमि बंधक बैंक का प्रबंध और संचालन एक बोर्ड आव डायरैक्टर करता है। डायरैक्टरों में अधिकतर उन सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो ऋण लेते हैं। किन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी बोर्ड में ले लिए जाते हैं जो ऋण नहीं लेते वरन् उन्हें व्यवसायिक पटुता के कारण लिया जाता है जिससे बैंक का काम ठीक चल सके। जब कोई किसान बैंक से ऋण लेना चाहता है तो बैंक के छपे हुए फार्म पर अपनी लेनी और देनी (Assets and Liabilities) का पूरा ब्योरा देकर और साथ में अपनी भूमि सम्बन्धी कागज़ नत्थी करके अपने क्षेत्र के भूमि बन्धक बैंक को प्रार्थना पत्र दे देता है। तब भूमि बंधक बैंक का एक डायरैक्टर तथा सुपरवाइज़र उस किसान के खेतों का मूल्य, उनकी पैदावार, और किसान के ऋण चुका सकने की क्षमता की पूरी जाँच करता है। तदोपरान्त एक सर्टिफिकेट इस आशय का प्राप्त किया जाता है कि उस भूमि पर कोई ऋण लिया हुआ नहीं है। इतना हो चुकने पर बैंक का कानूनी-सलाहकार उन कागज़ों को देख कर किसान का दायित्व ठीक है या नहीं इस पर अपनी रिपोर्ट देता है। बैंक का संचालक बोर्ड आव डायरैक्टर उस रिपोर्ट पर ऋण देना स्वीकार करता है अथवा अस्वीकार करता है। स्वीकृत प्रार्थना पत्र केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक के पास भेज दिया जाता है। केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक के दफ्तर में सब कागज़ों की जाँच होकर वे बैंक के कार्यकारिणी समिति के सामने रख दिए जाते हैं। जब सेन्ट्रल भूमि बधक बैंक ऋण देना स्वीकार कर लेता है तो उसकी सूचना उस ताल्लुका अथवा ज़िला भूमि बन्धक बैंक को दे दी जाती है और वह भूमि बंधक बैंक प्रार्थी से बन्धक पत्र लिखा कर सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक के नाम करा देता है। केन्द्रीय या सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक बन्धक पत्र पाने पर ताल्लुका या ज़िला भूमि बन्धक बैंक को ऋण दे देता है। जहां केन्द्रीय अर्थात् सेन्ट्रल भूमि बधक बैंक नहीं होते वहां सहकारी विभाग का कोई उच्च कर्मचारी कागज़ों को देखता है और उसकी स्वीकृति मिलने पर प्रान्तीय सहकारी बैंक के नाम बन्धक पत्र लिखा दिया जाता है और वह डिबेंचर निकाल कर भूमि बन्धक बैंक को दे देता है। जहां प्रान्तीय बैंक डिबेंचर नहीं निकालते वहां ताल्लुका या ज़िला भूमि बन्धक बैंक जिन्हें हम प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक भी कह सकते हैं डिबेंचर निकालते हैं और प्रार्थी को ऋण दे देते हैं।

जब किसान की भूमि बन्धक रक्खी जाती है तो उसका जो मूल्य कृता जाता है उसका ५० प्रतिशत से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता।

मद्रास में किसी एक व्यक्ति को ५ हजार रुपए से अधिक और बम्बई में १० हजार रुपये से अधिक ऋण नहीं दिया जाता। किसी भी प्रान्त में १० हजार रुपये से अधिक किसी एक सदस्य को ऋण नहीं दिया जाता। ऋण अधिक से अधिक ३० वर्षों के लिए दिया जाता है। अधिकतर १० वर्षों से २० वर्षों के लिए ऋण दिया जाता है। जब ऋण दिया जाता है तब उस पर सूद का हिसाब लगाकर सूद सहित बराबर बराबर वार्षिक किश्तों में किसान से वसूल कर लिया जाता है जिससे एक निश्चित समय के अन्दर मूलधन और सूद चुक जावे। इससे यह लाभ होता है कि किसान को प्रतिवर्ष मूलधन और सूद के रूप में केवल उतनी ही किश्त देनी पड़ती है जितनी वह महाजन को केवल सूद में ही दे देता है। इस प्रकार यदि किसान को ६ प्रतिशत पर ऋण दिया गया है तो उससे दिये हुए ऋण पर प्रतिवर्ष ६ प्रतिशत वसूल करने से २० वर्षों से कम में सारा ऋण चुक जावेगा।

जहां सहकारी साख समिति और भूमि बन्धक बैंक दोनों ही कार्य करते हों वहां दोनों संस्थाओं को एक दूसरे से स्वतन्त्र रहना चाहिए। हां दोनों में सहयोग होना आवश्यक है। यदि किसी सहकारी साख समिति का सदस्य भूमि बन्धक बैंक से ऋण लेने के लिए प्रार्थना पत्र दे तो बैंक साख समिति से उसके सम्बन्ध में पूछ-तांछ कर ले किन्तु सहकारी साख समिति पर ऋण की ज़िम्मेदारी न होगी।

भूमि बन्धक बैंकों को सुविधाओं की आवश्यकता :— भूमि बन्धक बैंकों की सफलता के लिए सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले यह आवश्यक समझते हैं कि भूमि बन्धक बैंकों को यह अधिकार दे दिया जावे कि बिना अदालत में गए अपना रुपया वसूल करने के लिए बंधक रक्खी हुई जमीन जब्त कर लें और बेंच दें। अधिकतर प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों ने इस मांग का विरोध किया है। उनका कहना है कि जब इस अधिकार का उपयोग किया जावेगा तब जनता में बैंकों के प्रति विरोध भावना उत्पन्न हो जावेगी। इसके अतिरिक्त यदि भूमि बंधक बैंकों को यह अधिकार दे दिया जावेगा तो वे ऋण देते समय भूमि की भली भांति जाँच पड़ताल नहीं करेंगे। उनके विचार से यदि भूमि बंधक बैंक सावधानी से काम करें और उनका प्रबन्ध अच्छा हो तो मुकदमेबाज़ी की आवश्यकता ही न पड़ेगी। सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने भी यह प्रश्न उपस्थित किया गया था। जो लोग बैंकों को यह अधिकार देने के पक्ष में हैं,

उनका कथन है कि यदि कोई विशेष कानून बनाकर भूमि बन्धक बैंक को यह अधिकार न दे दिया गया तो फल यह होगा कि बैंकों को अदालत की शरण लेनी होगी अथवा रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किये गये पंच के सामने मुक़दमा लड़ना होगा। भारत में सम्पत्ति का हस्तांतरकरण कानून (Transfer of Property Act) तथा जाब्ता दीवानी (Civil Procedure Code) इतने पेचीदे हैं कि भूमि बन्धक बैंकों को डिगरी कराने में बहुत समय तथा धन नष्ट करना होगा। इसका फल यह होगा कि बैंकों के कार्य में बहुत सी रुकावटें पड़ेंगी तथा डिबेंचरों की बिक्री पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। योरोपीय देशों में भी भूमि बन्धक बैंकों को विशेष कानून बना कर यह अधिकार दे दिया गया है कि यदि कर्जदार ऋण नहीं चुकाता तो भूमि बन्धक बैंक बिना अदालत में गए भूमि को बेंच सकता है। सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का यह मत है कि बिना यह अधिकार दिए डिबेंचर बेंच कर कार्यशील पूँजी इकट्ठी नहीं की जा सकती, जनता डिबेंचरों को न लेगी। अस्तु कमेटी ने उस माँग का समर्थन किया है। साथ ही यह भी कहा है कि देनदार को यह अधिकार होना चाहिए कि यदि वह समझता है कि बैंक का कार्य अन्यायपूर्ण है तो वह अदालत की शरण में जा सकता है। बैंक के देनदार के हिस्सेदार तथा अन्य किसी लेनदार को, भूमि के बैंक द्वारा ज़ब्त कर लेने पर यदि हानि होती हो तो वह भी अदालत की शरण में जा सकता है।

भारतवर्ष में कुछ प्रान्तों में भूमि हस्तांतरकरण कानून (Land Alienation Act) लागू है। इस कानून के द्वारा कुछ जातियाँ खेतिहर जातियाँ मान ली गई हैं, उन्हीं जाति के लोग भूमि को मोल ले सकते हैं। यह कानून सारे पंजाब, तथा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित प्रान्तों के कुछ भागों में लागू है। इन प्रान्तों में भूमि बन्धक बैंकों को यह अधिकार मिल जाने पर भी भूमि को बेंचने में अड़चन होगी। इसके अतिरिक्त बहुत से प्रान्तों में काश्तकारी कानून (Tenancy Act) के कारण भी भूमि के बेचने में रुकावटें होगीं। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों तथा सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का मत है कि इन कानूनों में इस आशय का संशोधन कर देना चाहिए कि भूमि बधक बैंकों को जब्त की हुई भूमि के बेंचने में कोई रुकावट न हो।

भूमि बंधक बैंकों की दशा :—पंजाब-भारतवर्ष में सबसे पहला भूमि बन्धक बैंक पंजाब के झंग ज़िले में १९२० में स्थापित हुआ। इसके उपरान्त

पंजाब में कुल १२ भूमि बन्धक बैंक स्थापित हुए किन्तु वे सफल नहीं हुए। १६२६ के उपरान्त खेती की पैदावार का मूल्य बहुत गिर जाने से भूमि के मूल्य में भी भारी कमी हुई। भूमि हस्तांतर कानून (Land Alienation Act) के लागू होने से तथा डायरैक्टरों तथा अवैतनिक कार्यकर्ताओं के अधिक ऋण ले लेने के कारण यह बैंक असफल हो गए। दो बैंक कार्य करते हैं। इन्हें प्रान्तीय सहकारी बैंक ही ऋण देता है।

मदरास :—मदरास में भूमि बन्धक बैंकों को बहुत सफलता मिली है। यहाँ लगभग २०० भूमि बन्धक बैंक काम कर रहे हैं। इन बैंकों ने ६ करोड़ रुपये से अधिक का ऋण दिया है। प्रतिवर्ष ५० लाख रुपये से अधिक का ऋण दे दिया जाता है। किसानों से केवल ६ प्रतिशत सूद लिया जाता है। मदरास म १६२६ के पहले प्रत्येक भूमि बन्धक बैंक अपने डिबेंचर बचता था किन्तु १६२६ में सैन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक की स्थापना हुई तब से सब प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक के लिए वही डिबेंचर निकालता है। इससे द्रव्य बाजार में भूमिक बन्धक बैंकों में आपस म हो जा प्रतिस्पर्द्धा होता थी वह बच गई और कम सूद पर पूँजी मिल जाती है।

मदरास सरकार ने भूमि बन्धक बैंकों को बहुत सी सुविधायें दी हैं जैसे कागज़ातों की रजिस्ट्री करने मे उन्हें आधी फीस देनी होती है। यह मालूम करने के लिए कि भूमि पर और कोई ऋण लिया हुआ है या नहीं और उसका सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए भी आधी फीस ली जाती है। बैंकों को गाँव के नक्शे, बंदोबस्त के रजिस्टर और ज़िले का गज़ट बिना मूल्य दिये जाते हैं।

कानून बनाकर मदरास में कुछ विशेष सुविधायें इन बैंकों को दे दी गई हैं। यदि कोई देनदार भूमि बन्धक का ऋण अदा न करे तो बैंक को यह अधिकार होगा कि बैंक बिना अदालत में गए उस भूमि को और उस पर खड़ी हुई फसल को जब्त कर के बेच दे। इस ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार भी दे दिया गया है कि वह भूमि बन्धक बैंकों के डिबेंचरों की अदायगी की गारंटी दे दे। ऐक्ट के द्वारा सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंकों को ५ प्रतिशत सूद पर ऋण देता है और ३ प्रतिशत या ३½ प्रतिशत पर डिबेंचर बेचता है। मदरास सरकार ने सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक के निकाले हुए डिबेंचरों के मूलधन तथा सूद की गारंटी दे दी है। सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक का सचालन बड़ी सतर्कता से किया

जा रहा है। ४० प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में प्रतिवर्ष जमा किया जाता है और केवल ४½ प्रतिशत लाभ बाँटा जाता है।

बम्बई :—बम्बई में २० भूमि बन्धक बैंक हैं जो प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक से सम्बन्धित हैं। ऋण २० वर्षों से अधिक के लिये नहीं दिया जाता और एक व्यक्ति को १० हज़ार रुपये से अधिक का ऋण नहीं दिया जा सकता। प्रारम्भिक भूमि बधक बैंक ६½ प्रतिशत पर अपने सदस्यों को ऋण देते हैं। नियम के अनुसार प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक अपने लाभ का ५० प्रतिशत रक्षित कोष में रखता है और सवा छः प्रतिशत से अधिक लाभ नहीं बाँटा जा सकता। प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक डिबेंचर बेंच कर कार्यशील पूँजी प्राप्त करता है जिनके मूलधन और सूद की अदायगी की गारंटी प्रान्तीय सरकार ने दे रक्खी है और जो ट्रस्टी सिक्यूरटी मान लिए गए हैं। यह बैंक रक्षित कोष (Reserve Fund) के अतिरिक्त ऋण परिशोध कोष (Debt Redemption Fund) भी रखता है, यों बम्बई के भूमि बैंकों का संगठन ठीक मदरास जैसा ही है।

आसाम :—आसाम में ४० भूमि बन्धक बैंक थे वे भी नितान्त असफल रहे। अब वे सदस्यों को ऋण नहीं देते।

बंगाल :—बंगाल में ५ प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक हैं, वे भी विशेष सफल नहीं हुए।

मध्य प्रदेश :—मध्य प्रदेश में २१ भूमि बन्धक बैंक हैं। उन्हें प्रान्तीय सहकारी बैंक ऋण देता है जिनका भूमि बंधक बैंक विभाग डिबेंचर निकालता है। सरकार ने डिबेंचरों के मूलधन तथा सूद की अदायगी की गारंटी दे दी है। सरकार ने काश्तकारी कानून (Tenancy Act) में संशोधन करके मौरूसी और सीर जमीन को भी भूमि बन्धक बैंक के पास बन्धक रखने की सुविधा दे दी है।

उड़ीसा :—उड़ीसा में एक प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक है। वह अपनी शाखाओं द्वारा अपने सदस्यों को ऋण देता है।

उत्तर प्रदेश :—उत्तर प्रदेश में केवल ५ भूमि बन्धक बैंक सहकारी समितियाँ हैं। यह मदरास के प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंकों की अपेक्षा बहुत छोटी हैं और सहकारी सेन्ट्रल बैंकों से ऋण लेकर सदस्यों को ऋण देती हैं।

अजमेर :—मेरवाड़ा में ३ भूमि बन्धक बैंक हैं जिनकी स्थिति अच्छी नहीं है।

देशी राज्यों में मैसूर, कोचीन और बड़ौदा में भूमि बन्धक बैंकों की स्थापना हुई है। भूमि बन्धक बैंकों के कार्य का सिंहावलोकन करते हुए रिजर्व बैंक ने इस बात पर विशेष जोर दिया है कि उन बैंकों को केवल पुराने ऋण को चुकाने के लिए ही नहीं वरन् खेती और भूमि की उन्नति के लिये भी ऋण देना चाहिए। भारतवर्ष में किसानों के पुराने ऋण की समस्या को हल करने के लिए अधिकाधिक भूमि बन्धक बैंकों की स्थापना की आवश्यकता है।

सहकारी साख आन्दोलन का पुनर्निर्माण : सहकारी साख आन्दोलन की गिरी हुई दशा के कारण तथा युद्ध के पूर्व कुछ प्रान्तों में आन्दोलन के लगभग नष्ट हो जाने के कारण इस बात की आवश्यकता हुई कि आन्दोलन का पुनर्निर्माण किया जाव। भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो पुनर्निर्माण की योजनायें बनीं वे इस प्रकार की थीं।

सब से पहले सहकारी साख समिति के दिए हुए ऋण की जाँच की जाती है और उसको इतना कम कर दिया जाता है कि सदस्य उसको चुका सके। ऐसा करते समय सदस्य की हैसियत और उसकी सम्पत्ति का ध्यान रक्खा जाता है। फिर कम की हुई रक़म को क़िस्तों में बाँट दिया जाता है जिन्हें सदस्य धीरे धीरे अदा करता है। किसी भी दशा में २० वर्षों से अधिक के लिए किस्तें नहीं बाँधी जातीं। सदस्यों के ऋण न चुकाने के कारण जो भूमि समितियों के अधिकार में आ गई हो वह उसके पहले मालिक को 'किराये पर खरीद' (हायर पर्चेज) पद्धति से दे दी जाती है और सब किस्तें चुका देने पर भूमि उसके पहले मालिक को दे दी जाती है।

सदस्यों के ऋण को कम करने में जो घाटा होता है, या जिन सदस्यों से ऋण वसूल नहीं होता उनकी रकम बट्टे खाते में डाल दी जाती है और साख समितियों के रक्षित कोष या हिस्सा पूँजी से उस हानि को पूरा किया जाता है। यदि सहकारी साख समितियाँ उस हानि को सहन करने में असमर्थ होती हैं तो सेन्ट्रल सहकारी बैंक साख समितियों पर जो उसकी रकम उधार होती है उसको उसी अनुपात में कम कर देता है और जो साख समितियाँ अपनी देनी को चुकाने में बिलकुल असमर्थ होती हैं उन्हें तोड़ दिया जाता है। सेन्ट्रल बैंकों की लेनी और देनी की भी पूरी जाँच की जाती है और यदि उससे यह ज्ञात होता है कि सेन्ट्रल बैंक अपनी देनी को नहीं चुका सकते तो उनके लेनदारों को भी उसी अनुपात में अपनी रकम कम कर देने के लिए कहा जाता है। मध्य प्रदेश और बरार तथा बंगाल के सेन्ट्रल बैंकों

ने इस प्रकार अपने लेनदारों (Creditors) की रकम को घटा दिया। बंगाल में लेनदारों की जो रकम शेष रही उतने के उन्हें डिबेंचर दे दिए गए। बिहार के सेन्ट्रल बैंकों के लेनदारों की रकम कुछ तो नकद रूप में दे दी गई कुछ डिपाज़िट में परिणत कर दी गई और कुछ बट्टे खाते में डाल दी गई। पुनः निर्माण योजना की एक विशेष बात यह थी कि पुनर्संगठित समितियों के सदस्यों को ऋण अनाज के रूप में दिया जाता है जिससे वे खेती इत्यादि करें और यह ऋण अनाज के रूप में ही वापस किया जाता है।

बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश और बरार में सहकारिता साख आन्दोलन की दशा बहुत गिर गई थी अस्तु प्रान्तीय सरकारों ने भी वहां के प्रान्तीय सहकारी बैंकों तथा सेन्ट्रल बैंकों को आर्थिक सहायता प्रदान की। १९३९ के उपरान्त युद्ध आरम्भ हो गया और क्रमशः खेती की पैदावार का मूल्य ऊँचा चढ़ने लगा। इस समय तो खेती की पैदावार का मूल्य आकाश छू रहा है। किसान की आर्थिक स्थिति इस परिवर्तन से कुछ संभली और साख समितियों का बकाया ऋण वसूल हो गया। इस परिवर्तन का प्रभाव यह पड़ा कि सहकारी साख समितियों तथा सेन्ट्रल बैंकों का आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ और उनका ऋण वसूल हो गया।

प्रारम्भिक साख समितियों का नवनिर्माण

अपरिमित और परिमित दायित्व (United and Limited Liability)

प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों के कई प्रश्नों पर आजकल बहुत विवाद चल रहा है जैसे समितियों का दायित्व, उनका क्षेत्र, उनका निरीक्षण, उनका सेन्ट्रल बैंक से सम्बन्ध आदि। सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओं का एक बहुत बड़ा समूह इस पक्ष में है कि कृषि सहकारी साख समितियों का दायित्व अपरिमित न होकर परिमित होना चाहिए। १९४० में मदरास सहकारी कमेटी के बहुमत ने भी इसी पक्ष में अपना मत दिया था। उनका कहना था कि अपरिमित दायित्व से अब कोई लाभ नहीं है वरन् हानियां अधिक हैं। पिछले वर्षों में साख समितियों को दिवालिया बनाने में अपरिमित दायित्व से उन सदस्यों को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी जो साख समिति से ऋण नहीं लेते थे और जिन्होंने अपना ऋण चुका दिया था। इस कारण आन्दोलन की बहुत बदनामी हुई। उनका

कहना यह है कि अपरिमित दायित्व से अच्छे किसान भयभीत हो जाते हैं और साख समितियों के सदस्य नहीं बनते। भविष्य में तो यह और भी अधिक होगा। वास्तव में जब साख समिति भंग की जाती है तब अपरिमित दायित्व अपरिमित न रह कर अपना-अपना योग्यतानुसार साख समिति को देना चुकाने का दायित्व रह जाता है। अपरिमित दायित्व के विरोधियों का यह भी कहना है कि अपरिमित दायित्व का आधार—अर्थात् एक दूसरे के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी, एक दूसरे के कार्यों पर निरीक्षण रखना, तथा पारस्परिक विश्वास आज के ग्राम्य जीवन में सम्भव नहीं है। व्यवहार में व्यक्तिगत जमानत पर [illegible] सम्पत्ति की जमानत, ऋण देने में अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है।

जो लोग अपरिमित दायित्व के पक्ष में हैं उनका कहना है कि आज तक जितने भी कमीशन और कमेटियाँ बैठीं उन्होंने अपरिमित दायित्व के पक्ष में ही अपना मत दिया है। अपरिमित दायित्व सहकारिता का आधारभूत सिद्धान्त है—"प्रत्येक सब के लिए और सब प्रत्येक के लिए" यह सिद्धान्त सामूहिक जिम्मेदारी तथा भाईचारे की भावना को उदय करने के लिए स्थापित किया गया था। इसको छोड़ देने से पारस्परिक विश्वास तथा जानकारी नष्ट हो जावेगी और साख समितियाँ सहकारी न रहकर सेन्ट्रल बैंक की शाखा मात्र रह जावेंगी। अपरिमित दायित्व की कठोरता सहकारिता विभाग के नियमों ने कम कर दी है। उसे पूर्णतया हटा देने से जनता का साख समितियों पर से विश्वास उठ जावेगा और उन्हें फिर क्रेडिट प्राप्त नहीं होगी। अपरिमित दायित्व निर्धन व्यक्तियों के लिए है। क्योंकि उनके पास कोई सम्पत्ति तो होती नहीं, उनकी जमानत तो होती नहीं, उनकी जमानत तो केवल उनका अच्छा चरित्र, ईमानदारी और उनकी उत्पादन शक्ति ही हो सकती है।

रिज़र्व बैंक का भी यही मत है कि कृषि साख सहकारी समितियों का दायित्व अपरिमित होना चाहिए। परन्तु दिसम्बर १९३६ में सहकारिता विभागों के रजिस्ट्रारों के सम्मेलन में यह प्रस्ताव केवल सभापति के निर्णायक मत से गिर गया कि कृषि साख समितियों का दायित्व परिमित होना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि देश में बहुत संख्या में ऐसे कार्यकर्ता हैं जो अपरिमित दायित्व को व्यर्थ समझते हैं।

ग्राम्य सहकारी साख समिति पर लेख :—मद्रास सहकारी समिति

का मत है कि एक गाँव बहुत छोटा क्षेत्र है और उसकी साख समिति इतनी छोटी होती है कि वह आर्थिक दृष्टि से सफल हो ही नहीं सकती। अतएव बहुत सी छोटी समितियों को मिला कर एक कर दिया जावे और वे एक से अधिक गाँव में कार्य करें। परन्तु ऐसा करने से पारस्परिक विश्वास और जानकारी जो आन्दोलन का आधार है नष्ट हो सकती है और उस दशा में ग्राम्य साख समितियों को भी परिमित दायित्व स्वीकार करना अनिवार्य हो जावेगा।

बहुत उद्देश्य वाली समितियाँ (Multi-purposes Societies) :—कुछ समय से इस विषय में बड़ा विवाद है कि साख समितियों का कार्य-क्षेत्र क्या होना चाहिए। यह तो सभी मानते हैं कि किसान की आर्थिक स्थिति में तब तक सुधार नहीं हो सकता जब तक उसके जीवन में सर्वांगीण उन्नति न हो। रिज़र्व बैंक ने इसी बात को लेकर बहु-उद्देश्य वाली समितियों की स्थापना का समर्थन किया था। रिज़र्व बैंक का मत है कि बहु-उद्देश्य वाली समिति सदस्य को खेती या अन्य धन्धे के लिए साख दे और अपने अच्छे सदस्यों के पुराने ऋण को भूमि बंधक बैंक के द्वारा अदा करवा दे। किसान सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए, उनकी पैदावार को बेचे, उनके लिए बढ़िया बीज़ खरीदे, और उन्हें उनकी आवश्यकता की वस्तुओं को ठीक मूल्य पर दिलाने के लिए उनसे आर्डर लेकर उन चीज़ों को खरीद कर उन्हें दे। मुकदमेबाज़ी को कम करने के लिए पंचायत स्थापित करे, भूमि की चकबंदी करके अच्छे बीज़ और औज़ारों का प्रचार करके खेती की पैदावार को बढ़ावे, खेती के अतिरिक्त बेकार समय में गौण तथा सहायक धंधों के द्वारा उनकी आय को बढ़ाने का प्रयत्न करे। जीवन सुधार कार्य को हाथ में लेकर स्वास्थ्य, औषधि वितरण, उपचार, सामाजिक कृत्यों में अधिक धन व्यय न करने और गाँव में सफाई रखने का प्रबंध करे। कहने का तात्पर्य यह है कि बहु-उद्देश्य वाली समिति गाँव की सभी मुख्य समस्याओं को हल कर के गाँव वालों को सुखी और समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करे। ऐसी समिति गाँव के सार्वजनिक जीवन का केन्द्र बन जावेगी। यह समितियाँ केवल साख ही नहीं देंगी वरन् गाँव की आर्थिक दशा को सुधारने और सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी।

सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए लोगों का इस विषय में काफी मतभेद है। कुछ बहु-उद्देश्य वाली समितियों के पक्ष में हैं कुछ विपक्ष में। विरोध

करने वालों का कहना है कि इस प्रकार की समितियों का चलाना कठिन है। यह समितियाँ कुछ शिक्षित व्यक्तियों के हाथ का खिलौना मात्र रह जावेंगी जो सहकारिता की भावना के विरुद्ध है। यही नहीं उनका यह भी कहना है कि भिन्न विभागों के हिसाब एक दूसरे से मिले रहेंगे जिससे समिति की वास्तविक स्थिति छिपी रहेगी और एक विभाग के खराब होने से दूसरे विभागों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि समिति के उपयोगी कार्य भी असफल हो जावेंगे।

परन्तु यह सब स्वीकार करते हैं कि गाँव की सभी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ना चाहिए तभी गाँवों की सर्वांगीण उन्नति हो सकती है। सहकारिता आन्दोलन के प्रसिद्ध विद्वान श्री "फे" महोदय ने भी बहु उद्देश्य वाली समितियों का समर्थन किया है। रजिस्ट्रारों के सम्मेलन ने भी बहु उद्देश्य वाली समितियों की स्थापना करने की सिफारिश की है। मदरास सहकारिता कमेटी ने बहु उद्देश्य वाली समितियों की स्थापना का समर्थन किया है। १९४८ में भारत सरकार द्वारा नियुक्त कोआपरेटिव प्लैनिंग कमेटी (Co-operative Planning Committee) ने भी इसी मत का समर्थन किया है कि साख समिति केवल साख ही न दे वरन् किसानों की पैदावार को बेचे तथा उन्हें खेती के लिए हल, बैल, बीज आदि भी दे। किन्तु वह अन्य कार्यों को भी साख समिति के सुपुर्द करने के पक्ष में नहीं है।

उत्तर प्रदेश, मदरास, बम्बई और बड़ौदा में बहु उद्देश्य वाली समितियाँ स्थापित हो गई हैं। बम्बई और मदरास में बहु-उद्देश्य वाली समितियों का कार्य-क्षेत्र कई गावों में होता है, किन्तु उत्तर प्रदेश तथा बड़ौदा में एक गाँव में एक समिति होती है। अभी यह प्रयोग नया ही है इस कारण इनके सम्बन्ध में कुछ कह सकना कठिन है। उत्तर प्रदेश में ही ५००० बहु उद्देश्य वाली समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं।

रिजर्व बैंक तथा सहकारी आन्दोलन :—रिज़र्व बैंक के स्थापित हो जाने के उपरान्त उसकी कृषि साख शाखा (Agricultural Credit Branch) १९३५ में स्थापित की गई। रिज़र्व बैंक की कृषि साख शाखा के निम्नलिखित कार्य हैं :—कृषि साख के विशेषज्ञों को नियुक्त करना, जो कृषि साख के सम्बन्ध में भारत सरकार, प्रान्तीय सरकारों, देशी राज्यों और सहकारी बैंकों को सलाह दें। रिजर्व बैंक तथा सहकारी बैंकों के आपसी सम्बन्ध तथा कृषि साख के सम्बन्ध में जो नीति रिजर्व बैंक निर्धारित करे उसको

स्पष्टीकरण करना। रिज़र्व बैंक ऐक्ट के अनुसार रिज़र्व बैंक के कृषि साख विभाग ने भारत सरकार को सहकारी साख आन्दोलन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट भेजी थी। उस रिपोर्ट में रिज़र्व बैंक के कृषि साख विभाग ने सहकारी साख आन्दोलन को पुनः संगठित करने की आवश्यकता बतलाते हुए नीचे लिखी सिफारिशें कीं :—

(१) जहां ऋण इतना अधिक हो गया हो कि कर्जदार की सामर्थ्य के बाहर हो, उसे घटा देना चाहिए।

(२) भविष्य में एक सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए जिससे अधिक ऋण न दिया जावे।

(३) सदस्य किसान को एक से अधिक स्थानों से ऋण न लेने दिया जावे।

(४) सहकारी गोदाम तथा विक्रय समितियों की स्थापना की जावे।

(५) प्रान्तीय सहकारी बैंक को कृषि सहकारी साख का नियंत्रण करना चाहिए।

(६) लम्बे समय के लिए दी जाने वाली साख, थोड़े समय के लिए दी जाने वाली साख से पृथक् कर दी जानी चाहिए। अर्थात् अधिक लम्बे समय के लिए भूमि बंधक बैंक ही ऋण दें।

(७) सहकारी सेन्ट्रल बैंकों को अपनी रकम इतनी घटा देनी चाहिए कि सदस्य खेती के लाभ में से उसे २० वर्षों में चुका सके। जो रकम वसूल न हो सके उसे बट्टे खाते में डाल देना चाहिए।

(८) साख समितियों को सूद की दर कुछ बढ़ानी चाहिए जिससे वे अधिक रक्षित कोष इकट्ठा कर सकें।

(९) सेन्ट्रल बैंकों के बोर्ड आव डायरैक्टर्स में बैंकिंग का अनुभव रखने वाले व्यक्ति अधिक होना चाहिए।

(१०) आवश्यकता से अधिक कर्ज़ लेने और सदस्यों से कर्ज़ की रकम वसूल करने में ढिलाई दूर करने के लिए डिपाज़िटरों के प्रतिनिधि भी सेन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों के बोर्ड में रहना चाहिए।

(११) यदि एक वर्ष से अधिक के लिए ऋण देना ही पड़े तो भी दो वर्षों से अधिक के लिए न दिया जावे। बैल इत्यादि खरीदने के लिए इस

प्रकार से ऋण को वार्षिक ऋण से पृथक् रक्खा जावे। साख समितियाँ इस प्रकार के ऋण को अधिक न दें।

(१२) सभी ऋण जो किसान को दिए जावें जैसे-जैसे उसे आवश्यकता हो किस्तों में दिये जावें, एक मुश्त रकम न दी जावे।

(१३) यदि ऋण की अदायगी ठीक समय पर न हो तो उसे तुरन्त वसूल करने का प्रयत्न किया जावे अथवा साख समिति को तोड़ दिया जावे (यदि फसल नष्ट हो गई हो तो बात दूसरी है।)

(१४ , ऋण की अदायगी के समय का फसल नष्ट हो जाने की दशा में ही बढ़ाया जावे।

(१५) प्रारम्भिक साख समिति का जो सहकारी साख आन्दोलन की आधार शिला है पुन. सगठन होना चाहिए और उसका क्षेत्र किसान का सारा जीवन होना चाहिए।

(१६) यह समितियाँ एक छोटी बैंकिंग यूनियन से सम्बन्धित कर दी जावें।

(१७) प्रान्तीय बैंक का आन्दोलन की देख भाल करना चाहिए और उसका नेतृत्व करना चाहिए।

रिज़र्व बैंक किसान को सीधे ऋण नहीं दे सकता और न खेती के लिए लम्बे समय के लिए ही ऋण दे सकता है। वह फसलों के लिए लिखे गए बिलों को भुना (डिस्काऊन्ट) कर प्रान्तीय सहकारी बैंकों की सहायता कर सकता है। किन्तु यह बिल ६ महीने से अधिक के लिए नहीं होने चाहिये। थोड़े समय के लिये आवश्यकता पड़ने पर रिज़र्व बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों को ऋण दे सकता है। रिज़र्व बैंक से आर्थिक सहायता पाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्तीय सहकारी बैंकों को अपनी चालू खाते की जमा [illegible] प्रतिशत और मुद्दती जमा की [illegible] प्रतिशत नकदी रिज़र्व बैंकों में जमा करें।

इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक ने प्रान्तीय सहकारी बैंकों को अपना रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए कुछ सुविधायें प्रदान की हैं। एक प्रकार से प्रान्तीय सहकारी बैंक भी प्रमाणिक बैंक (Schedule Bank) मान लिए गए हैं। सेन्ट्रल बैंकों को रिज़र्व बैंक ने प्रान्तीय सहकारी बैंक की शाखा मान लिया है अतएव उन्हें भी यह सुविधायें प्राप्त हो जावेंगी।

प्रान्तीय सहकारी बैंक इन सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हैं। अभी सब प्रान्तीय सहकारी बैंकों ने रिज़र्व बैंक से अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है। किन्तु भविष्य में जब प्रान्तीय सहकारी बैंकों का रिज़र्व बैंकों से सम्बन्ध स्थापित हो जावेगा तो सहकारी साख आन्दोलन सबल और दृढ़ हो जावेगा।

उपसंहार—भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन को प्रारम्भ हुए ४४ वर्ष हो गए। किन्तु आन्दोलन ने देश के आर्थिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन उपस्थित कर दिया हो ऐसा दिखलाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि सहकारी साख आन्दोलन अभी तक शक्तिहीन है। १६२६ के उपरान्त आर्थिक मंदी का भयंकर प्रभाव पड़ने से आसाम, बिहार, मध्य प्रदेश, बरार, उड़ीसा और पश्चिमोत्तर प्रान्त में सहकारी साख आन्दोलन जर्जर होकर नष्ट होने लगा। अन्य प्रान्तों में भी आन्दोलन की दशा शोचनीय हो गई। सहकारी साख समितियों के सदस्य अपना ऋण न चुका सके। सेन्ट्रल बैंकों की स्थिति डावाँडोल हो उठी। यहाँ तक प्रान्तीय सहकारी बैंक भी डगमगाने लगे। यदि उस समय प्रान्तीय सरकारों ने सहकारी साख आन्दोलन को सहायता न दी होती और पुनः निर्माण की योजनायें न चलाई जातीं तो इन प्रान्तों में आन्दोलन की मृत्यु हो जाने में कोई संदेह नहीं था। परन्तु १६३६ के उपरांत युद्ध के प्रभाव के फल स्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बहुत ऊँचा चढ़ गया किसान की आर्थिक स्थिति पहले से कुछ सुधर गई। वह अपना ऋण चुकाने लगा और साख समितियों से सेन्ट्रल बैंक सरलता से अपना ऋण वसूल कर सके। इस कारण सहकारी साख आन्दोलन की स्थिति पहले से बहुत संभल गई।

पंजाब, बम्बई, मदरास और उत्तर प्रदेश में साधारण रूप से सहकारिता आन्दोलन की स्थिति अच्छी है। बम्बई और मदरास में गैर सहकारी कार्यकर्ताओं के कारण, उत्तर प्रदेश और पंजाब में सरकारी कर्मचारियों की सतर्कता के कारण आन्दोलन कुछ हद तक सफल हुआ है। अजमेर, मेरवाड़ा, कुर्ग तथा देहली में आन्दोलन की दशा साधारण है। यद्यपि पंजाब, बम्बई, मदरास और उत्तर प्रदेश में भी साख समितियों की दशा संतोषजनक नहीं है, प्रतिवर्ष सैकड़ों समितियाँ दिवालिया हो जाती हैं, फिर भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा वहाँ स्थिति कुछ अच्छी है। देशी राज्यों में भी आन्दोलन की दशा संतोषजनक नहीं है। भूपाल, ग्वालियर और इन्दौर में आन्दोलन बहुत शक्तिहीन है। हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, ट्रावनकोर, तथा काशमीर में स्थिति साधारण है। अधिकतर देशी राज्यों में आन्दोलन अभी आरम्भ ही नहीं हुआ।

सदस्यों का अशिक्षित होना भी है। सहकारिता आन्दोलन की सफलता के लिए तो शिक्षा की बहुत आवश्यकता है क्योंकि सदस्यों को समिति को स्वयं चलाना पड़ता है, उनके हिसाब को रखना पड़ता है। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियों के लिए लिखे-पढ़े सदस्य नहीं मिलते जो मंत्री का कार्य कर सकें। इस कारण एक वैतनिक कर्मचारी को मंत्री बनाना पड़ता है जो कि सदस्य नहीं होता और उसके जिम्मे ८ या १० समितियाँ कर दी जाती हैं। उसका फल यह होता है कि वही समितियों का कर्ता-धर्ता बन जाता है और सदस्यों को कार्य करने को कोई शिक्षा नहीं मिलती। इन वैतनिक मंत्रियों के विरुद्ध बहुत शिकायतें हैं। शिक्षा के प्रचार के साथ ही सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना आवश्यक है। तभी सहकारी समितियाँ भली प्रकार चल सकती हैं।

भारत में बहुत से विद्वानों का मत है कि सहकारिता आन्दोलन एक आन्दोलन न होकर एक सरकारी नीति (State policy) के रूप में चलाया जाता है। यही आन्दोलन की निर्बलता है। यदि देखा जावे तो सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। रजिस्ट्रार कोई सिविलियन होता है, उसके नीचे डिप्टी रजिस्ट्रार तथा इन्स्पैक्टर होते हैं। कोई भी रजिस्ट्रार अधिक दिनों तक उस पद पर नहीं रह पाता क्योंकि वह अपनी उन्नति को आन्दोलन के लिए नहीं छोड़ सकता। फल यह होता है कि रजिस्ट्रार जल्दी जल्दी बदला करते हैं। और एक नीति स्थायी रूप से काम में नहीं लाई जाती। अधिकतर सहकारिता विभाग के कार्य कर्ताओं में उत्साह और लगन का अभाव है। अभी तक जो व्यक्ति उसमें गैर सरकारी कार्य कर्ता थे व सरकार का प्रश्रय करने के लिए उसमें आते थे न कि सेवा भाव से प्रेरित होकर आते थे। किन्तु अब राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त यदि सरकार चाहे तो सेवा भाव से प्रेरित होकर कार्य-कर्ता उसमें सम्मिलित होंगे।

इस सबका फल यह होता है साख समिति का सदस्य समिति को अपनी संस्था न समझकर सरकारी बैंक समझता है। वह तो समझता है कि जिस प्रकार सरकार तकावी बाँटती है उसी प्रकार यह सरकारी बैंक ऋण देता है। इसका अर्थ यह है कि समिति का सदस्य सहकारिता के मूल सिद्धान्त से अपरिचित है। वह यह नहीं समझता कि सहकारिता का मूल सिद्धान्त स्वावलम्बन है। अस्तु इस बात की आवश्यकता है कि आन्दोलन

पर से सरकारी नियंत्रण क्रमशः हटा कर गैर सरकारी कार्यकर्ताओं के हाथ में दे दिया जावे और गैर सरकारी अवैतनिक कार्यकर्ताओं को आन्दोलन में आने के लिए प्रोत्साहित किया जावे ।

अधिकांश साख समितियों की आर्थिक स्थिति खराब है। वह महाजन की प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकतीं। महाजन की स्थिति गांव में पहले जैसी ही मज़बूत है वह साख समितियों से तनिक भी भयभीत नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आन्दोलन जीवन रहित है।

भारतीय सहकारिता आन्दोलन की एक कमी यह है कि वह अभी तक साख समितियों तक ही सीमित रहा। गैर साख समितियों की संख्या बहुत कम है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में साख समितियों की आवश्यकता है। उनके महत्व को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु गैर साख समितियों की भी उतनी ही आवश्यकता है। गांव का महाजन किसान को केवल ऋण ही नहीं देता वरन उसकी पैदावार को खरीदता भी है और उसकी आवश्यक वस्तुएं बेंचता भी है। जब तक कि सहकारी समितियां क्रय-विक्रय को भी अपने हाथ में लेकर महाजन को उसके स्थान से हटा नहीं देतीं तब तक महाजन का बल नष्ट नहीं होगा और न किसान की आर्थिक दशा में ही सुधार होगा। गृह उद्योग धंधों में लगे हुए कारीगरों को भी साख के साथ क्रय विक्रय कार्य करने वाली समिति की आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि अब इस ओर विशेष रूप से सहकारिता विभाग का ध्यान गया है और गैर साख समितियों की स्थापना हो रही है।

एक दोष जो कि आन्दोलन में घुस आया है वह कागज़ी लेन-देन है। जब समिति के सदस्य रुपया जमा नहीं करते तो समिति सैन्ट्रल बैंक से उतना ही ऋण ले लेती है जितनी किस्त उन्हें चुकानी होती है। बैंक के खाते में पिछली किस्त चुकता दिखला दी जाती है और उतना ही रुपया ऋण के रूप में दिखला दिया जाता है। उसका अर्थ यह होता है कि रुपया वसूल नहीं होता और अधिकारियों को धोखा दिया जाता है।

आन्दोलन की निर्बलता का एक कारण यह भी है कि सहकारिता विभाग के कर्मचारी अपनी योग्यता दिखलाने के उद्देश्य से शीघ्रतापूर्वक बिना अधिक ध्यान दिये तथा सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा दिये समितियां स्थापित कर देते हैं। कुछ समय उपरान्त उस कर्मचारी का तबादला हो जाता

है। जल्दी में सगठित समिति ठीक काम नहीं करती। अन्त में दिवालिया हो जाती है और आन्दोलन पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

कहीं कहीं पंचायत के सदस्य बेईमानी करते हैं, कहीं कहीं महाजन ही समिति को हथियाने का प्रयत्न करता है और कहीं कहीं प्रभावशाली सदस्य समिति को हथिया लेते हैं और वे ही उससे अधिक लाभ उठाते हैं। वे अन्य व्यक्तियों को उसका सदस्य नहीं बनाते और अधिकांश ऋण स्वयं ही ले लेते हैं। समितियों से ऋण मिलने में देरी होती है और जितना ऋण सदस्य चाहते हैं, उतना नहीं मिल पाता।

प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों का निरीक्षण और आडिट ठीक तरह से नहीं होता इस कारण बहुत से दोष छिपे रहते हैं। साख समितियों की ओर अधिक ग्रामवासी इस कारण भी आकर्षित नहीं होते क्योंकि समिति से ऋण लेने से उसका ऋणी होना प्रकट हो जाता है। वह गुप्त नहीं रह पाता और कभी कभी जब कि वह किस्त नहीं दे पाता तो उसे सबों के सामने अपमानित होना पड़ता है। सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी अथवा सुपरवाइज़र गांव में जाकर सीधे समिति के सदस्य से रुपया वसूल करते हैं। इससे दो हानियां होती हैं एक तो सदस्य की दृष्टि में समिति का कोई मूल्य नहीं रहता। वह समझता है कि बैंक के कर्मचारी ही वास्तव में ऋण दाता हैं, दूसरे जो किसान यह सब देखते हैं वे खुले आम अपमानित होने की अपेक्षा महाजन से चुपचाप ऋण लेना अच्छा समझते हैं। यही कारण है कि सहकारिता आन्दोलन जनता को आकर्षित न कर सका।

सहकारी साख समितियों से लाभ—ऊपर लिखी समालोचना से यह न समझ लेना चाहिए कि सहकारिता आन्दोलन (Co operative movement) से कोई लाभ हो नहीं हुआ है। यह ठीक है कि आन्दोलन अभी निर्बल है। दोषपूर्ण संगठन तथा कार्य-कर्त्ताओं की अकर्मण्यता के कारण वह अभी तक सबल नहीं हो सका है। फिर भी आन्दोलन से देश को लाभ हुआ है। शाही कृषि कमीशन की सम्मति में "सहकारिता आन्दोलन के विषय में जानकारी बढ़ रही है, मितव्ययिता को प्रोत्साहन मिल रहा है। बैंकिंग के सिद्धान्तों की शिक्षा दी जा रही है। जहां आन्दोलन की नींव दृढ़ है वहां महाजन ने सूद की दर घटा दी है और वह अच्छा व्यवहार करता है। उन गांवों में महाजन का प्रभुत्व कम हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसान की मनोवृत्ति बदल रही है।"

एक तो लाभ यही हुआ है कि आन्दोलन में लगभग ११० करोड़ रुपये की कार्यशील पूँजी (Working capital) है। वह निर्धन जनता को कम सूद पर मिलती है। सहकारी साख आन्दोलन में सूद की दरें इस प्रकार हैं :—

प्रारम्भिक साख समितियां—सदस्यों से ७ से ६ प्रतिशत सूद लेती हैं। डिपाज़िट पर ४ या ५ प्रतिशत सूद देती हैं तथा सैंट्रल बैंकों को ५ से ७ प्रतिशत सूद देती हैं।

सैन्ट्रल बैंक—३ या ४ प्रतिशत सूद डिपाज़िटों पर देते हैं और प्रान्तीय सहकारी बैंकों से ४ से ५ प्रतिशत सूद लेते हैं।

प्रान्तीय सहकारी बैंक—डिपाज़िटों पर २ से ३ प्रतिशत सूद देते हैं और इम्पीरियल बैंक से ३ प्रतिशत पर ऋण लेते हैं।

सहकारी साख समितियों से गाँव वालों में व्यापारिक ज्ञान, स्वावलम्बन, तथा सामूहिक भावना का उदय हुआ है।

महाजन का गांव में जो एकाधिपत्य था वह क्रमशः नष्ट हो रहा है इस डर से कि उसके ग्राहक समिति के सदस्य न बन जावें अथवा समिति न स्थापित हो जावे वह गाँव वालों के साथ नरमी का व्यवहार करता है।

भविष्य में निर्धन व्यक्तियों तथा गांवों का आर्थिक उन्नति के लिए सहकारिता आन्दोलन पर ही हमें निर्भर रहना होगा। हर्ष की बात है कि राष्ट्रीय सरकार का इस ओर ध्यान है। बिना सहकारिता आन्दोलन को सफल बनाये हमारे गांवों का सुधार नहीं हो सकता।

पिछले दिनों से कुछ अर्थशास्त्र के विद्वान यह अनुभव कर रहे थे कि कृषि की अर्थ-व्यवस्था करने के लिए केवल सहकारी साख समितियां अथवा सहकारी बैंक ही यथेष्ट नहीं हैं। उन लोगों का कहना था कि जिस प्रकार उद्योग धन्धों के लिए अर्थ व्यवस्था करने के लिए औद्योगिक फाइनैंस कारपोरेशन की स्थापना की गई है उसी प्रकार कृषि की अर्थव्यवस्था करने के लिए ग्राम्य फाइनैंस कारपोरेशन की स्थापना की जावे। विशेषकर सारिया कमेटी ने इस पर अधिक जोर दिया। अस्तु सरकार ने उक्त कारपोरेशन की स्थापना के लिए एक बिल उपस्थित किया है।

ग्राम्य अर्थ (Finance) कारपोरेशन बिल

(Rural Finance Corporation)

कारपोरेशन समस्त भारत में कृषि के धन्धे को आर्थिक सहायता प्रदान करेगी। यह भिन्न भिन्न स्थानों पर अपनी शाखाएँ या एजेंसी स्थापित करेगी। कारपोरेशन सहकारी समितियों को भी अपनी एजेंट बनावेगी। आवश्यकता पड़ने पर प्रान्तीय कृषि साख कारपोरेशन भी स्थापित करेगी। कारपोरेशन सभी प्रान्तीय सहकारी बैंकों की केन्द्रीय संस्था का काम भी कर सकती है।

पूँजी :—कारपोरेशन की पूँजी ५ करोड़ रुपए होगी। प्रत्येक हिस्से का मूल्य ५००० रु० होगा। हिस्से का मूल्य कम इस कारण रक्खा गया कि अधिक से अधिक सहकारी संस्थायें उसके हिस्से ले सकें। यदि कारपोरेशन दिवालिया हो जावे तो सरकार हिस्सा पूँजी की अदायगी की गारटी देगी। सरकार एक न्यूनतम लाभ की दर निर्धारित करेगी और उतने लाभ की गारटी हिस्सेदारों को देगी। यही नहीं सरकार को चाहिए कि लाभ की अधिकतम दर को निर्धारित कर दे। इस कारपोरेशन के हिस्सों को केवल (१) केन्द्रीय सरकार, (२) रिजर्व बैंक आव इंडिया, (३) शिड्यूल बैंक, (४) सहकारी बैंक (५) तथा चैम्बर आव कामर्स ही खरीद सकेंगे।

कारपोरेशन के हिस्सों का बटवारा नीचे लिखे अनुसार होगा :—

(१) केन्द्रीय सरकार १ करोड़ रुपये।

(२) रिज़र्व बैंक एक करोड़ रुपये।

(३) शिड्यूल बैंक एक करोड़ रुपये।

(४) सहकारी बैंक एक करोड़ रुपये।

(५) चैम्बर आव कामर्स, ईस्ट इंडिया काटन एसोसियेशन तथा बीमा कंपनियाँ इत्यादि—१ करोड़ रुपये।

हिस्सा पूँजी के बटवारे को ध्यान पूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कारपोरेशन सोलह आने सरकारी संस्था नहीं होगी।

कार्यशील पूँजी प्राप्त करने के लिए कारपोरेशन ऋण पत्र (डिबेंचर) निकाल सकेगी जिनकी पूँजी और सूद की अदायगी की गारटी सरकार देगी। सूद की दर सरकार कारपोरेशन के बोर्ड आव डायरैक्टरों की सलाह से निश्चित करेगी।

कारपोरेशन अपनी हिस्सा पूँजी के अधिक से अधिक आठ गुने ऋण-पत्र निकाल सकेगी। अर्थात् ४० करोड़ रुपये से अधिक के ऋण पत्र वह नहीं निकाल सकेगी।

कारपोरेशन अपनी हिस्सा पूँजी की दुगनी रकम अर्थात् दस करोड़ रुपये तक डिपाजिट ले सकेगी जमा पांच वर्ष या उससे अधिक समय के लिए ही ली जा सकेंगी।

साख—कारपोरेशन मध्यम काल तथा लम्बे काल के लिए अचल सम्पत्ति, जैसे इमारत, भूमि तथा यंत्रों की ज़मानत पर उनके ५० प्रतिशत मूल्य तक ऋण दे सकेगी। कारपोरेशन फसलों, गोदाम की रसीद पर तथा अन्य चल जायदाद की ज़मानत पर ऋण दे सकेगी। अल्पकालीन साख खेती के कार्यों, दूध तथा अंडे के धन्धों को करने के लिए, अथवा खेती की पैदावार की बिक्री के लिए दी जावेगी।

अल्पकालीन साख अधिक से अधिक १८ महीने के लिए दी जावेगी। मध्यमकालीन साख १८ महीने से ७ वर्षों तक के लिए होगी। मध्यमकालीन साख मशीनें खरीदने के लिए, खेती के लिए औज़ार तथा पशुओं को खरीदने के लिए, भूमि का सुधार करने, इमारत बनाने, खेती के लिए मशीन तथा यंत्र खरीदने, या किसी खेती से सम्बन्धित धन्धे को स्थापित करने के लिए दी जावेगी। मध्यमकालीन साख की कम से कम रक़म दस हजार रुपये और अधिक से अधिक रकम ५०,००० रु० होगी। अर्थात् किसी एक व्यक्ति को कम से कम दस हज़ार और अधिक से अधिक पचास हजार रुपये का ऋण दिया जा सकेगा।

लम्बे समय के लिए ऋण नीचे लिखे उद्देश्यों के लिए दिया जावेगा :-- भूमि की खरीद के लिए, भूमि में स्थायी सुधार करने के लिए, फार्म गृह को बनाने के लिए, और खेती से सम्बन्धित किसी धन्धे को स्थापित करने के लिए। दीर्घकालीन साख ७ वर्षों से ३० वर्षों तक के लिए दी जावेगी। किसी एक व्यक्ति को लम्बे समय के लिए कम से कम २५ हज़ार रुपए और अधिक से अधिक एक लाख रुपए दिए जावेंगे। यह न्यूनतम तथा अधिकतम ऋण देने की सीमा सहकारी समितियों तथा "ऋण लेने वाले समूहों" के बारे में लागू नहीं होगी। बहुत कम कर्ज़ लेने वाले सहकारी साख समितियों से ही कर्ज़ लेते रहेंगे क्योंकि वे सम्भवतः २५ हज़ार कर्ज़ कभी भी नहीं ले सकते।

जब तक कि नीचे शर्तें पूरी न हों उस समय तक ऋण नहीं दिया जावेगा।

(१) अचल सम्पत्ति को बन्धक रख दिया जाय अथवा

(२) चल सम्पत्ति को बन्धक रख दिया जाय अथवा

(३) फसल या पशु इत्यादि को बन्धक रख दिया जावे।

कारपोरेशन केवल सहकारी समितियों, ऋण लेने वाले समूहों, तथा व्यक्तिगत किसानों तथा खेती के धन्धे को साख देने वाली संस्थाओं से ही कारबार करेगी।

सहकारिता आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सहकारी साख समितियों तथा ऋण लेने वाले समूहों के सदस्यों से दीर्घकालीन ऋण पर १ प्रतिशत तथा थोड़े समय और मध्यमकालीन ऋण पर १½ प्रतिशत सूद कम लिया जावेगा।

इस विधान में एक कमी है। सहकारी साख समिति तथा ऋण लेने वाले समूहों के सदस्यों को एक सी सुविधा दी गई है। इसका परिणाम यह होगा कि कोई भी व्यक्ति मिलकर एक समूह बनाकर वही सुविधा प्राप्त कर लेंगे जो कि सहकारी समिति को प्राप्त है।

कारपोरेशन सहकारी समितियों तथा अन्य कृषि सम्बन्धी संस्थाओं के हिस्सों तथा ऋण पत्रों का अभिगोपन (Under write) करेगी।

प्रबन्ध :—कारपोरेशन का प्रबन्ध एक बोर्ड आव डायरैक्टर करेगा। बोर्ड एक कार्यकारिणी समिति तथा एक मैनेजिंग डायरैक्टर चुनेगा जो कि कारपोरेशन का संचालन करेंगे।

बोर्ड में ११ डायरैक्टर होंगे। उनकी नियुक्ति इस प्रकार होगी।

(अ) दो डायरैक्टर केन्द्रीय सरकार मनोनीत करेगी।

(क) दो डायरैक्टर रिज़र्व बैंक मनोनीत करेगा।

(ख) दो डायरैक्टर वे शिड्यूल बैंक चुनेंगे जो कारपोरेशन के हिस्सेदार हैं।

(ग) दो डायरैक्टर सहकारी संस्थाओं द्वारा चुने जावेंगे।

—

(घ) दो डायरैक्टर अन्य हिस्सेदारों द्वारा चुने जावेंगे।

(ङ) एक मैनेजिंग डायरैक्टर केन्द्रीय सरकार नियुक्त करेगी। पहली बार मैनेजिंग डायरैक्टर नियुक्त करने में केन्द्रीय सरकार रिज़र्व बैंक आव इंडिया से राय लेगी और बाद को कारपोरेशन के बोर्ड आव डायरैक्टर से राय लिया करेगी।

अध्याय १५

मिश्रित पूँजी वाले बैंक या व्यापारिक बैंक

(Joint Stock Banks अथवा Commercial Banks)

एजेंसी गृह (Agency Houses):—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि बैंकिंग व्यवसाय भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है किन्तु आधुनिक ढंग के बैंक अभी थोड़े समय से ही यहाँ स्थापित हुए हैं। वास्तव में बम्बई और कलकत्ता में जो एजेंसी गृह (Agency Houses) थे वही इन बैंकों के जनक थे। इन एजेंसी गृहों की स्थापना अँग्रेज व्यापारियों ने की थी। बम्बई और कलकत्ते के यह एजेंसी गृह वास्तव में व्यापार करते थे वही उनका मुख्य कार्य था किन्तु वे व्यापार के साथ बैंकिंग का कारबार भी करते थे। उनके पास निज की पूँजी (Capital) नहीं होती थी। वे जनता से डिपाजिट (जमा) आकर्षित करके ही कार्यशील पूँजी (Working Capital) इकट्ठा करते थे। यह एजेंसी गृह ईस्ट इंडिया कम्पनी के अवकाश प्राप्त कर्मचारियों ने स्थापित कर लिए थे। जिन कर्मचारियों ने देखा कि भारतीय व्यापार में धनोत्पत्ति का असीम क्षेत्र है उन कर्मचारियों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी छोड़कर व्यापार करना आरम्भ कर दिया। यों तो यह एजेंसी गृह मुख्यतः व्यापार करते थे किन्तु अँग्रेज व्यापारियों के लिए साख का प्रबंध करने के लिए उन्होंने बैंकिंग विभाग भी खोल रक्खे थे। देशी बैंकिंग यों ही अवनति की ओर थी फिर वे अँग्रेजों द्वारा किये जाने वाले विदेशी व्यापार के लिए साख का प्रबंध कर सकने में असमर्थ थे। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्हें अँग्रेजी ढंग के विदेशी व्यापार का न तो कुछ ज्ञान ही था और न अँग्रेज व्यापारी उनकी भाषा को ही समझते थे।

यह एजेंसी गृह दुकानदारी करते थे, जहाजों के मालिक थे, शराब बनाने, चमड़े के कारखानों, कपास, आटा, और लकड़ी की मिलों के स्वामी थे, तथा ईस्ट इंडिया कंपनी, तथा सरकारी कर्मचारियों और अँग्रेज व्यापारियों के एजेंट तथा बैंकर का काम करते थे। वे अधिकांशतः योरोपियन लोगों से डिपाजिट आकर्षित करते थे। इसके अतिरिक्त ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी

भी अपनी बचत तथा लूट का रुपया इन एजेंसी गृहों के बैंकिंग विभागों में जमा कर देते थे। डिपाज़िट द्वारा प्राप्त रुपये को यह एजेंसी गृह अँग्रेज़ व्यापारियों को फसलों की खरीद के लिए तथा अफीम, नील, कपास तथा रेशम के व्यापार के लिए बहुत ऊँचे सूद पर उधार देते थे। उनमें से कुछ एजेंसी ग्रह कागज़ी मुद्रा (Paper money) भी निकालते थे। इनमें से कुछ एजेंसी गृहों ने भारत में सर्व प्रथम योरोपियन ढंग के बैंक स्थापित किये। उदाहरण के लिए मेसर्स एलैक्ज़ेंडर एण्ड कंपनी ने १७७० में 'बैंक आव हिन्दोस्तान' स्थापित किया, मेसर्स पामर एण्ड कंपनी ने 'कलकत्ता बैंक' स्थापित किया और मेसर्स मैकिन्टाश एण्ड कंपनी ने 'बैंक आव कलकत्ता' स्थापित किया। 'बंगाल बैंक' तथा 'जनरल बैंक आव इंडिया' १७८५ के लगभग स्थापित किए गए थे। इन्हें भी कलकत्ते के एजेंसी गृहों ने स्थापित किया था। यह एजेंसी गृह अपने व्यापार के साथ-साथ बैंकिंग का कारबार भी करते थे अतएव उनको व्यापारिक लाभ के अतिरिक्त बैंकिंग विभाग से सूद और कमीशन की आमदनी भी होती थी। अस्तु भारतवर्ष में प्रथम योरोपियन ढंग के बैंक न मिश्रित पूँजी के बैंक थे और न वे केवल शुद्ध बैंकिंग कारबार ही करते थे। फाक्स या ग्रिंडले जैसी साधारण व्यापार करने वाली योरोपियन फर्में और पैनिनशुलर और ओरियंटल जैसी जहाज़ी कम्पनियाँ भी बैंकिंग कारबार करती थीं। इस बैंकिंग और साधारण व्यापार के मिश्रण का जो परिणाम होना था वही हुआ। इसके अतिरिक्त इन एजेंसी गृहों ने डिपाज़िट किए हुए रुपये से सट्टा (Speculation) करना आरम्भ किया, इमारतों, कोयले की खानों, जहाज़ों, कहवा तथा गरम मसाले के बागों तथा भूमि के खरीदने और आटे कपास और रेशम की मिलों को चलाने में अनाप-शनाप रुपया लगाया। इस सब का परिणाम यह हुआ कि १८२८-३२ में यह एजेंसी गृह डूब गए। एजेंसी गृहों के डूबने के साथ ही उनके बैंकिंग विभाग तथा उनके स्थापित किए हुए बैंक भी डूब गए क्योंकि बैंकों का रुपया उन एजेंसी गृहों के कारबार में लगा था। कलकत्ता बैंक १८२९ में, बैंक आव हिन्दुस्तान १८३२ में, और कमर्शियल बैंक आव कलकत्ता १८३३ में डूब गए।

इन बैंकों ने सर्व प्रथम भारत में कागज़ी मुद्रा (Paper Currency) का चलन आरम्भ किया। हिन्दुस्तान बैंक के प्रचलित नोटों का मूल्य २५ लाख रुपये था। बंगाल बैंक के नोटों का चलन ८ लाख रुपये के लगभग था। इनमें से प्रत्येक बैंक यह चाहता था कि उनके नोट सरकारी दफ्तरों तथा

खजानों में स्वीकार हो। सरकार ने पहले जनरल बैंक के नोटों को स्वीकार किया किन्तु १७९३ में उसके बंद हो जाने पर 'बैंक ग्राव कलकत्ता' के नोटों को स्वीकार किया। १८०० में इस बैंक के ४१ लाख रुपये के नोट प्रचलित थे। इसी प्रकार का एक बैंक मदरास (१६८८) और दूसरा बैंक बम्बई (१७२४) में स्थापित हुआ किन्तु १८२६-३० में एजेंसी गृहों के साथ ही यह बैंक भी डूब गए। इस प्रकार योरोपियन ढंग के बैंकों की स्थापना का पहला युग समाप्त हुआ।

इस बैंकिंग संकट के उपरान्त १८६० तक बहुत कम बैंक स्थापित हुए। इस काल में १२ बैंक स्थापित हुए जिसमें आधे बैंक डूब गए। यह सब योरोपियनों द्वारा स्थापित हुए थे। डूबने वाले बैंकों ने जनता को धोखा दिया और डिपाजिट करने वालों का रुपया मारा गया। किन्तु इस काल में तीन प्रेसीडेंसी बैंक स्थापित हुए जिनका विशेष महत्व था।

प्रेसीडेंसी बैंक—प्रेसीडेंसी बैंक तीन थे जो कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर द्वारा स्थापित हुए थे। बैंक ग्राव बंगाल १८०६ में। बैंक ग्राव बम्बई १८४० में और बैंक ग्राव मदरास १८४३ में स्थापित हुआ। बैंक ग्राव बंगाल १८०६ में बैंक ग्राव कलकत्ता के नाम से स्थापित हुआ था कि १८०६ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उसे चार्टर दे दिया। तब से वह बैंक ग्राव बंगाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इन तीन प्रेसीडेंसी बैंकों की स्थापना ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार की बैंकिंग आवश्यकताओं को पूरी करने तथा देश के भीतरी व्यापार को आर्थिक सहायता देने के लिए की गई थी। जब कि बैंक ग्राव बंगाल की स्थापना की गई थी तो उससे यह आशा की गई थी कि जब सोने या चाँदी की मांग होगी तो वह जनता को उचित मूल्य पर देगा तथा सरकारी सिक्यूरिटियों और सरकारी हुंडियों (Treasury Bills) के मूल्य को गिरने से बचावेगा तथा कागजी मुद्रा का निकालेगा। उस समय बंगाल में करसी (मुद्रा) की दशा बड़ी खराब थी। इस कारण वहाँ कागज़ी मुद्रा चलाने की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। आरम्भ में प्रेसीडेंसी बैंक सरकार के कोष (Funds) भी रखते थे किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में सरकार ने रिज़र्व खजाने (Reserve Treasuries) तथा जिला और तहसील में खजाने स्थापित किए। इस कारण प्रेसीडेंसी बैंकों का सरकारी कारबार से उतना सम्बन्ध नहीं रहा। परन्तु सरकार के इस निश्चय से द्रव्य बाज़ार

में कोष की कभी-कभी बहुत कमी पड़ जाती थी क्योंकि लगान तथा मालगुज़ारी के रूप में बहुत सा द्रव्य इन खज़ानों में जाकर बेकार हो जाता था क्योंकि द्रव्य-बाजार के लिए वह अप्राप्य था और ठीक उसी समय द्रव्य बाज़ार (Money Market) को द्रव्य की बहुत अधिक आवश्यकता होती थी क्योंकि मंडियों में वह समय ख़रीद बिक्री का होता था। फिर भी सरकार ने प्रेसीडेंसी बैंकों के पास एक न्यूनतम द्रव्य राशि रखने का निश्चय कर लिया था। इस न्यूनतम द्रव्य राशि पर प्रेसीडेंसी बैंक कोई भी सूद नहीं देते थे। यदि उस न्यूनतम द्रव्य राशि से कम रुपया सरकार प्रेसीडेंसी बैंकों के पास रखती तो सरकार को उस कमी पर सूद देना पड़ता था। किन्तु व्यवहार में सरकार ने निर्धारित न्यूनतम राशि से सदैव अधिक रुपया प्रेसीडेंसी बैंकों के पास रक्खा। इसके अतिरिक्त प्रेसीडेंसी बैंक सरकारी ऋण को निकालते तथा उसका प्रबंध करते थे। सरकार ने उन पर कुछ नियन्त्रण भी स्थापित कर रक्खा था। उनके आय-व्यय निरीक्षण पर सरकारी नियंत्रण था, सरकार उनसे समय-समय पर उनके कारबार के सम्बन्ध में पूंछ तांछ करती थी तथा उन्हें अपने हिसाब का साप्ताहिक लेखा निकालना पड़ता था।

१८७६ के प्रेसीडेंसी बैंक ऐक्ट के अन्तर्गत प्रेसीडेंसी बैंकों पर कुछ बंधन भी लगा दिए गए थे। प्रेसीडेंसी बैंक विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) का काम नहीं कर सकते थे, वे भारत के बाहर डिपाज़िट नहीं ले सकते थे। वे ६ महीने से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकते थे और न वे अचल सम्पत्ति की ज़मानत पर ही ऋण दे सकते थे। ऐसे प्रामिसरी नोटों पर भी वे कर्ज़ नहीं दे सकते थे जिन पर दो स्वतंत्र व्यक्तियों से कम के हस्ताक्षर हों। व्यक्तिगत ज़मानत पर ऋण नहीं दिया जा सकता था और माल की ज़मानत पर तभी कर्ज़ दिया जा सकता था कि जब वह माल या उसके स्वामित्व सम्बन्धी कागज़ पत्र (Titles) ज़मानत के रूप में जमा कर दिये गये हों।

बैंक आव बंगाल की आरम्भ में ५० लाख पूँजी थी जिसमें १० लाख सरकार के हिस्से थे। बाद को बैंक की पूँजी बढ़ा दी गई। करंसी की अस्त-व्यस्त दशा को सुधारने के लिए बैंक आव बंगाल ने कागज़ी मुद्रा निकाली। सरकार केवल बैंक आव बंगाल की ही नोटों को स्वीकार करती थी इस दृष्टि से बैंक आव बंगाल प्रमुख प्रेसीडेंसी बैंक था। बैंक आव बाम्बे का हिस्सा पूँजी ५२, २५००० रु० थी जो कि ५२२५ हिस्सों में बटी हुई थी।

इसमें ३ लाख रुपये के हिस्से बम्बई सरकार ने लिए थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में गृह-युद्ध होने के कारण संसार में कपास का अकाल पड़ा और भारतीय कपास की मांग और मूल्य बेहद बढ़ गया। उसके कारण बम्बई में नये कारखाने इत्यादि स्थापित हुए और वहां शेयरों का सट्टा बहुत हुआ। बैंक आव बाम्बे का रुपया इस सट्टे में डूब गया। इस कारण यह बैंक १८६८ में डूब गया। किन्तु उसी वर्ष तक एक नया बैंक १ करोड़ रुपये की पूँजी से स्थापित किया गया। बैंक आव मदरास ३० लाख रुपये की पूँजी से स्थापित किया गया। मदरास सरकार ने उसमें ३ लाख रुपये के हिस्से लिए थे। इस बैंक की कार्य-पद्धति वही थी जो अन्य दो प्रेसीडेंसी बैंकों की थी।

आरम्भ से ही सरकार तथा प्रेसीडेंसी बैंकों का घनिष्ट सम्बन्ध था। सरकार ने इन बैंकों के केवल हिस्से ही नहीं लिए थे किन्तु सरकार इनके सचालक बोर्ड में अपने डायरैक्टर भी नियुक्त करती थी। इन बैंकों को सरकारी बैंकिंग कारबार करने का एकाधिकार प्राप्त था। १८६२ तक उन्हें कागजी मुद्रा (Paper money) निकालने का भी अधिकार था किन्तु १८६२ के उपरान्त उनसे यह अधिकार छीन लिया गया और सरकार ने कागज़ी मुद्रा निकालना आरम्भ किया। १८६२ में जब प्रेसीडेंसी बैंकों से नोट निकालने का अधिकार ले लिया गया तो उनकी हानि को पूरा करने के उद्देश्य से सरकार ने यह निश्चय किया कि प्रेसीडेंसी नगरों (कलकत्ता, बम्बई, मदरास) में सरकार अपनी सारी रोकड (Cash Balances) प्रेसीडेंसी बैंकों के पास रक्खेगी। वास्तव में प्रेसीडेंसी बैंकों ने कागज़ी नोट बहुत अधिक कभी भी नहीं निकाले क्योंकि सरकार ने इस सम्बन्ध में प्रेसीडेंसी बैंकों पर कड़े बन्धन लगा दिये थे। उदाहरण के लिए एक प्रतिबन्ध तो यह था कि सब चालू जमा (Current Deposit) तथा कागजी नोट जो चलन में हैं बैंकों के नकद कोष (Cash Reserve) के तीन गुने से अधिक नहीं हो सकते। बाद को इसको बढ़ा कर चारगुना कर दिया गया।

१८७६ में सरकार ने एक प्रेसीडेंसी बैंक ऐक्ट बनाया जिससे इन बैंकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस कानून के अनुसार सरकार ने इन बैंकों से अपनी हिस्सा पूँजी निकाल ली। हिस्सा पूँजी निकालने के साथ ही सरकार ने डायरैक्टरों तथा बैंक के सेक्रेटरी तथा खजांची को नियुक्त करने का भी अधिकार छोड़ दिया। साथ ही बैंकों के पास सरकारी रुपया रखने की सुविधा

भी समाप्त कर दी गई। आगे से यह बैंक जनता से डिपाज़िट ले सकते थे तथा सरकारी सिक्यूरिटियों तथा कुछ अन्य प्रकार की सिक्यूरिटियों में रुपया लगा सकते थे। बिलों को खरीद सकते थे उनको भुना सकते थे, स्वीकृति बिलों तथा प्रामिसरी नोटों के आधार पर कर्ज दे सकते थे। सिक्यूरिटियों को अपने पास धरोहर के रूप में सुरक्षित रखने के लिए स्वीकार कर सकते थे तथा सोने और चांदी की खरीद बिक्री का काम कर सकते थे। किन्तु जैसा ऊपर हम बता चुके हैं कि इन बैंकों को भारत के बाहर डिपाज़िट लेने तथा विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) का काम करने की मनाही थी। इसका मुख्य कारण यह था कि विदेशी विनिमय बैंक (Foreign Exchange Banks) नहीं चाहते थे कि प्रेसीडेंसी बैंक उनसे प्रतिस्पर्द्धा कर सकें। सरकार ने कुछ प्रतिबन्ध तो बैंकों को ठीक रास्ते पर रखने के लिए लगाये थे किन्तु यह प्रतिबन्ध विशेष कर विदेशी विनिमय बैंकों की ईर्षा के कारण लगाये गए थे। प्रेसीडेंसी बैंकों को लंदन द्रव्य बाज़ार में डिपाज़िट न लेने देने का परिणाम यह होता था कि जहाँ द्रव्य बाजार (Money Market) में द्रव्य की कमी होती थी तो सूद की दर बहुत ही ऊँची हो जाती थी और व्यापार को हानि पहुँचती थी। इस प्रतिबन्ध से प्रेसीडेंसी बैंकों की उपयोगिता तथा कारबार पर बुरा प्रभाव पड़ता था।

इन सब रुकावटों के होते हुए भी प्रेसीडेंसी बैंकों ने बहुत उन्नति की। उन्होंने देश में बहुत ब्रांचें स्थापित कीं तथा उन ब्रांचों पर सरकारी करंसी नोटों को भुनाने की सुविधा देकर सरकारी करंसी नोटों के चलन को बहुत अधिक बढ़ाया। यही नहीं उन्होने डिपाज़िट बैंकिंग की उन्नति की। सरकार से सम्बन्धित होने के कारण देश में उनकी प्रतिष्ठा थी और भारतीय बैंकों में उनका प्रमुख स्थान था। प्रथम महायुद्ध के समय इन बैंकों ने सरकार को सरकारी ऋण निकालने तथा सरकारी हुन्डियां (Treasury Bills) बेंचने में बहुत सहायता की। इस प्रकार १६२१ तक यह प्रेसीडेंसी बैंक सफलतापूर्वक बैंकिंग कार्य करते रहे। १६२१ में, इम्पीरियल बैंक की स्थापना हुई और उसने इन तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों को ले लिया। इस प्रकार वे समाप्त हो गए।

मिश्रित पूंजी वाले बैंक (Joint Stock Banks) :—

वे सभी बैंक जो कि भारत में इंडियन कंपनी एक्ट के अन्तर्गत रजिस्टर हुए हैं इस श्रेणी में आते हैं। यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि १८६०

तक भारत में बैंकों का प्रा मिक काल था। सीमित उत्तर-दायित्व (Limited Liability) का सिद्धान्त उस समय तक कानून द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ था अस्तु उस समय तक जो भी बैंक यहाँ स्थापित हुए वे असीमित दायित्व (Unlimited Liability) के आधार पर थे। केवल 'जनरल बैंक आव इंडिया' जो १८८६ में स्थापित हुआ इसका अपवाद था। अधिकांश लोगों का विचार है कि अलकजैंडर एण्ड कम्पनी एजेंसी गृह द्वारा स्थापित बैंक आव हिन्दुस्तान, भारत में सबसे पहला बैंक था किन्तु ऐसी बात नहीं है। भारत में सम्भवत सब से पहला बैंक मदरास सरकार ने १६८८ में स्थापित किया। दूसरा बैंक १७२४ में बम्बई प्रान्त में स्थापित हुआ। बैंक आव हिन्दुस्तान तीसरा बैंक था। यह तो हम ऊपर लिख चुके हैं कि १८२६ ३० में एजेंसी गृहों के डूबने से यह बैंक संकट में आ गए और उसके उपरान्त १८६० तक जो १२ बैंक स्थापित हुए वे भी डूब गए। केवल तीन प्रेसीडेंसी बैंक ही इस काल के बैंकों में सफलता पूर्वक कार्य करते रहे। इस काल के बैंकों का केवल एक ही उल्लेखनीय कार्य हुआ अर्थात् उन्होंने भारत में सर्व प्रथम कागज़ी मुद्रा को प्रचलित किया।

भारतीय बैंकिंग के विकास का दूसरा काल १८६० से १६०० तक था। इस काल में परिमित दायित्व (Limited Liability) का सिद्धान्त अपना लिया गया था फिर भी इन ४० वर्षों में बैंकों का विकास बहुत धीरे हुआ। उत्तर प्रदेश अमरिका के गृह युद्ध के फल स्वरुप बम्बई में जो सट्टे का बाज़ार गरम हुआ उसमें अवश्य बम्बई में कई बैंक स्थापित हुए किन्तु वे शीघ्र ही डूब गए और पीछे कुछ अनुभव छोड़ते गए। १८७० में भारत में केवल दो मिश्रित पूँजी वाले बैंक थे जिनकी पूँजी (Capital) और रक्षित कोष (Reserve Fund) पाँच लाख से अधिक था। १६०० तक इस प्रकार के बैंकों की संख्या ६ हो गई। इनमें से अधिक महत्वपूर्ण बैंक नीचे लिखे थे :—इलाहाबाद बैंक (१८६५), एलाइन्स बैंक आव शिमला (१८७४) जो १६२३ में डूब गया, अवध कमर्शियल बैंक (१८८१), यह पहला बैंक था जो भारतीयों द्वारा स्थापित हुआ था। पंजाब नेशनल बैंक (१८६४), यह बैंक मुख्यत लाला हर किशन लाल के प्रयत्नों से स्थापित हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम २० वर्षों में बैंकों का विकास शीघ्रता पूर्वक हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दस वर्षों में उनकी डिपाज़िट में ५ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई जब कि विनिमय बैंकों (Exchange Banks) की डिपाज़िट में केवल ३ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई और प्रेसीडेंसी बैंकों की

डिपाज़िट में १½ करोड़ की कमी हुई। परन्तु यदि हम इस समस्त काल (४० वर्षो) पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि बैंकों का विकास बहुत धीमी गति से हुआ और उनकी उन्नति संतोषजनक नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि इस काल में देश की आर्थिक उन्नति नहीं हुई साथ ही वस्तुओं का मूल्य गिरता गया। यही कारण था कि बैंकों की उन्नति की गति बहुत धीमी रही।

तीसरा काल १६०० से १६१३ तक कहा जा सकता है। इसके बाद (१६११-१८) के वर्ष भारतीय बैंकों के लिए बहुत ही संकट के थे। इस काल में भारतीय बैंकों की उन्नति की गति तीव्र रही और उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं आई। इस काल में बैंकों की उन्नति का एक कारण स्वदेशी आन्दोलन भी था। १६०५ के उपरान्त स्वदेशी आन्दोलन की लहर के साथ देश में बहुत से धंधे और उनके साथ ही बैंक भी स्थापित हुए। १६०१ में लाला हरकिशन लाल के प्रयत्नों से पीपुल्स बैंक स्थापित हुआ किन्तु उसके उपरान्त स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव से जो बैंक स्थापित हुए उनमें बैंक आव वर्मा (१६०४) सर्व प्रथम था। इसके उपरान्त उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में कई बैंक स्थापित हुए। इनमें बैंक आव वर्मा के अतिरिक्त बैंक आव इंडिया, बैंक आव मैसूर, बैंक आव बड़ौदा, दी इंडियन स्पीशो बैंक, तथा सेन्ट्रल बैंक आव इंडिया अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ तो आज 'बड़े पाँच' की श्रेणी में हैं। १६०६ तक भारतीय मिश्रित पूँजी के बैंकों की डिपाज़िट में ११ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई, जब कि विनिमय बैंकों की डिपाज़िट में १३ करोड़ रुपये और प्रेसीडेंसी बैंकों की डिपाज़िट में ६ करोड़ की वृद्धि हुई। इस काल में (१६००-१३) उन बैंकों की संख्या जिनकी पूँजी और रक्षित कोष (Reserve Fund) पांच लाख रुपये से अधिक था ६ से बढ़ कर १८ हो गई। इनके अतिरिक्त उस काल में छोटे-छोटे बैंकों की संख्या बहुत अधिक हो गई। बहुत से नये छोटे बैंक स्थापित किये गए।

१६१३-१७ के बीच भारतीय बैंकों को भयंकर संकट का सामना करना पड़ा। इस संकट काल में ६५ बैंक डूब गए और उनकी ८ करोड़ रुपये की पूँजी डूब गई। डूबने वाले बैंकों में अधिकांश छोटे-छोटे बैंक थे किन्तु आधे दर्जन के लगभग बड़े बैंक भी थे जो डूब गए। इसका भारत के बैंकिंग कार-बार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और जनता का उन पर से विश्वास उठ गया। भारत में यह सबसे बड़ा बैंकिंग संकट था। १८२६-३० में एजेंसी गृहों के

डूबने से १८५७ में १८६४ ६६ में अमेरिकन गृह-युद्ध के कारण कपास के सट्टे के कारण जो बैंकिंग संकट हुए वे इसके सामने नगण्य थे। १७ सितम्बर १६१३ को पीपुल्स बैंक ने अपना कारबार बन्द किया और फिर स्थिति बिगड़ती ही गई। पंजाब, उत्तर प्रदेश और बम्बई में विशेष रूप से बहुत से बैंक डूबे। अकेले १६१३ १७ में ५५ बैंक डूब गए यद्यपि इस काल में पीपुल्स बैंक, बैंक आव अपर इंडिया तथा इंडियन स्पीशी बैंक डूब गये किन्तु अधिकांश डूबने वाले बैंक बहुत छोटे थे। यों भारतवर्ष में व्यक्तिगत निर्बलता के कारण कभी कभी एक दो बैंक डूब जाते हैं किन्तु ऐसा बड़ा संकट कभी भी नहीं आया। इस सम्बन्ध में हमें एक बात न भूल जानी चाहिए कि केवल भारत के ही बैंक डूबे हों ऐसा नहीं था। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका इत्यादि सभी देशों में बैंकों पर संकट आये हैं और वे डूबे हैं। अस्तु इस संकट काल को लेकर जो बहुत से पाश्चात्य विद्वान् इस बात की घोषणा करते हैं कि भारतीयों में आधुनिक ढंग के बैंक चलाने की योग्यता ही नहीं है गलत है। इन बैंकों के डूबने के मुख्य कारण नीचे लिखे हैं।

बहुत से बैंक नक़द कोष (Cash Reserve) कम रखते थे, बहुत से डूबने वाले बैंकों का प्रबन्ध खराब था और उनके संचालक ईमानदार नहीं थे, हिस्सेदारों ने कभी बैंकों के प्रबन्ध में दिलचस्पी नहीं ली। वे उसकी ओर से उदासीन रहे। इन बैंकों ने अपने रुपये को लगाने में बैंकिंग सिद्धान्तों की नितान्त अवहेलना की। रुपये को उद्योग में लम्बे समय के लिए अटका दिया। यह बैंक जब अपना लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) निकालते थे तो उस समय दिये हुए ऋण को वापस बुला कर नक़द कोष को अधिक दिखला देते थे किन्तु वास्तव में उनका नक़द कोष बहुत कम होता था। यह बैंक लाभ न होते हुए भी लाभ बांटते थे। इन बातों से जमा करने वाले धोखे में आ जाते थे। सरकार ने भी बैंकों के इन दोषों को दूर करने का कोई प्रयत्न न किया और न देश में कोई केन्द्रीय बैंक (Central Bank) ही था कि जो बैंकों को बैंकिंग के सिद्धान्तों की अवहेलना करने से रोकता और उनका नियंत्रण करता। इसके अतिरिक्त इन बैंकों में आपस में कोई सहयोग नहीं था वरन एक दूसरे से ईर्षा रखते थे और हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते थे। इसके अतिरिक्त इन बैंकों के डूबने का एक और भी कारण था। अधिकांश डूबने वाले बैंकों की अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) बहुत अधिक थी किन्तु उनकी चुकता पूँजी (Paid up Capital) बहुत कम थी। इस कारण उन्हें ऊंची दर

पर सूद देकर डिपाज़िट आकर्षित करनी पड़ती थी और जब वे अपने ग्राहकों को उनकी डिपाज़िट पर अधिक सूद देते थे तो उन्हें अपने रुपये को जोखिम के कारबार में लगाना पड़ता था क्योंकि तभी उस पर अधिक सूद कमा सकते थे और डिपाज़िटों पर अधिक सूद दे सकते थे। ऊपर लिखे कारणों से ही देश में बैंकिंग संकट उपस्थित हुआ था। इस बैंकिंग संकट का एक अच्छा परिणाम भी हुआ। राज्य तथा जनता सभी को एक केन्द्रीय बैंक (Central Bank) की आवश्यकता का अनुभव होने लगा कि जो देश में बैंकिंग कारबार का नियंत्रण कर सके और साथ ही इस बात की भी आवश्यकता का अनुभव हुआ कि एक बैंकिंग ऐक्ट बनाया जावे जिससे बैंक सुव्यस्थित और अच्छे ढंग से चल सकें। रिज़र्व बैंक की स्थापना से पहली कमी दूर हो गई और बैंकिंग कानून बनाने से दूसरी कमी दूर हो जावेगी। यही नहीं, मिश्रित पूँजी वाले बैंकों को भी अनुभव ने यह बतला दिया कि आरम्भ में जबकि बैंकों की किसी देश में स्थापना हो तो अधिक द्रव्य कोष (Cash Reserve) रखने की जरूरत है। तब से भारतीय व्यापारिक बैंक सतर्क हो गए और अधिक नकद कोष रखने लगे।

यद्यपि भारतीय बैंकिंग व्यवसाय को १६१३ के संकट से धक्का लगा किन्तु युद्ध के कारण उनकी अवनति और पतन अधिक नहीं हुआ। १६१४ से १६२० तक युद्ध काल में तथा १६२१ की आर्थिक तेज़ी (Boom) में इन बैंकों की संख्या तथा उनकी डिपाज़िट दोनों में ही वृद्धि हुई। १६१८ में ताता औद्योगिक बैंक की स्थापना हुई तथा अन्य बैंक भी स्थापित हुये किन्तु १६२० से आर्थिक मंदी (Depression) तथा मुद्रा संकोचन (Deflation) दोनों ही आरम्भ हुए और बैंकों को फिर संकट का सामना करना पड़ा। यह आर्थिक संकट १६२४ तक रहा। बैंकों की कुल डिपाज़िट १६२१ में ८० करोड़ रुपये तक पहुँच गई थी, गिरने लगी और १६२४ में केवल ५५ करोड़ रह गई। यद्यपि संकट उतना तीव्र नहीं था फिर भी कुछ बैंक डूब गए। १६१६ से १६२५ के बीच में ८४ बैंक डूब गए जिसमें ४ करोड़ ८० लाख रुपये की पूंजी की हानि हुई। १६२३ सबसे बुरा वर्ष था उस एक वर्ष में २० बैंक जिनकी चुकता पूंजी (Paid up Capital) चार करोड़ ६५ लाख रुपये थी डूब गए। १६२३ में डूबने वाले बैंकों में ताता औद्योगिक बैंक तथा एलाइंस बैंक आव शिमला मुख्य थे। अन्त में ताता औद्योगिक बैंक को सेंट्रल बैंक आव इंडिया ने ले लिया।

१९२३ २४ की आर्थिक मंदी (Depression) के उपरान्त भारत में व्यापारिक बैंकों के इतिहास को तीन कालों में बांटा जा सकता है। पहला काल १९२४ २५ से १९३० तक का है। यद्यपि इस काल में बैंकों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ किन्तु उन्नति संतोषजनक नहीं हुई। डिपाजिट १९२१ से (अर्थात् ८० करोड) बहुत कम रही। १९३० में कुल डिपाजिट ६८ करोड रुपये थी। इस सुधार के पश्चात् १९३१ में फिर बैंक डिपाजिट २ करोड कम हो गई और बैंकों को थोड़ी मंदी का सामना करना पड़ा फिर १९३२ से १९३७ तक दूसरा काल माना जा सकता है। इस काल में बैंकों की स्थिति में पहले की अपेक्षा तेजी से सुधार हुआ। १९३७ में बैंकों की डिपाजिट बढ कर १०८ करोड रुपये हो गई। इस काल के उपरान्त १९३८ में फिर आर्थिक मदी का सामना करना पड़ा और बैंकों की कुल डिपाजिट २ करोड रुपये घट गई यद्यपि छोटे बैंकों की डिपाजिट में वृद्धि हुई। इस काल में छोटे-छोटे बैंक डूबे किन्तु ट्रावंकोर नेशनल एण्ड क्विलन बैंक, बनारस बैंक तथा बंगाल नेशनल बैंक उल्लेखनीय हैं। इसके उपरान्त १९३९ के उपरान्त आश्चर्यजनक तेज़ी से बैंकों की संख्या तथा डिपाजिट में वृद्धि हुई।

नये बैंकों में नीचे लिखे बैंक उल्लेखनीय हैं: भारत बैंक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, जयपुर बैंक, हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक, बैंक आव बीकानेर, जोधपुर बैंक, हबीब बैंक, एक्सचेंज बैंक आव इंडिया एण्ड अफ्रीका, हिन्द बैंक, डिस्काउंट बैंक आव इंडिया, हिन्दुस्तान मरकैंटाइल बैंक, नेशनल सेविंग्स बैंक। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से बैंक स्थापित हुए। यही नहीं कि इस काल में सैकड़ों छोटे बड़े बैंक स्थापित हुए और उन्होंने अपनी शाखायें तेजी से स्थापित करना आरम्भ कर दिया वरन् पुराने बैंकों ने भी अपनी पूंजी बढ़ाई तथा अपने कारबार के क्षेत्र का विस्तार किया और ब्रांचों की वृद्धि करना आरम्भ कर दिया। श्री सेठ रामकृष्ण डालमिया के द्वारा भारत बैंक की स्थापना होते ही प्रत्येक बड़े व्यवसायी ने अपना अपना बैंक-स्थापित करना आरम्भ कर दिया और देश में बैंकों की एक बाढ़ सी आ गई। इनमें छोटे छोटे बैंकों की संख्या ही अधिक थी। जहाँ १९३९ में देश में केवल ५५ शिड्यूल बैंक थे वहां जून १९४६ में ९६ शिड्यूल बैंक हो गये और जहाँ १९३८ में १२७८ ब्रांचें थीं वहाँ जून १९४६ में उनकी संख्या ३०६३ हो गई। बैंकों की डिपाजिट में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। जनवरी १९४५ में बैंकों की कुल डिपाजिट ८७५ करोड हो गई, जनवरी १९४७ में शिड्यूल

बैंकों की डिपाज़िट ६५० करोड़ के लगभग हो गई और जनवरी १६४८ में ७२६, ७३७०,०००रु० थी। २७ दिसम्बर १६४७ को गैर शिड्यूल बैंकों की डिपाज़िट ७८,४४,२२,००० रु० थी।

युद्ध काल और उसके उपरान्त बैंकों की यह बाढ़ मुद्राप्रसार (Inflation) का परिणाम थी। सरकार के आदेश पर रिज़र्व बैंक ने जो तेजी से कागजी मुद्रा छापनी आरम्भ कर दी उसके ही परिणाम स्वरूप बैंकों की बाढ़ आ गई और डिपाज़िटों में वृद्धि हुई। परन्तु बहुत से बैंकों ने बिना यह समझे कि उनके पास यथेष्ट योग्य और कुशल कर्मचारी हैं ब्रांचें खोलना आरम्भ कर दीं। ब्रांचों के खोलने में उन्होंने इस बात का भी ध्यान नहीं रक्खा कि कहाँ ब्रांच खोलना लाभदायक होगा और कहाँ ब्रांच खोलना लाभदायक नहीं होगा। बहुत से बैंकों की पूंजी बहुत ही कम थी किन्तु उन्होंने भी बहुत सी ब्रांचें स्थापित कर दीं इस का परिणाम यह हुआ कि १६४६-४७ में बहुत से छोटे-छोटे बैंक जो कि शिड्यूल बैंक नहीं थे (विशेषकर बंगाल के) डूब गए। १५ अगस्त १६४७ के उपरान्त जो भारत में पंजाब में भीषण लूट-पाट और नर संहार हुआ उसमें भी पंजाब के बैंकों की बहुत बड़ी हानि हुई।* बैंकों के बहुत अधिक हो जाने के कारण कहीं-कहीं बहुत अनुचित प्रतिस्पर्द्धा दिखलाई पड़ती है। भविष्य में बहुत से छोटे-छोटे बैंकों को बड़े बैंकों से मिल जाना होगा नहीं तो वे खड़े नहीं रह सकते। फिर भी यह बात उल्लेखनीय है कि इस बीच कोई शिड्यूल बैंक नहीं डूबा। यद्यपि लड़ाई के उपरान्त अभी तक आर्थिक मंदी (Depression) का भारतीय बैंकों को सामना नहीं करना पड़ा है फिर भी यह कहा जा सकता है कि रिज़र्व बैंक के नेतृत्व में भारतीय बैंक उन्नति कर रहे हैं और शिड्यूल बैंकों की स्थिति अच्छी है।

मिश्रित पूँजी वाले बैंकों के कार्य :—अब हम मिश्रित पूँजी वाले बैंकों (Joint Stock Banks) के कार्यों का विवेचन करेंगे। यह तो हम

---

*पंजाब में जो बैंकों की अपार हानि हुई है उसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना इस समय कठिन है क्योंकि अभी तो वे बैंक भी नहीं जान सके हैं कि उनकी कितनी हानि हुई है। इस हानि का उन बैंकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह कहना भी कठिन है फिर भी यह तो निश्चित है कि बड़े बैंक इस हानि को सहन कर लेंगे।

पहले ही कह चुके हैं कि मिश्रित पूँजी वाले बैंक व्यापारिक बैंक (Commercial Banks) होते हैं और वे उन सभी कार्यों को करते हैं जो कि व्यापारिक बैंक करते हैं। इन बैंकों का मुख्य कार्य चालू (Current), मुद्दती (Fixed) और सेविंग्स डिपाजिट आकर्षित करना तथा थोड़े समय के लिए ऋण देना है, बिलों को भुनाना या खरीदना, (यद्यपि भारतीय बैंक यह कार्य कम करते हैं क्योंकि यहाँ बिल बाज़ार का उदय नहीं हुआ है) सरकारी सिक्यूरिटियों (प्रतिभूति) में अपना रुपया लगाना, नक्द साख (Cash Credit) देना, खेती की पैदावार को गाँव से नियत बन्दरगाहों तक और बन्दरगाहों से विदेशों से आए हुए माल को देश के भीतरी बाजारों तक पहुँचाने में आर्थिक सहायता देना है। इसके अतिरिक्त यह बैंक और भी छोटे मोटे कार्य करते हैं, उदाहरण के लिये रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजना इत्यादि।

यह बैंक कृषि के धंधे को सीधी आर्थिक सहायता नहीं देते। वे केवल बड़े जमींदारों चाय इत्यादि के बागीचों के मालिकों तथा ऐसे व्यक्तियों को ही ऋण देते हैं जो कि बाजार में शीघ्र बिक सकने योग्य जमानत (Security) देते हैं। पहले तो यह बैंक मुद्दती जमा (Fixed Deposits) पर ४ से ५ प्रतिशत वार्षिक सूद देते थे और चालू खाते (Current Account) पर १½ से ½ प्रतिशत सूद देते थे किन्तु अब अधिकांश बैंक चालू खाते पर कुछ भी सूद नहीं देते और मुद्दती जमा पर भी २ प्रतिशत से अधिक सूद नहीं देते।

बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों में जहाँ स्टाक बाजार की सिक्यूरिटी अधिक मिलती है वहाँ यह बैंक उनकी जमानत पर ऋण देते हैं। किन्तु जिन मंडियों तथा बाज़ारों में स्टाक बाज़ार की सिक्यूरिटी अधिक नहीं मिलती वहाँ खेती की पैदावार को रख कर यह बैंक ऋण दे देते हैं। भारतवर्ष में सार्वजनिक गोदाम नहीं हैं इस कारण बैंक अपने गोदाम रखते हैं जहाँ ग्राहक का माल रख कर उसकी जमानत पर उसे ऋण दे दिया जाता है। ऐसा भी होता है कि बैंक ग्राहक के गोदाम पर ही अधिकार कर लेते हैं और वहीं माल बन्द करके ग्राहक को ऋण दे देते हैं। वे सोना चाँदी, कपड़ा इत्यादि वस्तुओं को रखकर भी ग्राहकों को ऋण दे देते हैं। कारखानों को उनके तैयार माल के विरुद्ध तथा अन्य सिक्यूरिटियों के विरुद्ध ऋण देते हैं। कभी-कभी बैंक इमारतों तथा अन्य स्थावर सम्पत्ति को गिरवी रखकर कर्ज दे देते हैं किन्तु इस प्रकार का कर्ज़ा अधिक नहीं दिया जाता। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की सम्पत्ति शीघ्र ही बेंची नहीं जा सकती।

बैंक व्यक्तिगत ज़मानत पर भी कर्ज़ दे देते हैं। ऐसी दशा में कर्ज़दार जो प्रामिसरी नोट लिखता है उस पर दो अच्छे हस्ताक्षर ले लिए जाते हैं सर्राफ तथा मैनेजिंग एजेंटों के हस्ताक्षर होने पर बैंक आसानी से कर्ज दे देते हैं। हुंडी जो कि आज भी भारतीय बाज़ारों में प्रचलित है यद्यपि पहले से उसका प्रचार कम है वास्तव में दो हस्ताक्षरों वाला पत्र है क्योंकि उस पर देशी बैंकरों का बेचान (Endorsement) होता है। किन्तु व्यापार की मात्रा को देखते हुए तथा व्यापारियों की आवश्यकताओं को देखते हुए जितने दो हस्ताक्षर वाले पत्रों को यह बैंक स्वीकार करके व्यापारियों को कर्ज़ या साख देते हैं वे अपेक्षाकृत कम ही होते हैं।

कर्ज़ देने का सबसे अधिक प्रचलित ढंग यह है कि कर्ज़दार बैंक को प्रामिसरी नोट लिख देता है और कंपनियों के हिस्से, माल या बांड अथवा अन्य कोई सिक्यूरिटी बैंक के पास ज़मानत के रूप में रख देता है और बैंक उस कर्ज़दार के नाम नकद साख खाता (Cash Credit Account) खोल देता है। यह ढंग दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक है। कर्ज़दार जितना रुपया वास्तव में निकालता है उस पर ही उसे सूद देना पड़ता है फिर उसे यह भी सुविधा रहती है कि वह जब भी चाहे तो उस खाते में रुपया जमा करदे अर्थात् कुछ कर्ज़ चुका दे। किन्तु कर्ज़दार को जितनी नकद साख दी गई है उसकी आधी रकम पर अवश्य सूद देना होगा। कर्ज़ देने का यह ढंग भारत में बिल बाज़ार को विकसित नहीं होने देता किन्तु यह अधिक प्रचलित है क्योंकि बैंक और व्यापारी दोनों ही इसे पसंद करते हैं। बैंक को सुविधा यह है कि वह जब चाहे तो नक़द साख (Cash Credit) की इस सुविधा को वापस ले सकता है अर्थात् कर्ज़दार को अधिक कर्ज़ या साख देना अस्वीकार कर सकता है और कर्ज़ लेने वाले को यह सुविधा होती है कि उसे निश्चित रक़म पर ही सूद देना पड़ता है पूरी रक़म पर सूद नहीं देना पड़ता।

यह बैंक अधिकतर देश के भीतरी व्यापार के लिए अल्पकालीन साख (Short Term Credit) का प्रबंध करते हैं। विदेशी व्यापार, उद्योग-धन्धों तथा कृषि को यह बहुत कम साख देते हैं। पिछले कुछ वर्षों से भारत के कुछ बड़े बैंकों ने विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) का कारबार करना आरम्भ किया है परन्तु अभी तक वह नहीं के बराबर है। उद्योग-धन्धों को यह बैंक थोड़े समय के लिये नक़द साख के रूप में या कर्ज़ के रूप में सहायता देते हैं। अधिक समय के लिये स्थायी पूँजी

(Block Caqital) के रूप में यह बैंक उद्योग-धन्धों को सहायता नहीं देते।

भारतीय व्यापारिक बैंकों की कार्यपद्धति की एक विशेषता यह है कि वे बिलों की अपेक्षा सरकारी सिक्यूरीटियों में अपना रुपया अधिक लगाते हैं। इसका कारण यह है कि देश में व्यापारी बिलों तथा बैंक के स्वीकार योग्य पत्रों (Papers) की कमी या अभाव है। अस्तु बैंक अपना अधिकतर रुपया सरकारी सिक्यूरीटियों में लगाते हैं।

इनके अतिरिक्त भारतीय बैंक और भी सहायक बैंकिंग कार्य करते हैं। उदाहरण के लिये वे अपने ग्राहकों को अर्थ सम्बन्धी सलाह देते हैं, उन्हें व्यापार सम्बन्धी जानकारी कराते हैं, अपने ग्राहकों के लिए सरकारी सिक्यूरिटी तथा कम्पनियों के हिस्से खरीदते और बेचते हैं अपने ग्राहकों के एवज में रुपया चुकाते हैं और वसूल करते हैं, अपने ग्राहकों के एजेंट या प्रतिनिधि का काम करते हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त वे यात्रियों की सुविधा के लिए साखपत्र (Letter of Credit) देते हैं, रुपये को दूसरे स्थान पर भेजने के लिए बैंक ड्राफ्ट देते हैं तथा सरकार, कम्पनियों तथा म्यूनिस्पैलटियों तथा कारपोरेशनों द्वारा निकाले हुए ऋण का अभिगोपन (Underwritting) करते हैं। वे अपने ग्राहकों की साख, आर्थिक स्थिति तथा प्रसिद्धि के सम्बन्ध में अन्य व्यापारियों को अपना मत देते हैं। वे अपने ग्राहकों की मूल्यवान वस्तुओं को सुरक्षित रूप से रखते हैं।

भविष्य में भारतीय बैंकों को अधि‍ाधिक विदेशी व्यापार की ओर ध्यान देना होगा। भारतीय बैंकों ने 'ट्रस्ट' का कारबार भी करना आरम्भ नहीं किया है और ग्राहकों के लिए शेयरों की खरीद बिक्री का भी काम बहुत कम करते हैं। भविष्य में उन्हें इस ओर अधिक ध्यान देना होगा।

भारतीय व्यापारिक बैंकों के दोष तथा उनकी कठिनाइयाँ:—

(१) भारतीय बैंकों को अभी तक सरकार से प्रोत्साहन नहीं मिला। म्यूनिस्पैलटिया, विश्वविद्यालय, पोर्ट ट्रस्ट, कोर्ट आव वार्डस ट्रस्टों इत्यादि का रुपया उनमें नहीं रक्खा जाता। यद्यपि अब धीरे-धीरे स्थिति बदल रही है। १९३५ के पूर्व देश में कोई केन्द्रीय बैंक न होने के कारण उन्हें कठिनाई के समय ठीक नेतृत्व तथा सहायता नहीं मिलती थी और न उनमें आपस में सहयोग ही स्थापित हो पाता था। किन्तु रिजर्व बैंक की स्थापना से अब यह कठिनाई दूर हो गई है।

(२) विदेशी विनिमय बैंकों (Exchange Banks) तथा इम्पीरियल बैंक की प्रतिस्पर्द्धा तथा आपसी सहयोग और सहानुभूति का अभाव भी उनकी उन्नति के मार्ग में एक रुकावट है। उनका यह भी विचार है कि भविष्य में सहकारी बैंक (Co-operative Banks) भी उनसे होड़ करेंगे। जहाँ तक इन बैंकों की एक्सचेंज बैंकों तथा इम्पीरियल बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा का प्रश्न है हम उन बैंकों से सम्बन्धित अध्यायों में लिख चुके हैं। और जहाँ तक उनमें आपस में तथा द्रव्य बाज़ार (Money Market) के अन्य सदस्यों में सहयोग तथा सद्भावना उत्पन्न करने का प्रश्न है उसके लिए अखिल भारतीय बैंकर्स एसोशियेशन की स्थापना की आवश्यकता है।

(३) अभी तक बहुत से भारतीय धंधे तथा भारतीय व्यापार विदेशियों के हाथ में हैं और वे स्वभावतः अपने देश के बैंकों को प्रोत्साहन देते हैं इस कारण भी भारतीय बैंकों की उन्नति तेज़ी से नहीं हुई। किन्तु अब भारत स्वतंत्र हो गया है और यह कठिनाई अब क्रमशः दूर हो जावेगी।

(४) यही नहीं कि विदेशी व्यवसायी तथा विदेशी व्यापारी फर्में अपने देश के बैंकों से अपना कारबार करती हैं वरन् जो भारतीय व्यापारी इनके ब्रोकर या एजेंट का काम करते हैं अथवा जिनका विदेशी बीमा कंपनियों तथा विदेशी जहाज़ी कंपनियों से कारबार होता है उनको भी यह विदेशी फर्में और कपनियाँ विदेशी विनिमय बैंकों से कारबार पर विवश करते हैं।

(५) पिछले बैंक संकटों के कारण जो बैंक डूब गए उनसे बैंकों की स्थापना में कठिनाई होती थी लोग, बैंकों में हिस्से नहीं लेते थे और उनमें रुपया जमा करने से हिचकते थे किन्तु अब यह कठिनाई दूर हो गई है। पिछले वर्षों में बैंकों की संख्या तथा डिपाज़िट में जैसी तेज़ी से वृद्धि हुई है उसे देखते यह कहना पड़ेगा कि बैंकों के विरुद्ध अब अविश्वास जाता रहा है।

(६) भारत की आर्थिक उन्नति न होने के कारण भी भारतीय बैंकों की उन्नति रुकी रही। अस्तु भारत की आर्थिक उन्नति के साथ-साथ भारत में बैंकिंग कारबार का विकास होना तथा जनता में बैंकिंग की आदत बढ़ाना अनिवार्य है। अभी तक जनता में बैंकिंग की आदत कम है।

(७) इनके अतिरिक्त बैंकों को कुछ अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए हिन्दू तथा मुसलमानों के पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून इतने उलझे हुए हैं कि इस प्रकार की सम्पत्ति की

जमानत पर ऋण देना बैंकों के लिए खतरे से खाली नहीं है अस्तु बैंक उस सम्पत्ति की जमानत पर ऋण देने से हिचकते हैं।

थोड़े समय के लिए ऋण देने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि व्यापारी अपना सम्पत्ति के प्रलेख (Documents) बैंक के पास बिना बंधक पत्र (Mortgage Deeds) लिखे और उनकी रजिस्ट्री कराये रख दें और उन प्रलेखों (Documents) का बैंकों के पास जमा कर देना ही बंधक मान लिया जावे किन्तु भारत में यह सुविधा केवल बम्बई, कलकत्ता, मदरास और करांची नगरों में दी गई है। अन्य स्थानों में यह सुविधा बैंकों को प्राप्त नहीं है।

(८) व्यापारिक बैंक इस आशा से सरकारी सिक्यूरीटियों में अपना रुपया लगाते हैं कि संकट काल में सरकारी सिक्यूरीटियाँ शीघ्र ही नकदी में परिणत की जा सकती हैं किन्तु कभी कभी उसमें कठिनाई पड जाती है। ऐसा बहुत बार हुआ कि बैंक इम्पीरियल बैंक से सरकारी सिक्यूरीटियों की जमानत पर ऋण प्राप्त न कर सके। अभी हाल में रिजर्व बैंक ने भी इसी आशय की घोषणा की है कि यदि किसी बैंक की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है तो यह आवश्यक नहीं है कि सरकारी सिक्यूरिटी के आधार पर उन्हें ऋण दे ही दिया जावेगा।

(९) भारत में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे बैंक हैं कि जिनके पास अपनी निज की यथेष्ट पूँजी नहीं है इस कारण उन्हें बहुत कठिनाई पड़ती है। वे डिपाजिट अधिक आकर्षित करने के लिए सूद अधिक देते हैं और इस कारण उन्हें अपना रुपया जोखिम के कारबार में लगाना पड़ता है तभी वे अधिक सूद कमा सकते हैं। डिपाजिट आकर्षित करने के लिए यह छोटे-छोटे बैंक दूर दूर अन्य प्रान्तों में शाखें स्थापित करते हैं इस कारण उनकी देख भाल और व्यवस्था ठीक प्रकार से नहीं हो पाती और उन्हें बड़े बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा को सहन करना पड़ता है। इस प्रकार के बैंक स्वभावतः निर्बल होते हैं और संकट के समय वे नहीं ठहर सकते।

(१०) इसके अतिरिक्त बहुत से बैंकों के डायरेक्टर योग्य और अनुभवी नहीं हैं और योग्य बैंकिंग कर्मचारियों की कमी है। यही नहीं नये बैंकों को समाशोधन गृह अर्थात् क्लियरिंग हाउस (Clearing House) का सदस्य बनने में बड़ा कठिनाई होती है। क्लियरिंग हाउस पर विदेशी बैंकों का बहुत

प्रभाव है और वे नये बैंकों को उसका सदस्य नहीं बनने देना चाहते। किन्तु अब क्रमशः यह कठिनाई दूर हो जावेगी।

(११) भारत के सभी बैंक अंग्रेज़ी में अपना कारबार करते हैं। उनके चेक, रसीदें, तथा हिसाब सभी अंग्रेज़ी में होता है। केवल कुछ ही बैंक ऐसे हैं कि जो हिन्दी में लिखे गए चेकों को तथा हिन्दी में किये गए हस्ताक्षरों को स्वीकार करते हैं। भारत में व्यापारियों तथा जनता का एक बहुत भाग अंग्रेज़ी नहीं जानता। भारतवर्ष की स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त अंग्रेज़ी का महत्व अब घटने जा रहा है अतएव अब बैंकों को अपना कारबार हिन्दी में अथवा प्रान्तीय भाषा में करना चाहिए।

(१२) भारतीय बैंकों के सामने एक यह भी कठिनाई है कि यहा बिलों तथा ऐसे पत्रों (Papers) की बहुत कमी है जिन्हें बैंक स्वीकार कर सकें। इस कारण बैंकों का विवश होकर अपना अधिकांश कोष सरकारी सिक्यूरिटियों में लगाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भारत में बिना किसी सम्पत्ति की ज़मानत पर अथवा दूसरे हस्ताक्षर लिए हुए व्यक्तिगत साख पर ऋण देने की परिपाटी नहीं है जब कि अन्य देशों में यह बहुत प्रचलित है और अधिकांश ऋण इसी प्रकार दिये जाते हैं। इसका एक कारण यह है कि पश्चिमीय देशों में 'एक व्यक्ति एक बैंक' का चलन है अर्थात् एक व्यक्ति अपना सारा कारबार केवल एक बैंक से ही करता है। दूसरा कारण मैनेजिंग एजेंट हैं। बैंक जब किसी कंपनी को ऋण देते हैं तो वे कम्पनी के डायरैक्टर के अतिरिक्त मैनेजिंग एजेंट के हस्ताक्षर अवश्य लेते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि कंपनी के वास्तविक कर्त्ता-धर्त्ता तो मैनेजिंग एजेंट ही हैं। एक तीसरा कारण यह भी है कि अभी तक इस देश में ऐसी व्यापारिक एजेंसियां नहीं हैं जो व्यक्तियों की साख के सम्बन्ध में बैंकों को सारी जानकारी दे सकें।

(१३) भारतीय बैंकों ने अभी तक भारतवर्ष की परिस्थिति के अनुसार अपने संगठन को नहीं बनाया। वे ऐक्सचेंज बैंकों तथा इम्पीरियल बैंक की नकल मात्र करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रबन्ध व्यय अधिक होता है फिर भी उनके कर्मचारियों में न तो वह कुशलता है और न वह योग्यता। भारतीय बैंकों ने न तो विदेशी ऐक्सचेंज बैंकों की कुशलता ही प्राप्त की और न देशी बैंकरों की सादगी और मितव्ययिता ही वे अपना सके। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय बैंक भारत के अनुकूल बैंकिंग संगठन

की नवीन पद्धति निकालें जो कि कम खर्चीली हो। क्योंकि भारत में ऐसे स्थान बहुत हैं कि जहां इतना कारबार आरम्भ में तो नहीं मिल सकता कि एक आधुनिक ब्रांच का खर्च निकल सके परन्तु फिर भी वहाँ बैंकिंग की सुविधा की आवश्यकता है।

(१४) बहुधा लोग भारतीय बैंकों पर यह दोष लगाते हैं कि वे अपने वास्तविक लाभ का बहुत बड़ा अंश हिस्सेदारों को इस लिये बाँट देते हैं कि जिससे जनता में उनके प्रति विश्वास बना रहे। क्योंकि भारतीय जनता की यह धारणा है कि जो बैंक अधिक लाभ बाँटता है वह उतना ही अच्छा है। जहाँ तक बड़े और पुराने बैंकों का प्रश्न है यह आरोप निराधार है किन्तु छोटे बैंक यह करते हैं और इसका मुख्य कारण भारतीय जनता की यह भ्रमपूर्ण धारणा है।

अब परिस्थिति बदल गई है। यद्यपि भारत के विभाजन से पाकिस्तान में जिन बैंकों की अधिक ब्रांच थीं उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ी है परन्तु फिर भी बैंकों का तेज़ी से विस्तार हुआ है और बड़े बैंक उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

बैंकों का वर्गीकरण:—भारतवर्ष में बैंकों का वर्गीकरण दो प्रकार से हुआ है। एक वर्गीकरण सरकार का है और दूसरा रिज़र्व बैंक का है। भारत सरकार जो बैंक सम्बन्धी आंकड़े छापती है उसमें दो प्रकार के बैंकों का उल्लेख होता है (१) पहली श्रेणी तो उन बैंकों की होती है कि जिनकी चुकता पूँजी (Paid up Capital) तथा रक्षित कोष Reserve Fund) पाँच लाख रुपये से अधिक है दूसरी श्रेणी उन बैंकों की है जिनकी चुकता पूँजी और रक्षित कोष १ लाख रुपये से अधिक है और पाँच लाख रुपये से कम है। १६३६ के उपरान्त बैंकिंग सम्बन्धी आंकड़े रिज़र्व बैंक छापने लगा है तब से दो अन्य श्रेणियाँ और जोड़ दी गई हैं। तीसरी श्रेणी के बैंक वह हैं जिनकी चुकता पूँजी और रक्षित कोष ५० हजार रुपये से अधिक तथा १ लाख से कम है और चौथी श्रेणी में वे बैंक आते हैं जिनकी पूँजी तथा रक्षित कोष ५० हजार रुपये से कम है।

रिज़र्व बैंक बैंकों को दो श्रेणियों में बाँटता है :—(१) शिड्यूल बैंक (Schedule Banks) और गैर शिड्यूल बैंक (Non-Schedule Banks)। जिस बैंक का चुकता पूँजी और रक्षित कोष ५ लाख रुपये से

अधिक हो तथा वह कुछ अन्य शर्तें पूरी करे तो वह शिड्यूल बैंक बन सकता है। किन्तु सभी इस प्रकार के बैंक शिड्यूल बैंक नहीं बन गए हैं।

भारतवर्ष में पहली श्रेणी के बैंकों की संख्या १५७ है और दूसरी श्रेणी के बैंकों की संख्या ६४० है। इनमें शिड्यूल बैंकों की संख्या केवल ६१ है और ऐसे बैंकों की संख्या कि जिनकी चुकता पूँजी तथा रक्षित कोष ५ लाख से अधिक है ६६ हैं।

भारतवर्ष में इंगलैंड के आधार पर बैंकिंग विषय पर लिखने वाले पाँच प्रमुख बैंकों को 'बड़े पाँच' के नाम से पुकारते हैं यद्यपि भारत के बड़े पाँच तथा ब्रिटेन के बड़े पाँच में कोई समानता नहीं है परन्तु फिर भी अध्ययन की दृष्टि से इस प्रकार का विभाजन किया जाता है। वह 'बड़े पाँच' नीचे लिखे हैं (१) बैंक आव इंडिया, (२) सेंट्रल बैंक आव इंडिया, (३) इलाहाबाद बैंक, (४) पंजाब नेशनल बैंक, (५) बैंक आव बड़ौदा। इनमें इलाहाबाद बैंक तो विदेशी बैंक है और शेष चार भारतीय बैंक हैं। इनमें सेंट्रल बैंक आव इंडिया तथा बैंक आव इंडिया के साधन बहुत अधिक हैं वे 'दो बड़े' कहलाये जा सकते हैं।

नये बैंक जो कि १६४१ के उपरान्त स्थापित हुए उनमें नीचे लिखे 'बड़े पाँच' हैं (१) भारत बैंक, (२) यूनायटेड कमर्शियल बैंक, (३) हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक, (४) जयपूर बैंक तथा (५) हबीब बैंक।

अध्याय—१६

विनिमय बैंक या एक्सचेंज बैंक (Exchange Banks)

एक्सचेंज बैंक वास्तव में व्यापारिक बैंक हैं किन्तु उनमें तथा भारतीय मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों (Indian Joint Stock Banks) में केवल इतना ही अन्तर है कि एक्सचेंज बैंकों के प्रधान कार्यालय विदेशों में हैं और उनकी शाखायें भारतीय बन्दरगाहों और मुख्य व्यापारिक केन्द्रों में हैं तथा वे मुख्यतः विदेशी व्यापार में आर्थिक सहायता और विनिमय (Exchange) की सुविधा प्रदान करते हैं। वास्तव में भारतवर्ष के बैंकिंग संगठन की एक विचित्र विशेषता है कि थोड़े से विदेशी बैंकों के एक समूह ने भारत के विदेशी व्यापार पर अपना एकाधिपत्य जमा लिया है। भारतीय व्यापारिक बैंकों का अभी तक इस क्षेत्र में प्रवेश भी नहीं हो पाया है। बात यह थी कि ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में अधिकतर भारत का विदेशी व्यापार ब्रिटेन से होता था। अतएव यह स्वाभाविक ही था कि लंदन में ऐसे बैंक स्थापित हों कि जो कि दोनों देशों में विनिमय (Exchange) का काम करें। किन्तु आरम्भ में तो ईस्ट इंडिया कंपनी और एजेंसी हाउस जो भारत में व्यापार तथा बैंकिंग का कारबार करते थे इसके विरुद्ध थे कि इस प्रकार के बैंक स्थापित हों। किन्तु १८५३ में ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस प्रकार के बैंकों की स्थापना का विरोध करना छोड़ दिया और एजेंसी हाउसों के समाप्त हो जाने से उस प्रकार के बैंकों की स्थापना और भी आवश्यक हो गई।

१८५३ के पूर्व केवल ओरियंटल बैंक विनिमय (Exchange) का काम करता था किन्तु १८५३ में चारटर्ड बैंक आव इंडिया, आस्ट्रेलिया और चीन तथा मरकेंटाइल बैंक इंगलैंड में स्थापित हुए। १८८४ में ओरियंटल बैंक फेल हो गया। १८६३ में नेशनल बैंक आव इंडिया कलकत्ता बैंकिंग कारपोरेशन के नाम से स्थापित हुआ किन्तु बाद को इसका नाम बदल दिया गया और इसका प्रधान कार्यालय लंदन ले जाया गया। इसके उपरान्त फ्रांस, जरमनी, हालैंड, पोर्तुगाल, रूस संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान ने भी इसी नीति को अपनाया और भारत तथा अन्य एशियाई राष्ट्रों से अपने व्यापार को बढ़ाने के उद्देश्य से

अपने बैंकों की शाखायें भारतीय बन्दरगाहों में स्थापित कर दी। शीघ्र ही इंगलैंड के तीन अन्य बैंकों ने भी अपनी शाखायें यहां स्थापित कर दीं (लायड, नेशनल प्राविंशियल तथा थामस)। १९१४ में जब प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ जरमन बैंक (Deutsch Asiatische Bank) तथा रूसी एशियाटिक बैंक की भारतीय शाखायें बंद हो गईं और फिर नहीं खुलीं। १९४१ में जब जापान मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हुआ तो तीन जापानी बैंकों की शाखायें (याकोहामा स्पीसी बैंक, मित्सुई बैंक, तथा तैवान बैंक) बंद हो गईं।

एक्सचेंज बैंकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। एक तो वे बैंक जिनका अधिक कारबार भारत से होता है अर्थात् उनकी डिपाज़िट का २५ प्रतिशत से अधिक भारत में है। दूसरी श्रेणी में वे बैंक आते हैं कि जो बहुत बड़े बैंक हैं और जिनका कारबार अन्य देशों में अधिक फैला हुआ है अर्थात् भारत में उनकी कुल डिपाज़िट का २५ प्रतिशत से कम है। किन्तु यह श्रेणी विभाजन बहुत उपयुक्त नहीं है क्योंकि दूसरी श्रेणी के बैंक लायड बैंक, हांगकांग शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन तथा अमेरिका का न्यू-सिटी बैंक बहुत बड़े बैंक हैं और यद्यपि भारत में उनकी डिपाज़िट उनकी कुल डिपाज़िट की २५ प्रतिशत से कम हैं परन्तु उनकी भारतीय डिपाज़िट पहली श्रेणी के बैंकों की डिपाज़िट से कहीं अधिक है। १९३६ तक प्रथम श्रेणी में ६ बैंक थे किन्तु १९३६ में चारटर्ड बैंक ने पी० ओ० बैंकिंग कारपोरेशन को खरीद लिया अस्तु अब पहली श्रेणी में केवल पांच बैंक हैं। और १५ बैंक दूसरी श्रेणी में हैं (इनमें जापान के ३ बैंक का युद्ध काल में कारबार बंद हो गया)।

नीचे हम मुख्य एक्सचेंज बैंकों की तालिका देते हैं :—

	स्थापित होने का वर्ष	नाम	प्रधान कार्यालय
प्रथम श्रेणी के बैंक	१८५३	चारटर्ड बैंक आफ इंडिया आस्ट्रेलिया और चीन	—लंदन
	१९०६	ईस्टर्न बैंक लिमिटेड	—लंदन
	१८५८	मरकैंटाइल बैंक आव इंडिया	—लंदन
	१८६६	नेशनल बैंक आव इंडिया	—लंदन

दूसरी श्रेणी १८६६ के बैंक	थामस कुक एण्ड सन्स (बैंकर) (यह अधिकतर यात्रियों का कारबार करती है)	—लंदन
	लायड बैंक (जिसने किंग और कारस का कारबार ले लिया	—लंदन
	मिडले एण्ड कंपनी (जिसे नेशनल प्राविंशियल बैंक नियंत्रित करता है)	—लंदन
	निदरलैंड ट्रेडिंग सोसायटी	—ऐमस्टर्डम
	निदरलैंडस इंडियन कमर्शियल बैंक	—ऐमस्टर्डम
	हांगकांग शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन	—हांगकांग
	नेशनल सिटी बैंक आव न्यू यार्क	—न्यू यार्क
	अमेरिकन ऐक्सप्रेस कंपनी (यह यात्रियों का कारबार करती है)	—न्यू-यार्क
	काम्पटोयर नेशनल डी ऐस्काम्पटो डी पेरिस	—पैरिस
	बैंको नेशनल अल्ट्रामैरिनो	—लिस्बन
१९४१ के उपरान्त जापानी बैंकों ने कारबार बंद कर दिया	याकोहामा स्पीसी बैंक	—याकोहामा
	बैंक आव तैवान	—तैपेह
	मित्सुई बैंक	—टोकियो
	बैंक आव चाइना	

बात यह थी कि भारत का व्यापार बढ़ता जा रहा था, बैंकिंग में अधिक लाभ था और उसी लाभ के लालच से उन देशों के प्रमुख बैंकों ने भारत में अपनी शाखायें स्थापित करदीं कि जिनका भारत से व्यापार होता था। केवल इटली और बैलजियम ही ऐसे देश हैं कि जिनका भारत के साथ यथेष्ट व्यापार होता है किन्तु उनके किसी बैंक ने भारत में अपना कारबार स्थापित नहीं किया।

एक्सचेंज बैंक भारत के अत्यन्त प्राचीन बैंक हैं। जब कि आधुनिक ढंग के मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों की भारत में स्थापना भी नहीं हुई थी तब से ही वे भारत में अपना कारबार करते आये हैं। चारटर्ड नेशनल, और मरकैन्टाइल तो १८७० के पूर्व ही काम करते थे। वास्तव में भारतीय व्यापारिक

बैंकों का प्रादुर्भाव तो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ।

अतएव एक्सचेंज बैंकों का देश के व्यापार में प्रधान हाथ रहा तो उसमें आश्चर्य ही क्या है। नीचे हम एक्सचेंज बैंकों की तथा भारतीय मिश्रित पूँजी वाले बैंकों की भारत में जो डिपाज़िट थी उनकी तालिका देते हैं उससे यह स्पष्ट हो जावेगा कि एक्सचेंज बैंकों का यहां कितना अधिक प्रभाव है।

वर्ष	एक्सचेंज बैंकों की डिपाज़िट	मिश्रित पूँजी वाले बैंकों की डिपाज़िट 'अ' श्रेणी	मिश्रित पूँजी वाले बैंकों की डिपाज़िट 'ब' श्रेणी
१८७०	५२ लाख रु०	१४ लाख रु०	
१८८०	७५३ ,, ,,	२१० ,, ,,	
१९००	१०५० ,, ,,	८०७ ,, ,,	
१९१०	२८१६ ,, ,,	२५६२ ,, ,,	
१९१९	७४३६ ,, ,,	५८९६ ,, ,,	२२८ लाख रु०
१९२०	७४८० ,, ,,	७११४ ,, ,,	२३३ ,, ,,
१९३०	६८११ ,, ,,	६३२५ ,, ,,	४३६ ,, ,,
१९३६	७५०३ ,, ,,	९८१४ ,, ,,	५४६ ,, ,,
१९३७	७३२१ ,, ,,	१००२६ ,, ,,	८२६ ,, ,,
१९३८	६७२० ,, ,,	९८०६ ,, ,,	८७२ ,, ,,
१९४०	८५५७ ,, ,,	११३९८ ,, ,,	११०४ ,, ,,
१९४१	१०६७३ ,, ,,		

एक्सचेंज बैंकों का भारतीय द्रव्य बाज़ार में प्रभाव :— इन एक्सचेंज बैंकों का भारतीय द्रव्य बाज़ार पर गहरा प्रभाव रहा है। बहुधा इन बैंकों ने भारतीय आर्थिक हितों के विरुद्ध अपने प्रभाव का प्रयोग किया है। यह इन बैंकों के विरोध का ही परिणाम था कि भारत के प्रेसीडेंसी बैंकों को लंदन के द्रव्य बाज़ार में सीधे ऋण लेने की आज्ञा नहीं मिली

और भारत में केन्द्रीय बैंक (Central Bank) ही स्थापित हो सका। इन बैंकों के प्रधान कार्यालय लदन में थे इस कारण वे लदन द्रव्य बाजार के द्वारा भारत मत्री पर अपना प्रभाव डालने में समर्थ हो जाते थे। यही नहीं भारत सरकार को प्रतिवर्ष इगलैंड में अपने खर्च (Home Charges) को चुकाने के लिए करोड़ों रुपये के स्टर्लिंग की आवश्यकता होती थी जो कि एक्सचेंज बैंक ही देते थे इस कारण भारत सरकार पर भी उनका प्रभाव रहता था। एक्सचेंज बैंकों को अपने प्रधान कार्यालयों के द्वारा लदन द्रव्य बाजार में ऋण लेने की सभी सुविधायें प्राप्त हैं इस कारण वे रिज़र्व बैंक पर निर्भर नहीं हैं और इस कारण रिजर्व बैंक का उन पर कभी पूरा नियन्त्रण नहीं हो सकता।

एक्सचेंज बैंकों के कार्य :—एक्सचेंज बैंकों का मुख्य कार्य भारत के विदेशी व्यापार को आर्थिक सहायता प्रदान करना है। एक प्रकार से एक्सचेंज बैंकों को भारत के विदेशी व्यापार का एकाधिकार प्राप्त है। १९३५ के पूर्व इम्पीरियल बैंक को कानून द्वारा विदेशी बिलों (Foreign Bills) को खरीदने बेंचने या भुनाने की मनाही थी। वह केवल अपने ग्राहकों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए ही भारत के बाहर रुपया भेज सकता था विदेशी व्यापार का कारबार नहीं कर सकता था। भारतीय मिश्रित पूँजी वाले बैंकों (Indian Joint Stock Banks) के ऊपर कोई ऐसा कानूनी प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु वे विदेशी व्यापार को अपने हाथ में लेने में असमर्थ थे। क्योंकि एक्सचेंज बैंकों का उस पर एकाधिकार स्थापित था। पहला कारण तो यह है कि भारतीय बैंक इन एक्सचेंज बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते क्योंकि वे बहुत अधिक मजबूत और साधन सम्पन्न हैं। उनकी पूँजी और सुरक्षित कोष (Reserve Fund) भारतीय बैंकों की अपेक्षा कई गुना अधिक है और उन्हें लदन के द्रव्य बाजार में बहुत कम सूद पर ऋण लेने की सुविधा प्राप्त है। भारतीय बैंकों के सामने दूसरी कठिनाई यह है कि उनकी शाखायें अन्य देशों में नहीं हैं इस कारण वे विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) का लाभदायक काम सुविधा पूर्वक नहीं कर सकते। तीसरा कारण यह कि भारत में ही भारतीय बैंकों की कार्यशील पूँजी (Working Capital) की माँग रहती है अतएव उन्हें विदेशी व्यापार में अपने कोष को लगाने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। परन्तु पिछले वर्षों में विशेष कर १९४० के उपरान्त भारत में नये बैंकों की स्थापना इस तेजी से हुई है और पुराने बैंकों ने अपनी पूँजी और शाखाओं का इस तेजी से विस्तार किया है कि बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा बढ गई है और भारतीय बैंकों को

भी विदेशी व्यापार में हाथ डालने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा है। सेन्ट्रल बैंक आव इंडिया इत्यादि कुछ बड़े भारतीय बैंकों ने इस कार्य को करना आरम्भ भी कर दिया है। यही नहीं एक भारतीय एक्सचेंज बैंक "एक्सचेंज बैंक आव इंडिया एण्ड अफ्रिका" भी स्थापित हुआ है जो अफ्रिका के व्यापार का काम करता है। इस बैंक ने अफ्रीका में अपनी शाखायें भी स्थापित की हैं। अभी तक जो भारतीय बैंक विदेशों में अपने ब्रांच स्थापित करने में सफल नहीं हुए उसके मुख्य कारण नीचे लिखे हैं :—

(१) भारतीय बैंकों की पूँजी इतनी अधिक न थी कि विदेशों के द्रव्य बाज़ारों में अपनी साख को सरलता से स्थापित कर सकते।

(२) विदेशों में ब्रांचों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कार्यशील पूँजी (Working Capital) भी अधिक होनी चाहिए।

(३) आरम्भ में कुछ वर्षों तक विदेशों में ब्रांचें घाटे पर चलेंगी अस्तु बैंकों को उस घाटे को सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय (International Exchange) के कारबार को करने के लिए बहुत कुशल बैंक कर्मचारियों की आवश्यकता है जिनकी भारत में कमी है।

(५) आरम्भ में भारतीय बैंकों को विदेशों में अधिक जमा मिलने की सम्भावना नहीं हो सकती क्योंकि वहाँ के व्यवसायी, व्यापारी और जनता अपने देशीय बैंकों में ही अपना रुपया जमा करते हैं।

(६) भारतीय बैंकों को उन देशों के बड़े बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ेगा।

(७) भारतीय बैंकों के प्रधान कार्यालय भारत में होने के कारण भारतीय बैंकों का संसार की मुख्य द्रव्य बाज़ारों (न्यू-यार्क और लंदन) से सीधा सम्पर्क स्थापित नहीं हो सकता इस कारण वे अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य सम्बन्धी हलचलों से दूर रहते हैं और निर्यात (Export) और आयात (Import) बिल उन्हें इतने अधिक प्राप्त नहीं हो सकते।

इन्हीं कारणों से भारतीय बैंक विदेशों में अपनी ब्रांचें स्थापित करने में सफल न हो सके। किन्तु अब भारतीय बैंक उस ओर ध्यान दे रहे हैं और उन्हें भविष्य में परिस्थितिवश अधिकाधिक इस ओर अग्रसर होना पड़ेगा।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि एक्सचेंज बैंकों का मुख्य कार्य व्यापार को आर्थिक सहायता देना है। किन्तु वे प्रायः सभी उन कार्यों को करते हैं जो कि व्यापारिक बैंक करते हैं। वे चालू (Current), मुद्दती (Fixed) तथा सेविंग्स डिपाजिट स्वीकार करते हैं, विदेशी बिलों को खरीदते हैं, नौ परिवहन प्रलेखों (Shipping Documents) की जमानत पर ऋण देते हैं और सोना और चाँदी के आयात (Import) में सहायता देते हैं। भारत में नेशनल बैंक तथा चारटर्ड बैंक के सोने के धंधे बहुत प्रचलित रहे हैं। यही नहीं एक्सचेंज बैंक आभ्यन्तर व्यापार (Internal Trade) में भी आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। जब माल देश के एक भीतरी स्थान से निर्यात (Export) के लिए बन्दरगाहों तक भेजा जाता है अथवा विदेशों से आया हुआ माल बन्दरगाहों से भीतरी केन्द्रों तक भेजा जाता है तब उस व्यापार को भी एक्सचेंज बैंक ही बहुधा करते हैं। अब हम यहाँ विदेशी व्यापार का विवेचन विस्तार पूर्वक करेंगे।

जब भारतीय निर्यात (Export) करने वाला व्यापारी विदेशियों को माल बेंचता है तो किसी लन्दन बैंक से साख (Credit) का प्रबन्ध कर लिया जाता है। माल खरीदने वाला लदन के किसी बैंक या फाइनेंस हाउस (साख देने वाले व्यापारी) से साख का प्रबन्ध कर लेता है और एक्सचेंज बैंक के जरिये भारतीय व्यापारी को इसकी सूचना दे देता है तब भारतीय व्यापारी उस साख (Credit) के विरुद्ध उस लदन स्थित बैंक या फाइनेंस हाउस पर 'बिल' (Bill) लिख देता है। अधिकतर बिलों की स्वीकृति हो जाने पर ही प्रलेख (Documents) जहाज की रसीद (Bill of Lading) इत्यादि दे दिए जाते हैं परन्तु कुछ बिल ऐसे भी होते हैं कि जिनका भुगतान हो जाने पर ही प्रलेख (Documents) दिए जाते हैं।

ये बिल लदन भेज दिए जाते हैं। एक्सचेंज बैंक उन्हें स्वीकृति के लिए पेश करता है। उसकी स्वीकृति हो जाने पर एक्सचेंज बैंक उस पर बेंचान (Endorsement) कर देता है और लदन के द्रव्य बाज़ार में भुना लेता है। इस प्रकार एक्सचेंज बैंक उस बिल को भारत में खरीद कर जो उसका मूल्य रुपयों में चुकाते हैं वह लदन में स्टर्लिंग में वसूल कर लेते हैं। यदि एक्सचेंज बैंकों के पास यथेष्ट कोष (Funds) होता है और उसका उस समय कोई लाभदायक उपयोग होने की सम्भावना नहीं होती तो वे बिलों को पकने (Maturity) तक अपने पास ही रखते हैं किन्तु यदि द्रव्य की बाज़ार में

कमी होती है और व्यापार में तेजी होती है तो वे इन बिलों को लंदन के द्रव्य बाज़ार में तुरन्त भुना लेते हैं। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा उपनिवेशों और भारत के बीच में जो बिल होते हैं वे बहुधा स्टर्लिंग में होते हैं जापान के बिल यन (Yen) में होते हैं तथा चीन के बिल रुपयों में होते हैं।

भारत के आयात व्यापार (Import Trade) का आर्थिक प्रबन्ध दो प्रकार से किया जाता है। जब भारतीय व्यापारी विदेशों से माल मँगाते हैं अथवा वे योरोपियन व्यापारी माल मँगवाते हैं जिनका लंदन में ऐसा कोई कार्यालय नहीं है कि जिसकी द्रव्य-बाज़ार में साख हो तो माल भेजने वाला व्यापारी भारतीय व्यापारियों पर जिन्होंने माल मँगवाया है ६० दिन का देखनहार बिल (Sight Bill) काट देते हैं। उसके साथ माल सम्बन्धी सभी प्रलेख (Documents) जहाज़ की रसीद और समुद्री बीमा पालिसी इत्यादि रहते हैं और वे आवश्यक प्रलेख भारतीय व्यापारी को तभी दिए जाते हैं कि जब वह बिल का भुगतान कर दे। माल भेजने वाला लंदन स्थित व्यापारी इन बिलों को लंदन में ही एक्सचेंज बैंक से भुना (Discount) लेता है। इस प्रकार एक्सचेंज बैंक वास्तव में उस माल का स्वामी हो जाता है। जब प्रलेखों (Documents) के साथ एक्सचेंज बैंक की भारतीय शाखा के पास बिल आता है तो भारतीय व्यापारी या तो बिल का भुगतान कर देता है और जहाज़ की बिल्टी (Bill of Lading) तथा समुद्रीय बीमा पालिसी लेकर अपना माल छुड़ा लेता है। परन्तु यदि व्यापारी बिल का भुगतान नहीं करना चाहता तो वह एक्सचेंज बैंक से प्रार्थना करता है कि वह उसे बिना भुगतान किए ही माल लेने दे। ऐसी दशा में माल मँगाने वाला व्यापारी एक्सचेंज बैंक को माल की ट्रस्ट रसीद (Trust Receipt) लिख देता है। अर्थात् वह यह स्वीकार करता है कि जो माल उसने छुड़ाया है वह वास्तव में एक्सचेंज बैंक का है। वह तो उस माल का केवल ट्रस्टी या अमानतदार है। माल लेकर व्यापारी अपने गोदाम में रख लेता है और उसके बिक जाने पर बिल का भुगतान कर देता है। इस सुविधा के लिए उसे एक्सचेंज बैंक को सूद देना पड़ता है।

जिन भारतीय योरोपियन फर्मों के कार्यालय लंदन में हैं उनके साथ दूसरा ढंग बरता जाता है। लंदन का कार्यालय उस माल की खरीद करता है जिसकी भारतीय फर्म को आवश्यकता होती है। अब जब लंदन का कार्यालय जहाज़ से माल भारत को भेज देता है तो वह अपनी भारतीय शाखा अर्थात् माल

मँगाने वाली फर्म पर प्रलेख बिल (Documentary Bill) देता है। लदन का कार्यालय लदन स्थित एक्सचेंज बैंक के सामने उस बिल को उपस्थित करता है और एक्सचेंज बैंक उसको स्वीकार कर लेता है। बिल पर एक्चेंज बैंक की स्वीकृति हो जाने पर लदन का कार्यालय उस बिल को लदन के द्रव्य बाजार में भुना कर माल का मूल्य स्टर्लिंग वसूल कर लेता है। बिल को स्वीकार करने वाले एक्सचेंज बैंक जहाज़ी बिल्टी (Bill of Lading) और समुद्री बीमा पालिसी इत्यादि आवश्यक प्रलेख अपनी भारतीय शाखा को भेज देता है। एक्सचेंज बैंक की भारतीय शाखा भारतीय फर्म से जिसने माल मँगाया है रुपया वसूल करके लदन भेज देता है। बिल दोनों ही दशा में स्टर्लिंग में ही लिखे जाते हैं। किन्तु दूसरे ढग में योरोपीय फर्मों को यह लाभ होता है कि वह बिल लदन में भुन जाता है अस्तु सूद बहुत कम देना पड़ता है क्योंकि वह बट्टा दर (Discount Rate) बहुत कम होती है किन्तु भारतीय व्यापारियों को बिल करने के दिन से और उसका भुगतान लदन पहुँचने के दिन तक ऊँची दर से सूद देना पड़ता है।

बहुधा भारतवर्ष का विदेशी व्यापार का अन्तर (Balance of Trade) उसके पक्ष में रहता है। अस्तु एक्सचेंज बैंक भारत में सोना चाँदी मँगाकर तथा रिज़र्व बैंक को स्टर्लिंग (जिनका लदन में भुगतान हो) बेंच कर उस अन्तर को पूरा कर देते हैं। इसके अतिरिक्त एक्सचेंज बैंक ससार के प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र पर तार की हुडी (Telegraphic Transfers) बेंचते हैं।

एक्सचेंज बैंक केवल विदेशी व्यापार का ही कारबार नहीं करते वरन भारत के भीतरी व्यापारिक केन्द्रों से बन्दरगाहों तक और बन्दरगाहों से भीतरी व्यापारिक केन्द्रों तक माल आने जाने का प्रबन्ध भी करते हैं। पिछले कुछ वर्षों से एक्सचेंज बैंक भारत के अन्दरूनी व्यापार के कारबार को भी अपने हाथ में लेने के इच्छुक दिखलाई देते हैं। वे भारतीय व्यापारिक बैंकों के हिस्से खरीद कर उन पर अपना नियत्रण स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरण के लिए पी० ओ० बैंकिंग कारपोरेशन ने इलाहाबाद बैंक जैसे प्रसिद्ध और बड़े बैंक को खरीद लिया और इस प्रकार वह भारत के सभी प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में उसकी शाखाओं के द्वारा पहुँच गया। और पी० ओ० बैंकिंग कारपोरेशन को चारटर्ड बैंक ने खरीद लिया अस्तु इलाहाबाद बैंक की ब्राँचें वास्तव में चारटर्ड बैंक की ब्राँचें हैं जो कि एक प्रमुख एक्सचेंज बैंक है। जिन भीतरी व्यापारिक केन्द्रों में एक्सचेंज बैंकों की शाखायें होती

हैं वहाँ के व्यापारी एक्सचेंज बैंकों की स्थापित शाखा से ही विदेशों में अपनी देनी (Debt) का भुगतान कर देते हैं। उदाहरण के लिए यदि कानपूर का व्यापारी लन्दन से माल मँगाता है तो उस पर लंदन के व्यापारी (माल भेजने वाले) ने जो बिल लिखा है कानपूर शाखा को भेज दिया जाता है और कानपूर की शाखा उससे रुपया वसूल करके उसे जहाजी बिल्टी और समुद्री बीमा पालिसी इत्यादि दे देती है। इसी प्रकार भीतरी केन्द्र से विदेशों को माल भेजने वाला व्यापारी स्थानीय एक्सचेंज बैंक की ब्रांच को अपना बिल जो उसने विदेशी व्यापारी पर लिखा है बेंच देता है।

किन्तु यदि किसी भीतरी व्यापारिक केन्द्र में एक्सचेंज बैंक की शाखा नहीं होती तो वहाँ से बन्दरगाहों तक का कारबार भारतीय व्यापारिक बैंक करते हैं और बन्दरगाहों से विदेशों तक का कारबार एक्सचेंज बैंक करते हैं। जिन भीतरी स्थानों में एक्सचेंज ब्रांच की शाखा होती है वहाँ के व्यापारी एक्सचेंज बैंक से ही दोनों व्यवहार (Transaction) करते हैं क्योंकि वह सरल और कम खर्चीला बैठता है।

विदेशी व्यापार के लिए आर्थिक प्रबंध करने के अतिरिक्त एक्सचेंज बैंक भीतरी व्यापार के कारबार को भी करते हैं। वे व्यापारियों को ऋण देते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भेजते हैं, तीनों प्रकार की जमा लेते हैं। उनकी साख और प्रतिष्ठा अधिक होने के कारण वे भारतीय व्यापारिक बैंकों की अपेक्षा कम सूद देते हैं। वे एजेंसी का काम भी करते हैं और सोना-चाँदी के आयात (Import) व्यापार के लिए भी आर्थिक प्रबंध (Finance) करते हैं।

एक्सचेंज बैंकों के विरुद्ध आरोप :—यह तो सभी लोग स्वीकार करते हैं कि विदेशी व्यापार के लिए जितनी साख की आवश्यकता होती है वह विदेशी बैंक उसको उचित मूल्य पर देने का प्रबन्ध करते हैं किन्तु भारतीय व्यापारियों तथा भारतीय व्यापारिक बैंकों को उनसे बहुत सी शिकायतें हैं। जब भारत में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी बैठी थी उस समय भारतीय बैंकों तथा भारतीय व्यापारियों ने उन पर नीचे लिखे आरोप लगाये थे।

(१) एक्सचेंज बैंकों पर भारत का कोई बैंकिंग सम्बन्धी कानून लागू नहीं होता। कानून ने जो दायित्व भारतीय बैंकों पर लगा दिये हैं वे भी एक्सचेंज बैंकों पर लागू नहीं होते। उनके डायरैक्टर और हिस्सेदार सभी विदेशी हैं। अस्तु उनका नियंत्रण विदेशियों के हाथ में है। रिज़र्व बैंक का उन पर कोई

नियंत्रण नहीं है। एक्सचेंज बैंकों के लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि वे भारत में आय-व्यय निरीक्षकों से अपने आय-व्यय की जाँच करावें। वे भारत सम्बन्धी कारबार का पृथक् लेनी देनी का लेखा (Balance-Sheet) तक नहीं छापते। भारत सरकार को ना वर्ष में वे एक बार अपनी लेनी-देनी का लेखा भेजते हैं उसमें उनके विदेशी और भारतीय कारबार के सम्मिलित आंकड़े रहते हैं जिनसे उनके भारतीय कारबार का कोई पता नहीं चलता। इसका परिणाम यह होता है कि एक्सचेंज बैंकों का कारबार भारतीयों से एक दम गुप्त रहता है। यह बैंक भारत में बहुत अधिक डिपाजिट आकर्षित करते हैं। उनके कोष का भारतीय डिपाज़िट एक बहुत बड़ा भाग होती हैं किन्तु भारतीय जमा करने वालों की डिपाज़िटों की सुरक्षा का कोई भी नियम उन पर लागू नहीं होता। यदि कोई एक्सचेंज बैंक किसी कारणवश फेल हो जाय (टूट जाय) तो भारतीय जमा करने वालों का अपनी डिपाजिटों को वसूल करने के लिए एक्सचेंज बैंक की भारतीय सम्पत्ति पर पहला हक़ भी नहीं है।

(२) दूसरी शिकायत उनके विरुद्ध यह थी कि वे बहुधा भारत में उनकी डिपाजिटों को देखते हुए यथेष्ट नक़द कोष (Cash Reserves) भी नहीं रखते। इस कारण भारतीय द्रव्य-बाज़ार के लिए निर्बलता का कारण बनते हैं। प्रथम महायुद्ध के समय इसी कारण एक्सचेंज बैंक कठिनाई में पड़ गए थे और उनकी सहायता करनी पड़ी थी। तब से कुछ वर्षों तक उन्होंने अधिक नकद कोष रक्खा किन्तु अब फिर उनका नकद कोष गिरने लगा। अपने पक्ष में एक्सचेंज बैंक कहते हैं कि वे सरकारी प्रतिभूति (सिक्यूरिटियों) और सरकारी हुंडियों (Treasury Bills) में अपना यथेष्ट कोष लगाते हैं किन्तु उसके सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है।

(३) एक प्रकार से एक्सचेंज बैंकों को भारत के विदेशी व्यापार का अर्थ-प्रबन्ध (Finance) करने का एकाधिकार प्राप्त है और वे इस कार्य को भारत में प्राप्त की हुई जमा (डिपाज़िट) से ही करते हैं। इस प्रकार भारत को बैंकिंग लाभ और व्यापारिक लाभ से वंचित रहना पड़ता है। एक्सचेंज बैंकों के भारतीय विदेशी व्यापार में बढ़ते हुए प्रभाव का परिणाम यह हुआ कि भारत के विदेशी व्यापार में भारतीयों का हिस्सा घटता गया और विदेशियों का हिस्सा बढ़ता गया। यहाँ तक कि भारतीयों का विदेशी व्यापार में केवल १५ से २० प्रतिशत भाग ही रह गया। इस प्रकार भारतीयों को करोड़ों रुपये के

वैदेशिक व्यापार से होने वाले लाभ से वंचित रहना पड़ता है। केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी (Central Banking Enquiry Commitiee) के सामने गवाही देते हुए बहुत सी व्यापारिक संस्थाओं ने इस बात की शिकायत की थी कि यह विदेशी एक्सचेंज बैंक विदेशी व्यापारियों को अधिकाधिक सुविधायें देकर और भारतीय व्यापारियों को उन सुविधाओं से वंचित रखकर उन्हें बढ़ाते रहे हैं। इसी का परिणाम यह हुआ कि भारत का व्यापार विदेशियों के हाथ में चला गया।

इन एक्सचेंज बैंकों का एक ढंग तो यह है कि जब कोई भारतीय व्यापारी विदेशों से कारबार करना चाहता है तो यह बैंक विदेशों को उनके बारे में बहुधा अच्छी सम्मति नहीं देते। इस सम्बन्ध में एक्सचेंज बैंकों का कहना है कि हम जो इस सम्बन्ध में भारतीय और विदेशी व्यापारियों में भेद करते हैं उसका मुख्य कारण यह है कि भारतीय व्यापारी बैंकों को अपना लेनी-देनी का लेखा (Balance-Sheet) देना नहीं पसंद करते। जब तक हमें उनका आडीटरों द्वारा जांचा हुआ लेनी-देनी का लेखा न मिले तब तक हम उनकी आर्थिक स्थिति का अनुमान नहीं लगा सकते। भारतीय व्यापारियों का कहना यह है कि एक्सचेंज बैंकों का उससे अर्थ यह है कि जिन आय-व्यय निरीक्षकों (Auditors) को वे स्वीकार करें उनसे हम अपने हिसाब की जाँच करवावें तभी वे उसे स्वीकार करेंगे। किन्तु एक्सचेंज बैंकों के प्रतिनिधियों ने इसको अस्वीकार किया। उनका कहना था कि हम सरकार द्वारा स्वीकृत आय-व्यय निरीक्षकों से जांचा हुआ लेनी-देनी का लेखा मात्र ही चाहते हैं। भारतीय व्यापारियों का कहना है कि भारत में एक फर्म और एक बैंक की परिपाटी प्रचलित नहीं है इस कारण एक्सचेंज बैंकों को लेनी-देनी के लेखे को मांगने का कोई अधिकार नहीं है। सच बात तो यह है कि एक्सचेंज बैंकों के मैनेजर सब विदेशी हैं इस कारण वे भारतीय व्यापारियों के अधिक सम्पर्क में नहीं आते और उनकी आर्थिक स्थिति का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकते।

भारत में जो विदेशी व्यापारी हैं उन्हें माल साख (Credit) पर मँगाने की सुविधा दी जाती है जब कि भारतीय व्यापारी को नक़द मूल्य देना पड़ता है। भारतीय व्यापारियों का यह भी कहना है कि विदेशों के व्यापारी भारतीय व्यापारियों को साख इस कारण नहीं देते क्योंकि एक्सचेंज बैंक उनके सम्बन्ध में अच्छी सम्मति नहीं देते। एक्सचेंज बैंकों का कहना था कि हम जो भारतीय व्यापारियों से ट्रस्ट की रसीद (Trust Receipt) लेकर जहाजी

बिल्टी इत्यादि दे देते हैं उससे उन्हें भी साख (Credit) की सुविधा मिल जाती है। परन्तु भारतीय व्यापारियों ने इसके उत्तर में यह कहा कि ट्रस्ट-रसीद पर सूद अधिक देना पड़ता है। अतएव भारतीय व्यापारियों को विदेशी व्यापारियों की अपेक्षा हानि उठानी पड़ती है।

भारतीय व्यापारियों ने इस बात की भी शिकायत की कि जब कोई भारतीय व्यापारी माल बाहर भेजता है तब एक्सचेंज बैंक उसके बिल को बिना अन्तर (Margin) के और बिना ज़मानत लिए कभी नहीं भुनाते किन्तु जब कोई विदेशी फर्म माल बाहर भेजती है और अपने बिल को भुनाती है तो अन्तर (Margin) या ज़मानत नहीं माँगी जाती। एक्सचेंज बैंकों का कहना है कि विदेशी फर्मों के प्रधान कार्यालय विदेशों में होते हैं और बिल उन्हीं पर होते हैं अस्तु उनके भुगतान न होने का कोई भय नहीं होता परन्तु भारतीयों के साथ ऐसी बात नहीं है। इसी कारण एक्सचेंज बैंक उनके बिलों का पूरा मूल्य यहीं चुका देते हैं। जो भी हो किन्तु यह सत्य है कि भारतीयों को विदेशी फर्मों की तुलना में हानि होती है।

भारत में एक्सचेंज बैंक विदेशों के व्यापारियों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में यहाँ के व्यापारियों को कोई जानकारी नहीं देते। संसार के प्रत्येक देश में बैंकों का यह मुख्य कार्य है किन्तु एक्सचेंज बैंक ऐसा नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि भारत में जो विदेशी फर्में काम करती हैं उन्हें तो अपने विदेशी कार्यालयों से विदेशों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है किन्तु भारतीय व्यापारियों को उनके बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

पहले तो भारतीय व्यापारी जब विदेशों से माल मगवाते हैं तो उन्हें साख ही नहीं मिलती किन्तु जिन थोड़े से प्रथम श्रेणी के भारतीय व्यापारियों को साख मिलती भी है उन्हें भी मँगाये हुए माल के मूल्य का १५ प्रतिशत तक बैंकों के पास जमा कर देना होता है जब कि उन विदेशी फर्मों को जो भारत में हैं कोई डिपाज़िट बैंकों के पास नहीं रखनी पड़ती।

भारत के अधिकांश आयात (Import) और निर्यात (Export) व्यापार में स्टर्लिंग बिलों का उपयोग होता है। इसका फल यह होता है कि भारतीय व्यापारी को माल मगाने वाले विदेशी व्यापारी पर स्टर्लिंग में ही बिल काटना पड़ता है अतएव उसका बिल भारतीय द्रव्य बाजार के लिए व्यर्थ की वस्तु हो जाता है। उसे एक्सचेंज बैंकों से ही उसे भुनाना पड़ता है। जिनकी

बट्टा दर (Discount Rate) ऊँची होती है। इसके विरुद्ध भारत में कारबार करने वाली विदेशी फर्में अपने लंदन स्थित कार्यालयों से माल मंगवाती हैं तो वे लंदन स्थित कार्यालय अपनी भारतीय शाखाओं पर बिल न काट कर लंदन स्थित एक्सचेंज बैंकों के आफ़िसों पर बिल (Bill) काटते हैं और वे एक्सचेंज बैंक के आफिस उसको स्वीकार कर लेते हैं। एक्स-चेंज बैंक से बिल को स्वीकार कराने के बाद वे उस बिल को लंदन द्रव्य बाज़ार में भुना लेते हैं। लंदन द्रव्य बाज़ार में बट्टे की दर (Discount Rate) बहुत कम होती है। इस प्रकार विदेशी फर्मों को भारतीय व्यापारियों की अपेक्षा एक या डेढ़ प्रतिशत का लाभ हो जाता है।

(४) इन आरोपों के अतिरिक्त भारतीय व्यापारियों का एक्सचेंज बैंकों के विरुद्ध एक सब से बड़ा आरोप यह है कि वे भारतीय ब्रोकरों, भारतीय बैंकों, भार-तीय बीमा कंपनियों और भारतीय जहाज़ी कंपनियों के विरुद्ध अपने देशों के ब्रोकरों, बैंकों, कंपनियों तथा जहाज़ी कंपनियों को प्रोत्साहित करते हैं। जब भारतीय व्यापारी विदेशों को माल भेजते हैं तो एक्सचेंज बैंक उन्हें विदेशी जहाज़ी कंपनियों से माल भेजने तथा विदेशी बीमा कंपनियों से उसका बीमा करवाने पर विवश करते हैं। इस प्रकार भारतीय बीमा कंपनियों तथा भारतीय जहाज़ी कंपनियों को करोड़ों रुपये की हानि होती है और वे पनप नहीं पातीं।

(५) एक्सचेंज बैंक एसोशियेशन बिना भारतीय व्यापारियों से कोई परामर्श किए ही अपने नियमों में जब चाहती है तो परिवर्तन कर देती है और भारतीय व्यापारियों के लिए नियम कठोर रक्खे जाते हैं। यही नहीं एसोसि-येशन किसी भी सदस्य को भारतीय बैंक तथा जाबर से कारबार नहीं करने देती जो कि विनिमय (Exchange) का काम करता है। दूसरे शब्दों में एक्सचेंज बैंक भारतीय बैंकों को इस लाभदायक कारबार के क्षेत्र से बाहर ही रखना चाहते हैं।

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि एक्सचेंज बैंक भारत के भीतरी व्यापार को भी करने लगे हैं। इस प्रकार वे भारतीय मिश्रित पूँजी वाले व्या-पारिक बैंकों (Indian Joint Stock Banks) से होड़ करते हैं और उनकी बढ़वार को रोकते हैं। उनकी प्रतिष्ठा और साधन अधिक होने के कारण उनकी प्रतिस्पर्द्धा में भारतीय बैंकों को कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त इन एक्सचेंज बैंकों के कारण भारतीय बैंकों को एक और भी हानि होती है। जब

कोई देश विदेशों से माल मंगवाता है तो साधारणतः होता यह है कि माल भेजने वाला माल मगाने वाले के देश की करंसी में बिल लिखता है। यह बिल जहाज़ी बिल्टी इत्यादि के साथ भेज दिए जाते हैं और जब माल मंगाने वाला उस बिल को स्वीकार कर लेता है तो उनको भुनाया जाता है। क्योंकि बिल उस देश की करंसी में होते हैं इस कारण वहां के बैंक उनको भुनाते हैं और उन्हें लाभ होता है। परन्तु भारत के व्यापारी जब माल मगाते हैं तो आयात बिल (Import Bill) रुपयों में न हो कर स्टर्लिंग में काटे जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भारतीय व्यापारिक बैंकों के यह काम के नहीं होते और केवल एक्सचेंज बैंक ही इस लाभदायक धंधे को कर सकते हैं। एक्सचेंज बैंक इन बिलों को रुपयों में नहीं कटने देते और इस प्रकार भारतीय बैंकों को वे इस लाभदायक कारबार से वंचित रखते हैं।

एक्सचेंज बैंक के विरुद्ध एक आरोप यह भी है कि जिन देशों कि एक्सचेंज बैंक भारत में नहीं हैं उनकी करंसी यह बैंक बहुत ऊँची क़ीमत पर देते हैं। यही नहीं यदि किसी अन्य देश का कोई बैंक अपनी शाखा भारत में स्थापित करना चाहता है तो वे उसका विरोध करते हैं। जब कभी कोई विदेशी बैंक अपनी ब्रांच भारत में स्थापित करने में सफल हो गया तो उन देशों की करंसी भारतीयों को कम मूल्य में मिलने लगी जिससे कि भारतीय व्यापारियों को लाभ हुआ। एक्सचेंज बैंकों ने ऐसा गुट बना लिया है कि यदि किसी देश के बैंक की भारत में ब्रांच भी हो तो भी उन देशों की करंसी (स्टर्लिंग को छोड़ कर) का मूल्य यहाँ ऊँचा ही रहता है। यदि कोई उसी करंसी को लंदन के द्रव्य बाज़ार में खरीदे तो उसे कम मूल्य देना पड़ता है। उदाहरण के लिए युद्ध के पूर्व यदि कोई डालर लंदन से खरीदता तो कलकत्ता या बम्बई की अपेक्षा कम मूल्य पर खरीद सकता था।

इसके अतिरिक्त इन एक्सचेंज बैंकों का समाशोधन गृह या क्लियरिंग हाउस (Clearing House) में बहुत प्रभाव है और यह भारतीय बैंकों को क्लियरिंग हाउस का सदस्य बनने नहीं देते। जहां तक हो सकता है यह भारतीय बैंकों को क्लियरिंग हाउस के बाहर ही रखते हैं। इससे भारतीय बैंकों की प्रतिष्ठा पर बुरा प्रभाव पड़ता है। एक्सचेंज बैंक भारतीय बैंकों से स्वतंत्रता पूर्वक जब चाहते हैं तब याचना द्रव्य (Call Money) लेते रहते हैं किन्तु भारतीय बैंकों को जब आवश्यकता होती है तो वे उन्हें उतनी आसानी से याचना द्रव्य नहीं देते।

यद्यपि एक्सचेंज बैंक भारत के सबसे पुराने बैंको में से हैं और उनको स्थापित हुए लगभग ८० वर्ष हो गए किन्तु फिर भी कोई भारतीय उनमें ऊँचे पदों पर नहीं रक्खा गया। इसका परिणाम यह होता है कि बैंकों में सभी उच्च कर्मचारी विदेशी व्यक्ति होते हैं। वे न भारतीय भाषा ही जानते हैं और न भारतीय व्यापारियों के घनिष्ट सम्पर्क में ही आ सकते हैं अतएव भारतीय व्यापारियों के साथ उनकी सहानुभूति नहीं होती। यह एक्सचेंज बैंक अपने देशवासियों को ही लाकर उच्च पदों पर रखते हैं। जबकि वे भारतीय व्यापार से इतना अधिक लाभ उठाते हैं तब उनका भारतीयों को ऊँचे पदों पर न लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

एक्सचेंज बैंक पिछले वर्षों में इस बात का भी प्रयत्न करते रहे हैं कि भारतीय पूंजी विदेशी धधों या सिक्यूरिटियों में न लगे।

एक्सचेंज बैंकों ने सदैव ही भारत के आर्थिक हितों के विरुद्ध अपने प्रभाव का उपयोग किया है। यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि यह उन्हीं के विरोध का फल था कि प्रेसीडेंसी बैंकों तथा इम्पीरियल बैंक को विदेशी विनिमय (Exchange) का कारबार करने की आज्ञा नहीं दी गई। यही नहीं इन एक्सचेंज बैंकों के कारण ही भारत में कोई केन्द्रीय बैंक १९३५ के पूर्व स्थापित न हो सका। इंडिया आफिस के द्वारा यह एक्सचेंज बैंक भारत-सरकार की अर्थनीति पर भी गहरा प्रभाव डालते थे जिससे भारत के आर्थिक हितों की हानि होती थी।

किन्तु अब भारत स्वतंत्र हो गया है। एक्सचेंज बैंकों के भारत-विरोधी दृष्टि-कोण में कुछ परिवर्तन होना अनिवार्य है। भारत सरकार की अर्थनीति पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। रिज़र्व बैंक के नेतृत्व को उन्हें अब स्वीकार करना ही होगा और इस बात की सम्भावना है कि सरकार भविष्य में कोई बैंकिंग कानून बनाकर उनके नियंत्रण का भी प्रयत्न करे। अब हम आगे उन सुझावों का अध्ययन करेंगे कि जो केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी के सामने एक्सचेंज बैंकों की अनुचित प्रतिस्पर्द्धा से भारतीय बैंकों की रक्षा करने के लिए रक्खे गए।

केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी का मत—इस सम्बन्ध में केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी (Central Banking Committee) का मत था कि भारत सरकार को विदेशी बैंकों को बिना किसी रोक-टोक के भारत में कारबार करने की छूट न

देनी चाहिए। प्रत्येक विदेशी बैंक को जो कि भारत में काम करना चाहे रिजर्व बैंक से एक लायसेंस प्राप्त करना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि भारतीयों के हितों की रक्षा हो सकेगी। रिज़र्व बैंक का एक्सचेंज बैंकों पर नियंत्रण स्थापित हो सकेगा और भारतीय बैंकों के लिए विदेशों में वही सुविधायें प्राप्त की जा सकेंगी जो कि भारत में विदेशी बैंक को दी जावेंगी।

कमेटी का बहुमत इस पक्ष में था कि जो एक्सचेंज बैंक भारत में कारबार कर रहे हैं उनको बिना किसी रोक टोक के लायसेंस दे देना चाहिए। प्रत्येक बैंक को लायसेंस एक निश्चित काल के लिए दिया जाना चाहिए और उस अवधि के समाप्त होने पर यदि रिजर्व बैंक देखे कि लायसेंस की शर्तों का किसी बैंक ने सतोषजनक ढग से पालन किया है तो उसको फिर लायसेंस दे दे अन्यथा उसका लायसेंस समाप्त कर दिया जा सकता है। एक्सचेंज बैंकों के लायसेंस की यह आवश्यक शर्त होनी चाहिए कि वे रिजर्व बैंक को अपनी रिपोर्ट भेजें जिसमें भारतीय तथा गैर भारतीय कारबार का लेनी देनी लेखा (Balance Sheet) अलग अलग हो।

कमेटी के बहुमत की यह भी सम्मति थी कि एक्सचेंज बैंकों को अपनी कार्यपद्धति में इस प्रकार परिवर्तन कर लेना चाहिए कि वे भारतीय आयात करने वाले व्यापारियों (Importers) के बिलों को खरीदने के बजाय स्वीकार (Accept) कर लिया करे जिससे कि वे बिल लंदन से भुनाये जा सकें। और भारतीय व्यापारी लदन के द्रव्य बाजार में सस्ते द्रव्य का लाभ उठा सके।

इसके अतिरिक्त यदि भारतीय आयात व्यापारी (Importers) चाहें कि विदेशी निर्यात व्यापारी (Exporters) उन पर रुपयों में बिल लिखें तो एक्सचेंज बैंकों को भारतीय व्यापारियों को सहायता करनी चाहिए।

कमेटी की यह भी राय थी कि जब एक्सचेंज बैंकों की एसोशिमेशन अपने नियमों में कोई परिवर्तन करे तो उसे भारतीय व्यापारियों से परामर्श करना चाहिए।

कमेटी की यह भी सम्मति थी कि एक्सचेंज बैंकों को भारतीय बीमा कम्पनियों को प्रोत्साहित करना चाहिए, भारतीय युवकों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करना चाहिये और जहाँ एक्सचेंज बैंक की भी शाखा हो वहाँ एक स्थानीय परामर्श दाता बोर्ड (Local Advisory Board) होना चाहिए जो

ऋण देने के सम्बन्ध में बैंक को परामर्श दे। यद्यपि बोर्ड की सलाह बैंक मानी ही ले यह आवश्यक नहीं था फिर भी इस प्रकार भारतीय ग्राहकों तथा एक्सचेंज बैंकों में परस्पर अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं।

यद्यपि केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी ने ऊपर लिखे सुझाव रक्खे थे किन्तु एक्सचेंज बैंकों ने उन सुझावों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और न अपनी कार्य पद्धति में ही कोई अन्तर किया।

कुछ भारतीय विद्वानों (जिनमें श्री सूबेदार और सरकार मुख्य थे) की राय थी कि एक्सचेंज बैंकों पर कड़ा नियंत्रण रक्खा जावे। रिज़र्व बैंक को इस बात का पूरा अधिकार होना चाहिए कि वह जिस बैंक को चाहे लायसेंस देना अस्वीकार कर दे। इसके अतिरिक्त उनका यह भी कहना था कि एक्सचेंज बैंकों को भारत में केवल उतनी ही डिपाज़िट लेने देना चाहिए जितनी भारतीय व्यापार के लिए आवश्यक हों। एक मत यह भी था कि एक्सचेंज बैंक जितनी डिपाज़िट ले उस पर ½ प्रतिशत कर लगाया जावे। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों का यह भी कहना था कि एक्सचेंज बैंकों को भारत में तभी डिपाजिट लेने का अधिकार होना चाहिए जब उनकी रजिस्ट्री भारत में हुई हो, उनकी पूँजी रुपये में हो और भारतीय उनके डायरैक्टर हों। कोई-कोई इसके मत में थे कि एक्सचेंज बैंकों को भारत में डिपाज़िट लेने की मनाही कर दी जावे। किन्तु ऊपर लिखे मतों को केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी ने स्वीकार नहीं किया।

भारतीय एक्सचेंज बैंक :—केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी का यह भी मत था कि यदि इम्पीरियल बैंक रिज़र्व बैंक की सहायता से विदेशी विनिमय (Foreign Exchange Business)का कारबार न कर सका तो एक भारतीय विनिमय बैंक स्थापित किया जावे। कमेटी का मत था कि वह बैंक सरकार की सहायता से स्थापित हो। किन्तु कमेटी का मत था कि पहले इम्पीरियल बैंक के द्वारा ही यह कार्य करना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तभी कोई नया बैंक खोलना चाहिए। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी का यह भी मत था कि भारतीय तथा विदेशियों के सम्मिलित एक्सचेंज बैंक स्थापित होने चाहिए जिससे भारत तथा उन देशों का जिनसे भारत व्यापार करता है दोनों का ही लाभ हो। किन्तु कमेटी की एक भी सिफारिश कार्य रूप में परिणत नहीं की गई।

सच तो यह है कि विदेशी विनिमय बैंक का एकाधिकार तभी समाप्त

होगा जब कि भारतीय व्यापारिक बैंक भी विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) के कारबार को अपने हाथ में लें। अभी तक भारतीय बैंक इस ओर से उदासीन रहे हैं। अब कुछ बैंकों (विशेष कर सेन्ट्रल बैंक आव इंडिया) ने इधर ध्यान दिया है। आशा है कि भविष्य में वे इस ओर अधिक ध्यान देंगे।

परन्तु विदेशी बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा में विदेशों में कारबार करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय बैंक आपस में सहयोग करें और एक दूसरे को सहायता प्रदान करें।

अध्याय—१७

इम्पीरियल बैंक आव इंडिया

इम्पीरियल बैंक की स्थापना १६२१ में एक स्वतंत्र ऐक्ट इम्पीरियल बैंक ऐक्ट के अन्तर्गत हुई थी। तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों को मिला कर इम्पीरियल बैंक बना था। १६३४ में इम्पीरियल बैंक ऐक्ट को संशोधित कर दिया गया।

इम्पीरियल बैंक की अधिकृत पूंजी (Authorised Capital) ११ करोड़ ७५ लाख रुपये हैं जिसमें से आधी पूंजी चुकता पूंजी (Paid up Capital) है और शेष आधी रक्षित दायित्व (Reserve Liability) है। बैंक का रक्षित कोष है। आरम्भ से १६३१ तक बैंक ने १६ प्रतिशत लाभ बांटा और १६३१ के उपरान्त १२ प्रतिशत लाभ बांट रहा है इस कारण बैंक के हिस्सों का मूल्य बाज़ार में बहुत अधिक है।

प्रबन्ध—इम्पीरियल बैंक का प्रबन्ध तीन स्थानीय बोर्ड और एक केन्द्रीय बोर्ड करता है। तीन स्थानीय बोर्ड नीचे लिखे हैं—बम्बई, कलकत्ता, और मदरास। प्रत्येक स्थानीय बोर्ड के सदस्य उस क्षेत्र के रजिस्टर में दर्ज हिस्सेदारों द्वारा चुने जाते हैं और यह बोर्ड अपने मंत्री तथा खजांची की सहायता से उस क्षेत्र में बैंक के कारबार को देखते हैं। केन्द्रीय बोर्ड में नीचे लिखे सदस्य होते हैं—(१) प्रत्येक स्थानीय बोर्ड के प्रेसीडेंट, वाइस-प्रेसीडेंट, तथा मंत्री; (२) प्रत्येक स्थानीय बोर्ड के सदस्य अपने में से एक व्यक्ति को केन्द्रीय बोर्ड के लिये चुनते हैं; (३) गवर्नर जनरल अधिक से अधिक दो व्यक्तियों को केन्द्रीय बोर्ड के लिये मनोनीत कर सकते हैं। वे एक वर्ष के लिये मनोनीत किये जाते हैं किन्तु वे फिर-दूसरे वर्ष के लिये दुबारा भी मनोनीत किये जा सकते हैं; (४) मैनेजिंग डायरेक्टर; (५) डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर; (६) एक सरकारी अधिकारी जिसे गवर्नर जनरल मनोनीत करे। केन्द्रीय बोर्ड की मीटिंग में स्थानीय बोर्डों के मंत्री, डिप्टी मैनेजिंग डायरैक्टर, तथा सरकारी अधिकारी भाग ले सकते हैं किन्तु मत नहीं दे सकते, हां यदि मैनेजिंग डायरैक्टर उपस्थित न हो तो डिप्टी मैनेजिंग डायरैक्टर वोट दे सकता है।

बैंक का कार्य संचालन केन्द्रीय बोर्ड करता है। पूरे बोर्ड की मीटिंग जल्दी जल्दी नहीं बुलाई जा सकती इस कारण एक छोटी सी प्रबन्धकारिणी

समिति बना दी गई है जो कि केन्द्रीय बोर्ड के कुछ कार्य सम्पन्न करती है। प्रान्तीय ईर्ष्या को बचाने के लिए केन्द्रीय बोर्ड का प्रधान कार्यालय किसी एक स्थान पर नहीं है। बोर्ड की मीटिंग कभी कलकत्ते में होती है तो कभी बम्बई में।

१९३४ के पूर्व इम्पीरियल बैंक—१९३४ के पूर्व इम्पीरियल बैंक का प्रबन्ध केन्द्रीय बोर्ड करता था जिसका संगठन नीचे लिखे अनुसार था :— (१) गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किये गए (क) दो मैनेजिंग गवर्नर, (ख) ४ गैर-सरकारी अधिकारी जिन्हें भारतीय स्वार्थों की रक्षा के लिये गवर्नर जनरल मनोनीत करता था। (२) करंसी का कंट्रोलर जो कि भारत सरकार का प्रतिनिधि होता था। (३) स्थानीय बोर्डों (Local Boards) के प्रेसीडेंट, वाइस प्रेसीडेंट तथा मंत्री। केन्द्रीय बोर्ड के ऊपर दिये हुए संगठन से यह स्पष्ट था कि यद्यपि इम्पीरियल बैंक हिस्सेदारों का बैंक था किन्तु भारत सरकार का उस पर पूरा नियंत्रण था। करंसी के कंट्रोलर को यह अधिकार था कि वह बोर्ड के किसी भी निर्णय को जो कि सरकारी जमा तथा अर्थनीति से सम्बन्ध रखता हो कार्य रूप में न परिणत होने दे और उसे सरकार के निर्णय के लिए भेज दे। (२) वह इम्पीरियल बैंक को उसकी नीति तथा नकद कोष की सुरक्षा के सम्बन्ध में आज्ञा दे सकता था।

(३) सरकार जो भी जानकारी इम्पीरियल बैंक से चाहे उसे देनी होगी तथा बैंक को अपना हिसाब का लेखा तथा लेनी देनी का लेखा (Balance Sheet) सरकार की इच्छानुसार प्रकाशित करना होगा।

(४) सरकार इम्पीरियल बैंक के हिसाब की जांच के लिए आडिटर नियुक्त कर सकती थी।

१९३४ के उपरान्त अब सरकार ने अपने ऊपर लिखे अधिकार छोड़ दिये क्योंकि बैंक सरकार का बैंकर नहीं रहा।

इम्पीरियल बैंक के कार्य—१९३५ तक इम्पीरियल बैंक सरकार का बैंकर था। जितना भी सरकारी कोष (Funds) होता वह इम्पीरियल बैंक में ही रक्खा जाता था। सरकार का खज़ाने का काम भी इम्पीरियल बैंक ही करता था। इम्पीरियल बैंक इस कार्य के लिए कोई कमीशन न लेता था। सरकार को जितना रुपया मिलना होता था वह इम्पीरियल बैंक लेता था और सरकार अपने खर्च के लिए उससे रुपया निकालती थी। भारत सरकार के ऋण का

प्रबन्ध भी इम्पीरियल बैंक ही करता था। सरकार जो नवीन कर्ज़ निकालती थी वह भी इम्पीरियल बैंक ही निकालता था।

सरकारी कारबार के अतिरिक्त इम्पीरियल बैंक १६३५ के पूर्व केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के भी कुछ कार्य करता था। भारत के अधिकांश बैंक उसके साथ डिपाज़िट रखते थे। इसके अतिरिक्त भारत के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में स्थापित ११ क्लियरिंग हाउसों का भी प्रबन्ध करता था। इम्पीरियल बैंक जहाँ-जहाँ उसकी ब्रांचें थीं वहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक रुपया भेजने की सुविधा प्रदान करता था। बैंक तथा जनता दोनों ही इम्पीरियल बैंक के द्वारा रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज सकते थे। इम्पीरियल बैंक रुपया भेजने के लिए जो कमीशन लेता था उसको सरकार नियंत्रित करती थी। इसके बदले में इम्पीरियल बैंक को सरकार ने सरकारी खजानों के द्वारा देश में एक स्थान से दूसरे स्थान को बिना कुछ लिए ही रुपया भेजने की सुविधा दी थी।

जब देश के द्रव्य-बाज़ार में रुपये की कमी पड़े तो उस कमी को पूरा करने के लिये कागज़ी मुद्रा विभाग (Paper Currency Department) बैंक को १२ करोड़ रुपये तक ऋण दे सकता था। किन्तु बैंक को उसके जमानत स्वरूप हुंडी या बिल रखने पड़ते थे। सरकार बैंक से पहले ४ करोड़ रुपये के लिए ६ प्रतिशत और शेष ८ करोड़ रुपये के लिए ७ प्रतिशत सूद लेती थी। देश में बैंकिंग की सुविधा बढ़ाने के उद्देश्य से इम्पीरियल बैंक के लिए कानून में ५ वर्षों के अन्दर १०० शाखायें स्थापित करना अनिवार्य कर दिया गया था। इम्पीरियल बैंक ने इस शर्त को पूरा कर दिया था। आधी ब्रांचें ऐसे स्थानों पर स्थापित की गई थी कि जहाँ कोई बैंक न था। इसके बदले सरकार इम्पीरियल बैंक के पास अपना रुपया बिना सूद के रखती थी।

एक व्यापारिक बैंक होने के नाते इम्पीरियल बैंक वह सभी कार्य करता था जो कि एक व्यापारिक बैंक करता है। इम्पीरियल बैंक भारतवर्ष में डिपाज़िट ले सकता है और ऋण ले सकता था किन्तु देश के बाहर वह न तो डिपाज़िट ही ले सकता था और न ऋण ही ले सकता था। केवल लन्दन ब्रांच को यह अधिकार था कि वह प्रेसीडेंसी बैंकों के पुराने ग्राहकों से डिपाज़िट ग्रहण कर सकता था और बैंक की सम्पत्ति या लेनी-देनी (Assets) की ज़मानत पर बैंक के कारबार के लिए ऋण ले सकता था। इम्पीरियल बैंक अपना रुपया कहाँ लगावे इस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए थे। इम्पीरियल बैंक केवल ट्रस्टी सिक्यूरिटियों में रुपया लगा सकता था। उदाहरण के लिए भारत सरकार

तथा ब्रिटिश सरकार की सिक्यूरिटियों में, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त सिक्यूरिटियों में, अधिकृत डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सिक्यूरिटियों तथा डिबेंचरों में ही इम्पीरियल बैंक अपना रुपया लगा सकता था। इम्पीरियल बैंक ऊपर लिखी सिक्यूरिटियों की जमानत पर ऋण दे सकता था। इम्पीरियल बैंक बिलों और प्रामिसरी नोटों को स्वीकार कर सकता था तथा माल अथवा उनके प्रलेखों (Document) को यदि वे बैंक में जमा कर दिये गये हों अथवा बैंक के नाम कर दिये हों तो उन्हें जमानत के रूप में स्वीकार करके ऋण दे सकता था। किन्तु ६ महीने से अधिक के लिये ऋण नहीं दे सकता था और न किसी ऐसे विनिमय साध्य पुर्जे (Negotiable Instrument) को ही स्वीकार कर सकता था जिस पर दो व्यक्तियों तथा दो फर्मों के हस्ताक्षर न हों (जो आपस में साझेदार न हों) और जिनके पकने की अवधि ६ महीने से अधिक हो। इसी प्रकार किसी व्यक्ति या फर्म को कितना ऋण अधिक से अधिक दिया जा सकता है वह भी निर्धारित कर दिया गया था। इम्पीरियल बैंक केवल उन बिलों तथा अन्य विनिमय साध्य पुर्जों को लिख सकता था, भुना सकता था और स्वीकार कर सकता था जिनका कि भारत में या लंका में भुगतान होने वाला हो। किन्तु कानून द्वारा इम्पीरियल बैंक को 'विदेशी विनिमय' (Foreign Exchange) का कार्य करने की मनाही थी। इम्पीरियल बैंक किसी ऐसे बिल इत्यादि को भुना भी नहीं सकता था कि जिसकी अवधि ६ महीने से अधिक हो और न किसी ऐसी विनिमय साध्य सिक्यूरिटी (प्रतिभूति) को ही खरीद सकता था जिसकी अवधि ६ महीने से अधिक हो। बैंक सिक्यूरिटियों, जेवर तथा सोना इत्यादि को सुरक्षित रखने के लिए ले सकता था, सोना खरीद और बेंच सकता था तथा ग्राहकों के लिए सिक्यूरिटियों की खरीद बिक्री कर सकता था तथा उन पर ग्राहकों के लिए लाभ और सूद वसूल कर सकता था।

१६३४ में रिज़र्व बैंक की स्थापना होने के उपरान्त अब इम्पीरियल बैंक सरकार का बैंकर नहीं रहा। ऊपर लिखे प्रतिबन्ध इम्पीरियल बैंक पर इस लिए लगाये गये थे क्योंकि वह सरकार का बैंकर था और सरकार का रुपया उसके पास रहता था, किन्तु रिज़र्व बैंक की स्थापना के उपरान्त जब वह सरकार का बैंकर नहीं रहा तो इम्पीरियल बैंक पर सरकार का जो नियन्त्रण था और उसके कार्यों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये थे उसको ढीला कर दिया गया।

१६३४ के इम्पीरियल बैंक ऐक्ट के अनुसार बैंक के केन्द्रीय बोर्ड के १६ सदस्यों

में से सरकार अब केवल २ सदस्यों को जो गैर-सरकारी कर्मचारी न हो मनोनीत कर सकती है। इनके अतिरिक्त सरकार एक सरकारी अफसर को भी मनोनीत कर सकती है जो कि बोर्ड की मीटिंगों में जा सकता है किन्तु वोट नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल को केवल इतना अधिकार और है कि वह चाहे तो आडिटर नियुक्त करे जो बैंक के हिसाब की जाँच करके उसे रिपोर्ट दें।

केन्द्रीय बोर्ड के १६ सदस्य नीचे लिखे अनुसार हैं।

१ मैनेजिंग डायरैक्टर

१ डिप्टी मैनेजिंग डायरैक्टर

२ सरकार द्वारा मनोनीत किए हुए सदस्य

६ स्थानीय बोर्डों के सभापति और उपसभापति

३ स्थानीय बोर्डो के मंत्री

१६३४ के ऐक्ट के अनुसार सरकार का जो इम्पीरियल बैंक के प्रबन्ध पर जो प्रभाव और नियंत्रण था वह दूर कर दिया गया। इसी प्रकार उसके कार्य पर जो प्रतिबन्ध लगाये गए थे वे भी हटा दिए गए। अब इम्पीरियल बैंक भारत के बाहर भी डिपाज़िट ले सकता है तथा ऋण प्राप्त कर सकता है। इम्पीरियल बैंक अब विदेशी विनिमय के काम को कर सकता है तथा विदेशी बिलों को खरीद सकता है तथा भुना सकता है और बेंच सकता है। पहले इम्पीरियल बैंक ऊपर लिखे कार्य नहीं कर सकता था। पहले इम्पीरियल बैंक ६ महीने से अधिक के लिए न तो ऋण ही दे सकता था और न ६ महीने की अवधि से अधिक की अवधि वाले बिलों को भुना या खरीद सकता था किन्तु अब खेती के धन्धे को आर्थिक सहायता देने के लिये ६ महीने तक के लिए ऋण दे सकता है अथवा सहकारी बैंक के पत्र (Co-opertive paper) स्वीकार कर सकता है। जिन सिक्यूरिटियों (प्रतिभूति) के विरुद्ध इम्पीरियल बैंक पहले ऋण दे सकता था उनकी संख्या में वृद्धि कर दी गई है। अब बैंक कम्पनियों के डिबैंचरों की ज़मानत पर बंधक रक्खे हुए माल पर, (न कि केवल उस माल पर जो कि बैंक के पास जमा कर दिया जावे) म्युनिस्पैलिटियों द्वारा निकाले हुए डिबैंचरों या अन्य सिक्यूरिटियों पर तथा रिज़र्व बैंक के हिस्सों की ज़मानत पर भी ऋण दे सकता है। अब भी पहले की कुछ रुकावटें इम्पीरियल बैंक पर लागू हैं। उदाहरण के लिए बैंक अपने हिस्सों की ज़मानत

पर, अचल सम्पत्ति की ज़मानत या बन्धक पर अथवा ऐसे विनिमय साध्य पुर्ज़े (Negotiable Instrument) पर जिस पर कम से कम दो स्वतन्त्र व्यक्तियों अथवा फर्मों के हस्ताक्षर न हों, जो कि आपस में साझेदार भी न हों, ऋण नहीं दे सकता। इम्पीरियल बैंक अधिक से अधिक कितना ऋण किसी एक व्यक्ति को अथवा फर्म को देगा यह अब भी कानून द्वारा सीमित है।

ऊपर लिखे प्रतिबन्धों को लगाने की आवश्यकता इस कारण पड़ी क्योंकि इम्पीरियल बैंक रिज़र्व बैंक का एकमात्र एजेंट है और जहाँ रिज़र्व बैंक की ब्रांच नहीं है वहां इम्पीरियल बैंक ही सरकारी खजाने का काम करता है तथा कोष को रखता है। इसके अतिरिक्त इम्पीरियल बैंक की यह भी जिम्मेदारी है कि रिज़र्व बैंक की स्थापना के समय इम्पीरियल बैंक की जितनी ब्रांचें थीं कम से कम उतनी ब्रांचें अवश्य बनाये रक्खें। रिज़र्व बैंक के एकमात्र एजेंट का काम करने के लिए १५ वर्ष के लिए इकरारनामा किया गया है और इम्पीरियल बैंक को उस कार्य के लिये एक निर्धारित रकम कमीशन के रूप में दी जाती है।

इम्पीरियल बैंक की विशेषता :—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि भारतीय बैंकों में इम्पीरियल बैंक एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। १६३४ तक तो यह कुछ कार्य केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के भी करता था। इसके अतिरिक्त उसके साधन भी अन्य बैंकों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इम्पीरियल बैंक की डिपाज़िट सभी विनिमय बैंकों (Exchange Banks) तथा भारत के मिश्रित पूँजी वाले बैंकों (Joint Stock Banks) से अधिक थी। नीचे हम भारत के भिन्न-भिन्न प्रकार के बैंकों की डिपाज़िट की तालिका देते हैं जिससे इम्पीरियल बैंक का महत्व स्पष्ट है।

बैंकों की डिपाजिट

००० रु० में

	रिज़र्व बैंक	इम्पीरियल बैंक	एक्सचेंज बैंक	मिश्रित पूँजी वाले बैंक
१६३१	..	८०,५६,८८	७०,७८,४२	७६ ४२,२७
१६३४	...	८१,००,१५	७१,३६,६७	८१,८८,३८
१६३६	२२,२८,४४	७८,७६,५०	७५,२२,५५	१०३,६०,६७
१६३७	३१,१६,१२	८१,०८,०७	७२,२१,०१	१०८,५५,३६

१९३८	२४,२०,३३	८१,५०,९५	६७,२०,४२	१०६,०८,६६
१९४०	६५,७६,००	९६,०३,१७	८५,५७,४७	१२५,०२,४१
१९४८—				

वर्तमान स्थिति :—यद्यपि इम्पीरियल बैंक सरकार का बैंकर नहीं रहा किन्तु फिर भी उसका भारतीय द्रव्य बाज़ार (Money Market) में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अब भी यह बहुत अधिक डिपाज़िट आकर्षित करता है। इम्पीरियल बैंक के ऊपर से प्रतिबन्धों के उठ जाने से वह आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार को अधिकाधिक सहायता प्रदान कर सकेगा। किन्तु भारतीय व्यापारियों को उसके विरुद्ध बहुत सी शिकायतें हैं। इम्पीरियल बैंक के विरुद्ध भारतीयों का सबसे अधिक गम्भीर आरोप यह है कि उसका संचालन मुख्यतः विदेशियों के हाथ में है और वे भारतीयों के साथ सहानुभूति का व्यवहार नहीं करते। यदि कोई भारतीय व्यापारी या फर्म उनसे आर्थिक सहायता माँगता है तो उसे कठिनाई होती है किन्तु अंग्रेजों को आर्थिक सहायता आसानी से मिल जाती है। इम्पीरियल बैंक के अधिकांश उच्च अधिकारी विदेशी हैं इस कारण भारतीयों को इम्पीरियल बैंक से इस प्रकार की शिकायत रही है। यही नह ं १९३४ के पूर्व भारतीय व्यापारिक बैंकों (Commercial Banks) को यह भी शिकायत थी कि इम्पीरियल बैंक यद्यपि एक केन्द्रीय बैंक (Central Banks) है परन्तु वह अन्य बैंकों से अनुचित प्रतिस्पर्द्धा करता है। आज भी उनको यह शिकायत है कि रिज़र्व बैंक के एकमात्र एजेंट होने के नाते उसे जो प्रतिष्ठा मिली हुई है उसके कारण वह अन्य बैंकों की उन्नति में एक रुकावट उत्पन्न करता है। भारतीय बैंकों की यह माँग है कि केवल इम्पीरियल बैंक को रिज़र्व बैंक का एकमात्र एजेंट बना देना उचित नहीं है। जितने बड़े और सुदृढ़ बैंक हैं उन सभी को यह प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिये।

इम्पीरियल बैंक की स्थिति को बताने के लिए हम यहां उसका लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) देते हैं :—

२ जनवरी को इम्पीरियल बैंक की लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet)

देनी (Liabilities)

अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) २२५,००० हिस्से, प्रत्येक हिस्सा ५०० रु० का ११,२५,००,०००

दूसरा कारण यह था कि यदि इम्पीरियल बैंक रिज़र्व बैंक बना दिया जाता तो उसके लाभ को कानून के द्वारा सीमित कर दिया जाता जो कि इम्पीरियल बैंक के हिस्सेदार कभी भी पसंद न करते। पिछले दिनों इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण की चर्चा चल रही है। एक बार तो सरकार ने भी ऐसा संकेत किया था कि इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण होगा।

अध्याय—१८

रिज़र्व बैंक आव इंडिया

भारतवर्ष में एक केन्द्रीय बैंक Central Bank) की आवश्यकता बहुत पहले से अनुभव की जा रही थी किन्तु भारत सरकार ने इसकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया। १६१३ में जब भारत की करंसी के सम्बन्ध में जांच करने के लिए 'चैम्बरलेन कमीशन' बिठाया गया उस समय श्रीयुत कीन्स महोदय ने एक केन्द्रीय बैंक की योजना उपस्थित की जो कि चेम्बरलेन रिपोर्ट के साथ प्रकाशित हुई किन्तु भारत सरकार ने उसकी ओर ध्यान तक न दिया। १६१४-१८ के महायुद्ध में सभी को केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता का अनुभव हुआ। किन्तु जब १६२० में ब्रुसल्स अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-सम्मेलन ने इस आशय का प्रस्ताव पास किया कि "जिन देशों में केन्द्रीय बैंक नहीं है वहाँ भी शीघ्र ही केन्द्रीय बैंक स्थापित होना चाहिए" तब कहीं भारत सरकार का ध्यान उधर गया। अतएव १६२१ में इम्पीरियल बैंक की स्थापना हुई। किन्तु इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक के सभी कार्य नहीं करता था इस कारण एक स्वतंत्र केन्द्रीय बैंक की स्थापना की आवश्यकता होने लगी। जब १६२६ में हिल्टन यंग कमीशन बैठा तो यह समस्या उसके सामने भी उपस्थित हुई। देश में कुछ विद्वानों का मत था कि इम्पीरियल बैंक को ही भारत का केन्द्रीय बैंक बना देना चाहिए किन्तु कुछ उसके विरुद्ध थे। हिल्टन यंग कमीशन ने इस प्रश्न का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया और एक स्वतंत्र हिस्सेदारों के केन्द्रीय बैंक की स्थापना का समर्थन किया।

जिन कारणों से हिल्टन यंग कमीशन ने इम्पीरियल बैंक को केन्द्रीय बैंक न बनाने की सम्मति दी वे निम्नलिखित हैं :—

(१) इम्पीरियल बैंक के पास यथेष्ट पूँजी और डिपाज़िट हैं और उसकी सैकड़ों शाखायें भारत भर में फैली हुई हैं। भारत जैसे देश में जहाँ बैंकिंग की सुविधायें नहीं के बराबर हैं यदि इम्पीरियल बैंक को केन्द्रीय बैंक बना दिया गया तो उसको अपनी शाखाओं को बन्द करना होगा। इससे भारतीय व्यापार को गहरा धक्का लगेगा। आवश्यकता तो इस बात की है कि इम्पीरियल बैंक को बन्धनों से मुक्त कर दिया जावे और उसे एक सुदृढ़ और महान्

व्यापारिक बैंक के रूप में देश की सेवा करने दी जावे। इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक भी बना दिया जावे और व्यापारिक बैंकिंग भी करता रहे यह नहीं हो सकता। क्योंकि यदि इम्पीरियल बैंक व्यापारिक बैंकिंग करेगा तो अन्य व्यापारिक बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करेगा जो कि अनुचित होगा। क्योंकि केन्द्रीय बैंक के पास राज्य की बिना सूद की डिपाजिट रहेगी और उसके पास इतने विशेष अधिकार रहेंगे कि उसका अन्य बैंकों से होड़ करने देना सर्वथा अन्यायपूर्ण होगा। साथ ही केन्द्रीय बैंक को कागज़ी मुद्रा निकालने का एकाधिकार दिया जावेगा अतएव उसे व्यापारिक बैंकिंग के खतरे को न उठाना चाहिए।

(२) इम्पीरियल बैंक को भारतीय व्यापारिक बैंक अपने प्रतिद्वन्दी के रूप में देखते रहे हैं क्योंकि वह भारतीय बैंकों से द्रव्य बाजार में प्रतिद्वन्दिता करता रहा है अतएव उसको केन्द्रीय बैंक बनाना उचित नहीं है। केन्द्रीय बैंक को सभी अन्य बैंकों का नेतृत्व करना होगा। अस्तु किसी ऐसे बैंक को जिसे अन्य बैंक अपना प्रतिद्वन्दी मानते रहे हैं केन्द्रीय बैंक बनाना उचित न होगा।

(३) इम्पीरियल बैंक के प्रति भारतीय व्यापारियों, देशी बैंकरों तथा भारतीय व्यापारिक बैंकों की अच्छी धारणा नहीं है। उनका कहना है कि इम्पीरियल बैंक की नीति अभारतीय है। अंग्रेज व्यापारियों तथा अंग्रेज़ों द्वारा सचालित बैंकों के साथ उसका व्यवहार नरम, सहानुभूतिपूर्ण और उदार होता है और भारतीयों के साथ अनुदारपूर्ण होता है। हिल्टन यग कमीशन का मत था कि जिस बैंक के प्रति देश में ऐसी धारणा हो वह केन्द्रीय बैंक के उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार से न निबाह सकेगा।

(४) कमीशन की यह भी राय थी कि हिस्सेदार भी इस परिवर्तन को पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि यदि इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक बना दिया जावेगा तो सरकार को कानून के द्वारा उसके लाभ को मर्यादित कर देना होगा, हिस्सेदारों को ४ प्रतिशत के लगभग लाभ मिल सकेगा जिसे इम्पीरियल बैंक के हिस्सेदार कभी पसन्द न करेंगे क्योंकि उन्हें अभी बहुत अधिक लाभ मिलता है। इन्हीं कारणों से हिल्टन यग कमीशन ने एक स्वतन्त्र केन्द्रीय बैंक की स्थापना का समर्थन किया। कमीशन ने केवल एक स्वतन्त्र सस्था के स्थापित किये जाने का ही समर्थन नहीं किया वरन् उसने इस बात का भी समर्थन किया कि रिज़र्व बैंक राज्य का न होकर हिस्सेदारों का होना चाहिए।

हिल्टन यग कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार ने एक बिल

केन्द्रीय धारा सभा (Central Legislative Assembly) में उपस्थित किया। इस बिल में एक हिस्सेदार के रिज़र्व बैंक की स्थापना की व्यवस्था थी और उसके संचालक बोर्ड में हिस्सेदारों द्वारा चुने हुए डायरैक्टरों का बहुमत था और बैंक के गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर के सरकार द्वारा नियुक्त किये जाने का विधान था। किन्तु सैलेक्ट कमेटी ने उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। उसमें विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन यह था कि बैंक हिस्सेदारों का न होकर सरकार का होगा। एक स्थिति में सरकार इस परिवर्तन के लिए तैयार हो गई थी किन्तु प्रेसीडेंट ने नये बिल को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी और सरकार ने उस बिल को वापस ले लिया। अस्तु उस समय भारत में एक केन्द्रीय बैंक स्थापित न हो सका। किन्तु जब भारत में नवीन शासन सुधार की योजना तैयार हुई और भारत में संघीय सरकार (Federal Government) की स्थापना का आयोजन होने लगा जो संघीय धारा सभा के लिए उत्तरदायी होती तो एक केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता हुई जो कागज़ी मुद्रा (Paper Currency) को निकालने का प्रबन्ध करे। अतएव १६३४ में रिज़र्व बैंक ऐक्ट पास हुआ और उसको हिस्सेदारों के बैंक के रूप में स्थापित किया गया। रिज़र्व बैंक को हिस्दारों का बैंक होना चाहिए अथवा राज्य का, इस सम्बन्ध में भारत में बहुत वाद-विवाद चला अस्तु हम यहाँ दोनों पक्षों का मत देंगे।

बैंक हिस्सेदारों का हो अथवा राज्य का हो :—जिन लोगों का कहना था कि बैंक राज्य का होना चाहिए वे नीचे लिखे तर्क उपस्थित करते थे :—

(१) रिज़र्व बैंक को इतने अधिक अधिकार दिये गए हैं कि यदि बैंक पर पूँजीपतियों का प्रभाव हो गया तो वे उसका दुरुपयोग करेंगे जिससे देश के आर्थिक हितों को धक्का पहुँचेगा। यदि बैंक हिस्सेदारों का रहा तो पूँजीपतियों का उस पर प्रभाव हो जाना स्वाभाविक है अस्तु ऐसा करना खतरनाक है।

(२) क्योंकि बैंक कागज़ी मुद्रा (Paper Currency) निकालेगा तथा राज्य के कोष (Funds) अपने पास रक्खेगा अतएव उसको बहुत अधिक लाभ होगा। यह लाभ देश के लाभ के लिए राज्य को मिलना चाहिए न कि हिस्सेदारों को।

(३) भारत में राज्य अधिकांश रेलों, पोस्ट आफिस इत्यादि का प्रबन्ध

करता है। लोगों को राज्य के प्रबन्ध में अधिक विश्वास है और पूँजीपतियों के प्रबन्ध को वे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।

(४) रिज़र्व बैंक के कार्य ऐसे महत्वपूर्ण हैं कि राज्य को उसे अपने नियन्त्रण में रखना ही होगा अस्तु उसे राज्य का बैंक ही क्यों न बना दिया जावे।

(५) जिन देशों में केन्द्रीय बैंक हिस्सेदारों की संस्था है वहाँ भी उसका गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर इत्यादि सरकार ही नियुक्त करती तथा बैंक के नीति के निर्धारण में उसका प्रमुख हाथ रहता है। कहना इस प्रकार चाहिए कि राज्य ही बैंक की नीति निर्धारित करता है। ऐसी दशा में हिस्सेदारों का बैंक स्थापित करने का अर्थ नहीं होता।

(६) इस बात का भय है कि हिस्सेदारों का बैंक योरोपियनों के प्रभाव में आ जावेगा और इससे भारतीयों के हितों की उपेक्षा होगी।

तत्कालीन केन्द्रीय धारा सभा का यह भी विचार था कि बैंक केवल राज्य का ही न हो वरन् उसके संचालन बोर्ड में कुछ डायरैक्टर धारा सभा के चुने हुए सदस्य होने चाहिए। क्योंकि सरकार जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं है अस्तु जनता के चुने हुए डायरैक्टर बोर्ड में होने चाहिये।

इसके विरुद्ध जो विद्वान् हिस्सेदारों के बैंक के पक्ष में थे उनके नीचे लिखे तर्क थे :—

(१) संसार में जितने केन्द्रीय बैंक हैं उनमें से कुछ को छोड़कर सभी हिस्सेदारों के बैंक हैं।

(२) देश के आर्थिक हितों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि रिज़र्व बैंक पर कोई राजनैतिक प्रभाव न हो और वह अपने कार्यों को सुचारु रूप से कर सके।

(३) हिस्सेदारों के बैंक में पूँजीपतियों के प्रभाव बढ़ जाने का जो भय है उसको ऐसा नियम बनाकर कि एक व्यक्ति अधिक हिस्से न खरीद सके दूर किया जा सकता है। रहा लाभ का प्रश्न वह तो कानून द्वारा सीमित कर दिया जावेगा और अधिकतर लाभ राज्य को मिलेगा।

ऊपर लिखे कारणों को अधिक महत्व देते हुए रिज़र्व बैंक को हिस्सेदारों का बैंक बनाया गया। यद्यपि आज प्रायः सभी देशों में केन्द्रीय बैंकों के

राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) की माँग हो रही है और बैंक आव इंगलैंड जो संसार का सब से पुराना हिस्सेदारों का बैंक था उसको इंगलैंड की सरकार ने ले लिया। पिछले दिनों भारत में भी इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि सरकार रिज़र्व बैंक को ले ले।

रिज़र्व बैंक का विधान :—यह तो हम ऊपर ही कह चुके हैं कि रिज़र्व बैंक हिस्सेदारों का बैंक है। बैंक की हिस्सा पूँजी (Share-Capital) ५ करोड़ रुपये है। प्रत्येक हिस्सा १०० रु० का है जो कि पूरा चुका दिया गया है। इस उद्देश्य से कि बैंक पर किसी एक प्रदेश का प्रभाव न हो जावे भारत को पाँच भागों में विभक्त कर दिया गया और हिस्सेदारों के पाँच रजिस्टर खोले गए। भिन्न-भिन्न रजिस्टरों को नीचे लीखे अनुसार हिस्सा पूँजी बाँट दी गई।

बम्बई	१४० लाख
कलकत्ता	१४५ लाख
देहली	११५ लाख
मदरास	७० लाख
रंगून	३० लाख

इसके अतिरिक्त यह नियम भी बना दिया गया कि प्रत्येक हिस्सेदार को पाँच हिस्सों के पीछे एक मत (Vote) देने का अधिकार होगा, और किसी हिस्सेदार को दस मत (वोट) से अधिक देने का अधिकार न होगा। यह नियम इस उद्देश्य से बनाया गया था कि रिज़र्व बैंक के हिस्सों को कुछ लोग न हथिया लें। किन्तु ऊपर लिखे नियमों के रहते हुए भी रिज़र्व बैंक के हिस्से क्रमशः बम्बई रजिस्टर में अधिक बढ़ते गए। यही नहीं कि अन्य रजिस्टरों में हिस्से कम होते गए और बम्बई रजिस्टर में हिस्से बढ़ते गए वरन् साथ ही हिस्सेदारों का संख्या भी कम होती गई। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि रिज़र्व बैंक के हिस्से क्रमशः कुछ थोड़े से हाथों में इकट्ठा होते गए। नीचे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जावेगा।

हिस्सों का विवरण

आरम्भ में	जून ३०, १९४१	हिस्सेदारों की संख्या १ एप्रिल, १२३५	जून ३०, १९४०

बम्बई	१४० लाख रु०	२१३ लाख रु०	२८,०००	१६,०७२
कलकत्ता	१४५ ,, ,,	१२२ ,, ,,	२३,८६०	१२,२४६
देहली	११५ ,, ,,	८७ ,, ,,	२३,०००	१२,८११
मदरास	७० ,, ,,	६० ,, ,,	१४,०००	७६७२
रंगून	३० ,, ,,	१६ ,, ,,	३१५७	१३६४

ऊपर लिखी तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि बम्बई रजिस्टर के हिस्से बढ़ते गए और अन्य रजिस्टरों के हिस्से घटते गए। यही नहीं बैंक के हिस्सेदारों की संख्या में ३० जून १६४१ तक ३८ प्रतिशत की कमी हो गई। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए मार्च १६४० में रिज़र्व बैंक ऐक्ट में इस आशय का संशोधन किया गया कि यदि कोई व्यक्ति २६ मार्च १६४० के उपरान्त रिज़र्व बैंक के हिस्से खरीदता है और उन हिस्सों के सहित उसके पास अपने व्यक्तिगत नाम में अथवा अन्य व्यक्तियों के साथ सम्मिलित नाम में २०,००० रु० के मूल्य के हिस्सों से अधिक हो जाते हैं तो उन अधिक खरीदे हुए हिस्सों को उसके नाम नहीं रजिस्टर किया जावेगा। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि २६ मार्च १६४० के उपरान्त कोई भी व्यक्ति कुल मिलाकर २०,००० रु० के हिस्सों से अधिक नहीं खरीद सकेगा। किन्तु इतना होने पर भी रिज़र्व बैंक के हिस्सेदारों की संख्या कम होती जा रही है और क्रमशः हिस्से कुछ हाथों में जा रहे हैं।

रिज़र्व बैंक ऐक्ट में इस बात का भी विधान है कि यदि बैंक का केन्द्रीय बोर्ड चाहे तो गवर्नर जनरल तथा केन्द्रीय धारा सभा की अनुमति से बैंक की हिस्सा पूँजी को घटा बढ़ा सकता है।

रिज़र्व बैंक ऐक्ट के अनुसार बैंक को बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास और रंगून में अपने आफिस खोलने होंगे और लन्दन में एक ब्रांच स्थापित करनी होगी। बैंक ने ऊपर लिखे स्थानों पर अपने आफिस स्थापित कर दिये थे। ऐक्ट के अनुसार बैंक को यह भी अधिकार है कि वह गवर्नर जनरल की पूर्व आज्ञा लेकर भारत में किसी स्थान पर भी अपनी ब्रांच या एजेंसी स्थापित कर सकता है। बैंक ने कानपूर, कराँची तथा लाहौर में अपनी ब्रांचें स्थापित कर दी हैं तथा जहां जहां इम्पीरियल बैंक की ब्रांचें हैं वहां इम्पीरियल बैंक को अपना एजेंट बना दिया है। युद्ध काल में जापान द्वारा बर्मा पर अधिकार होने पर रंगून का दफ्तर बन्द कर दिया गया और फिर स्थापित नहीं किया गया।

प्रबन्ध—बैंक का प्रबन्ध एक केन्द्रीय बोर्ड के हाथों में सौंपा गया है। उसमें १६ डायरैक्टर होते हैं। यह १६ डायरेक्टर नीचे लिखे अनुसार नियुक्त होते हैं—(१) एक गवर्नर तथा दो डिप्टी गवर्नरों को गवर्नर जनरल नियुक्त करता है गवर्नर जनरल उनकी नियुक्ति करते समय इस सम्बन्ध में बोर्ड द्वारा की गई सिफारिश को ध्यान में रखकर ही नियुक्ति करता है।

(२) ४ डायरैक्टरों को गवर्नर मनोनीत करता है। यह डायरैक्टर उन हितों का प्रतिनिधित्व करेंगे जो कि साधारणतः बोर्ड में कोई प्रतिनिधित्व नहीं पा सकते। (उदाहरण के लिए कृषि इत्यादि का प्रतिनिधित्व करने वाले डायरैक्टर)

(३) ८ डायरैक्टर भिन्न-भिन्न रजिस्टरों के हिस्सेदारों द्वारा चुने जावेंगे। बम्बई, कलकत्ता और देहली में से प्रत्येक को २ डायरैक्टर चुनने का अधिकार है और रंगून तथा मदरास को एक एक डायरैक्टर ही चुनने का अधिकार है।

(४) गवर्नर जनरल एक सरकारी कर्मचारी को बोर्ड में मनोनीत करेगा।

गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नरों को वेतन मिलता है और वे बैंक के वेतन भोगी डायरैक्टर होते हैं। वे पाँच वर्षों के लिए नियुक्त किये जाते हैं किन्तु ५ वर्ष समाप्त हो जाने पर वे फिर नियुक्त किये जा सकते हैं। सरकारी कर्मचारी डायरैक्टर गवर्नर जनरल की इच्छानुसार अपने पद पर रहता है। डिप्टी गवर्नर तथा सरकारी कर्मचारी डायरैक्टर बोर्ड की मीटिंग में भाग ले सकते हैं उसकी मीटिंग में उपस्थित हो सकते हैं किन्तु वोट नहीं दे सकते। गवर्नर की अनुपस्थिति में एक डिप्टी गवर्नर वोट दे सकता है यदि गवर्नर जनरल की लिखित आज्ञा प्राप्त कर ले। अन्य दूसरे सभी डायरैक्टर केवल पाँच वर्षों तक अपने पद पर रहते हैं।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभा का सदस्य, कोई वेतन भोगी सरकारी या देशी राज्य का कर्मचारी, किसी बैंक का नौकर या कर्मचारी, किसी बैंक का डायरैक्टर (सहकारी बैंक के डायरैक्टरों को छोड़कर) रिज़र्व बैंक का डायरैक्टर या स्थानीय बोर्ड (Local Boards) का सदस्य नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति जो कि केन्द्रीय बोर्ड का डायरैक्टर या स्थानीय बोर्ड का सदस्य

चुना गया हो या मनोनीत किया गया हो यदि रिज़र्व बैंक के ५००० रु० के हिस्सों का ६ महीने के अन्दर रजिस्टर्ड स्वामी नहीं बन जाता तो वह डायरैक्टर या सदस्य नहीं रह सकता। यदि कोई डायरैक्टर बिना गवर्नर से छुट्टी प्राप्त किये तीन लगातार मीटिंगों में अनुपस्थित हो जाता है तो वह बैंक का डायरैक्टर नहीं रहता।

स्थानीय बोर्ड और उनका कार्य—प्रत्येक रजिस्टर का एक स्थानीय बोर्ड होगा। स्थानीय बोर्ड का सगठन इस प्रकार होगा—(१) उस रजिस्टर के हिस्सेदार अपने में से पाँच सदस्य चुनते हैं। (२) केन्द्रीय बोर्ड उस रजिस्टर के हिस्सेदारों में से अधिक से अधिक तीन सदस्यों को मनोनीत करता है। केन्द्रीय बोर्ड को अधिकार इस लिए दिया गया है कि जिससे कृषि सहकारी बैंक, तथा अन्य ऐसे हितों का स्थानीय बोर्ड में प्रतिनिधित्व हो सके।

स्थानीय बोर्ड के दो कार्य होते हैं। एक तो वे अपने में से केन्द्रीय बोर्ड के लिये डायरैक्टर चुनते हैं और दूसरे वे केन्द्रीय बोर्ड उन सब बातों पर अपनी राय देते हैं कि जो उसकी सम्मति के लिये भेजी जाती हैं। स्थानीय बोर्ड के अधिकार बहुत ही सीमित हैं और उनका कोई महत्व नहीं है।

रिज़र्व बैंक के कार्य

रिज़र्व बैंक के व्यापारिक कार्य—रिज़र्व बैंक नीचे लिखे व्यापारिक कार्य कर सकता है।

(१) रिज़र्व बैंक बिना सूद की डिपाज़िट स्वीकार कर सकता है। रिज़र्व बैंक पर सूद न दे सकने का प्रतिबंध इस कारण लगाया गया कि वह व्यापारिक बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा न कर सकें।

(२) रिज़र्व बैंक ऐसे बिलों (Bills) की जो वास्तविक व्यापारिक व्यवहारों (Commercial Transactions) के कारण उत्पन्न हुए हों, जिन पर दो अच्छे हस्ताक्षर हों उनमें से एक हस्ताक्षर किसी शिड्यूल्ड (Schedule) बैंक का होना आवश्यक है, और जिनके चलन की अवधि ६० दिन से अधिक न हो, और जो भारत पर काटे गए हों और जिनका भुगतान भारत में होने वाला हो खरीद या बेच सकता है अथवा उन्हें पुनः भुना सकता है।

इसका परिणाम यह होगा कि रिज़र्व बैंक रुपयों में काटे या लिखे गये आयात बिल (Rupee Import Bills) को भुना सकेगा जब कि इस

प्रकार के बिलों का आयात व्यापार (Import Trade) में चलन होने लगेगा।

यदि इस प्रकार के बिल या प्रामिसरी नोट कृषि के धंधे के लिए लिखे गए हों या फसलों की बिक्री का प्रबंध करने के लिए काटे गए हों तो उनके चलन की अवधि अधिक से अधिक ९ महीने हो सकती है। इन बिलों पर भी दो अच्छे हस्ताक्षरों की आवश्यकता है और उसमें से एक हस्ताक्षर या तो किसी शिड्यूल बैंक अथवा प्रान्तीय सरकारी बैंक का होना चाहिए। इस प्रकार के बिलों को रिज़र्व बैंक पुनः भुना सकता है।

(३) रिज़र्व बैंक ऐसे बिलों को जो कि यूनाइटेड किंगडम में अथवा वहाँ किसी स्थान पर काटे गए हों और जिनकी पकने की अवधि ९० दिन से अधिक न हो खरीद, बेंच और भुना सकता है। किन्तु यह कार्य वह किसी शिड्यूल बैंक के द्वारा ही कर सकता है।

(४) भारत में शिड्यूल बैंकों से स्टर्लिंग खरीदने और उन्हें स्टर्लिंग बेंचने का भी काम रिज़र्व बैंक कर सकता है।

(५) रिज़र्व बैंक देशी राज्यों, स्थानीय शासन संस्थाओं (म्यूनिस्पैलटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इत्यादि), शिड्यूल बैंकों, प्रान्तीय सहकारी बैंकों को ऋण दे सकता है किन्तु इस प्रकार का ऋण अधिक से अधिक ९० दिन के लिए दिया जा सकता है। किन्तु स्टाक, कोष (Funds) या सिक्यूरिटी (अचल सम्पत्ति को छोड़ कर) की ज़मानत पर ही मिल सकता है। जो भी सिक्यूरिटी ट्रस्टी सिक्यूरिटी है उस सिक्यूरिटी के विरुद्ध रिज़र्व बैंक ऋण दे सकता है। इसके अतिरिक्त सोना या चाँदी अथवा उन बिलों की ज़मानत पर भी ऋण दिया जा सकता है कि जिन्हें रिज़र्व बैंक खरीद या भुना सकता है। किसी शिड्यूल बैंक अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंक के प्रामिसरी नोट पर भी रिज़र्व बैंक ऋण दे सकता है यदि वह वास्तव में व्यापारिक व्यवहारों (Commercial Transaction) के लिए लिया जावे।

(६) रिज़र्व बैंक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को तीन महीने से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकता।

(७) रिज़र्व बैंक यूनाइटेड किंगडम की उन सिक्यूरिटियों की खरीद बिक्री कर सकता है जो कि खरीदने की तारीख से १० वर्षों के अन्दर पक जावें। भारत सरकार या प्रान्तीय सरकार की किसी प्रकार की सिक्यूरिटी

चाहे उसके पकने की अवधि कितनी ही क्यों न हो रिज़र्व बैंक खरीद या बेंच सकता है। देशी राज्यों अथवा स्थानीय शासन संस्थाओं में से केवल उनकी ही सिक्यूरिटी रिजर्व बैंक खरीद या बेंच सकता है। जिनको गवरनर जनरल बैंक के बोर्ड की सिफारिश पर स्वीकृति दे।

(८) रिज़र्व बैंक अपनी पूँजी से अधिक ऋण नहीं ले सकता। और वह भी एक महीने से अधिक के लिए नहीं। ऋण केवल किसी शिड्यूल बैंक से अथवा किसी विदेशी केन्द्रीय बैंक (Central Bank) से लिया जा सकता है।

(९) कुछ दशाओं में बैंक को सीधे खुले बाजार में ९० दिन के बिल भुनाने, तथा ३० दिन के लिए ऋण देने का अधिकार दे दिया गया है अर्थात् बैंक कुछ दशाओं में बिना किसी शिड्यूल बैंक अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंक के हस्ताक्षरों के ही ऋण दे सकता है या बिलों को भुना सकता है। इसे बैंक की खुले बाजार की क्रिया (Open Market Operations) कहते हैं।

वह व्यापार कार्य जो कि बैंक नहीं कर सकता

(१) बैंक किसी व्यापारिक तथा व्यावसायिक कार्य को नहीं कर सकता। अर्थात् व्यापार तथा व्यवसाय में दिलचस्पी नहीं ले सकता और न आर्थिक सहायता दे सकता है।

(२) वह अपने हिस्सों या अन्य किसी बैंक या कपनी के हिस्से नहीं खरीद सकता और न उन हिस्सों की ज़मानत पर ऋण ही दे सकता है।

(३) वह किसी अचल सम्पत्ति को रेहन रखकर ऋण नहीं दे सकता और न अचल सम्पत्ति को खरीद ही सकता है। केवल अपने काम के लिए जो भी इमारत इत्यादि की आवश्यकता हो उसे अवश्य खरीद सकता है।

(४) बैंक अरक्षित (Unsecured) ऋण नहीं दे सकता।

(५) वह मुद्दती जमा (Deposits) या चालू खाते (Current Account) पर कोई सूद नहीं दे सकता।

(६) वह ऐसे बिलों को न काट सकता है और न स्वीकार ही कर सकता है कि जिनका माँगने पर भुगतान न हो।

ऊपर लिखे व्यापारिक कार्यों के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक को भारत के

केन्द्रीय बैंक (Central Bank) होने के नाते और बहुत से महत्वपूर्ण कार्य सौंप दिए गए हैं। वे नीचे लिखे हैं।

कागज़ी मुद्रा (Paper Currency) को निकालने का एकाधिकार

रिज़र्व बैंक को कागज़ी मुद्रा निकालने का एकाधिकार प्राप्त है। रिज़र्व बैंक की स्थापना के उपरान्त सरकार का कागज़ी मुद्रा निकालने का अधिकार समाप्त हो गया। रिज़र्व बैंक के नोट कानूनी ग्राह्य (Legal Tender) हैं और गवर्नर जनरल उनकी गारंटी करता है। भारत सरकार के पुराने नोट रिज़र्व बैंक ने ले लिए फिर उन्हें अपने नोटों के रूप में चलाया। जनवरी १६३८ में सबसे पहले रिज़र्व बैंक के नोट निकाले गए। रिज़र्व बैंक पर अपने नोटों को रुपयों में बदलने का कानूनी उत्तरदायित्व है। रिज़र्व बैंक पांच रुपये, दस रुपये, पचास रुपये, सौ रुपये, पांच सौ रुपये, एक हज़ार रुपये, और दस हज़ार रुपये के नोट निकाल सकता है।

कागज़ी मुद्रा निकालने का काम बैंक का नोट विभाग (Issue Department) करता है। नोट विभाग (Issue Department) को बैंकिंग विभाग (Banking Department) से सर्वथा पृथक् रक्खा जाता है। भारत में यह विभाजन अनावश्यक है। यह विभाजन बैंक आव इङ्गलैंड के आधार पर किया गया था। किन्तु बैंक आव इङ्गलैंड में यह विभाजन इस लिए आवश्यक था क्योंकि वहां नोट विभाग में होने वाला लाभ तो सरकार को जाता था और बैंकिंग विभाग का लाभ हिस्सेदारों को मिलता था। किन्तु भारत में तो कानून द्वारा निर्धारित (४ प्रतिशत) से अधिक लाभ सरकार को मिलता है इस कारण यह विभाजन अनावश्यक है। इस विभाजन से हानि यह है कि बैंक की लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) दो टुकड़ों में विभक्त हो जाता है।

जहां तक कागज़ी मुद्रा की सुरक्षा के लिए सुरक्षित कोष (Reserves) रखने का प्रश्न है रिज़र्व बैंक ऐक्ट के अनुसार ४० प्रतिशत सोने के सिक्के, सोने के पाटों अथवा स्टर्लिङ्ग के रूप में होना चाहिए और शेष रुपयों तथा सरकारी सिक्यूरिटियों तथा स्वीकृति व्यापारिक पत्रों (Eligible Paper) के रूप में होना चाहिये।

सरकार का बैंकिंग कार्य—नोट निकालने के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक सरकार के बैंकर का कार्य भी करता है। वह सरकार की ओर से रुपये का

भुगतान करता है और सरकार का रुपया स्वीकार करता है। सरकार को विदेशी देनों को चुकाना पड़ता है। सरकारी रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना पड़ता है तथा अन्य बैंकिंग कार्य करने पड़ते हैं। जब सरकार ऋण लेती है तो इन ऋणों को रिज़र्व बैंक ही निकालता है और वही उनका प्रबन्ध करता है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का नकद रुपया बैंक के पास ही बिना सूदी डिपाजिट के रूप में रहता है। बैंक को यह कार्य मुफ्त में नहीं करने पड़ते।

रिज़र्व बैंक का यह भी कार्य है कि वह रुपये की विनिमय दर (Exchange Rates) को स्थिर रक्खे। इसी उद्देश्य को लेकर रिज़र्व बैंक को कानून द्वारा विवश कर दिया गया है कि वह अधिक से अधिक १ शि० ६$\frac{3}{16}$ पे० प्रति रुपये के हिसाब से स्टर्लिङ्ग खरीदेगा और कम से कम १ शि० ५$\frac{49}{64}$ पे० प्रति रुपये के हिसाब से स्टर्लिङ्ग बेचेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी के पास स्टर्लिङ्ग है और वह उनके रुपये करना चाहता है तो वह रिज़र्व बैंक को ऊपर लिखी दर पर स्टर्लिङ्ग बेच सकता है। रिज़र्व बैंक को उसके स्टर्लिङ्ग खरीदने होंगे और यदि किसी व्यक्ति को स्टर्लिङ्ग की आवश्यकता है तो उपरोक्त दर पर स्टर्लिङ्ग खरीद सकता है। रिज़र्व बैंक को उसे स्टर्लिङ्ग बेचने होंगे।

रिजर्व बैंक की अन्य विशेषतायें :—यह तो हम ऊपर ही कह आये हैं कि रिजर्व बैंक की पहली विशेषता यह है कि वह दो विभागों में विभक्त है (१) नोट विभाग (Issue Department) और दूसरा बैंकिंग विभाग (Banking Department) इन दोनों विभागों के सम्बन्ध में आगे लिखेंगे। इस विशेषता के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक की नीचे लिखी विशेषतायें उल्लेखनीय हैं।

(१) कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department).

रिजर्व बैंक ऐक्ट के अनुसार रिज़र्व बैंक को बाधित रूप में एक कृषि साख विभाग स्थापित करना पड़ा है। इस विभाग के नीचे लिखे कार्य हैं : कृषि साख के सम्बन्ध में खोज करने के लिए और आवश्यकता पड़ने पर कृषि साख के सम्बन्ध में सलाह देने के लिए कृषि साख के विशेषज्ञों को नियुक्त करना। जब कभी भारत सरकार, प्रान्तीय सरकारों, प्रान्तीय सहकारी बैंकों तथा अन्य बैंकों को कृषि साख के सम्बन्ध में कुछ परामर्श लेना होता है तो वे रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग, रिज़र्व बैंक तथा सहकारी बैंकों के सम्बन्धों को निर्धारित

करता है और रिज़र्व बैंक की कृषि साख नीति (Agricultural Credit Policy) को निर्धारित करता है। रिज़र्व बैंक और सहकारी बैंकों (Co-operative Banks) का आपस में क्या सम्बन्ध है इसका विवेचन हम सहकारी बैंकों के परिच्छेद में कर चुके हैं।

(२) रिज़र्व बैंक और इम्पीरियल बैंक का सम्बन्ध—

रिज़र्व बैंक ने इम्पीरियल बैंक को अपना एक मात्र एजेंट (Sole-Agent) बना दिया है। रिज़र्व बैंक ऐक्ट में इसका विधान है। जो समझौता हुआ है उसके अनुसार १५ वर्षों के लिए इम्पीरियल बैंक को रिज़र्व बैंक का एक मात्र एजेन्ट बना दिया गया है। जहाँ जहाँ इम्पीरियल बैंक की ब्रांच है और रिज़र्व बैंक की ब्रांच नहीं है वहां वहां इम्पीरियल बैंक रिज़र्व बैंक के एजेन्ट का कार्य करता है।

इस सेवा के उपलक्ष्य में रिज़र्व बैंक इम्पीरियल बैंक को नीचे लिखे अनुसार कमीशन देगा। पहले दस वर्षों में २५० करोड़ रुपये तक एक प्रतिशत का सोलहवां भाग अर्थात् सौ रुपये पर एक आना और २५० करोड़ रुपये के उपरान्त शेष पर एक प्रतिशत का बत्तीसवां भाग कमीशन दिया जावेगा अर्थात् सौ रुपये पर दो पैसा। इम्पीरियल बैंक रिज़र्व बैंक के एजेन्ट की हैसियत से जितना सरकारी काम करेगा उस पर यह कमीशन दिया जावेगा। दस वर्षों के उपरान्त इस कार्य के करने में इम्पीरियल बैंक का जो व्यय होगा वह दिया जावेगा। इस अवधि के उपरान्त पांच वर्षों के लिए समझौता होगा और कोई भी पक्ष पांच वर्ष की सूचना देकर समझौते को भंग कर सकता है।

इसके अतिरिक्त यदि इम्पीरियल बैंक की जितनी ब्रांचें रिज़र्व बैंक ऐक्ट के लागू होने पर खुली हुई थीं कम से कम उतनी ब्रांचें खोले रखता है तो पहले पांच वर्षों में ६ लाख वार्षिक दूसरे पांच वर्षों में ६ लाख वार्षिक और तीसरे पांच वर्षों में ४ लाख वार्षिक रुपये रिज़र्व बैंक इम्पीरियल बैंक को देगा।

शिड्यूल बैंकों की डिपाजिट—जिस बैंक की चुकता पूँजी (Paid up Capital) और सुरक्षित कोष (Reserves) पांच लाख रुपये से अधिक हो वह रिज़र्व बैंक ऐक्ट की दूसरी शिड्यूल में सम्मिलित किया जा सकता है अर्थात् शिड्यूल बैंक बन सकता है। रिज़र्व बैंक साख (Credit) पर नियन्त्रण स्थापित कर सके इस उद्देश्य से प्रत्येक शिड्यूल-बैंक को अपनी

चालू जमा (Current Deposits) का पाँच प्रतिशत और मुद्दती जमा (Fixed Deposits) का २ प्रतिशत रिज़र्व बैंक के पास रखना होगा। यदि कोई शिड्यूल बैंक इस शर्त को पूरा न करे तो उसको दण्ड देना पड़ता है। निर्धारित प्रतिशत से जिस बैंक का रिजर्व बैंक के पास कम कोष रहता है उसको कमी पर प्रचलित रिजर्व-बैंक रेट से प्रतिशत अधिक सूद देना पड़ेगा। और यदि शिड्यूल-बैंक अगला लेखा (Return) भेजने के दिन तक उस कमी को पूरा न कर सके तो बैंक रेट से कमी पर पाँच प्रतिशत अधिक सूद देना होगा। यदि उसके आगे लेखा भेजने के दिन तक यह कमी पूरी न हो तो रिजर्व बैंक प्रति दिन ५०० रु० जुर्माना कर सकता है और उस बैंक को और अधिक जनता से डिपाजिट लेने की मनाही कर सकता है। प्रत्येक शिड्यूल बैंक को प्रति सप्ताह रिजर्व बैंक को एक लेखा (Return) भेजना पड़ता है जिसमें नीचे लिखी बातों का उल्लेख रहता है। (१) बैंक की चालू जमा (Current Deposit) और मुद्दती जमा (Fixed Deposit) (२) बैंक के पास कितने मूल्य के नोट हैं। (३) बैंक के पास कितने रुपये और छोटे सिक्के हैं। (४) बैंक ने कितना ऋण दिया है और कितने मूल्य के बिल भुनाये हैं। (५) बैंक का कितना रुपया रिज़र्व बैंक में जमा है। इस लेखे का न भेजने पर प्रति दिन १०० रु० के हिसाब से जुर्माना किया जा सकता है।

रिज़र्व बैंक का लाभ और रक्षित कोष :—रिज़र्व बैंक ऐक्ट में इस बात का उल्लेख कर दिया गया है कि रिज़र्व बैंक अपने हिस्सेदारों को अधिक से अधिक ५ प्रतिशत लाभ दे सकता है किन्तु लाभ कितना बाँटा जावेगा इसका निर्णय गवर्नर जनरल करेगा। आरम्भ में सरकार ने ३½ प्रतिशत लाभ बाँटने की अनुमति दी थी किन्तु १९४३ से रिज़र्व बैंक अपने हिस्सेदारों को ४ प्रतिशत लाभ बाँटता है। हिस्सेदारों के बाँटने के उपरान्त जो भी लाभ शेष रहता है वह सरकार को दे दिया जाता है। ऐक्ट में यह विधान था कि जब तक रक्षित कोष (Reserve Fund) पूँजी के बराबर न हो जावे तब तक कम से कम ५० लाख रुपया रक्षित कोष में प्रति वर्ष रक्खा जावेगा। यदि लाभ इतना न हो तो हिस्सेदारों को बाँटने के उपरान्त जो भी लाभ शेष बचे सब रक्षित कोष में रख दिया जावे। जब रक्षित कोष पूँजी के बराबर हो जावे तो सारा शेष लाभ सरकार को दे दिया जावे। १९३६ के पूर्व ही रिज़र्व बैंक का रक्षित कोष पाँच करोड़ रुपये हो गया था अतएव उसके उपरान्त हिस्सेदारों को लाभ बाँटने के उपरान्त शेष लाभ सरकार को चला जाता है।

रिज़र्व बैंक की लेनी-देनी का लेखा (Balance-Sheet) यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि रिज़र्व बैंक के दो भाग हैं एक नोट विभाग दूसरा बैंकिंग विभाग। दोनों का लेनी-देनी का लेखा पृथक् होता है। हम यहां रिज़र्व बैंक की लेनी-देनी के लेखे का अध्ययन करेंगे।

नीचे हम १६ मई १९५० को प्रकाशित रिज़र्व बैंक का लेनी-देनी का लेखा देते हैं।

नोट विभाग (Issue Department)

देनी (Liabilities)	रु०	लेनी (Assets)	रु०
निकाले हुए नोट		(क) सोने के सिक्के तथा स्वर्ण पाट	
बैंकिंग विभाग में रक्खे हुए नोट···	१७,३६,९६,०००	(क) जो भारत में है···	४०,०१,७१,०००
नोट जो चलन में हैं ··	११८७,८०,२८,०००	(ख) जो भारत के बाहर है	
		विदेशी सिक्यूरिटी·········	६५०,२४,२८,०००
कुल नोट···	१२०५ १७,२४,०००	'क' का जोड़···	६९०,२६,०९,०००
		(ख) रुपये के सिक्के···	५४,५३,९७,०००
		भारत सरकार की रुपये की सिक्यूरिटी··················	४६०,२७,१८,०००
		आन्तरिक (Internal) बिल तथा अन्य व्यापारिक पत्र (Commercial Paper)······	
			१२०५,१७,२४,०००

(स्वर्ण और विदेशी सिक्यूरिटी का निकाले हुए नोटों का प्रतिशत ५७·२८३%)

बैंकिंग विभाग (Banking Department)

देनी (Liabilities)

	रु०
चुकता पूँजी (Capital Paid up)	५०,०००,०००
रक्षित कोष (Reserve Fund)	५०,०००,०००
डिपाज़िट (जमा)	
(क) सरकारी	
(१) भारत सरकार (केन्द्रीय)	१२८,०४,०४,०००
(२) अन्य सरकारें (भारतीय)	२१,५१,१०,०००
(ख) बैंकों की जमा.........	५३,६६,३०,०००
(ग) अन्य डिपाज़िट	५६,५६,६५,०००
देय विपत्र (Bills Payable)	४०२,७४,०००
अन्य देनी (Other Liabilities)	१६,५२,१६,०००
जोड़	२६२,६७,२६,०००

लेनी (Assets)

	रु०
नोट....................................	१७,८६,६६,०००
रुपये के सिक्के	१२,६१,०००
छोटे सिक्के	२,७८,०००
भुनाये हुये बिल (Bills Discounted)	
(क) प्रान्तरिक (Internal) बिल	१,३४,५०,०००
(ख) विदेशी बिल	
(ग) सरकारी हुन्डियाँ (Govt. of India Treasury Bills)	१,६१,६३,०००
कोष जो विदेशों में है (Balances held abroad)	१६९,३५,७२,०००
सरकार को दिया गया ऋण	१५२,००,०००
विनियोग ((Investments)	५८,८१,५७,०००
अन्य ऋण.........	१०,३२,१७,०००
अन्य देनी या सम्पत्ति...... (Other Assets)	५,४७,३५,०००
जोड़	२६२,६७,२६,०००

रिज़र्व बैंक और द्रव्य बाजार (Money Market) रिज़र्व बैंक का मुख्य कार्य देश के हित में साख (Credit) का नियंत्रण करना है। इस कार्य को भली प्रकार कर सकने के लिये यह आवश्यक है कि रिज़र्व बैंक का साख (Credit) तथा करसी या मुद्रा (Currency) पर भी पूरा नियंत्रण स्थापित हो जावे। यह पहले के अध्यायों में बता चुके है कि साख पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि करसी या मुद्रा पर भी नियंत्रण स्थापित किया जावे क्योंकि मुद्रा के आधार पर ही साख का विस्तार होता है। यदि केवल करसी या मुद्रा (Currency) से व्यापारिक कारबार होता तब तो मुद्रा पर नियंत्रण स्थापित कर लेने मात्र से साख। (Credit) पर भी स्वतः नियंत्रण स्थापित हो जाता। परन्तु यदि इसके विपरीत यदि चेक या धनादेश (Cheques) का व्यापारिक कार्यों में बहुत अधिक प्रयोग होता है जैसा कि व्यापारिक दृष्टि से उन्नत देशों में आज कल हो रहा है तब केवल मुद्रा पर नियंत्रण स्थापित करने से साख (Credit) पर नियंत्रण स्थापित नहीं हो सकता। क्योंकि केवल मुद्रा या करंसी पर नियंत्रण स्थापित हो जाने से बैंकों की जमा या डिपाज़िट अथवा बैंक द्रव्य (Bank Money) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अस्तु एक ऐसे देश में जहाँ कि एक चेक का व्यवहार अधिक होता है केन्द्रीय बैंक (Central Bank) को बैंकों की जमा या डिपाज़िट पर भी नियंत्रण स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। अन्यथा वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

भारत में क्रय-शक्ति (Purchasing Power) के तीन मुख्य रूप हैं। रुपये का सिक्का, कागजी मुद्रा अर्थात् करंसी नोट तथा बैंकों की जमा या बैंक डिपाज़िट। इनमें रुपये का सिक्का अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, उसका व्यवहार अपेक्षा कृति कम ही है। अतएव भुगतान करने के मुख्य साधन या तो करंसी नोट हैं या वे बैंक डिपाज़िट (जमा) हैं जिन पर चेक काटे जा सकते हैं। इनमें भी चेकों का चलन तेज़ी से बढ़ रहा है। यद्यपि आज यह कहना कठिन है कि भारत में करसी नोटों के चलन से चेकों का चलन अधिक है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि दोनों बराबर का महत्त्व रखते हैं और शीघ्र ही वह समय आने वाला है जबकि भारत में भी चेकों का चलन करंसी नोटों से बहुत अधिक बढ़ जावेगा।

यही कारण है कि रिज़र्व बैंक को करसी पर पूरा नियंत्रण स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया है अर्थात् रिज़र्व बैंक को कागज़ी मुद्रा अर्थात् करसी

नोट निकालने का अधिकार प्राप्त है। रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व करंसी नोट निकालने का कार्य तो सरकार करती थी और कुछ सीमा तक साख (Credit) का नियंत्रण इम्पीरियल बैंक के हाथ में था। भारतीय द्रव्य बाज़ार की यही दुर्बलता थी जो कि रिज़र्व बैङ्क की स्थापना के उपरान्त दूर हो गई। रिज़र्व बैङ्क को कानून द्वारा शिड्युल बैङ्कों के बैलेंस को रखने का अधिकार दे दिया गया। इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैङ्क के पास सरकारी कोष (Funds) भी रहता है तथा उसको सरकार का बैंकर होने का भी गौरव प्राप्त है। इन सुविधाओं से रिज़र्व बैंक को साख (Credit) पर नियंत्रण स्थापित करने में बहुत सुविधा होती है। इन अधिकारों और सुविधाओं के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक ऐक्ट में रिज़र्व बैंक को आवश्यकता पड़ने पर सीधे जनता से व्यहार करने की आज्ञा दे दी गई है। ऐक्ट की धारा १८ के अनुसार यदि भारत के व्यापार व्यवसाय और कृषि के हितों में यह आवश्यक प्रतीत हो तो रिज़र्व बैंक सीधे बिलों को भुना सकता है और ऋण दे सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि रिज़र्व बैंक बिना शिड्यूल बैंक या प्रान्तीय सरकारी बैंक की दलाली या मध्यस्तता के खुले बाज़ार (Open Market) कारबार कर सकता है। यह अधिकार रिज़र्व बैंक साधारणतः काम में नहीं लावेगा। यह असाधारण अवसरों पर ही काम में लाया जा सकता है।

रिज़र्व बैंक और साख का नियंत्रण—रिज़र्व बैंक साख (Credit) का नियंत्रण करने में कहाँ तक सफल हुआ है इसके निर्णय में एक कठिनाई यह है कि यद्यपि रिज़र्व बैंक को स्थापित हुए इतने वर्ष हो गए किन्तु अभी तक उसकी साख नियंत्रण शक्ति की परीक्षा होने का कभी अवसर नहीं आया। क्योंकि जब से रिज़र्व बैंक की स्थापना हुई है तब से अभी तक द्रव्य बाज़ार में द्रव्य (Money) का टोटा नहीं पड़ा, द्रव्य की बहुतायत ही रही अतएव द्रव्य-बाज़ार की रिज़र्व बैंक की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। अतएव हम केवल सैद्धान्तिक रूप से ही इस बात की विवेचना कर सकते हैं कि रिज़र्व बैंक साख (Credit) का नियंत्रण करने में कहाँ तक सफल होगा।

भारतीय द्रव्य बाज़ार की कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो कि अन्य देशो में नहीं पाई जातीं और उनसे यह संदेह होने लगता है कि क्या रिज़र्व बैंक वास्तव में साख का नियंत्रण करने में सफल होगा। पहली विशेषता तो यह है कि इम्पीरियल बैंक का भारतीय द्रव्य बाज़ार में अत्याधिक प्रभाव है किन्तु

जैसा हम आगे देखेंगे इम्पीरियल बैंक के इस अत्यधिक प्रभाव से रिजर्व बैंक का प्रभाव कम नहीं होता। इम्पीरियल बैंक की भारतीय द्रव्य बाज़ार (Indian Money Market) में विशेष परिस्थिति के कारण साख के नियत्रण की यहाँ एक नई पद्धति का आविर्भाव हुआ जो रिज़र्व बैंक और द्रव्य बाजार के लिये लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

भारतीय द्रव्य बाज़ार की दूसरी विशेषता है कि यहाँ विनिमय बैंकों (एक्सचेन्ज बैंकों) का एक ऐसा प्रभावशाली समूह है कि जो यदि चाहे तो रिज़र्व बैंक की साख नीति (Credit Policy) को असफल कर दे सकता है क्योंकि उनकी लन्दन द्रव्य बाज़ार में सीधी पहुँच है किन्तु अब जैसी राजनैतिक स्थिति है एक्सचेंज बैंकों का यह साहस नहीं हो सकता है कि वे रिजर्व बैंक की भारतीय हितों को दृष्टि से निर्धारित नीति के विरुद्ध कार्य करेंगे क्योंकि ऐसा करने से उनके विरुद्ध सरकार की कार्यवाही करनी पड़ सकती है अस्तु एक्सचेंज बैंकों तथा रिज़र्व बैंक में संघर्ष होने की सम्भावना नहीं है। यों भी रिज़र्व बैंक तथा एक्सचेंज बैंकों का संघर्ष तभी खड़ा हो सकता है कि जब रिजर्व बैंक साख को कम करने का प्रयत्न करें किन्तु भारत की स्थिति यह है कि यहाँ साख का विस्तार करने की ही अधिक आवश्यकता है।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि भारत जैसे देश में जहाँ कि द्रव्य बाज़ार असगठित है रिज़र्व बैंक का प्रभाव नहीं पड़ सकता है। किन्तु भारत में तथा अन्य देशों में जहाँ कि द्रव्य बाजार संगठित नहीं है वहाँ के अनुभव ने हमें यह बतला दिया है कि ऐसी कोई सम्भावना नहीं है। अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में वहाँ के केन्द्रीय बैंकों (Central Banks) का द्रव्य बाज़ार पर पूरा प्रभाव पड़ता है।

भारत में भी रिजर्व बैंक का द्रव्य बाज़ार पर प्रभाव अनुभव होता है यद्यपि अभी तक ऐसा अवसर उपस्थित नहीं हुआ कि जब उसकी साख नियत्रण की क्षमता की परीक्षा हो सकती। भारतीय द्रव्य बाज़ार पर रिजर्व बैंक का प्रभाव इसी से ज्ञात होता है कि रिजर्व बैंक की स्थापना के पूर्व बाज़ार में जो मौसमी द्रव्य की कमी पड़ती थी और बैंक की सूद का दर बहुत अधिक घटती बढ़ती थी वह रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद दूर हो गई और वर्ष भर बैंक रेट एक समान रहती है। यही नहीं कि रिजर्व बैंक की स्थापना के उपरान्त बैंक रेट कम हो गई साथ ही उसमें घटा-बढ़ी भी बहुत कम हो गई। यह नीचे लिखी तालिका से स्पष्ट हो जावेगा।

		बैंक रेट	इम्पीरियल बैंक हुंडी रेट	कलकत्ता बाजार रेट	बम्बई बाजार रेट
सितम्बर १९२९	इम्पीरियल बैंक की डिस्काउंट रेट	५%	५	११	६
मार्च १९३०		७	७	११	६ ५/८
सितम्बर १९३९	... ...	३	३	६·७	६
मार्च १९४०	... ...	३	३ १/२	६·७	६ ३/४

ऊपर की तालिका से सूद की भिन्न दरों में कमी ही नहीं आई वरन् उनका आपसी अन्तर भी कम हो गया। इसका सम्भवतः एक कारण रिज़र्व बैंक की स्थापना है। रिज़र्व बैंक की स्थापना से भारत में बैंकों को प्रोत्साहन मिला है, बैंकिंग पद्धति में सुधार हुआ है और रिज़र्व बैंक के नियन्त्रण और नेतृत्व के फल स्वरूप बैंकिंग की इस देश में उन्नति हुई है। सर्वसाधारण का शिड्यूल बैंकों पर अधिक विश्वास बढ़ा है और उसके कारण देश में चेक का अधिक प्रचलन हुआ है। रिज़र्व बैंक सरकारी हुंडियों (Treasury Bills) के बाज़ार का विस्तार करने का प्रयत्न कर रहा है। यदि वह इसमें सफल हुआ तो रिज़र्व बैंक का व्यापारिक बैंकों पर अधिकाधिक नियन्त्रण स्थापित हो जावेगा।

रिज़र्व बैंक और इम्पीरियल बैंक—यह पूछा जा सकता है कि इम्पीरियल बैंक का भारतीय द्रव्य बाजार में इतना अधिक प्रभाव होने से रिज़र्व बैंक की प्रतिष्ठा को आघात पहुँच सकता है और उसके सफलता पूर्वक कार्य करने में बाधा उपस्थित हो सकती है। यदि इन दोनों महान प्रभावशाली संस्थाओं के परस्पर सम्बन्ध अच्छे न होते तब ऐसी सम्भावना हो सकती थी किन्तु भाग्यवश ऐसी कोई भी सम्भावना नहीं है। दोनों बैंकों के आपसी सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं और दोनों ही अपने कर्तव्यों और कार्यों को भली प्रकार समझते हैं। यदि रिज़र्व बैंक आवश्यकता पड़ने पर साख (Credit) का निर्माण करता है तो इम्पीरियल बैंक उसका थोक व्यापारी (Wholesale Dealer) बन कर उसे व्यापारिक बैंकों को बेचता है और व्यापारिक बैंक उसे जनता के हाथ बेचते हैं। यद्यपि शिड्यूल बैंक रिज़र्व बैंक से सीधे ऋण ले सकते हैं किन्तु दो कारणों से वे इम्पीरियल बैंक के पास आर्थिक सहायता के लिए जाना अधिक पसंद करते हैं। पहला कारण तो यह है कि इम्पीरियल बैंक तथा व्यापारिक बैंकों का बहुत पुराना सम्बन्ध स्थापित है दूसरे रिज़र्व बैंक से ऋण तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करने में इम्पीरियल बैंक की अपेक्षा कठिनाइयाँ अधिक हैं। इम्पीरियल बैंक ऋण अथवा आर्थिक सहायता देने में कानूनी बन्धनों से इतना अधिक जकड़ा नहीं है जितना कि रिज़र्व बैंक। यदि इम्पीरियल बैंक को किसी व्यापारिक बैंक की आर्थिक स्थिति अच्छी है ऐसा विश्वास हो जावे तो वह ऋण देने में अधिक उदार हो सकता है।

रिज़र्व बैंक और बाज़ार मार्केट—अभी तक हमने रिज़र्व बैंक का

संगठित द्रव्य बाज़ार पर किस प्रकार नियंत्रण हो सकता है इसका उल्लेख किया। यह स्पष्ट है कि रिज़र्व बैंक का बाज़ार मार्केट पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ सकता। जब तक कि देशी बैंकर तथा साहूकार अपनी व्यापार पद्धति को नहीं बदलते तब तक रिज़र्व बैंक उनकी कोई सहायता नहीं कर सकता और न वे रिज़र्व बैंक के नियंत्रण में ही आ सकते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि रिज़र्व बैंक के पास बाजार मार्केट को सीधे प्रभावित करने के अधिकार नहीं हैं तो वह बाज़ार मार्केट पर बिलकुल प्रभाव नहीं डाल सकता। यह सभी जानते हैं कि देशी बैंकरों को जो कि बाज़ार मार्केट में कारबार करते हैं परिस्थिति से विवश होकर इम्पीरियल बैंक तथा व्यापारिक बैंकों से ऋण या आर्थिक सहायता लेनी पड़ती है। वे अपने बिलों को इन बैंकों से भुनाते हैं और स्वीकृत सिक्यूरिटियों की ज़मानत पर ऋण लेते हैं। जहाँ तक उन्हें अपने बाज़ार की परिस्थितियों से विवश होकर संगठित द्रव्य बाज़ार में सहायता के लिये आना पड़ता है वे रिज़र्व बैंक के अप्रत्यक्ष प्रभाव में आते हैं। इसके अतिरिक्त पिछले दिनों में जो इम्पीरियल हुंडी रेट और बाज़ार रेट में जो समानता दृष्टिगोचर होती है वह इस बात को बतलाती है कि दोनों बाज़ारों में सम्बन्ध बढ़ रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि रिज़र्व बैंक का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता जा रहा है।

साख के नियंत्रण के उपाय—यह तो हम केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के अध्याय में बता आये हैं कि साख (Credit) का नियंत्रण करने के लिए केन्द्रीय बैंक दो उपाय काम में लाता है। एक तो बट्टा-दर (Discount rate) को घटा बढ़ा कर केन्द्रीय बैंक साख का नियंत्रण करता है दूसरे खुले बाज़ार में व्यवहार (Open Market Operations) करके। हम यहाँ रिज़र्व बैंक के सम्बन्ध में इन दोनों उपायों का उल्लेख करेंगे।

बट्टा-दर (Discount Rate)—बट्टा-दर प्रभावशाली है अथवा नहीं यह केवल उसके स्तर (Level) से ही नहीं जाना जा सकता वरन् इसका निर्णय करने में हमें यह भी देखना चाहिये कि रिज़र्व बैंक की दृष्टि में कौन से व्यापारिक पत्र (Commercial Papers) भुनाने के तथा ऋण के आधार स्वरूप स्वीकार किये जाने के योग्य हैं और उन व्यापारिक पत्रों (Commercial Papers) का द्रव्य बाज़ार में क्या महत्त्व है।

जहाँ तक बट्टा दर (Discount Rate) का प्रश्न है कि रिज़र्व बैंक की बट्टा दर जब से वह स्थापित हुआ है ३ प्रतिशत रही है इस कारण यह कह सकना कठिन है कि रिज़र्व बैंक की बट्टा दर कहाँ तक प्रभावशाली है।

जहाँ तक रिज़र्व बैंक को कुछ व्यापारिक पत्रों (Commercial Papers) को भुनाने और उनके आधार पर ऋण देने का अधिकार प्राप्त है उसका हम दो दृष्टियों से अध्ययन कर सकते हैं। पहला तो यह कि रिज़र्व बैंक इस अधिकार का उपयोग साख का नियंत्रण करने के लिए कर सकता है। दूसरे यह कि रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों की आड़े समय में केवल उन्हीं व्यापारिक पत्रों (अर्थात् बिलों और सिक्यूरिटियों) को स्वीकार करके उनकी आर्थिक सहायता कर सकता है। व्यापारिक बैंकों को आड़े समय में आर्थिक सहायता करने के सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक ने अपनी नीति को स्पष्ट कर दिया है। वह इस प्रकार है।

यद्यपि रिज़र्व बैंक ऐक्ट के अनुसार रिज़र्व बैंक कुछ सिक्यूरिटियों (जिनके सम्बन्ध में पहले कह आये हैं) के विरुद्ध व्यापारिक बैंक को साख देकर उनकी सहायता कर सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह किसी भी बैंक का जो स्वीकार योग्य व्यापारिक पत्र तथा सिक्यूरिटी दे सके उसे ऋण देने या आर्थिक सहायता करने पर विवश है। रिज़र्व बैंक किसी भी बैंक को आर्थिक सहायता देते समय इस बात का ध्यान रक्खेगा कि उस बैंक ने अपना रुपया ठीक जगह लगाया है अथवा नहीं, क्या वह आवश्यकता से अधिक सूद देकर तो डिपाज़िट आकर्षित नहीं करता है ? क्या वह उस समय भी जब बाजार में यथेष्ट कोष (Funds) होता है तब भी रिज़र्व बैंक से सहायता चाहता है और क्या वह सट्टे (Speculation) के लिए साख देता रहा है ? कहने का तात्पर्य यह है कि रिज़र्व बैंक किसी बैंक की आर्थिक सहायता स्वीकार योग्य बिल या सिक्यूरिटी लेकर तभी करेगा जब उसे विश्वास होगा कि सहायता माँगने वाले बैंक ने बैंकिंग के सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं की है और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी है।

खुले बाजार व्यवहार (Open Market Operations)—बट्टा दर को अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से रिज़र्व बैंक को खुले बाज़ार के व्यवहार करने का भी अधिकार दे दिया गया है। यह हम केन्द्रीय बैंक के अध्याय में बतला आये हैं कि खुले बाज़ार के व्यवहारों से क्या तात्पर्य है। संक्षेप में खुले बाजार के व्यवहारों से अर्थ यह है कि रिज़र्व बैंक सरकारी

सिक्यूरिटियों को खरीद और बेंच कर व्यापारिक बैंक के नकद कोष (Cash Balances) में वृद्धि या कमी करता है और इस प्रकार वह व्यापारिक बैंकों को अप्रत्यक्ष रूप से साख का अधिक निर्माण करने या साख को कम करने पर विवश करता है। रिज़र्व बैंक खुले बाज़ार में किस प्रकार की सिक्यूरिटियों (प्रतिभूति) की खरीद बिक्री कर सकता है उनका ऐक्ट में उल्लेख कर दिया गया है।

अन्य उपाय—ऊपर लिखे दो मुख्य उपायों के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक को जनता से सीधा कारबार करने का भी अधिकार है। किन्तु इस अधिकार को रिज़र्व बैंक विशेष अवस्था में ही काम में ला सकता है। जनता सीधे अपने बिलों को रिज़र्व बैंक से भुना सकती और स्वीकार योग्य सिक्यूरिटी पर आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकती है। इस अधिकार के फल स्वरूप रिज़र्व बैंक का व्यापारिक बैंकों पर बहुत अधिक प्रभाव स्थापित हो गया है। यदि व्यापारिक बैंक रिज़र्व बैंक के द्वारा निर्धारित नीति के विरुद्ध आचरण करते हैं तो रिज़र्व बैंक उस अधिकार का उपयोग कर सकता है। अतएव व्यापारिक बैंक का रिज़र्व की नीति के विरुद्ध आचरण करने का कभी साहस ही नहीं हो सकता।

अन्य उपायों में साख की राशनिंग करना तथा सदस्य बैंकों या शिडूल बैंकों के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने का इस देश में अधिक महत्व नहीं है क्योंकि व्यापारिक बैंक रिज़र्व बैंक से अधिक ऋण नहीं लेते। विज्ञप्ति (Publicity) का संयुक्त राज्य अमेरिका में साख को नियंत्रित करने में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है किन्तु भारत में इसका अधिक उपयोग नहीं हो सकता क्योंकि व्यापारिक बैंक रिज़र्व बैंक से अधिकतर ऋण नहीं लेते। हाँ, रिज़र्व बैंक का नैतिक प्रभाव अवश्य कारगर हो सकता है। जैसे जैसे रिज़र्व बैंक भारत के व्यापारिक बैंकों के अधिक सम्पर्क में आता जावेगा वह अपना नैतिक प्रभाव उनके कारबार पर डालने में सफल होगा और व्यापारिक बैंक रिज़र्व बैंक की साख सम्बन्धी नीति को स्वतः स्वीकार कर लेंगे।

रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण

कुछ समय से भारतवर्ष में यह विवाद चल रहा था कि रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए अथवा नहीं। अन्त में सरकार ने रिज़र्व बैंक के

राष्ट्रीयकरण का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया और ३ सितम्बर १९४८को रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी बिल पास होने पर यह विवाद समाप्त हो गया।

१ जनवरी १९४९ से रिजर्व बैंक की नवीन व्यवस्था हो गई। भारत सरकार ने रिजर्व बैंक के सारे हिस्से ११८ रुपये १० आना प्रति हिस्से के हिसाब से खरीद लिए और इस प्रकार रिजर्व बैंक भारत सरकार का बैंक हो गया।

बैंक की व्यवस्था और प्रबन्ध पहले की ही भाँति केन्द्रीय तथा स्थानीय बोर्ड करेंगे। केन्द्रीय बोर्ड का संगठन इस प्रकार का होगा :—

(अ) एक गवर्नर तथा दो डिप्टी गवर्नर केन्द्रीय सरकार नियुक्त करेगी।

(क) चार डायरैक्टर चारों स्थानीय बोर्डों में से केन्द्रीय सरकार मनोनीत करेगी।

(ख) ६ डायरैक्टर केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किए जावेंगे।

(ग) एक सरकारी कर्मचारी सरकार मनोनीत करेगी।

स्थानीय बोर्डों में प्रत्येक में तीन सदस्य होंगे जिन्हें केन्द्रीय सरकार नियुक्त करेगी। स्थानीय बोर्ड चार होंगे।

केन्द्रीय सरकार बैंक के गवर्नर की सलाह से बैंक को उचित परामर्श देगी जो कि बैंक के हित में हो।

रिजर्व बैंक ऐक्ट की धारा ३३ में संशोधन कर दिया गया है। अब रिजर्व बैंक उन देशों की सिक्यूरिटियों में भी अपना रुपया लगा सकता है जो अन्तर्राष्ट्रीय द्रव्य कोष (International Monetary Fund) के सदस्य हैं। रिजर्व बैंक उस देश में भुगतान किए जाने वाले व्यापारिक बिलों को भी जिनकी मियाद ९० दिन से अधिक न हो खरीद सकेगा। रिजर्व बैंक उन देशों के केन्द्रीय बैंकों (Central Banks) में भी रुपया जमा कर सकेगा।

पिछले वर्षों से संसार भर में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है कि केन्द्रीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर लिया जावे। ब्रिटेन ने बैंक आव इगलैंड का जो कि संसार में सबसे अधिक पुराना केन्द्रीय बैंक था राष्ट्रीयकरण कर लिया। योरोप के बहुत से देशों ने अपने अपने केन्द्रीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर लिया है। भारतवर्ष में भी इसी आन्दोलन की प्रतिक्रिया हुई है।

अध्याय—१६

पोस्ट आफिस, ऋण कार्यालय फंड (Loan Offices) निधि, तथा चिट फंड

पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक—पोस्ट आफिस भी भारत में सेविंग्स बैंक का कारबार करते हैं और इस प्रकार वे भी द्रव्य बाज़ार के एक अंग हैं। पोस्ट आफिस निम्नलिखित बैंकिंग कार्य करते हैं। वे सेविंग्स बैंक का काम करते हैं, कैश सर्टिफिकेट बेंचते हैं, नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट देते हैं, सरकारी सिक्यूरिटियों की खरीद और बिक्री करते हैं तथा जीवन बीमा करते हैं।

सभी हेड पोस्ट आफिसों में, सब पोस्ट आफिसों में तथा बहुत से ब्रांच पोस्ट आफिसों में सेविंग्स बैंक का काम होता है। इनका मुख्य उद्देश्य किसानों, मज़दूरों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों में मितव्ययिता की भावना जाग्रत करना है। किन्तु पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंकों में अधिकांश मध्यम श्रेणी के ही व्यक्ति अपनी बचत जमा करते हैं। इनमें अधिकतर सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी कर्मचारी, वकील, डाक्टर, अध्यापक तथा अन्य पेशे वाले लोग ही अपना रुपया जमा करते हैं।

पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक में अधिक से अधिक पांच हज़ार रुपये जमा किये जा सकते हैं। पहले यह नियम था कि एक वर्ष में कोई ७५० रु० से अधिक जमा नहीं कर सकता था किन्तु अब यह बंधन हटा दिया गया है। कोई भी व्यक्ति ५ हज़ार रुपये तक एक बार में जमा कर सकता है। कम से कम २ रुपये जमा किये जा सकते हैं। सेविंग्स बैंक में अब दो सौ रुपये से कम पर १½ प्रतिशत और २०० रु० से ऊपर २ प्रतिशत सूद दिया जाता है। कोई भी व्यक्ति रुपया जमा कर सकता है। रुपया एक सप्ताह में केवल एक बार निकाला जा सकता है।

भारतवर्ष में पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक की स्थापना १८८२ में हुई। तब से उसमें जमा करने वालों की संख्या तथा जमा किया हुआ रुपया बराबर बढ़ता ही गया। पहिले महायुद्ध के आरम्भ होने पर (१९१४-१५) अवश्य लोगों में घबड़ाहट फैल गई और लोगों ने करोड़ों रुपया निकाल लिया परन्तु शीघ्र ही

लोगों में विश्वास फिर लौट आया और डिपाज़िट बढ़ने लगी। १९३०-३१ में आर्थिक मंदी के कारण जितना रुपया जमा हुआ उससे अधिक रुपया निकाला गया किन्तु फिर डिपाजिट की वृद्धि होने लगी। ११ मार्च १९३८ में २७६ करोड़ जमा करने वाले थे और ७७५ करोड़ रुपये की डिपाज़िट थी। जब दूसरा महायुद्ध आरम्भ हुआ और फ्रांस का पतन हो गया तो जनता में फिर घबराहट फैली और लोगों ने अपना रुपया निकालना आरम्भ कर दिया किन्तु शीघ्र लोगों में विश्वास लौट आया और डिपाज़िटों में वृद्धि होने लगी।

पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक में सुधार:—केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी की सम्मति थी कि अधिकतम जमा करने की सीमा पाँच हजार से बढ़ा कर दस हजार रुपये कर देनी चाहिये। कुछ चुने हुए पोस्ट आफिसों में सेविंग्स बैंक हिसाब से चेक द्वारा रुपया निकालने की सुविधा प्रदान करना चाहिए और क्रमशः अधिकाधिक पोस्ट आफिसों में इस प्रकार की सुविधा दे देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सेविंग्स बैंक हिसाब को संयुक्त नामों में खोले जाने की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। रुपया जमा करने वालों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपने उत्तराधिकारी को मनोनीत कर दें कि जो उनकी मृत्यु के उपरान्त उसका मालिक हो। इससे यह झंझट नहीं रहेगा कि रुपया जमा करने वाले का उत्तराधिकारी अपने अधिकार को प्रमाणित करे। ऊपर लिखे सुधारों की आवश्यकता तो केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने बतलाई थी किन्तु हम यहाँ नीचे अन्य सुधारों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक समझते हैं:—

(१) उन पोस्ट आफिसों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए कि जहाँ सेविंग्स बैंक हिसाब खोला जा सके। यदि इस प्रकार के पोस्ट आफिसों को पूरे सप्ताह भर खोलना लाभदायक न हो तो वहाँ वे केवल सप्ताह में दो बार खोले जावें।

(२) स्कूल के अध्यापकों का इन पोस्ट आफिसों के चलाने के लिए उपयोग किया जावे।

(३) सप्ताह में कम से कम दो बार रुपया निकालने की सुविधा दी जावे और यदि सम्भव हो तो तीन बार रुपया निकाला जा सके। चेक द्वारा रुपया निकालने की सुविधा देना आवश्यक है।

(४) हिसाब हिन्दी में अथवा जमा करने वाले की इच्छानुसार प्रान्तीय भाषा में रक्खा जावे।

(५) औद्योगिक केन्द्रों में जहाँ मज़दूर रहते हों वहाँ कुछ पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक ऐसे स्थापित किये जावें कि जहाँ सेविंग्स बैंक का काम सायंकाल को हो सके और मजदूर तथा छोटे दूकानदार उनका उपयोग कर सकें।

यदि इस प्रकार पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक में आवश्यक सुधार हो जावें तो वे सर्वसाधारण में मितव्ययिता की भावना जाग्रत कर सकते हैं और उनका अधिकाधिक उपयोग हो सकता है। अभी उसकी कार्य-पद्धति में कुछ ऐसे दोष हैं कि जिसके कारण उसका अधिक उपयोग नहीं होता।

पोस्ट आफिस कैश सर्टिफिकेट तथा नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेटः—

पिछले महायुद्ध (१९१४-१९) से पोस्ट आफिसों ने कैश सर्टिफिकेट निकालना आरम्भ किये हैं। इन सर्टिफिकेटों को निकालने का उद्देश्य यह है कि जनता में रुपया बचाने की प्रवृत्ति बढ़े। कैश सर्टिफिकेटों में अधिकतर मध्यम श्रेणी के पेशेवर लोग तथा सरकारी और अर्द्ध सरकारी कर्मचारी अपनी बचत को लगाते हैं। कारण यह है कि इनमें सूद अच्छा मिलता है और जोखिम बिलकुल नहीं है। मध्यम श्रेणी के लोग अधिकतर पोस्ट आफिस कैश सर्टि-फिकेटों तथा नव प्रचारित नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेटों में ही अपना रुपया लगाते हैं। यह सर्टिफिकेट पाँच वर्ष के होते हैं और कोई व्यक्ति १०,००० हज़ार रुपये से अधिक के सर्टिफिकेट नहीं रख सकता। कैश सर्टिफिकेट १० रु० से लेकर १ हज़ार रुपये तक के होते हैं। जब पाँच वर्ष के उपरान्त सर्टिफिकेट की अवधि समाप्त हो जाती है तो उसकी जो रक़म मिलती है उसमें और उस सर्टिफिकेट के खरीदने में जो मूल्य देना पड़ता है उसका अन्तर ही सूद होता है। इस पर आय-कर नहीं देना पड़ता। १९३६ के पूर्व समय समय पर सर्टिफिकेटों की कीमत में इस प्रकार परिवर्तन किया जाता रहा है कि सूद की दर घटती गई। आरम्भ में ६ प्रतिशत सूद मिलता था किन्तु १९३६ से सूद की दर २½ प्रतिशत चक्र ब्याज की दर से रह गई है। यह सर्टिफिकेट समय पूरा होने से पहले भी भुनाए जा सकते हैं किन्तु खरीदने के एक वर्ष के अन्दर भुनाने पर कोई सूद नहीं मिलता। दूसरे वर्ष से सूद की दर बढ़ती जाती है किन्तु पूरा सूद तभी मिलता है जब कि पाँच वर्ष समाप्त हो जावें।

सर्टिफिकेटों का आकर्षण सूद की दर के अनुसार कम होता या बढ़ता रहा है। दूसरे महायुद्ध के पूर्व कैश सर्टिफिकेटों का मध्यम श्रेणी की जनता को बहुत आकर्षण था क्योंकि सूद अच्छा मिलता था और उन पर आय-

कर (Income-Tax) नहीं लिया जाता था। ३१ मार्च १६३६ को कैश सर्टिफिकेटों का मूल्य ६० करोड रुपये था। ३१ मार्च १६४३ को केवल ३५ करोड़ रुपये के कैश सर्टिफिकेट रह गए। इसका कारण यह था कि बहुत से लोग युद्ध के कारण भयभीत हो गए कि कहीं रुपया डूब न जावे। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने कैश सर्टिफिकेटों को अधिक आकर्षक बनाने के लिए इस बात की सिफारिश की थी कि प्रत्येक व्यक्ति को जो कि सर्टिफिकेट खरीदे इस बात का अधिकार दिया जावे कि वह अपने मरने पर वह रुपया किसको मिले उसका नाम घोषित कर दे।

नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट—नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट द्वितीय महायुद्ध के समय निकाले गए थे। यह बारह वर्षों के लिए होते हैं। सर्टिफिकेट खरीदने वाला उन्हें कभी भी भुना सकता है किन्तु पहले ३ वर्षों में कोई सूद नहीं मिलती और उसके उपरान्त क्रमशः सूद की दर बढ़ती जाती है। १२ वर्ष पूरे हो जाने पर आरम्भ में लगाया हुआ रुपया ड्योढा हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति १००० रुपया के कैश सर्टिफिकेट लेता है तो १२ वर्ष के उपरान्त उसको १५०० मिलेंगे। एक व्यक्ति २५ हजार रुपये से अधिक के नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट नहीं खरीद सकता। इन पर भी आय-कर नहीं लिया जाता। नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेटों पर सूद की दर अच्छी है तथा जोखिम बिलकुल नहीं है इस कारण मध्यम श्रेणी का व्यक्ति उनकी ओर अधिक आकर्षित होता है। यदि खरीदने वाले को यह सुविधा दे दी जावे कि वह अपना उत्तराधिकारी घोषित कर सके जिसे उसकी मृत्यु के उपरान्त रुपया दिया जावे तो यह और भी अधिक प्रचलित हो सकते हैं।

इन कार्यों के अतिरिक्त पोस्ट आफिस जनता के लिए सरकारी सिक्यूरिटियों (प्रतिभूति) को खरीदने और बेंचने का काम भी करता है। इस कार्य के लिए पोस्ट आफिस कोई फीस नहीं लेता। किन्तु एक वर्ष में पोस्ट आफिस किसी एक व्यक्ति के लिए ५००० रु० से अधिक की सिक्यूरिटी नहीं खरीदेगा। कोई भी व्यक्ति चाहे तो सिक्यूरिटी स्वयं ले सकता है। डिप्टी अकाउन्टेंट जनरल की सुरक्षा में छोड़ सकता है। उसकी सिक्यूरिटियों को सुरक्षित रखने के लिए पोस्ट आफिस कुछ नहीं लेता।

इसके अतिरिक्त पोस्ट आफिस सरकारी कर्मचारियों 'म्युनिस्पैलिटी', जिला बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों के कर्मचारियों का जीवन बीमा भी करता है।

ऋण कार्यालय (Loan Offices)—ऋण कार्यालय बंगाल की एक विशेष संस्था है। यह देशी बैंकरों तथा मिश्रित पूँजी वाले बैंकों (Joint Stock Banks) के बीच की संस्था है। भारत के अन्य प्रान्तों में जब १८६०-७० के आसपास मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई तब बंगाल में इन बैंकों का उदय हुआ। पहले ऋण कार्यालय (Loan Office) १८६५ में स्थापित हुआ। इनकी रजिस्ट्री कम्पनी ऐक्ट के अन्तर्गत होती है। यह अधिकतर बंगालियों द्वारा स्थापित किए गए हैं और वे ही इनका संचालन करते हैं। इनकी संख्या लगभग १००० है तथा उनकी कार्यशील पूँजी ६-१० करोड़ रुपये हैं। इनकी चुकता पूँजी (Paid up capital) बहुत कम होती है। बहुत कम ऐसे ऋण गृह हैं जिनकी चुकता पूँजी एक लाख से अधिक हो। यह अधिकतर डिपाज़िटों पर निर्भर रहते हैं क्योंकि वे ऋण पत्र अर्थात डिबेंचर नहीं निकालते और जो नये हैं उनका रक्षित कोष (Reserve Fund) भी बहुत कम है। यह मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से डिपाजिट लेते हैं। यह एक वर्ष से ७ वर्षों तक के लिए डिपाजिट लेते हैं और ४ से ८ प्रतिशत तक सूद देते हैं। अधिकतर डिपाज़िट ५ वर्षों के लिए होती हैं।

यह ऋण कार्यालय मुख्यतः ज़मीदारों तथा उन किसानों को जिनका भूमि पर अधिकार है भूमि बंधक रखकर ऋण देते हैं। एक प्रकार से यह भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) हैं। इसके अतिरिक्त यह जेवर रखकर भी ऋण दे देते हैं। परन्तु यह व्यापार या धन्धों के लिए बहुत कम ऋण देते हैं। इनमें से कुछ व्यापार में भी अपना रुपया लगाते हैं। पुरानी कम्पनियाँ सुरक्षित ऋण पर १२ से १८ प्रतिशत सूद लेती हैं तथा अरक्षित ऋण (Unsecured debt) पर इससे भी अधिक सूद लिया जाता है। नई कम्पनियाँ तो बहुत सूद लेती हैं। यह कम्पनियाँ डिपाज़िट आकर्षित करने के लिए दलाल रखती हैं और अत्यधिक सूद देती हैं। इनका प्रबन्ध ठीक नहीं है और वे अपना रुपया बहुत जोखिम के साथ लगाती हैं। यही कारण है कि अभी हाल के संकट में बहुत से बंगाली बैंक डूब गए क्योंकि वस्तुतः वे ऋण कार्यालय ही के थे।

निधि या चिट-फंड :—निधियाँ मदरास प्रान्त में पाई जाती हैं। आरम्भ में यह पारस्परिक ऋण देने वाली संस्थाओं के रूप में काम करती थीं किन्तु क्रमशः वे अर्द्ध बैंकिंग संस्था बन गईं। इस समय मदरास प्रान्त में २२८

निधियाँ काम कर रही हैं। वे कम्पनी ऐक्ट के अन्तर्गत रजिस्टर की गई हैं। वे या तो डिपाज़िटें लेती हैं अथवा हिस्सा पूँजी के रूप में मासिक किश्तों में रुपया स्वीकार करती हैं जो कि निकाला जा सकता है। उनका मुख्य उद्देश्य सदस्यों में बचत की भावना जाग्रत करना है, उनके पुराने ऋण को चुकाना तथा महाजन के चंगुल से निकालना तथा उनको उत्तम जमानत पर सभी कार्यों के लिए ऋण देना है। यदि निधि के पास अधिक रुपया होता है जिसकी सदस्यों के लिए कोई जरूरत नहीं है तो बाहर वालों को भी ऋण दे दिया जाता है। निधियों में डिपाज़िट आकर्षित करने पर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि वे अधिकतर रुपया हिस्सा पूँजी (Share-capital) के द्वारा प्राप्त करती हैं। निधियाँ सूद की दर पर ऋण देती हैं। साधारणतः वे ६¼ प्रतिशत पर सदस्यों को ऋण देती हैं परन्तु समय पर न चुकाये जाने वाले ऋण पर वे अधिक सूद लेती हैं और उससे उनका खूब लाभ होता है। मदरास बैंकिंग कमेटी का कथन था कि अधिकतर निधियों का सञ्चालन और प्रबन्ध बहुत अच्छा था।

चिट-फण्ड—चिट फण्ड थोड़े से लोगों का एक संगठन मात्र होता है जो एक दूसरे को रुपया उधार देने तथा बचत की भावना को जाग्रत करने के लिए स्थापित किया जाता है। यह अधिकतर मदरास प्रान्त में पाई जाती हैं। इनकी ठीक ठीक संख्या तो किसी को ज्ञात नहीं किन्तु यह कई हज़ार होंगी। इसका विधान इस प्रकार होता है। कुछ लोग आपस में यह तय कर लेते हैं कि वे एक निश्चित रकम एक निश्चित समय पर अपने में से एक को दे दिया करेंगे। सदस्यों द्वारा पहली बार दिया हुआ रुपया चिट फण्ड को स्थापित करने वाले को उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य में मिल जाता है। इसके उपरान्त प्रत्येक बार का रुपया या तो बारी बारी से प्रत्येक सदस्य को मिलता रहता है अथवा लाटरी डाल ली जाती है। उदाहरण के लिए १०२ आदमी एक चिट फण्ड स्थापित करते हैं और प्रत्येक प्रति मास दस रुपये फण्ड को देता है तो पहले महीने का रुपया तो चिट फण्ड के संस्थापक को मिल जावेगा और दूसरे महीने से १००० रु० या तो बारी बारी से प्रत्येक सदस्य को मिलता रहेगा या लाटरी डाल दी जावेगी। जिस सदस्य को १००० रु० मिल गया उसको तब तक दुबारा रुपया नहीं मिल सकता जब तक बाकी सब सदस्यों को एक बार १००० रु० न मिल जावे। इससे एक लाभ यह होता है कि प्रत्येक सदस्य को एक मुश्त १००० रु० मिल जाते हैं जबकि उसके लिए सम्भवतः इतना रुपया एक साथ इकट्ठा करना कठिन हो जाता।

किन्तु कभी-कभी चिट फंड स्थापित करने वाले धोखा देते हैं और बेईमानी करते हैं तथा अन्य सदस्यों का रुपया मारा जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि इनका प्रबन्ध ठीक हो। केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी का मत था कि निधियों तथा चिट-फंडों की ठीक व्यवस्था हो इसके लिए एक कानून बना दिया जावे जिसके अन्तर्गत उनकी रजिस्ट्री हो।

अध्याय—२०

उद्योग-धंधों के लिए पूँजी (Capital) का प्रबन्ध

उद्योग-धंधों के लिये दो प्रकार की पूँजी की आवश्यकता है। एक तो अचल सम्पत्ति (Fixed assets) जैसे भूमि, इमारतो, यत्रों तथा मशीनों और अन्य स्थायी दीर्घ काल तक काम आने वाली वस्तुओं को मोल लेने के लिए तथा दूसरी चल सम्पत्ति (Floating assets) जैसे कच्चा माल, तथा अन्य आवश्यक सामग्री मोल लेने, मजदूरों तथा कर्मचारियों को वेतन देने तथा कच्चे माल को पक्के माल में परवर्तित करने में जो व्यय होता है उसके लिए तथा तैयार माल की बिक्री में होने वाले व्यय के लिए आवश्यक होती है। अचल पूँजी (Block capital) की आवश्यकता नये कारखानों तथा धंधों को होती है तथा उन पुराने कारखानों को होती है जो अपना विस्तार करना चाहते हैं। अचल पूँजी स्थायी रूप से धंधे में लगी रहती है किन्तु चल सम्पत्ति (Floating assets) की व्यवस्था करने के लिए जो कार्यशील पूँजी (Working Capital) की आवश्यकता होती है वह अस्थायी होती है क्योंकि माल के बिक जाने पर कारखाने के पास यथेष्ट कार्यशील पूँजी हाथ में आ जाती है परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बाजार भाव के कारण अथवा अन्य किसी कारण वश माल नहीं बिक सका अथवा नहीं बेचा गया अस्तु कारखाने को कच्चे माल के मोल लेने तथा अन्य व्यय करने के लिए रुपया चाहिए। अस्तु प्रत्येक कारखाने या धंधे में दो प्रकार की पूँजी आवश्यक होती है। (१) अचल पूँजी (Block capital) दूसरी कार्यशील पूँजी (Working capital)

साधारणतः उद्योग के लिए पूँजी की व्यवस्था नीचे लिखे अनुसार होती है :—

अचल पूँजी—(Block capital)—अचल पूँजी को एकत्रित करने के लिए तीन उपाय हैं। हिस्से (Shares) बेंचकर पूँजी एकत्रित करना डिबेंचर बेंच कर तथा सुरक्षित कोष (Reserve fund) जमा करके। नये कारखानों या धंधों को तो हिस्से बेंच कर ही अचल पूँजी की व्यवस्था करनी पड़ती है।

क्योंकि जब तक कि धंधे के पास जमीन, इमारत, अथवा मशीनों के रूप में कुछ स्थायी सम्पत्ति न हो तब तक वह ऋण पत्र (डिबेंचर) किस की ज़मानत पर निकलेगा। हाँ, किसी कारखाने के पास जब स्थायी सम्पत्ति यथेष्ट होती है और वह कारखाना सफलतापूर्वक चलता है तथा लाभ बाँटता है उस दशा में यदि कारखाने के संचालक कारखाने का विस्तार करना चाहते हैं तो उन्हें अधिक अचल पूँजी की आवश्यकता होगी। अब यदि वे नये हिस्से निकालते हैं तो नवीन हिस्सेदार भी लाभ में हिस्सा बटावेंगे अतएव संचालक कारखाने की स्थायी सम्पत्ति की ज़मानत पर डिबेंचर निकालते हैं और उन्हें कम सूद पर लम्बे समय (२० या ३० वर्षों के लिए) के लिये ऋण के रूप में पूँजी मिल जाती है। जो कारखाने या धंधे बहुत सफल हुए हैं तथा यथेष्ट पुराने हैं और जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी होती है वे प्रति वर्ष होने वाले लाभ में से यथेष्ट रकम सुरक्षित कोष (Reserve fund) में जमा करते जाते हैं और जब कभी उत्पादन बढ़ाने के लिए कारखाने का विस्तार करना होता है तो वह सुरक्षित कोष (Reserve fund) में से रुपया लेकर मशीनें खरीदते, इमारतों का निर्माण कराते हैं। आवश्यकता पड़ने पर पुराने कारखाने या धंधे नये हिस्से भी बेंचते हैं। अस्तु ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया कि जब कोई धंधा या कारखाना स्थापित होता है तब तो अचल पूँजी (Block-capital) की व्यवस्था करने का एक मात्र साधन हिस्से बेंचना है किन्तु पुराने और सफल कारखाने यदि अपने विस्तार के लिए अचल पूँजी चाहते हैं तो वे नये हिस्से बेंच कर, ऋण पत्र (डिबेंचर) निकाल कर अथवा सुरक्षित कोष (Reserve fund) में से रुपया लेकर उसकी व्यवस्था कर सकते हैं।

औद्योगिक प्रधान देशों में कारखाने कार्यशील पूँजी (Woking Capital) का कुछ अंश तो हिस्से बेचकर ही प्राप्त करते हैं परन्तु व्यापारिक बैंकों पर कार्यशील पूँजी के लिए निर्भर रहते हैं। कारखाना अपने पक्के माल अथवा कच्चे माल इत्यादि की ज़मानत पर थोड़े समय के लिये व्यापारिक बैंकों से ऋण ले लेते हैं और जब तैयार माल बिक जाता है तो ऋण चुका दिया जाता है। जिन कारखानों ने बहुत अधिक सुरक्षित कोष जमा कर लिया हो वे उसका उपयोग भी कार्यशील पूँजी के लिये करते हैं। परन्तु अन्य देशों में कारखाने तथा धंधे मुख्यतः व्यापारिक बैंकों पर कार्यशील पूँजी के लिये निर्भर रहते हैं।

भारत में उद्योग धंधों के लिए पूँजी की व्यवस्था—भारत में भी अचल पूँजी के लिये हिस्से बेंच कर ही पूँजी की व्यवस्था की जाती है किन्तु भारत में उद्योग धंधों को पर्याप्त पूँजी नहीं मिलती। केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी के सामने गवाहियां देते हुए भारतीय पूँजी-पतियों ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि उद्योग धंधों को पूँजी इकट्ठा करने में बड़ी कठिनाई होती है। धंधों को पूँजी की जो कठिनाई उठानी पड़ती है उसके नीचे लिखे कारण मुख्य हैं :—

(१) भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, अतएव गाँवों में रहने वाले लोग अधिकतर अपनी बचत को सोने चाँदी के आभूषण तथा भूमि खरीदने में और खेतों का सुधार करने में और अपने गाँव वालों को कर्ज देने में लगाते हैं। मध्यम श्रेणी के वे लोग भी जो कि शहरों में रहते हैं जिनमें छोटे व्यापारी तथा भिन्न भिन्न पेशों के लोग भी सम्मिलित हैं वे अपनी बचत को भूमि, मकान, सरकारी ऋण, म्यूनिसिपल ऋण तथा कैश सर्टिफिकेट और नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट में लगाना पसन्द करते हैं। वे व्यवसाय की जोखिम उठाना नहीं चाहते। बड़े बड़े शहरों तथा व्यापारिक केन्द्रों में भी बहुत बड़ी संख्या में लोग अपनी बचत को उद्योग धंधों में न लगा कर सरकारी सिक्यूरिटियों में लगाते हैं। जहाँ गाँवों का तथा क़स्बों का प्रश्न है वहाँ एक कारण तो यह है कि वे धंधों की जोखिम को उठाना नहीं चाहते दूसरे वहाँ बैंक इत्यादि भी नहीं हैं कि जिनके द्वारा वे कम्पनियों के हिस्सों को खरीद सकें। बड़े बड़े शहरों में भी लोग जो उद्योग धंधों में अपनी बचत नहीं लगाते उसका एक कारण यह है कि वहाँ कंपनियों के हिस्सों की खरीद बिक्री की कोई विशेष सुविधा नहीं है केवल बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में शेयर बाज़ार (Stock Exchange) है। बैंक इत्यादि कंपनियों के शेयरों पर आसानी से ऋण नहीं देते इस कारण भी लोग अपना रुपया शेयरों (हिस्सों) में फँसाने से हिचकते थे। इसके अतिरिक्त उससे पूर्व भारत सरकार की नीति उद्योग धंधों को अधिक प्रोत्साहन न देने की थी इस कारण भी लोग अपनी बचत को उद्योग धंधों में नहीं लगाते थे। भारतीयों का उद्योग धंधों की ओर आकर्षित न होने के केवल यही कारण नहीं थे, एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि कंपनियों के मैनेजिंग एजेंट जो कंपनियों के सर्वेसर्वा हैं वे कंपनियाँ यदि सफल हो जाती हैं तो उनका अधिकांश लाभ अपनी जेब में रख लेते हैं, हिस्सेदारों को बहुत कम लाभ मिलता है और कभी-कभी तो हिस्सेदारों को बहुत धोखा दिया

जाता है। भारत में कंपनियों का संगठन इस प्रकार का होता है कि हिस्सेदारों का उन पर तनिक भी प्रभाव नहीं होता। मैनेजिंग एजेंट ही उनके वास्तविक स्वामी तथा कर्ता-धर्ता होते हैं। ऐसी दशा में कोई कंपनियों के हिस्सों में अपना रुपया क्यों लगाना चाहेगा। यही कारण थे कि भारत में अधिकतर लोग अपनी बचत को उद्योग धंधों में नहीं लगाते थे। किन्तु १६४० के उपरान्त द्वितीय महायुद्ध के फल स्वरूप लोगों का ध्यान इधर गया है और वे उद्योग धंधों में भी अपनी पूंजी लगाने लगे हैं।

अन्य देशों में यदि कोई व्यवसायी अथवा व्यावसायिक बुद्धि रखने वाला व्यक्ति किसी धंधे की योजना तैयार करता है और कंपनी स्थापित करता है तो यदि योजना अच्छी होती है और उसके सफल होने की सम्भावना होती है तो जनता उसके हिस्से खरीद लेती है, यही नहीं वहाँ के बैंक नई कंपनियों के हिस्सों का अभिगोपन (Underwriting) कर देते हैं। किसी-किसी देश में बैंकों के अतिरिक्त पेशेवर अभिगोपक (Underwriter) हैं जो नई कंपनियों के हिस्सों का अभिगोपन करते हैं। अभिगोपन (Underwriting) का अर्थ यह है कि बैंक या अभिगोपक इस बात की ज़िम्मेदारी ले लेता है कि यदि उस कपनी के हिस्से नहीं बिके तो वह शेष सब हिस्से खरीद लेगा। इस कार्य के लिए वह थोड़ा कमीशन लेते हैं। यह बैंक तथा अभिगोपक (Underwriter) उस कंपनी की योजना की जाँच पड़ताल करके ही इस ज़िम्मेदारी को लेते हैं। बैंक तो इसके लिए विशेषज्ञ रखते हैं जो नवीन योजनाओं की छानबीन करते हैं। अतएव जब कोई प्रतिष्ठित बैंक अथवा अभिगोपक(Underwriter) नई कपनी के हिस्सों के न बिकने पर उनको स्वयं मोल लेने की ज़िम्मेदारी ले लेता है तो जनता में उसके प्रति विश्वास जम जाता है और उसके हिस्से बिक जाते हैं। यदि कुछ शेष रह जाते हैं तो बैंक उसको खरीद लेते हैं। फिर आगे क्रमशः उन हिस्सों को जनता को बेंच देते हैं। किन्तु भारतवर्ष में न तो बैंक ही उस कार्य को करते हैं और न पेशेवर अभिगोपक (Underwriter) ही हैं। अस्तु यहां जब तक किसी नई कंपनी के पीछे कोई बड़ा पूँजीपति या व्यवसायी न हो तब तक उसको पूँजी ही नहीं मिल सकती। उदाहरण के लिए यदि बिरला ब्रदर्स किसी नई कपनी को स्थापित करते हैं तो पहले तो वे तथा उनके अन्य मित्र ही उसके हिस्से खरीदते हैं और शेष हिस्से वे जनता को बेंच देते हैं। उनकी प्रसिद्ध-द्रव्य बाज़ार में साख होने के कारण बहुधा तो उस कंपनी के हिस्से बिक जाते हैं अन्यथा वे स्वयं उनको

खरीद कर बेंचने का प्रबंध करते हैं। क्योंकि यही कंपनी को स्थापित करते हैं और उसके यथेष्ट हिस्से अपने अधिकार में रखते हैं अतएव वे अपने को उसका प्रबंधक अर्थात् मैनेजिंग एजेंट नियुक्त कर लेते हैं और इस प्रकार वे उसके सर्वेसर्वा बन जाते हैं। आज देश में स्थिति यह है कि यदि ताता एण्ड सन्स, बिरला ब्रदर्स, डालमिया इत्यादि प्रसिद्ध पूँजीपतियों की मैनेजिंग एजेंसी में कोई नई कंपनी स्थापित होती है तब तो उसको पूँजी मिल जाती है अन्यथा यदि कोई साधारण व्यक्ति जिसमें व्यावसायिक योग्यता है यदि कोई कंपनी स्थापित करता है तो उसको पूँजी ही नहीं मिल पाती।

ऋण पत्र या डिबेंचर निकालने में कठिनाई :—हिस्से बेंचकर प्रारम्भिक पूँजी इकट्ठा करने में जो यहाँ कठिनाई उपस्थित होती है उसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। किन्तु कंपनियाँ स्थापित हो जाने और सफलता पूर्वक चलने के उपरान्त भी यदि किसी कारखाने का विस्तार करने के लिए लम्बे समय के लिए पूँजी की आवश्यकता हो तो डिबेंचरों को बेंचकर पूँजी पा सकना भी यहाँ कठिन है। भारत में डिबेंचरों में भी जनता अपना रुपया नहीं लगाती और न कंपनियाँ ही डिबेंचर निकालना पसंद करता है। सच तो यह है कि भारतवर्ष में डिबेंचर प्रचलित ही नहीं हैं। इसके नीचे लिखे मुख्य कारण हैं :—

(१) जो कंपनी ऋण पत्र या डिबेंचर निकालती है उसकी साख (Credit) बैंक की दृष्टि में गिर जाती है क्योंकि जो ऋण पत्र या डिबेंचर खरीदते हैं उनका कंपनी की सम्पत्ति पर पहला ग्रहणाधिकार (Lien) होता है। यदि किसी कंपनी ने ऋण पत्र या डिबेंचर निकाले हैं तो उसको बैंकों के ऋण मिलना कठिन हो जाता है। यही नहीं उनको कच्चा माल भी साख पर मिलना कठिन हो जाता है। भारत में डिबेंचर निकालना आर्थिक निर्बलता का चिन्ह माना जाता है इस कारण साधारणतः कंपनियाँ डिबेंचर नहीं निकालतीं।

(२) भारतवर्ष में डिबेंचरों के अभिगोपन (Underwriting) की प्रथा नहीं है अतएव डिबेंचर बिक ही जावेंगे उसका निश्चय नहीं रहता। अन्य देशों में कंपनियों के डिबेंचरों को बैंकों के ग्राहक उनकी सलाह पर खरीद लेते हैं। इस प्रकार अधिकतर डिबेंचर तो बैंकों के द्वारा ही बिक जाते हैं, शेष जनता को बेंच दिए जाते हैं। यही कारण है कि वहाँ डिबेंचरों का अभिगोपन कम खर्चे में और आसानी से हो जाता है। भारतवर्ष सर्वसाधारण को

अपनी बचत उद्योग धंधों में लगाने के लिए न तो उचित परामर्श ही मिलने की कोई सुविधा है और न उनको कुछ जानकारी ही है ।

(३) भारत में जो भी कुछ थोड़ी सी अच्छी कम्पनियों ने डिबेंचर निकाले हैं वे कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में हैं इसलिए यहां डिबेंचरों की बाज़ार में खरीद बिक्री स्वतंत्रतापूर्वक नहीं होती। अतएव लोग उनको खरीदने से हिचकते हैं । उदाहरण के लिए ताता स्टील कपनी ने जब डिबेंचर निकाले तो महाराजा ग्वालियर ने सारे के सारे खरीद लिये । इस कारण डिबेंचरों का कोई बाज़ार स्थापित न हो सका ।

(४) भारतीय बैंक अपना रुपया डिबेंचरों में नहीं लगाते और न डिबेंचरों की ज़मानत पर आसानी से अपने ग्राहकों को ऋण ही देते हैं । अन्य देशों में बीमा कम्पनियां अपने कोष को डिबेंचरों में लगाती हैं किन्तु भारतवर्ष में बीमा कंपनियां भी डिबेंचरों में अपना धन नहीं लगातीं ।

(५) भारतवर्ष में जितने सूद पर डिबेंचर बेचे जा सकते हैं उससे कम सूद पर बैंकों से ऋण मिल सकता है अथवा जनता से डिपाज़िट मिल सकती हैं इस कारण भी कंपनियां डिबेंचर नहीं निकालतीं ।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि जहां तक अचल पूँजी (Block capital) का प्रश्न है वह तो यहां हिस्सों को बेंच कर ही प्राप्त की जाती है किन्तु हिस्से भी तभी बिक सकते हैं जब कि कंपनी के पीछे कोई प्रसिद्ध पूँजीपति मैनेजिंग एजेंट अर्थात् प्रबंधक के रूप में हो । मैनेजिंग एजेंट तथा उसके मित्र कंपनी के यथेष्ट हिस्से स्वयं खरीद लेते हैं । इसका दूसरे शब्दों में यह अर्थ हुआ कि अचल पूँजी के लिए भी यहां धंधे परोक्ष रूप से प्रबंधक अर्थात् मैनेजिंग एजेंटों पर निर्भर हैं ।

कार्यशील पूँजी (Working capital) :—भारतवर्ष में धधों को कार्यशील पूँजी चार स्थानों से प्राप्त होती है (१) जनता से डिपाज़िट लेकर, (२) मैनेजिंग एजेंटों से ऋण ले कर अथवा मैनेजिंग एजेंटों तथा अनेक मित्रों से डिपाज़िट लेकर (३) देशी बैंकरो से ऋण ले कर (४) और मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से ऋण लेकर। अब हम प्रत्येक के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

जनता की डिपाज़िट :—यह पद्धति अहमदाबाद और बम्बई में बहुत अधिक प्रचलित है। यों तो अन्य केन्द्रों में भी कारखाने डिपाज़िट स्वीकार करते हैं परन्तु अहमदाबाद और बम्बई में जनता से डिपाज़िट लेने का अधिक प्रचार

है। नीचे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जावेगा कि बम्बई तथा अहमदाबाद में डिपाज़िटों के द्वारा कितनी पूँजी प्राप्त की जाती है।

	बम्बई	अहमदाबाद
	कुल पूँजी का प्रतिशत	कुल पूँजी का प्रतिशत
१ मैनेजिंग एजेंटों से लिया हुआ ऋण	२१%	२४%
२. बैंकों से लिया हुआ ऋण	६%	४%
३. जनता से ली हुई डिपाजिट (जमा)	११%	३६%
४. हिस्सा पूँजी (Share capital)	४६%	३२%
५. डिबेंचर	१०%	१%

जनता से डिपाज़िट साधारणतः एक वर्ष के लिए ली जाती है किन्तु कोई कोई मिल ७ वर्षों के लिए भी डिपाजिट लेती हैं। जहाँ तक सूद का प्रश्न है मिलें बैंकों से कुछ ही अधिक सूद देती हैं अतएव जहाँ तक सूद देने का प्रश्न है मिलें कम सूद पर ही डिपाजट पा जाती हैं। जितना सूद उन्हें बैंकों तथा मैनेजिंग एजेंट या देशी बैंकरों को ऋण पर देना पड़ता है उससे तो कम ही पर उन्हें डिपाज़िट मिल जाती हैं। किन्तु डिपाज़िटों पर कितना सूद देना होगा यह मिल की आर्थिक स्थिति तथा उसके मैनेजिंग एजेंट अर्थात् प्रबंध की साख पर निर्भर होता है। मिलों में अपना रुपया जमा करने की प्रथा इस कारण प्रचलित है कि आरम्भ में बैंक नहीं थे अधिकांश पूँजीपति जो कि मिलों के प्रबंधक बने साहूकारी का काम करते थे। इस कारण मिलों में जनता रुपया जमा करती रही। अब भी जब कि बैंक इत्यादि मौजूद हैं तब भी मैनेजिंग एजेंट के परिचित मित्र जाति बिरादरी के लोग तथा अन्य व्यक्ति जिनका उनमें विश्वास है अपना रुपया मिलों में जमा करते हैं। बम्बई में तो यह प्रथा कुछ कम हो गई है किन्तु अहमदाबाद में यह अधिक प्रबल है।

किन्तु इस प्रथा के कुछ दोष भी है। सबसे बड़ा दोष तो यह है कि यदि कभी आर्थिक मंदी (Depression) आई और मिलों के लाभ कम हुए तो जमा करने वालों में घबराहट फैल जाती है और वे सभी मिलों में से फिर चाहे उनकी आर्थिक स्थिति कैसी ही क्यों न हो अपनी डिपाजिट निकाल लेते हैं। १६२५ २६ तथा १६२६ में बम्बई तथा अहमदाबाद में यही हुआ। मिलों को ऋण लेकर जमा करने वालों को उनका रुपया वापस करना पड़ा। इसके अतिरिक्त जब किसी मिल की आर्थिक स्थिति निर्बल हो जाती है, उसे

हानि होती है अथवा उसके मैनेजिंग एजेंट की बाज़ार में किसी कारण से साख गिर जाती है तो रुपया जमा करने वाले अपना रुपया निकालने के लिए दौड़ पड़ते हैं। मिल को उस समय अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और उसी समय उसको रुपया वापस करना पड़ता है। ऐसी दशा में मिल की स्थिति डवाडोल हो उठती है। यही कारण है कि जनता की डिपाज़िट को "अच्छे समय का मित्र" कहा गया है। जब तक मिलों की आर्थिक स्थिति ठीक रहती है तब तक डिपाज़िट आती रहती हैं और तनिक भी कोई आर्थिक संकट आया कि जमा करने वाले अपना रुपया वापस निकाल लेते हैं। इसके अतिरिक्त इनका एक दोष यह भी है कि आवश्यकता से अधिक डिपाज़िट आने पर उन्हें अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता नहीं तो फिर डिपाज़िटों का आना ही समाप्त हो सकता है। अस्तु मिल उस समय उसका पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर पाती।

व्यापारिक बैंक तथा उद्योग धंधे—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि भारत में बैंक उद्योग धंधों को अधिक आर्थिक सहायता नहीं देते। अन्य देशों में बैंक अपनी पूँजी (Capital) तथा सुरक्षित कोष (Reserve fund) को कम्पनियों के डिबेंचरों को खरीदने में लगाते हैं किन्तु भारत में वे ऐसा नहीं करते। क्योंकि भारतीय बैंक रूढ़िवादी हैं। यही नहीं भारतीय बैंक कम्पनियों की हिस्सा पूँजी (Share capital) का अभिगोपन (Underwriting) भी नहीं करते। अतएव जहाँ तक अचल पूँजी (Block capital) का प्रश्न है उद्योग धंधों को बैंकों से कोई सहायता नहीं मिलती।

जहाँ तक कार्यशील पूँजी (Working capital) का प्रश्न है इम्पीरियल तथा अन्य बैंक व्यापारिक कारखानों के कच्चे माल तथा तैयार माल की ज़मानत पर ऋण देते हैं किन्तु उसमें भी ३० प्रतिशत छूट रखते हैं अर्थात् मिल जितना माल बंधक रूप में उनके पास रखता है उसका अधिक से अधिक ७० प्रतिशत वे ऋण देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मिलों को अन्य स्थानों से ऋण लेकर अपना काम चलाना पड़ता है। बैंक उनकी कार्यशील पूँजी की आवश्यकता को भी पूरा नहीं करते।

बैंकों से ऋण लेने में केवल यही कठिनाई नहीं है कि भारतीय बैंक तरल सम्पत्ति (Liquid assets) की ज़मानत के बिना ऋण देते ही नहीं जब कि

अन्य देशों में बैंक कम्पनी की आर्थिक स्थिति के आधार पर व्यक्तिगत साख पर ऋण दे देते हैं।

इम्पीरियल बैंक को कानून के अन्तर्गत ऋण लेने वाली कम्पनियों से प्रामिसरी नोट पर दो हस्ताक्षरों को करवाना पड़ता है। इसका फल यह हुआ कि वह कम्पनी के डायरेक्टर के अतिरिक्त उस कम्पनी के प्रबन्धक अर्थात् मैनेजिंग एजेन्ट के बिना हस्ताक्षरों के ऋण नहीं देते। अन्य व्यापारिक बैंकों ने भी इसी परिपाटी को अपना लिया है अस्तु जिस कम्पनी का कोई मैनेजिंग एजेन्ट नहीं होता केवल संचालक बोर्ड (Board of Directors) ही उसका प्रबन्ध करते हैं उन्हें बैंक आर्थिक सहायता अर्थात ऋण नहीं देते। बैंकों की इस दोष पूर्ण प्रणाली के कारण कम्पनियों को मैनेजिंग एजेन्ट रखना अनिवार्य सा बन गया है।

जहां तक अपना तैयार माल या कच्चा माल बंधक रूप में रख कर ऋण लेने का प्रश्न है अच्छी मिलें इसे अधिक पसन्द नहीं करतीं क्योंकि ऐसा करने से उनकी साख तथा प्रतिष्ठा को धक्का लगता है और उन्हें अन्य स्थानों से ऋण मिलने में अड़चन होती है।

देशी बैंकरों से प्राप्त ऋण—भारत में कारखानों तथा मिलों को बहुधा देशी बैंकरों (Indigenous bankers) के पास आर्थिक सहायता के लिए जाना पड़ता है। किन्तु देशी बैंकरों के पास वे ही कारखानें या मिलें आर्थिक सहायता के लिये जाती हैं जिनकी पूँजी उनकी आवश्यकता से कम है और उन्हें डिपाजिट या बैंकों से ऋण नहीं मिलता या जिनके मैनेजिंग एजेन्ट प्रसिद्ध व्यवसायी नहीं हैं जो स्वयं ऋण दे सकें। देशी बैंक बहुत अधिक सूद लेते हैं इस कारण उनसे ऋण लेना बहुत अधिक खर्चीला होता है।

मैनेजिंग एजेन्टों द्वारा मिलने वाली आर्थिक सहायता—यह तो हम ऊपर ही कह आये हैं कि भारतवर्ष में धंधों के लिये पूँजी की उचित व्यवस्था नहीं है। न तो यहां संगठित पूँजी का बाजार (Capital market) है और न यहां औद्योगिक बैंक हैं। अतएव मैनेजिंग एजेन्टों को अपने ही आधीन कारखानों के लिए आवश्यकता पड़ने पर पूँजी का प्रबन्ध करना पड़ता है। मैनेजिंग एजेन्ट बहुत बड़े बड़े पूँजीपति होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह स्वयं अपने कारखानों को ऋण देते हैं अथवा अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से

ऋण दिलवाते हैं। किन्तु एक मैनेजिंग एजेन्ट के प्रबन्ध में केवल दो चार कारखाने ही नहीं होते वरन् बहुत होते हैं इस कारण कभी-कभी मैनेजिंग एजेन्टों को भी अपने कारखानों के लिये पूँजी की व्यवस्था करना कठिन हो जाता है फिर भी भारतीय धन्धों को जो भी कहीं से पूँजी मिलती है वह बहुत कुछ मैनेजिंग एजेन्टों के प्रभाव, साख, तथा सहायता से ही मिलती है। यही कारण है कि भारतवर्ष में मैनेजिंग एजेन्ट प्रणाली का उदय हुआ। आज एक प्रकार से मैनेजिंग एजेन्टों का भारतीय धन्धों पर एकाधिपत्य स्थापित है। भारतीय उद्योग धन्धों के विकास में मैनेजिंग एन्जेटों का इतना महत्वपूर्ण भाग है कि उनके सम्बन्ध में कुछ जान लेना आवश्यक है।

मैनेजिंग एजेन्ट—मैनेजिंग एजेन्ट बड़े-बड़े पूँजीपति या उनकी फर्में होती हैं। कभी-कभी यह प्राइवेट लिमिटेड कंपनी बना कर भी मैनेजिंग एजेन्ट का काम करते हैं। मैनेजिंग एजेन्ट नीचे लिखे मुख्य काम करते हैं:—

(१) वे कम्पनियों की स्थापना करते हैं, वे कारखाने की स्थापना के सम्बन्ध में जो भी प्रारम्भिक छान-बीन होती है करते हैं, साधन जुटाते हैं और कम्पनी की स्थापना करते हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई मैनेजिंग एजेन्ट यह समझता है कि हिमालय की तराई के समीप किसी केन्द्र में कागज़ का कारखाना खुल सकता है तो वे सब छान-बीन करके कि लकड़ी या घास किस मूल्य पर मिल सकेगी, शक्ति के उत्पन्न करने में क्या व्यय होगा, मज़दूरों की कमी तो नहीं रहेगी और मज़दूरी कितनी देनी होगी तथा माल की बिक्री के लिए गमनागमन के साधनों की क्या व्यवस्था है इत्यादि बातों की छान-बीन करके जंगल का ठेका इत्यादि लेकर कारखाने के लिये भूमि इत्यादि खरीद कर फिर कंपनी की रजिस्ट्री करा लेगा। अतएव किसी कम्पनी के स्थापित करने में जितनी भी प्रारम्भिक कार्यवाही तथा व्यय करना पड़ता है वह सब मैनेजिंग एजेन्ट करते हैं।

(२) मैनेजिंग एजेन्ट एक प्रकार से पूँजी के अभिगोपन (Capital underwriting) का भी काम करते हैं। वे कम्पनी के यथेष्ट हिस्से स्वयं खरीद लेते हैं तथा उनके मित्र और सम्बन्धी भी यथेष्ट हिस्से खरीदते हैं। यही नहीं जनता को जो हिस्से बेंचे जाते हैं वे भी मैनेजिंग एजेन्ट के नाम से ही बिकते हैं यदि मैनेजिंग एजेन्ट की प्रसिद्धि अच्छी है जो शेष हिस्से शीघ्र बिक जाते हैं। कार्यशील पूँजी की व्यवस्था भी मैनेजिंग एजेन्ट ही करता है।

(३) मैनेजिंग एजेन्ट अपने मित्रों को ही कम्पनी डाइरेक्टर बना देते हैं और कुछ डाइरेक्टर वे स्वयं मनोनीत करते हैं। बात यह है कि मैनेजिंग एजेंट तथा उनके मित्रों के पास यदि २५ या ३० प्रतिशत भी हिस्से हुए तो वे जो चाहें वह कर सकते हैं क्योंकि हिस्सेदार जो कि भारतवर्ष भर में फैले हुए हैं वे तो कभी साधारण वार्षिक सभा में आते नहीं इस कारण मैनेजिंग एजेंट तथा उनके मित्र कम्पनी के सर्वेसर्वा बन जाते हैं। इस प्रकार कम्पनी के डायरैक्टर वस्तुतः मैनेजिंग एजेंट के ही आश्रित होते हैं। मैनेजिंग एजेंट २० वर्षों के लिए उस कम्पनी के प्रबन्ध करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है। कम्पनी की इस सेवा के उपलक्ष्य में यह कई हज़ार रुपये आफिस अलाऊंस लेते हैं तथा १० प्रतिशत या उसके लगभग लाभ लेते हैं। मैनेजिंग एजेंट को डायरैक्टर चाहें तो २० वर्षों के लिए फिर मैनेजिंग एजेंट नियुक्त कर सकते हैं। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि कम्पनी के डायरैक्टर मैनेजिंग एजेंट के ही आदमी होते हैं इस कारण वास्तव में मैनेजिंग एजेंसी स्थायी होती है, उन्हें कभी हटाया नहीं जा सकता। अपने सम्बन्धियों को ऊँचे पदों पर नौकर रखकर तथा कच्चे माल की खरीद तथा तैयार माल की बिक्री पर लाभ उठाकर मैनेजिंग एजेंट खूब लाभ कमाते हैं और इसके बदले वे कम्पनी का प्रबन्ध देखते हैं, उसे चलाते हैं।

मैनेजिंग एजेंटों की सहायता से जहाँ इस देश में बहुत धंधों की स्थापना हुई है वहां इस प्रणाली में एक दोष भी है। शिक्षित भारतीय जिनमें व्यावसायिक योग्यता हो कम्पनी स्थापित नहीं कर सकते। बिना मैनेजिंग एजेंट के कोई नया धंधा स्थापित नहीं हो सकता। भारत जैसे विशाल देश में जिसके साधन असीम हैं यदि धंधों की स्थापना केवल थोड़े से पूँजीपतियों के हाथ में ही रही तो एक तो देश की औद्योगिक उन्नति की गति धीमी रहेगी दूसरे यह देश के हित में भी न होगा कि धंधों पर थोड़े से उद्योगपतियों का एकाधिपत्य स्थापित हो जावे। मैनेजिंग एजेंट पद्धति में एक दोष यह भी है कि यह फर्में उद्योगपतियों की मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्रों के अधिकार में जाती हैं अर्थात् मैनेजिंग एजेंट के उत्तराधिकारी ही मैनेजिंग एजेंट होते हैं इससे भविष्य में कम्पनियों का प्रबन्ध अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में चला जाता है।

यही कारण है कि अर्थशास्त्र के विद्वानों का यह मत था कि उद्योग धंधों के लिए पूँजी की व्यवस्था करने के लिए औद्योगिक अर्थ प्रबन्धक कारपोरेशन

(Industrial Finance Corporation) की स्थापना की जावे। केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने भी इस मत का समर्थन किया था। बंगाल तथा संयुक्तप्रान्तीय सरकारों ने छोटे-छोटे धंधों को आर्थिक सहायता देने के लिए कारपोरेशनों की स्थापना की थी किन्तु यह दोनों संस्थायें केवल छोटे धंधों को ही पूंजी देने की व्यवस्था करती थीं फिर उनके साधन इतने कम थे कि वे विशेष लाभदायक न हो सकीं। हर्ष की बात है कि भारत सरकार एक बहुत बड़ी संस्था इंडस्ट्रियल फाइनैंस कारपोरेशन के नाम से स्थापित करने जा रही है। उसका बिल तैयार हो गया है। शीघ्र ऐक्ट बनाकर भारत सरकार उसकी स्थापना कर देगी। इस कारपोरेशन से नवीन धंधों को पूँजी की कुछ सुविधा हो जावेगी। प्रस्तावित औद्योगिक अर्थ प्रबन्धक कारपोरेशन (Industrial Finance Corporation) का विधान इस प्रकार है।

इंडस्ट्रियल फाइनैंस कारपोरेशन

इस कारपोरेशन की स्थापना १ जुलाई १६४८ को हुई। इसका उद्देश्य उन सीमित उत्तरदायित्व वाली कम्पनियों तथा सहकारी समितियों को माध्यमिक तथा लम्बे काल के लिए आर्थिक सहायता देना है जो कच्चे माल को पक्के माल में परिणत करने, खनिज सम्बन्धी कार्य करने, तथा विद्युत या अन्य प्रकार की शक्ति को उत्पन्न करने का कार्य करें।

इस कारपोरेशन का प्रबन्ध १२ डायरैक्टरों का एक बोर्ड करता है। इसमें ४ डायरैक्टर केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं। केन्द्रीय सरकार ३ साधारण डायरैक्टर मनोनीत करती है और एक मैनेजिंग डायरैक्टर मनोनीत करती है। इनके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक के दो डायरैक्टर, शिडूल बैंकों के दो डायरैक्टर, बीमा कंपनी, इनवैस्टमैंट ट्रस्ट इत्यादि के दो डायरैक्टर, तथा सहकारी बैंकों के दो डायरैक्टर होंगे।

कारपोरेशन की अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) दस करोड़ रुपए है जो कि बीस हज़ार हिस्सों में बंटी हुई है। प्रत्येक हिस्सा पाँच हज़ार रुपए का है। इन हिस्सों में से अभी केवल दस हज़ार हिस्से जिनका मूल्य पाँच करोड़ रुपए हैं बेंचे गए हैं। अर्थात् कारपोरेशन की चुकता पूँजी (Paid up Capital) केवल पाँच करोड़ रुपए है। आगे चल कर जब कभी आवश्यकता होगी शेष हिस्से बेचे जावेंगे। इस पाँच करोड़ रुपए की पूँजी इस प्रकार इकट्ठी हुई है। (१) केन्द्रीय सरकार

को एक करोड रुपए के मूल्य के दो हज़ार हिस्से, (२) रिज़र्व बैंकों को एक करोड रुपए के दो हजार हिस्से, (३) शिडूल बैंकों को एक करोड २५ लाख रुपए के दो हजार पाँच सौ हिस्से (४) बीमा कम्पनियों तथा इनवेस्टमेंट ट्रस्टों को एक करोड २५ लाख रुपए के दो हजार पाँच सौ हिस्से तथा सहकारी बैंकों को पचास लाख रुपए के एक हजार हिस्से दिए गए। केन्द्रीय सरकार ने ७६ हिस्से जो कि सहकारी बैंकों ने नहीं खरीदे और अधिक खरीद लिए।

कारपोरेशन को विधान के अनुसार अपनी चुकता पूँजी और रक्षित कोष के पाँच गुने मूल्य के बांड निकालने का अधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों में जब कारपोरेशन की चुकता पूँजी दस करोड रुपए हो जावेगी और रक्षित कोष चुकता पूँजी के बराबर हो जावेगी तो कारपोरेशन १०० करोड रुपए का ऋण ले सकेगी।

कारपोरेशन उद्योग धन्धों के लिए अचल लेनी (Fixed Assets) अर्थात् मशीन इमारत इत्यादि को प्राप्त करने में आर्थिक सहायता देगी। चालू व्यय के लिए वह ऋण नहीं देगी। थोड़े समय के लिए चालू व्यय के लिए उद्योग धन्धों को पूर्ववत व्यापारिक बैंक ही ऋण देंगे। कारपोरेशन व्यापारिक बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा न करके केवल लम्बे तथा माध्यमिक काल के लिए उद्योग धन्धों को आर्थिक सहायता देगी।

(१) कारपोरेशन को अधिकार होगा कि यदि कोई कम्पनी खुले द्रव्य बाजार में कोई ऋण लेना चाहे तो कारपोरेशन उस ऋण की अदायगी की गारंटी कर दे जिससे कि कम्पनी को वह ऋण आसानी से मिल जावे। किन्तु इस प्रकार का ऋण पच्चीस वर्षों से अधिक के लिए नहीं होगा। (२) कारपोरेशन किसी कम्पनी के हिस्सों (Shares), ऋण पत्रों (Debentures) अथवा बाँडों का अभिगोपन (Underwrite) करके उस कम्पनी को लम्बे समय के लिए पूँजी इकट्ठा करने में सहायता दे। (३) कारपोरेशन किसी कम्पनी को सीधे ऋण देकर अथवा उसके ऋण पत्रों को खरीद कर भी कम्पनी की आर्थिक सहायता कर सकती है। किन्तु इस प्रकार का ऋण २५ वर्षों से अधिक के लिए नहीं होना चाहिए।

व्यवहार में कारपोरेशन नई कम्पनियों द्वारा निकाले गए हिस्सों का अभिगोपन (Underwriting) करेगी। जब कोई व्यवसायी अपनी योजना को कारपोरेशन के सामने रक्खेगा तो कारपोरेशन उसको अपने

विशेषज्ञों को देगी। यदि कारपोरेशन के विशेषज्ञ उस योजना का समर्थन करेंगे तो कारपोरेशन उस कम्पनी के हिस्सों का अभिगोपन कर देगी। इसका परिणाम यह होगा कि जनता में उस नवीन कम्पनी की सफलता में विश्वास बढ़ेगा और अधिक सम्भावना इस बात की होगी कि उसके सब हिस्से बिक जावें। यदि कुछ हिस्से नहीं बिके तो कारपोरेशन स्वयं खरीद लेगी। कारपोरेशन शीघ्र ही उन हिस्सों को फिर जनता को बेच देगी। किसी भी दशा में कारपोरेशन सात वर्षों से अधिक किसी हिस्से को अपने पास नहीं रख सकती। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि कारपोरेशन किसी कम्पनी के हिस्से खरीद कर अपने पास नहीं रख सकती। कारपोरेशन किसी कम्पनी के हिस्सों को सीधे खरीद नहीं सकती। किसी एक कम्पनी को पचास लाख रुपये से अधिक की आर्थिक सहायता नहीं दी जा सकती।

कारपोरेशन किसी कम्पनी को उसकी अचल लेनी (Fixed Assets) की ज़मानत पर ही ऋण दे सकती है अथवा उसको दिए हुए ऋण की गारंटी कर सकती है। किन्तु ऋण देते समय बंधक रक्खी हुई लेनी (Asset) का मूल्य ही एकमात्र आधार नहीं होगा। उस कम्पनी के लाभ कमाने की सम्भावना, उस कम्पनी का भविष्य, उसकी आर्थिक स्थिति, उसका उत्पादन व्यय, उस योजना की उपादेयता उसके प्रबन्धकों की योग्यता, कच्चे माल की प्राप्ति, उत्पादन के अन्य साधनों की प्राप्ति, धन्धे का स्थान और सबसे अधिक धन्धे का राष्ट्र के लिए महत्व इत्यादि बातों को आर्थिक सहायता देने के समय ध्यान में रक्खा जावेगा।

किसी कम्पनी को साख देने से पूर्व कारपोरेशन उस कारखाने की जाँच अपने कर्मचारियों से करा लेगा जो कि उस योजना के बारे में अपनी रिपोर्ट देंगे। जब उनकी रिपोर्ट से यह ज्ञात होगा कि योजना ठीक है तभी ऋण दिया जावेगा। इसके अतिरिक्त उस कम्पनी का प्रबंध ठीक हो तथा उसको दिए हुए ऋण का ठीक-ठीक उपयोग हो इस उद्देश्य से उस कम्पनी के डायरेक्टरों तथा मैनेजिंग एजेंसी के साझीदारों को व्यक्तिगत रूप से कम्पनी के दिए गए ऋण की गारंटी करनी होगी। कारपोरेशन उस कम्पनी के बोर्ड में अपने दो डायरेक्टर मनोनीत करेगी। कारपोरेशन उन कम्पनियों के लाभ को ६ प्रतिशत पर सीमित कर देती है जिन्होंने कारपोरेशन से ऋण लिया है। कारपोरेशन की सहमति से लाभ को बढ़ाया जा सकता है।

इस प्रकार के कारपोरेशन की देश के लिये बहुत बड़ी आवश्यकता थी

क्योंकि औद्योगिक उन्नति के लिए पूँजी की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है और इसी कारण धन्धों को स्थापित करने का काम बड़े-बड़े पूँजीपति ही करते हैं। किन्तु केवल एक कारपोरेशन से भारत जैसे विशाल देश के गृह उद्योग धन्धों तथा छोटे-छोटे वर्कशापों तथा कारखानों की स्थापना के लिए पूँजी का प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। इसके लिए प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय कार्पोरेशन स्थापित होने चाहिए।

एक वर्ष के कार्यकाल में कारपोरेशन से १५६ कम्पनियों ने आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। ६५ कम्पनियों ने आर्थिक सहायता के लिए प्रार्थना की। वे लगभग १० करोड़ ३३ लाख रुपये की सहायता चाहती थीं इनमें से २१ के प्रार्थना पत्र स्वीकृत हुए और उनको ३ करोड़ ४२ लाख रुपये का ऋण देना स्वीकार किया गया। ३३ प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिए गए। कारपोरेशन ने ५ से ५½ प्रतिशत ब्याज पर ऋण दिया। जो ऋण पहले वर्ष दिया गया उसका ब्योरा इस प्रकार है।

	रुपये
१—कपड़े के कारखानों के लिए यंत्र बनाने के कारखाने	४१ लाख
२—आयल ऐंजिन	१० लाख
३—रासायनिक पदार्थ	५६ लाख ५० हजार
४—शीशे और चीनी मिट्टी के कारखाने	६० लाख
५—सीमेंट	४० लाख
६—इलैक्ट्रिक इंजिनियरिंग	२६ लाख
७—तेल की मिलें	१ लाख ७५ हजार
८—विद्युत शक्ति	३ लाख
९—खनिज सम्बन्धी धन्धे	२० लाख
१०—लोहा और स्टील	१५ लाख ५० हजार
११—सूती वस्त्र	४० लाख
१२—ऊनी वस्त्र	५ लाख
१३—जिनका वर्गीकरण नहीं हुआ	११.५० लाख
	कुल ३ करोड़ ४२ लाख २५ हजार

गृह-उद्योग धंधों (Cottage industries) तथा छोटे कारखानों और मध्यम श्रेणी के धंधों को पूँजी की कठिनाई

गृह-उद्योग-धंधों की स्थिति तो अत्यन्त दयनीय है। कारीगर कुछ महाजन व्यवसायियों का क्रीतदास बन जाता है और महाजन उनका शोषण करता है। पूंजी के सम्बन्ध में गृह-उद्योग धंधों की स्थिति इस प्रकार है। कुछ महाजन होते हैं जो किसी धंधे विशेष का कारबार करते हैं। उदाहरण के लिए हम दरी बनाने या कपड़ा बुनने का धन्धा लेते हैं। कारीगर महाजन से सूत उधार ले जाता है किन्तु शर्त यह होती है कि जो माल वह तैयार करेगा वह उसी महाजन को देना होगा। होता वास्तव में यह है कि महाजन व्यवसायी कारीगर को सूत देते समय यह भी बतला देता है कि उसे किस प्रकार का समान तैयार करना होगा। जब कारीगर माल तैयार करके लाता है तो महाजन व्यवसायी उनको कम से कम मूल्य पर माल ले लेता है और सूत की अधिक से अधिक कीमत काट कर उसे मज़दूरी दे देता है। बेचारा कारीगर एक प्रकार से महाजन व्यवसायी का दास बन जाता है और उसे कम से कम मज़दूरी मिलती है। पिछले कुछ वर्षों से प्रान्तों में औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना की गई है जो कारीगरों को साख (Credit) देती हैं उनको उचित मूल्य पर कच्चा माल देती हैं तथा उनके माल बेंचने का प्रबन्ध करती हैं। किन्तु अभी तक यह औगोगिक सहकारी समितियां (Industrial CooperativeSocieties) इनी-गिनी ही हैं और गृह-उद्योग धंधों के लिए पूंजी का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। गृह-उद्योग धंधों में लगे हुए कारीगरों का शोषण होता है। व्यापारिक बैंक इन धंधों को कोई आर्थिक सहायता नहीं देते।

गृह-उद्योग धंधों के अतिरिक्त मध्य श्रेणी के धन्धों के लिए भी देश में पूंजी के प्रबन्ध की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। उदाहरण के लिए चावल, आटा तथा तेल की मिलें, दियासलाई, शीशा, सिगरट, लाख, चमड़ा के कारखानों, कपास के पेंच, प्रेस, दरी तथा मोज़े के कारखाने, तथा रेशमी कपड़े के कारखानों और रासायनिक पदार्थों को तैयार करने के कारखानों को भी पूंजी का टोटा रहता है। बैंक इन धन्धों को कार्यशील पूंजी (Working Capital) नहीं देते इसका कारण यह कि इन कारखानों तथा धन्धों को स्थापित करने वाले व्यक्ति मध्यम श्रेणी के होते हैं अस्तु न तो वे ऐसे माल की ज़मानत दे सकते हैं कि जो आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र ही बेंचा

जा सके और न वे ऐसे किसी प्रसिद्ध व्यवसायी के हस्ताक्षरों को जमानत ही दे सकते हैं कि जिसको बैंक स्वीकार करें अस्तु इन धन्धों को बैंकों से कोई भी आर्थिक सहायता नहीं मिलती। आवश्यकता पड़ने पर यह लोग देशी बैंकरों तथा साहूकारों से ऊंची दर पर ऋण लेते हैं।

प्रान्तीय बैंकिंग जाँच कमेटियों ने इन धन्धों का तथा गृह उद्योग धन्धों का अध्ययन किया था। कमेटियों का मत था कि छोटे कारखानों तथा मध्यम श्रेणी के धधों के लिए पूँजी की कोई उचित व्यवस्था नहीं है। बैंकिंग कमेटियों का यह भी मत था कि गृह-उद्योग धधों को भी बैंक आर्थिक सहायता नहीं देते। हाथ कर्घों से सूती कपड़ा तैयार करने का धधा, रेशमी और ऊनी कपड़े बनाने का धधा, बीड़ी तथा सिगरेट का धधा, चटाई बनाने का धधा, गुड़ बनाने का धधा, तेल पेरने का धधा, रस्सी बनाने का धधा, दरी बुनने का धंधा, खिलौने बनाने का धंधा, घी दूध का धधा, मुर्गी पालने का धधा, तथा लकड़ी का धधा इत्यादि अन्य गृह-उद्योग धधे जो देश भर में फैले हुए हैं महाजनों पर अवलम्बित हैं जो उन्हें कच्चा माल उधार देते हैं तथा उन्हें जीवन निर्वाह के लिए थोड़ा नकदी भी दे देते हैं और उनके तैयार माल को बहुत थोड़े मूल्य पर खरीद लेते हैं। इस प्रकार बेचारे कारीगर का ऐसा भयंकर शोषण होता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अधिकांश कारीगर महाजन व्यवसायियों का जीवन भर ऋणी रहता है। वह कभी भी महाजन व्यवसायी का ऋण नहीं चुका पाता अतएव उसका जीवन भर शोषण होता है। इसका फल यह होता कि इन धंधों की स्थिति दयनीय है।

आवश्यकता इस बात की है कि छोटे कारखानों, मध्यम श्रेणी के धन्धों के लिए तो प्रान्तीय औद्योगिक अर्थ प्रबन्धक कारपोरेशन स्थापित किये जावें कि जो इन धन्धों को आर्थिक सहायता दें तथा गृह उद्योग धन्धों के लिए औद्योगिक सहकारी समितियाँ स्थापित की जावें। तभी धन्धों की पूँजी की समस्या हल हो सकती है। बड़े बड़े कारखानों तथा धन्धों के लिये पूँजी की व्यवस्था प्रस्तावित भारतीय औद्योगिक अर्थ प्रबन्धक संघ करेगा।

अध्याय—२१

भारतीय समाशोधन गृह अर्थात् क्लियरिंग हाउस (Clearing House)

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि किसी भी देश में जब व्यापारिक बैंकों की स्थापना हो जाती है तो क्लियरिंग हाउस की आवश्यकता पड़ती है। बिना समाशोधन गृह (क्लियरिंग हाउस) के बैंकिंग व्यवसाय की उन्नति एक स्थान पर जाकर रुक जाती है। क्लियरिंग हाउस से होने वाले अनेकों लाभों को यहाँ गिनना आवश्यक नहीं है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि क्लियरिंग हाउस की स्थापना बैंक के कर्मचारियों को एक दूसरे से चेक तथा ड्राफ्ट इत्यादि का रुपया वसूल करने के लिए बार बार जाना नहीं पड़ता, और न इन पुर्ज़ों का भुगतान ही नकद रुपयों में करना पड़ता है जिससे मार्ग में रुपयों के लुट जाने का भय नहीं रहता और इसकी स्थापना से बैंकों को अधिक नकद को (Cash Balances) नहीं रखना पड़ता। क्लियरिंग हाउस की स्थापना से बैंक कम नकदी रखकर भी अपना काम चला सकते हैं। यह एक ऐसा लाभ है जिससे बैंकों की कार्य क्षमता बढ़ती है।

भारतवर्ष में नीचे लिखे स्थानों पर क्लियरिंग हाउस स्थापित हो चुके और सफलता पूर्वक काम कर रहे हैं :—बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, देहली, मद्रास, आगरा, इलाहाबाद, अहमदाबाद, अमृतसर, कालीघाट, कोयम्बटूर, देहरादून, जालंधर, लखनऊ, लायलपुर, मदूरा, मंगलौर, नागपुर, पटना, शिमला तथा बंगलौर हिन्दुस्तान में तथा लाहौर, करांची, और रावलपिंडी पाकिस्तान में।

ऊपर की तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में अभी क्लियरिंग हाउस की सुविधा बहुत थोड़े से स्थानों पर है। यह बैंकिंग व्यवसाय के लिए अनिवार्य आवश्यकता है। आज अधिकांश बड़े शहरों में यथेष्ट बैंक हैं परन्तु वहाँ क्लियरिंग हाउस स्थापित नहीं हुए हैं। रिजर्व बैंक को इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिये। बनारस, मेरठ, बरेली, जबलपुर, जमशेदपुर, सूरत, पूना, जैसे व्यापारिक नगरों में इतने अधिक बैंक होते हुए भी क्लियरिंग हाउस न होना किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता।

सदस्यता—प्रत्येक स्थान की क्लियरिंग एसोसियेशन एक स्वतंत्र संस्था होती है और उसके अपने नियम होते हैं। परन्तु कुछ क्लियरिंग हाउस को छोड़कर अधिकांश स्थानों की क्लियरिंग एसोसियेशनों ने यह नियम बना दिया है कि जिस बैंक की चुकता पूँजी (Paid up capital) पांच लाख रुपये हो वही उसका सदस्य हो सकता है। कलकत्ता तथा कुछ अन्य क्लियरिंग हाउसों का नियम यह है कि जिन बैंकों की चुकता पूँजी १० लाख रुपये हो वही उसके सदस्य हो सकते हैं। केवल यह शर्त पूरी हो जाने मात्र से ही कोई बैंक क्लियरिंग हाउस का सदस्य नहीं बन जाता। बैंक को क्लियरिंग हाउस के मंत्री को एक प्रार्थना पत्र देना पड़ता है जिसका प्रस्ताव और समर्थन क्लियरिंग हाउस के सदस्य ही कर सकते हैं और जब तीन चौथाई सदस्य उस बैंक के पक्ष में अपना मत दें तभी वह बैंक सदस्य बन सकता है। इस नियम का परिणाम यह हुआ कि जिन व्यापारिक केन्द्रों में ऐक्सचेंज बैंक का प्रभाव तथा बहुमत था वहां भारतीय बैंकों को सदस्य बनने में बड़ी कठिनाई हुई। होना यह चाहिये कि सदस्यता के नियम तनिक सरल बना दिये जावें। जो भी शिड्यूल बैंक हो उन्हें क्लियरिंग हाउस का सदस्य स्वीकार कर लिया जावे।

उप-सदस्य—जो बैंक ऊपर की शर्तों को पूरा नहीं करते हैं अर्थात् जिनकी चुकता पूँजी २० लाख या ५ लाख से कम है और उनकी ब्रांच उस केन्द्र में है जहाँ क्लियरिंग हाउस है तो वे उप-सदस्य बनने की प्रार्थना कर सकते हैं। ऐसे बैंकों को एक प्रार्थना पत्र किसी सदस्य बैंक के द्वारा क्लियरिंग एसोसियेशन के मंत्री को देना होता है। जिस सदस्य बैंक के द्वारा प्रार्थना पत्र दिया जाता है उसे प्रवेश कर्ता बैंक (Sponsor Bank) कहते हैं। प्रवेश कर्ता बैंक (Sponsor Bank) को प्रार्थना करने वाले बैंक की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है तब वह उप सदस्य बना लिया जाता है।

प्रबन्ध—क्लियरिंग हाउस का प्रबन्ध एक प्रबन्धकारिणी समिति करती है जिस पर एक सदस्य रिज़र्व बैंक का (यदि वहां रिज़र्व बैंक की ब्रांच हो) एक सदस्य इम्पीरियल बैंक का तथा ऐक्सचेंज बैंक और मिश्रित पूँजी वाले बैंकों (Joint Stock Banks) के निर्धारित प्रतिनिधि होते हैं। बम्बई और कलकत्ता जैसे बड़े केन्द्रों के ऐक्सचेंज बैंकों का बहुत अधिक प्रतिनिधित्व और प्रभाव है।

निरीक्षक बैंक—(Supervising Bank) जहां रिज़र्व बैंक की ब्रांच है वहां तो रिज़र्व बैंक ही क्लियरिंग हाउस के निरीक्षक बैंक का काम करता है और जहाँ रिज़र्व बैंक की ब्रांच नहीं होती वहाँ इम्पीरियल बैंक यह काम करता है। प्रत्येक सदस्य बैंक को निरीक्षक बैंक के पास एक निश्चित रकम जमा करनी पड़ती है। कलकत्ता और बम्बई को छोड़कर अन्य स्थानों पर दिन भर में केवल एक बार निष्कासन (Clearing) होता है किन्तु बम्बई और कलकत्ता में दिन में दो बार निष्कासन होता है। अब हम नीचे कलकत्ता में निष्कासन (Clearing) किस प्रकार होता है उसका संक्षिप्त विवरण देंगे।

कलकत्ता क्लियरिंग हाउस—कलकत्ता के सदस्य तथा उप-सदस्य बैंकों के सब चेक, बिल, तथा प्रलेखों (Documents) का निष्कासन (Clearing) क्लियरिंग हाउस द्वारा होता है। किसी उप-सदस्य बैंक को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने चेक या बिल इत्यादि सीधे क्लियरिंग हाउस को दे सके। उप-सदस्य के चेक इत्यादि उसके प्रवेश कर्त्ता बैंक (Sponsor-Bank) के द्वारा ही क्लियरिंग हाउस को दिये जा सकते हैं। होता यह है कि प्रवेश कर्त्ता बैंक का प्रतिनिधि अपने बैंक के रजिस्टर में ही उप-सदस्य के चेक इत्यादि चढ़ा लेता है।

प्रत्येक सदस्य बैंक को क्लियरिंग हाउस में एक प्रतिनिधि रखना पड़ता है और उसे एक रजिस्टर देना पड़ता है जिसमें उन सब चेकों, बिलों और प्रलेखों (Documents) को वह दर्ज कर लेता है जो उसे अन्य बैंकों से प्राप्त होते हैं अथवा वह अन्य बैंकों को देता है।

प्रत्येक सदस्य बैंक का प्रतिनिधि एक पृथक् स्लिप पर उन सब चेकों, बिलों और प्रलेखों (Documents) का ब्योरा तथा रकम लिख लेता है जो कि वह अन्य सदस्य बैंकों को देता है और उस रकम को वह सदस्य बैंकों के नाम रजिस्टर में लिख लेता है। तदुपरान्त प्रत्येक सदस्य बैंक का प्रतिनिधि दूसरे सदस्य बैंकों के प्रतिनिधियों को उन पर लिखे गए चेकों और बिलों इत्यादि का बंडल तथा उनके ब्योरे की स्लिप दे देता है और वे अपने रजिस्टर में उनको दर्ज कर लेते हैं। स्लिपों को बिलों, चेकों तथा प्रलेखों से मिलाकर प्रत्येक प्रतिनिधि अपने रजिस्टर के दोनों कालमों को जोड़ लेता है। इससे उसे यह ज्ञात हो जाता है कि उसको अन्य सदस्य बैंकों को कुल कितना देना है और उनसे कुल कितना लेना है तथा उसके बैंक को अन्त में

कितना देना या लेना है। इतना कर चुकने के उपरान्त वह रजिस्टर को क्लियरिंग हाउस के निरीक्षक को सौंप देता है।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि कलकत्ते में प्रति दिन दो साधारण निष्कासन (Clearing) होते हैं परन्तु एक विशेष निष्कासन सायंकाल को और होता है जिनमें वापस किए हुये चेक, बिल तथा प्रलेखों का निष्कासन (Clearing) होता है और जिस बैंक के चेक इत्यादि वापस कर दिये जाते हैं उसको उतनी रकम देनी पड़ती है।

कलकत्ते में जो बहुत से छोटे बैंक हैं और जिन्हें क्लियरिंग हाउस का सदस्य होने का गौरव प्राप्त नहीं है उन्होंने एक नई संस्था को जन्म दिया है जिसे मैट्रापालिटन बैंकिंग एसोसियेशन कहते हैं। यह संस्था उन बैंकों के चेकों बिलों तथा प्रलेखों के निष्कासन (Clearing) की व्यवस्था करती है। उसमें दिन में केवल एक बार निष्कासन होता है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में निष्कासन की व्यवस्था बहुत असंतोषजनक है और भविष्य में सभी केन्द्रों में क्लिरिंग हाउसों की स्थापना होना आवश्यक है। यही नहीं क्लियरिंग हाउस के सदस्य होने के लिए जो कड़ी शर्तें रख दी गई हैं उन्हें भी नरम करने की ज़रूरत है।

अध्याय—२२

भारतीय द्रव्य-बाज़ार (Indian Money Market)

भारतीय द्रव्य-बाज़ार के भिन्न विभागों में घनिष्ठ सम्बन्ध का न होना—भारतीय द्रव्य-बाज़ार को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—पहला योरोपियन या केन्द्रीय भाग कहलाता है और दूसरा भारतीय या बाज़ार भाग कहलाता है। रिज़र्व बैंक आफ इंडिया, इम्पीरियल बैंक तथा ऐक्सचेंज बैंक (विनिमय बैंक) योरोपियन या केन्द्रीय भाग के अन्तर्गत हैं और साहूकार, देशी बैंकर, ऋण कार्यालय, चिट फंड तथा निधी भारतीय बाज़ार भाग के अन्तर्गत आते हैं। भारतीय मिश्रित पूँजी वाले बैंक तथा सहकारी बैंकों (Co-operative Banks) की स्थिति इन दोनों के बीच की है। भारतीय द्रव्य-बाज़ार के इन विभिन्न भागों में अपूर्ण सम्बन्ध है क्योंकि भारतीय बैंकिंग का संगठन अच्छा नहीं है और न एक दूसरे से वे अच्छी तरह सम्बद्ध ही हैं। १९३५ तक अर्थात् रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व तो उनको आपस में मिलाने वाला कोई केन्द्रीय बैंक भी नहीं था। द्रव्य-बाज़ार का केन्द्रीय भाग सरकार की मुद्रा नीति (Currency Policy) से बहुत अधिक प्रभावित रहता है और उसके द्वारा सरकार बैंक रेट (Bank Rate) पर भी प्रभाव डालती रही है। यही कारण है कि भारतीय द्रव्य-बाज़ार दोषपूर्ण है और संसार की अन्य उन्नत द्रव्य-बाज़ारों की समता नहीं कर सकता।

केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के अभाव में १९३५ तक इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्य करता था। व्यवहार में अन्य बैंक उसके पास अपनी नकदी रखते थे। वह भारत सरकार की सिक्यूरिटियों पर व्यापारिक बैंकों को ऋण देता था। यद्यपि बैंकों के लिए यह एक बड़ी सुविधा थी किन्तु अधिक ऊँचा सूद लेने के कारण व्यापारिक बैंकों के लिए उनका लाभ कम हो जाता था। पहले भारत सरकार से और अब रिज़र्व बैंक से इम्पीरियल बैंक को जो विशेष सुविधायें मिली हुई हैं उनके कारण मिश्रित पूँजी वाले बैंक (Joint Stock Banks) उसे अपना अनुचित प्रतिद्वन्दी ही मानते आये हैं न कि मित्र और सहायक और इसी कारण मिश्रित पूँजी वाले बैंकों तथा इम्पीरियल बैंक में कभी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित न हो सका।

भारतीय मिश्रित पूँजी वाले बैंक एक्सचेंज बैंकों (विनिमय बैंकों) को भी अपना प्रबल प्रतिस्पर्द्धी और विरोधी मानते हैं क्योंकि विनिमय बैंकों के साधन बहुत अधिक हैं वे कम सूद पर यथेष्ट डिपाज़िट प्राप्त कर लेते हैं और वे बन्दरगाहों तथा भीतरी व्यापारिक केन्द्रों में देश के अन्दरूनी व्यापार को भी हथिया लेना चाहते हैं।

प्रान्तीय सहकारी बैंक (Provincial Co-operative Banks) इम्पीरियल बैंक के पास थोड़ी सी चालू जमा (Current Deposit) रखते हैं और इम्पीरियल बैंक उन्हें नकद साख (Cash Credit) तथा ओवर ड्राफ्ट (अधिविकर्ष) देता है। सेन्ट्रल सहकारी बैंक भी इम्पीरियल बैंक या कुछ बड़े मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से चालू खाता (Current Account) रखते हैं किन्तु प्रारम्भिक सहकारी समिति या केवल सहकारी बैंकों से ही सम्बन्ध रखती है, इम्पीरियल बैंक या मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

सहकारी बैंकों (Co-operative Banks) का देशी बैंकरों तथा महाजनों और साहूकारों से तनिक भी सम्बन्ध नहीं होता। मिश्रित पूँजी वाले बैंकों की यह शिकायत है कि सहकारी बैंक भी उनसे प्रतिस्पर्द्धा करने लगे हैं। उनका कहना है कि सहकारी बैंक वह कारबार भी करने लगे हैं जिसका सहकारिता आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए सहकारी बैंक चालू खाता (Current Account) रखते हैं, रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजते हैं तथा बिलों को खरीदते और भुनाते हैं। देशी बैंकर भी सहकारी बैंकों के विरुद्ध यही शिकायत करते हैं।

देशी बैंकरों और महाजनों में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। यह दोनों अधिकतर इम्पीरियल बैंक में अपना खाता नहीं रखते। इम्पीरियल बैंक से तो देशी बैंकर अपने बिल या हुंडियाँ भुना लेते हैं किन्तु रिज़र्व बैंक से तो उनका तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। जब कारबार अधिक होता है तो जिन देशी बैंकरों का नाम स्वीकृत सूची पर होता है उनकी हुंडियों को इम्पीरियल बैंक या मिश्रित पूँजी वाले बैंक भुना देते हैं या दो देशी बैंकरों के हस्ताक्षरों सहित प्रामिसरी नोट पर ऋण दे देते हैं। इस प्रकार देशी बैंकरों का बहुत थोड़े समय के ... इम्पीरियल बैंक या मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से सम्बन्ध स्थापित होता है। ... भी सब देशी बैंकरों का सम्बन्ध उनसे स्थापित नहीं होता। केवल

स्वीकृत देशी बैंकरों को ही यह सुविधा दी जाती है और उनके लिए भी अधिक से अधिक कितने मूल्य की हुन्डिया भुनाई जा सकती हैं यह निश्चित कर दिया जाता है।

द्रव्य-बाज़ारों में सूद की दर—संसार के सभी उन्नतिशील राष्ट्रों में लम्बे समय के लिए लगाये हुए रुपये पर थोड़े समय के लिए लगाये हुए रुपये से अधिक सूद मिलता है। उदाहरण के लिए इंगलैंड अथवा संयुक्तराज्य अमेरिका में सरकारी ऋण तथा प्रथम श्रेणी की कंपनियों के डिबेंचरों (ऋण पत्र) पर जो सूद मिलता है वह तीन महीने के बिलों पर दिये जाने वाले सूद से अधिक होता है। किन्तु भारतवर्ष में इसका उलटा रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी की पिछली ३० वर्षों में थोड़े समय की सूद की दर लम्बे समय की सूद की दर से एक प्रतिशत अधिक थी किन्तु बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में और विशेषकर पहले महायुद्ध के उपरान्त थोड़े समय की सूद की दर तथा लम्बे समय के सूद की दर का यह भेद कम हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि थोड़े समय के लिए सबसे अधिक ऋण खेती के धन्धे के लिए आवश्यक होता है और खेती का धन्धा इस देश में अत्यन्त पिछड़ा और असंगठित है। अतएव जो भी ऋण किसानों को दिया जाता है बहुधा वह वसूल जल्दी नहीं होता उसकी अवधि बढ़ानी ही पड़ती है। अतएव वह लम्बे समय के लिए ही ऋण बन जाता है और खेती के धन्धे को दिए जाने वाले ऋण के डूब जाने का बहुत भय रहता है जबकि सरकारी ऋण में लम्बे समय के लिए रुपया लगाने में इस प्रकार की कोई जोखिम नहीं रहती। यही कारण है कि इस प्रकार के थोड़े समय के लिए हुए ऋण पर सूद पर बहुत अधिक लिया जाता रहा है। किसानों से अधिक सूद मिलने के कारण गाँवों में थोड़े समय के लिये अन्य कार्यों के लिए दिए हुए ऋण पर भी ऊँचा सूद लिया जाता है। और गाँवों में थोड़े समय के लिए जब सूद की दर ऊँची रहती है तो उसका प्रभाव संगठित द्रव्य-बाज़ार पर भी बिना पड़े नहीं रहता। यही कारण है कि भारतीय द्रव्य-बाज़ार में थोड़े समय की सूद की दर अधिक समय के लिए लगाये हुए रुपये पर मिलने वाले सूद की दर से ऊँची रही है। यहाँ एक बात और ध्यान में रखने की है। यहाँ कंपनियों के डिबेंचर इत्यादि तो अधिक प्रचलित हैं नहीं केवल भारत सरकार के लम्बे समय के लिए हुए ऋण पर मिलने वाले सूद की दर से ही हम तुलना कर सकते हैं। किन्तु वास्तव में भारत सरकार के ऋण पर मिलने वाले सूद को हम लम्बे समय की सूद की दर नहीं कह

सकते क्योंकि सरकारी ऋण अर्थात् सरकारी सिक्यूरिटी प्रत्येक समय बेची जा सकती है। उनके लिये सदैव बाजार में माँग रहती है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि भारत में थोड़े समय के लिये लिए जाने वाले ऋण पर सूद की दर ऊँची रही है और उसके कारणों के सम्बन्ध में हमने ऊपर लिखा है। इसके विपरीत भारतवर्ष में जो विदेशी पूँजी आई वह लम्बे समय के लिये लगाई गई। विदेशी पूँजीपतियों ने भारत में अपनी पूँजी को अधिक लम्बे समय के लिए लगाना पसन्द किया क्योंकि यहाँ लम्बे समय के लिए रेलों, धन्धों, तथा सरकारी ऋण में लगाई जाने वाली पूँजी अधिक सुरक्षित थी परन्तु थोड़े समय के लिए खेती के धंधे में लगने वाली पूँजी को बहुत जोखिम उठानी पड़ती थी। यही कारण था कि लम्बे समय के लिए विदेशी पूँजी कम सूद पर प्राप्त हो सकती थी। किन्तु वही विदेशी पूँजी अधिक सूद मिलने पर भी थोड़े समय के ऋण के रूप में गाँवों के लिये प्राप्त नहीं थी।

भारतवर्ष में केवल १८६१ ६२ में, १६२१ २२, में और १६२६ ३० में ही ऐसा अवसर आया जब थोड़े समय की सूद की दर (Short term interest rate) अधिक लम्बे समय की सूद की (Long term rate) दर से नीचे गिर गई। १८६१ ६२ में थोड़े समय की सूद की दर के गिरने का कारण यह था कि रुपये की विनमय दर (Exchange rates) के गिरने से देश में चाँदी का आयात (Import) बहुत अधिक हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि बैंकों के पास आवश्यकता से बहुत अधिक नकदी (Cash) इकट्ठा हो गई इस कारण कम समय की सूद की दर नीचे गिर गई। १६२१ २२ में थोड़े समय के सूद की दर के नीचे गिरने का कारण यह था कि सरकार ने लड़ाई के खर्चे का चलाने के लिये अंधाधुन्ध कागजी मुद्रा (Paper Currency) छाप दी थी। इस कारण थोड़े समय की सूद की दर नीचे गिर गई। उधर सरकार ने बहुत से युद्ध ऋण निकाल कर जनता की बचत को लड़ाई के लिये खींच कर लम्बे समय की सूद की दर को ऊँचा कर दिया। और १६२६ ३० में जो थोड़े समय की सूद की दर लम्बे समय की सूद की दर की तुलना में गिर गई उसका कारण वह महान् आर्थिक मन्दी (Economic Depression) थी जो १६२६ में आई।

बैंक डिपाजिटों पर सूद की दर—डिपाजिटों पर सूद की दर निर्धारित करते समय बैंकों को दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है। एक तो यह कि वे

कितना कोष आकर्षित करना चाहते हैं और कितना कोष लाभदायक ढंग से लगा सकते हैं। इस दृष्टिकोण से बैंक चालू जमा (Current Deposits) पर सूद नहीं दे सकते क्योंकि चालू खाते (Current Account) में रुपया जमा करने वाले लोग सुविधा की दृष्टि से ही चालू खाता रखते हैं न कि सूद पाने के लिए। सूद प्राप्त करने के लिये जो रुपया उनकी आवश्यकताओं से अधिक है वह मुद्दती जमा (Fixed Deposit) में जमा किया जाता है। अस्तु यदि चालू जमा पर यदि थोड़ा सूद दे भी दिया जावे तो भी चालू जमा (Current Deposits) अधिक नहीं बढ़ जावेंगी। किन्तु चालू जमा पर सूद देने का बैंकों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उन्हें अधिक सूद कमाने के लिए रुपये को कहीं न कहीं लगाना ही पड़ता है फिर चाहे कुछ जोखिम ही क्यों न उठानी पड़े। इसका परिणाम बुरा होता है। यही कारण है कि ब्रिटेन और संयुक्तराज्य अमेरिका में चालू खाते पर सूद नहीं दिया जाता। किन्तु भारतवर्ष में इम्पीरियल बैंक को छोड़ कर सभी बैंक चालू खाते पर सूद देते हैं। १६३० तक भारतीय व्यापारिक बैंक चालू खाते पर २½ प्रतिशत तक सूद देते थे। किन्तु यही उनकी निर्बलता थी क्योंकि भारत में प्रथम श्रेणी के बिलों तथा याचना द्रव्य (Call money) का बाजार अभी निर्मित नहीं हुआ है इस कारण बैंकों को जिस लेनी (Assets) में अपना रुपया लगाना पड़ता है वह शीघ्र ही नकदी में परिणत नहीं की जा सकती। परन्तु क्रमशः भारतीय बैंकों ने चालू जमा पर सूद की दर को कम करना आरम्भ कर दिया। १६२१ में वे १ प्रतिशत सूद देते थे बाद को घटाकर उन्होंने चालू खाते पर ½ प्रतिशत सूद कर दिया और दूसरे संसार व्यापी महायुद्ध के समय जब कि देश में रुपये की बहुतायत थी उन्होंने सूद घटा कर ¼ प्रतिशत कर दिया। आशा है कि भारतवर्ष में भी बैंक चालू जमा पर सूद देना बन्द कर देंगे।

मुद्दती जमा (Fixed Deposit) पर सूद की दर--मुद्दती जमा पर बैंक जो सूद देते हैं उस पर ही मुद्दती जमा का अधिक होना या कम होना निर्भर रहता है। यदि सूद अधिक दिया जाता है तो मुद्दती जमा अधिक आती है और यदि सूद की दर कम कर दी जाती है तो मुद्दती जमा घट जाती है क्योंकि मुद्दती जमा वही करता है जिसे उस रुपये की कुछ समय के लिए आवश्यकता नहीं होती या वह उस पर सूद कमाना चाहता है। यदि मुद्दती जमा पर सूद बहुत कम हो जावे तो मुद्दती जमा चालू जमा में परिणत हो

सकती है क्योंकि यदि मुद्दती जमा पर सूद बहुत कम हो जावेगा तो लोग अपने रुपये को उस पर लम्बे समय के लिए अटकाये रहना पसन्द नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त बैंक मुद्दती जमा पर सूद की दर निर्धारित करते समय यह भी देख लेते हैं कि वे अपने ग्राहकों से कितना सूद ले सकते हैं। अस्तु मुद्दती जमा पर सूद की दर दो बातों पर निर्भर रहती है। एक तो इस बात पर कि अन्य सिक्यूरिटियों में रुपया लगाने पर कितना सूद मिल सकता है दूसरे द्रव्य-बाजार में थोड़े समय के लिए ऋण देने में कितना सूद मिल सकता है। जहाँ तक रुपया जमा करने वाले का प्रश्न है उसके लिए बैंक में रुपया जमा करने के अतिरिक्त दूसरा सीधा रास्ता यह है कि वह भारत सरकार की सिक्यूरिटी में अपना रुपया लगा दें। अस्तु सरकार अपने ऋण जिस सूद की दर पर निकालती है उसका मुद्दती जमा पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि दोनों में बहुत भेद भी है। भारतवर्ष में अधिकतर मुद्दती जमा ६ महीने या उससे अधिक समय के लिए ली जाती हैं। अधिकांश डिपाजिट एक वर्ष के लिए होती हैं। बम्बई, कलकत्ता जैसे बड़े केन्द्रों में ६ महीने से कम की भी मुद्दती डिपाजिट ले ली जाती हैं।

बैंक दिये हुए कर्जे पर कितना सूद लेंगे यह अन्य देशों में जहाँ द्रव्य-बाजार पूर्ण रूप से संगठित है बैंक-रेट (Bank rate) पर निर्भर रहती है। यदि केन्द्रीय बैंक (Central Bank) की सूद की दर जिस पर वह अन्य बैंकों को कर्ज देता है ऊँची हो जाती है तो अन्य बैंक भी अपने कर्जदारों से और ऊँची दर से सूद लेते हैं और यदि केन्द्रीय बैंक की सूद की दर घटती है तो अन्य बैंक भी कर्ज़ पर सूद की दर घटा देते हैं। अन्य बैंक जब किसी को ऋण देते हैं तो जो उस समय केन्द्रीय बैंक (*Central Bank*) की सूद की दर (Bank rate) होती है उससे एक निश्चित फी सदी अधिक सूद लेते हैं। उन देशों में यह बैंक मुद्दती जमा पर जो सूद देते हैं वह कुछ निश्चित प्रतिशत 'बैंक रेट' से कम होता है। इस प्रकार उन देशों में जहाँ द्रव्य-बाजार संगठित है वहाँ मुद्दती जमा पर दिये जाने वाले तथा कर्ज पर लिए जाने वाले सूद की दर वहाँ के केन्द्रीय बैंक (Central Bank) की बैंक-रेट पर निर्भर रहता है और उससे सम्बन्धित होता है।

किन्तु भारतवर्ष में स्थिति दूसरी ही है। यहाँ सूद की दर का कोई नियम नहीं है, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक बैंक की सूद की दर भिन्न होती है। उदाहरण के लिए यदि किसी स्थान पर केवल एक ही बैंक है तो वह अपने

एकाधिकार का पूरा लाभ उठाता है और अधिक से अधिक सूद लेता है और यदि कोई दूसरा बैंक वहाँ अपनी ब्रांच खोल देता है तो सूद की दर गिर जाती है। यह नहीं कि भिन्न भिन्न स्थानों में सूद की दर भिन्न होती है प्रत्येक बैंक का कारबार भी बहुत भिन्न होता है इस कारण उनकी सूद की दर में बहुत अधिक भिन्नता पाई जाती है। भारतवर्ष में कुछ बैंक ऐसे हैं जो कर्ज़ पर बहुत उचित सूद लेते हैं फिर भी वे यथेष्ट लाभ कमाते हैं। किन्तु यदि दूसरे बैंक उसी सूद की दर पर ऋण दें तो उन्हें बहुत घाटा सहन करना पड़े। भारतवर्ष में बैंकों की सूद की दर में दुगुने से अधिक का अन्तर पाया जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष में बैंकों की सूद की दर में बहुत भिन्नता पाई जाती है।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अभी उद्योग-धंधों का पूरी तरह से विस्तार नहीं हुआ है और जहाँ द्रव्य-बाज़ार अभी पूर्ण रूप से संगठित नहीं है भिन्न-भिन्न प्रदेशों में सूद की दर भिन्न होना कुछ सीमा तक अनिवार्य है। किन्तु यहाँ बैंकों में अस्वस्थकर प्रतिस्पर्द्धा के कारण जो सूद की भिन्नता पाई जाती है वह भारतीय बैंकिंग का एक बड़ा दोष है। कुछ बैंक केवल इसलिए अधिक सूद देते हैं जिससे वे डिपाज़िट प्राप्त करने में सफल हों।. इसका फल यह होता है कि उन्हें अपना रुपया ऐसी जगह लगाना पड़ता है जो बहुत सुरक्षित नहीं होती और उनकी स्थिति कमज़ोर रहती है। तनिक से संकट में इस प्रकार के बैंक डूब जाते हैं और सभी बैंकों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। सभी देशों में अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि डिपाज़िटों पर दिये जाने वाले सूद की दर में अनियंत्रित प्रतिस्पर्द्धा न तो किसी एक बैंक के ही लिए लाभप्रद होती है और न बैंकिंग संस्थान (Banking System) के लिए ही लाभदायक सिद्ध होती है। अन्य देशों में बैंक स्वयं मिल कर डिपाज़िट पर सूद की दर क्या हो यह निश्चित कर लेते हैं। किन्तु भारतवर्ष में इस प्रकार सूद की दर का नियंत्रण नहीं किया जाता। आवश्यकता इस बात की है कि भारतवर्ष में भी प्रतिस्पर्द्धा को नियंत्रित किया जावे और कम से कम एक वर्ष की मुद्दती जमा की सूद की दर निश्चित कर दी जावे।

विनियोग (Investments) पर मिलने वाले सूद की दरें— आधुनिक द्रव्य-बाज़ार में दो प्रकार की सूद की दर पाई जाती हैं। वे सूद की दरें जो खुले बाज़ार में प्रचलित होती हैं और जिन्हें हम खुले बाजार की दरें (Open market rate) कहते हैं और दूसरी वे सूद की दरें जो

ग्राहकों से ऋण देने पर ली जाती हैं। ग्राहकों से जो सूद लिया जाता है उसके सम्बन्ध में ठीक-ठीक आंकड़े प्राप्त नहीं हैं परन्तु खुले बाज़ार की दरों के बारे में हमें प्रामाणिक आंकड़े मिलते हैं। ग्राहकों से लिये जाने वाले सूद की दरों में बहुत भिन्नता होती है। यदि किसी एक प्रदेश में सूद की दर बहुत ऊंची है तो दूसरे प्रदेश में सूद की दर नीची होती है। बात यह है कि जहां तक ग्राहकों से लिए जाने वाले सूद की दर का प्रश्न है वह स्थानीय कारणों पर निर्भर रहती है अतएव सूद की दर का भिन्न होना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए बैंकों को किसी प्रदेश में डिपाज़िट कम मिलती है तो वे वहां ऋण अधिक सूद लेकर ही देंगे और जहां डिपाज़िट बहुत अधिक मिलती है वहां कम सूद लेकर भी उस रुपये को लगाने का प्रयत्न करेंगे। जिस स्थान या प्रदेश का देश के केन्द्रीय बैंक से सम्बन्ध होता है वहां सूद की दर कुछ कम रहती है। अतएव कहने का तात्पर्य यह है कि ग्राहकों से लिए जाने वाले सूद की दर स्थानीय कारणों पर निर्भर रहती है और उन्हीं कारणों से उसमें भिन्नता पाई जाती है।

खुले बाज़ार की दरें (Open Market rates)—(१) अभियाचन ऋण (Demand Loan) पर इम्पीरियल बैंक जो सूद लेता है वह देश में अल्पकालीन पूँजी (Short-term capital) पर कितनी आय हो सकती है इसको बतलाता है। इम्पीरियल बैंक की अभियाचना ऋण की दर हमें यह बतलाती है कि अल्प काल के लिए पूँजी लगाने से हमें कितनी आय हो सकती है। इम्पीरियल बैंक की अभियाचन ऋण की दर अल्प कालीन पूँजी पर होने वाली आय को नापने का यंत्र है। यह दर नक़द साख (Cash credits) तथा साधारण ऋणों पर लिए जाने की सूद की दरों का भी प्रतिनिधित्व करती है।

(२) इम्पीरियल बैंक हुंडी रेट वह सूद की दर है जिस पर इम्पीरियल बैंक प्रथम श्रेणी के व्यापारिक बिलों को भुनाता है। १९३५ तक इम्पीरियल बैंक केवल ३ महीने की अवधि के बिलों को ही भुना सकता था। किन्तु व्यवहार में उन बिलों की पकने की अवधि केवल ६० या ६१ दिन होती थी।

हुंडी रेट यद्यपि इम्पीरियल बैंक की अभियाचन ऋण (Demand Loan) की सूद की दर के साथ-साथ घटती बढ़ती है किन्तु कभी कभी

इम्पीरियल बैंक की हुंडी दर उसकी अभियाचन ऋण की दर से ऊंची हो जाती है और कभी नीचे गिर जाती है।

(३) याचना द्रव्य रेट (Call money rate) उस सूद की दर को कहते हैं जो कि २४ घंटे के लिए दिए हुए ऋण पर लिया जाता है। याचना द्रव्य को (Call money) बैंक जिस समय चाहे वापस मांग सकता है और लेने वाला उसे जब चाहे वापस दे सकता है। भारतवर्ष में बैंक इस प्रकार ऋण केवल उन्हीं व्यक्तियों को देता है जो उसके जाने बूझे होते हैं और जिनकी साख बहुत अच्छी होती है। बैंक इस प्रकार के ऋण के लिए कोई ज़मानत नहीं लेते केवल ऋण लेने वाले की व्यक्तिगत साख पर दे देते हैं।

भारतवर्ष में याचना द्रव्य (Call money) अधिकतर केवल सोने चांदी के बाज़ार और शेयर बाज़ार में कारबार करने के लिए लिया जाता है। परन्तु बम्बई में बड़े व्यापारी साधारण व्यापार के लिये भी याचना द्रव्य लेते हैं क्योंकि उन्हें कम सूद पर रुपया मिल जाता है।

याचना द्रव्य की दर इम्पीरियल बैंक की अभियाचन ऋण की दर (Demand Loan rate) के अनुसार घटती बढ़ती है। कभी-कभी याचना द्रव्य की दर बहुची ऊंची चढ़ जाती है यहां तक कि इम्पीरियल बैंक की अभियाचन ऋण की दर (Demand Loan rate) के बराबर पहुँच जाती है। जब कारबार की बहुत तेजी होती है तो कभी-कभी याचना द्रव्य ऊंची दर पर भी नहीं मिलता और मंदी के समय उसकी सूद की दर बहुत गिर जाती है। इन अवसरों पर याचना द्रव्य की सूद की दर का इम्पीरियल बैंक के अभियाचन ऋण की दर से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

(४) बाज़ार बिल रेट या बाज़ार हुंडी रेट भारतीय द्रव्य बाज़ार (Money market) में सब से ऊँची सूद की दर होती है। यह सूद की दर उन बिलों पर ली जाती है जो श्राफ छोटे व्यापारियों के लिये भुनाते हैं। बाज़ार बिल रेट कलकत्ता की अपेक्षा बम्बई में कम रहती है। इसका मुख्य कारण यह है कि बम्बई में श्राफों (Shroffs) का बैंकों से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुसंगठित द्रव्य-बाज़ारों की भांति भारतीय द्रव्य-बाज़ार में प्रचलित सूद की दरों का एक दूसरे से कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है। यदि बाज़ार में कारबार की तेज़ी हुई

और रुपये की मांग अधिक हुई और रुपया कम हुआ तो सूद की दरें ऊंची चढ़ जाती हैं और यदि कारबार मंदा हुआ तो सूद गिर जाता है। किन्तु बाज़ार में प्रचलित सूद की दरों का आपस में कोई निश्चित और घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता। इसका कारण यह है कि भारतीय बैंकों में इस बात की भावना नहीं है कि उनके स्वार्थ एक हैं। रिज़र्व बैंक अभी तक इतना अधिक प्रभाव शाली नहीं है कि द्रव्य-बाज़ार पर अपना पूरा प्रभाव डाल सके और पूँजी (Capital) के एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्रता पूर्वक पहुचाने में रुकावटें हैं।

बैंकों की उन्नति और द्रव्य-बाज़ार को अधिक सगठित बनाने के लिये यह आवश्यक है कि सूद की दरों के सम्बन्ध में बैंक एक आपसी समझौता कर लें तथा एक परम्परा बना लें। इससे एक बड़ा लाभ यह होगा कि बैंकों में आपस मे अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जावेगी। उदाहरण के लिए लदन में बैंकों ने यह निश्चय कर लिया है कि अल्पकालीन डिपाज़िट पर बैंक रेट से २ प्रतिशत सूद कम दिया जावे। बैंक रेट तथा डिपाज़िटों पर दिये जाने वाले सूद की दर का सम्बन्ध जोड़ देने से एक लाभ यह होगा कि बैंक डिपाज़िटों को खींचने के लिए अनावश्यक होड़ नहीं कर सकेंगे।

भारतीय द्रव्य-बाज़ार में अस्थिरता तथा अधिक उतार-चढ़ाव का होना—भारतीय द्रव्य-बाज़ार का एक बड़ा दोष यह रहा है कि उसमें स्थिरता नहीं रहती। बैंक रेट में बहुत अधिक परिवर्तन होते रहते हैं। १६३२ के पूर्व अर्थात् आर्थिक मंदी (Economic Depression) के अधिक गहरे हो जाने के पूर्व जब व्यापार मंदा होता तब तो बैंक रेट ३ प्रतिशत पर रहती और तेज़ी के मौसम में ७ और ८ प्रतिशत तक चढ़ जाती। इस अस्थिरता के कारण व्यापार का जोखिम बढ़ जाता है तथा व्यापारियों को बहुत आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उद्योग-धधों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता था क्योंकि वे भी बहुत कुछ थोड़े समय के लिए प्राप्त किए ऋण पर निर्भर रहते थे। जब कारबार की तेज़ी होती और बैंक रेट ऊंची हो जाती तो देश के भीतरी व्यापार तथा खेती के लिए पूँजी मिलने में बहुत कठिनाई होने लगती थी क्योंकि बन्दरगाहों में भी उस समय पूँजी की बहुत अधिक आवश्यकता होती थी और वहां के व्यापार में अधिक सूद देने की गुञ्जाइश रहती थी। अतएव बैंक उस समय अपना रुपया बदरगाहों को भेज देते थे तथा देश के भीतरी व्यापार तथा खेती के लिए द्रव्य (money)

का टोटा पड़ जाता था। इसका कारण यह था कि जब कारबार की तेज़ी होती तो देश में द्रव्य का टोटा पड़ जाता था। कारण यह था कि भारतवर्ष के खेतिहर देश होने के कारण जब खेती की पैदावार की फसल के समय खरीद होती तो बहुत अधिक द्रव्य की आवश्यकता पड़ती थी और जो भी करंसी (मुद्रा) देश में साधारणतः होती वह इस कार्य के लिए पूरी नहीं पड़ती थी। किन्तु गरमियों तथा वर्षा के मौसम में जब कारबार मंदा रहता था तो वही करंसी आवश्यकता से बहुत अधिक हो जाती थी।

१६२१ में इम्पीरियल बैंक के स्थापित होने से पूर्व सरकार पृथक् और स्वतंत्र खज़ाने रखती थी जो चलन में से बहुत अधिक द्रव्य (Money) को खींच कर रख लेती थी। कारण यह था कि मालगुज़ारी के रूप में किसान जो द्रव्य देते थे वह इन खजानों में जाकर बन्द हो जाता था और यह उस समय होता था जब बाज़ार में द्रव्य की बहुत अधिक मांग होती थी। इस कारण बाज़ार में द्रव्य का बेहद टोटा पड़ जाता था। १६२१ के उपरान्त यह रुपया इम्पीरियल बैंक के पास आने लगा और वह इसको व्यापारियों को दे देता था अस्तु १६२१ के उपरान्त इस स्थिति मे कुछ सुधार हुआ। फिर भी भारत सरकार तथा भारत मंत्री पृथक् और स्वतंत्र रूप से बैंकिंग का कारबार करते थे जिसके कारण द्रव्य-बाज़ार में बहुत अस्थिरता उत्पन्न हो जाती थी। बात यह थी कि भारत सरकार तो मुद्रा (Currency) का नियंत्रण करती थी और इम्पीरियल बैंक कुछ हद तक साख (Credit) का नियंत्रण करता था। इस दोहरे नियंत्रण का फल यह होता था कि मुद्रा नीति (Currency policy) और साख नीति (Credit need) में कभी साम्य स्थापित नहीं हो पाता था। यदि उत्पादन और व्यापार में वृद्धि होती तो अधिक साख (Credit) की आवश्यकता होती थी परन्तु अधिक साख का निर्माण तभी हो सकता है जब अधिक द्रव्य (Money) हो, परन्तु यदि उस समय सरकार अधिक नोट छाप कर द्रव्य राशि को न बढ़ाती तो बैंकों को साख कम करनी पड़ती थी। इस प्रकार उस समय देश में मुद्रा (Currency) तथा साख का कोई ठीक प्रबन्ध न था। कारण यह था कि साख का ठीक नियंत्रण तो था नहीं किन्तु जो कुछ भी नियंत्रण था वह इम्पीरियल बैंक के हाथ में था किन्तु साख मुद्रा (Currency) पर निर्भर रहती है किन्तु मुद्रा का नियंत्रण सरकार के हाथ में था।

रिज़र्व बैंक की स्थापना से द्रव्य-बाज़ार (Money Market) का यह

दोष दूर हो गया। अब रिज़र्व बैंक के अधिकार में दोनों ही कार्य हैं। वह कागज़ी मुद्रा (Paper Currency) तथा साख (Credit) दोनों को ही नियंत्रण करता है अस्तु अब रिज़र्व बैंक द्रव्य की अधिक मांग होने पर अधिक नोट निकाल कर द्रव्य की कमी को दूर कर सकता है। आशा है कि भविष्य में जो फसलों की खरीद के समय देश में द्रव्य का टोटा पड़ जाता था अब वह दूर हो जावेगा।

भारतीय द्रव्य-बाज़ार में व्यापारिक बिलों का प्रभाव—भारतीय द्रव्य बाज़ार का एक मुख्य दोष यह है कि यहाँ व्यापारिक बिलों की बहुत कमी है। भारतीय बैंकों की लेनी (Asset) में बिल बहुत कम होते हैं जबकि विदेशों में बैंक अपने कोष (Funds) का बहुत बड़ा भाग इनमें लगाते हैं। भारतीय मिश्रित पूँजी वाले बैंक तथा इम्पीरियल बैंक की अपनी कुल डिपा-जिटों का केवल ३ से ६ प्रतिशत रुपया बिलों के भुनाने में लगाते हैं। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय द्रव्य-बाज़ार में बिलों का नितान्त अभाव है। इसके नीचे लिखे मुख्य कारण हैं :-

(१) भारत में बैंक अपना रुपया सरकारी सिक्यूरिटियों अर्थात् परम प्रतिभूति (Gild edged Securities) में लगाना अधिक पसंद करते हैं। इसके दो कारण हैं एक तो भारत में बैंकिंग अभी अधिक उन्नत अवस्था में नहीं है इस कारण बैंक अपना रुपया ऐसी जगह लगाना चाहते हैं जो शीघ्र ही नकदी में परिणत किया जा सके और दूसरे सरकारी सिक्यूरिटियों पर सूद अच्छा मिलता था। किन्तु अब जितना सूद बिलों के भुनाने से मिलता है उससे अधिक परम प्रतिभूति (Gild edged Securities) अर्थात् सरकारी सिक्यूरिटियों पर नहीं मिलता। अतएव जैसे जैसे सर्वसाधारण का बैंकों पर अधिक विश्वास जमता जावेगा वैसे वैसे बैंक सरकारी सिक्यूरिटियों में कम रुपया लगाने लगेंगे।

(२) जब जब बैंकों को ऋण की आवश्यकता होती है तब-तब वे इम्पीरियल बैंक से सरकारी सिक्यूरिटियों की जमानत पर ऋण लेना पसंद करते हैं और अपने बिलों को इम्पीरियल बैंक से पुनः भुनाना (Rediscount) पसंद नहीं करते। इसके नीचे लिखे कारण हैं :—

(क) इम्पीरियल बैंक केवल उन्हीं बिलों को पुनः भुनाता है जिन्हें वह ठीक समझता है और पसंद करता है। किन्तु वह किस प्रकार के बिलों को पसंद करेगा इसका उसने कोई मानदंड (Standard) कायम नहीं किया है

जिसके अनुसार अन्य बैंक यह जान सकें कि वह किन बिलों को पसंद करेगा। अतएव बैंकों को सदैव यह खतरा रहता है कि कहीं उनके बिलों को इम्पीरियल बैंक अस्वीकार न कर दे।

(ख) भारतीय द्रव्य-बाजार में यह प्रचलित धारणा है कि बिलों का पुनः भुनाना आर्थिक निर्बलता का सूचक है अतएव भारतीय बैंक बिलों को पुनः इम्पीरियल बैंक से भुनाने में इस कारण झिचकते हैं कि इससे उनकी साख पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(ग) इम्पीरियल बैंक अन्य बैंकों के लिये बट्टा दर (Discount Rate) में कोई रियायत नहीं करता। वह उनसे भी वही सूद लेता है जो वह देशी बैंकरों से लेता है।

(घ) क्योंकि इम्पीरियल बैंक व्यापारिक बैंकों का प्रतिद्वन्दी है इस कारण वे उसे यह नहीं बतलाना चाहते कि उनके पास कितने और कैसे बिल हैं।

(३) भारत में बिलों या हुंडियों पर हस्ताक्षर करने वालों की आर्थिक स्थिति या साख कैसी है यह जानने की सुविधा नहीं है। इंगलैंड तथा अमेरिका में ऐसी एजेंसियाँ हैं जो किसी भी व्यापारी या व्यवसायी की आर्थिक स्थिति और साख के सम्बन्ध में थोड़ी सी फीस लेकर ठीक जानकारी दे देती हैं।

(४) भारत में हुंडियों तथा बिलों का उपयोग बहुधा ऋण देने और लेने में किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि 'क' 'ख' से २ हज़ार ऋण लेना चाहता है तो 'क' 'ख' पर हुंडी या बिल लिख देगा और 'ख' उसको स्वीकार कर लेगा। अब 'क' उस हुंडी या बिल को भुना कर रुपया प्राप्त कर लेगा। इन हुंडियों को देखने मात्र से यह कोई नहीं बता सकता कि यह केवल कर्ज लेने के उद्देश्य से लिखा गया है अथवा व्यापारिक हुंडी है। क्योंकि हुंडी के साथ न तो रेल की बिल्टी होती है और न अन्य प्रकार के कोई कागज़ पत्र होते हैं।

(५) भारत में मुद्दती हुंडी का चलन लगभग समाप्त हो गया क्योंकि उस पर स्टाम्प ड्यूटी का खर्चा अधिक होता है। वह केवल बंगाल में तथा बम्बई और शिकारपुर में ही अधिक प्रचलित हैं। अब मुद्दती हुंडी का स्थान दर्शनी हुंडी ने ले लिया है किन्तु उनसे बहुत थोड़े दिनों की ही साख मिल

पाती है। यहाँ हुंडियों के चलन में एक कठिनाई यह है कि उनके सकारने में बहुत सी शर्तें होती हैं। यही नहीं हुंडियों का कोई निश्चित रूप भी नहीं है। न तो उनकी लिपि और भाषा ही एक होती है और भिन्न भिन्न स्थानों पर सिकराने और सकारने (Acceptance and payment) के नियम भी भिन्न होते हैं।

(६) भारत में बिल या हुंडियों के अभाव का एक कारण यह भी है कि बैंक नक़द साख (Cash Credit) अधिक देते हैं। नक़द साख बैंकों तथा कर्ज़ लेने वालों दोनों के ही लिए लाभदायक सिद्ध होती है। कर्ज़ लेने वालों का लाभ तो यह है कि जितनी साख का वह उपयोग करते हैं उतने पर ही उन्हें सूद देना पड़ता है और बैंक का लाभ यह होता है कि बैंक रुपया जब चाहे वापस माँग सकता है। यदि कर्ज़दार की आर्थिक स्थिति बिगड़ी मालूम पड़े तो बैंक तुरन्त उससे रुपया वापस ले सकता है। किन्तु बिल नक़द साख से बिल दोनों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। क्योंकि कर्ज़ लेने वालों को बिलों की अवधि तक एक निश्चित रक़म की साख (Credit) मिल जावेगी और यदि पुनः भुनाने की सुविधा हो तो बैंकों को एक अत्यन्त तरल लेनी (Liquid Asset) में अपना रुपया लगाने का अवसर मिल जावेगा। फिर कर्ज़दार को यह भी लाभ होगा कि वह नक़द साख पर जितना सूद देता है उससे कम पर बिल को भुना सकेगा।

(७) भारतीय द्रव्य बाज़ार में बिलों या हुंडियों का चलन न होने का एक यह भी कारण है कि भारत सरकार बहुत अधिक राशि में सरकारी हुंडियाँ (Treasury Bills) बेंचती है। बैंक इन सरकारी हुंडियों को बहुत बड़ी राशि में खरीदते हैं क्योंकि वे बहुत सुरक्षित होते हैं और निश्चित समय पर उनका भुगतान हो जाता है और वे तरल भी होते हैं क्योंकि रिज़र्व बैंक उन्हें खरीदने के लिए सदैव तैयार रहता है।

किसी सेन्ट्रल बैंकिंग जाँच कमेटी तथा सभी बैंकिंग विशेषज्ञों की राय है कि जब तक देश में व्यापारिक बिलों का चलन और उपयोग नहीं बढ़ता और भारत में सगठित बट्टा बाज़ार (Discount Market) का उदय नहीं होता तब तक भारतीय बैंक सफल और उन्नत नहीं हो सकते। रिज़र्व बैंक ही इस देश में हुंडियों और बिलों के चलन और उपयोग को बढ़ा सकता है और देश में बट्टा बाज़ार (Discount Market) स्थापित कर सकता है। रिज़र्व बैंक को चाहिए कि वह अन्य बैंकों को अपने बिलों

को पुनः भुनाने (Rediscount) की सभी सुविधायें दे, उन्हें यह निश्चित रूप से बतला दिया जाय कि किस प्रकार के बिल या हुंडियों को वह पसंद करेगा। रिजर्व बैंक को चाहिये कि वह देशी बैंकरों (Indigenous Bankers) को बट्टा गृह (Discount Houses) का काम करने के लिए प्रोत्साहित करे। देशी बैंकर व्यापारियों के बिलों या हुंडियों को भुनावे और यदि उन्हें अधिक कोष (Funds) की आवश्यकता हो तो वे रिजर्व बैंक से उन बिलों या हुंडियों को पुनः भुना लें। रिजर्व बैंक को देशी बैंकरों को अपने बिलों को पुनः भुनाने की सभी सुविधायें देना चाहिये। इससे एक लाभ यह भी होगा कि देशी बैंकरों तथा द्रव्य-बाज़ार का सम्बन्ध स्थापित हो जावेगा। यदि देश में प्रमाणित भंडारों तथा गोदामों की व्यवस्था हो जावे जिनका प्रबंध विश्वसनीय हो तो हुंडियों और बिलों का चलन अधिक बढ़ सकता है क्योंकि इन गुदामों और भंडारों की रसीद के साथ जो बिल या हुंडी होगी उसके व्यापारिक बिल या हुंडी होने में तनिक भी संदेह नहीं रहेगा और बैंक उन हुंडियों को भुनाने से नहीं हिचकेंगे। जो कुछ भी हो बैंकिंग की उन्नति के लिए बिलों और हुंडियों के चलन की बहुत आवश्यकता है।

अध्याय—२३

भारत में बैंकिंग सम्बन्धी कानून

१९३६ तक भारत में बैंक सम्बन्धी कोई विशेष कानून नहीं था। बैंक भी अन्य मिश्रित पूँजी वाली कपनियों (Joint Stock Companies) की भांति (१९१३ के कंपनी ऐक्ट के अन्तर्गत) रजिस्टर होते थे और बैंकों के लिए भी वही नियम थे जो अन्य कंपनियों के लिए लागू थे। १९१३ के कंपनी ऐक्ट में बैंकों तथा अन्य कंपनियों के बीच में केवल दो बातों में भेद किया गया था। एक अन्तर तो यह था कि १० व्यक्तियों से अधिक साझेदारों वाली फर्म बैंकिंग कारबार नहीं कर सकती और बैंकों की लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) एक निर्धारित ढंग से बनाया जावेगा जिसमें सुरक्षित ऋण (Secured Debts) तथा अरक्षित ऋण (Unsecured Debts) अलग अलग दिखलाना आवश्यक था।

किन्तु इस कानून के द्वारा बैंकों का ठीक नियंत्रण नहीं किया जा सकता था। सभी देशों में बैंकिंग का कारबार विशेष महत्त्व का समझा जाता है क्योंकि वे जनता की डिपाजिट आकर्षित करते हैं और देश के आर्थिक जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि संसार के प्रत्येक देश में बैंकों का नियंत्रण करने के लिए विशेष बैंकिंग कानून आवश्यक समझा गया। भारतवर्ष में बैंकिंग सम्बन्धी विशेष कानून का न होना सब को खटकता था और विशेषकर जब १९१३ और १४ में भारतवर्ष में बैंकों का संकट उपस्थित हुआ और बहुत से बैंक डूब गए उस समय से सब का विश्वास दृढ़ हो गया कि देश में विशेष और स्वतंत्र बैंकिंग कानून के बन जाने से शक्तिवान और अच्छे बैंकों के उदय होने में सहायता मिलेगी।

यद्यपि हमें यह न भूल जाना चाहिये कि चाहे कैसा ही अच्छा बैंकिंग कानून क्यों न बनाया जावे वह बुरे प्रबंध, हानि और बैंकों के डूबने को नहीं रोक सकता। बैंक या बैंकर को केवल कानूनों द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता। यही नहीं यदि बैंकों के लिए बहुत लम्बा चौड़ा कानून बना दिया जावे तो उनकी उन्नति में रुकावट होती है। बैंकों पर बहुत अधिक बन्धन लगा देना उनकी उन्नति को रोकना है। बैंकों को जहाँ तक हो सके

स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। हाँ रिज़र्व बैंक के नियंत्रण की बैंकों की उन्नति के लिए अवश्य आवश्यकता है। इतना सब होते हुए बैंकिंग कानून की इसलिए आवश्यकता है कि जिससे बेईमानी, धोखे और कुप्रबंध को कुछ हद तक रोका जा सके। यही कारण था कि सेन्ट्रल बैंकिंग जाँच कमेटी ने एक स्वतंत्र बैंक कानून की आवश्यकता बतलाई।

उस समय भारत सरकार ने यद्यपि स्वतंत्र बैंक कानून तो नहीं बनाया परन्तु १९३६ के कंपनी ऐक्ट में बैंकों के लिए कुछ विशेष नियम बना दिये जो नीचे लिखे हैं।

(१) बैंकिंग कंपनी की कंपनी ऐक्ट में इस प्रकार परिभाषा की गई—बैंकिंग कंपनी वह कंपनी है जिसका मुख्य कारबार जनता के रुपये को ऐसी डिपाज़िटों के रूप में स्वीकार करना है जो चेक, ड्राफ़्ट या आज्ञा के द्वारा निकाली जा सकें। इसके अतिरिक्त वह नीचे लिखे कार्य भी कर सकती हैः (क) रुपया कर्ज़ लेना और देना, बिलों और हुंडियों, प्रामिसरी नोट, कंपनियों के हिस्सों, डिबेंचरों, रेलवे रसीद, तथा सोने चाँदी की खरीद-बिक्री करना और द्रव्य और सिक्यूरिटियों को वसूल करना और एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजना। (ख) सरकार, म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तथा व्यक्तियों के एजेंट का काम करना। लेकिन बैंक किसी कंपनी का मैनेजिंग एजेंट नहीं हो सकता। (ग) सरकार तथा व्यक्तियों के लिए ऋण दिलाना तथा ऋण को निकालना। (घ) सरकारी तथा म्युनिसिपल ऋण का अभिगोपन (Underwriting) करना तथा कंपनियों के हिस्सों या डिबेंचरों का अभिगोपन करना। (ङ) किसी व्यापारी कारबार को आर्थिक सहायता देना। (च) चल अथवा अचल सम्पत्ति की खरीद-बिक्री करना। (छ) किसी का ट्रस्टी बनना। (ज) किसी दूसरी कंपनी के हिस्से खरीदना या प्राप्त करना जिसके उद्देश्य उसके ही समान हों। (झ) उन संस्थाओं और कोषों (Funds) को स्थापित करना जो कंपनी के कर्मचारियों के लाभ के लिए हों। (ञ) कंपनी के लिए आवश्यक इमारतों को खरीदना।

कोई भी बैंकिंग कंपनी ऊपर लिखे कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं कर सकती और भविष्य में कोई बैंकिंग कंपनी रजिस्टर नहीं की जा सकती जिसके उद्देश्य डिपाज़िट लेने तथा ऊपर के कार्यों तक सीमित न हों।

किसी भी बैंकिंग कंपनी का प्रबन्ध मैनेजिंग एजेंट नहीं कर सकते। भविष्य में कोई भी बैंकिंग कंपनी जो रजिस्टर की जा चुकी हो उस समय तक

कार्य नहीं कर सकती जब तक उसकी चुकता पूँजी कम से कम ५०,००० रुपये न हो।

प्रत्येक बैंकिंग कंपनी उस समय तक जब तक उसका रक्षित कोष (Reserve Fund) उसकी चुकता पूँजी (Paid up Capital) के बराबर नहीं हो जाता लाभ का कम से कम २० प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करेगी और शेष लाभ ही हिस्सेदारों में बांट सकेगी। रक्षित कोष या तो सरकारी अथवा ट्रस्ट सिक्यूरिटियों में लगाया जावेगा अथवा किसी अन्य शिड्यूल बैंक में जमा कर दिया जावेगा।

प्रत्येक बैंक (शिड्यूल बैंकों को छोड़ कर) को रिज़र्व बैंक के पास अपनी चालू जमा (Current Deposit) का ५ प्रतिशत तथा मुद्दती जमा (Fixed Deposit) का १½ प्रतिशत जमा करना होगा और प्रत्येक महीने रजिस्ट्रार को एक लेखा भेजना होगा जिसमें पिछले महीने के प्रत्येक शुक्रवार को उसकी कितनी देनी (Liability) थी तथा उसके पास कितना नकद कोष (Cash Reserve) था यह बतलाना होगा।

जो भी व्यक्ति किसी बैंकिंग कंपनी का ऋणी हो अथवा आगे चल कर उसका कर्जदार हो जावे उसका आडिटर (आय-व्यय निरीक्षक) नहीं बनाया जा सकता। बैंकिंग कंपनी को अपने लेनी देनी के लेखे (Balance Sheet) में बैंक के डायरेक्टरों, मैनेजरों तथा कंपनी के अन्य कर्मचारियों पर कितना ऋण है यह अलहदा दिखलाना होगा।

रिज़र्व बैंक का बैंक ऐक्ट बनाये जाने का प्रस्ताव—नवम्बर १९३९ में रिज़र्व बैंक ने भारत सरकार को एक पत्र लिखा और उसमें बैंक ऐक्ट बनाये जाने की आवश्यकता बतलाई। साथ ही बैंक ऐक्ट में किन बातों का समावेश होना चाहिए उसका एक लेख बना कर भेजा। रिज़र्व बैंक का कहना यह था कि अधिकांश बैंकों की पूँजी और रक्षित कोष बहुत कम है तथा वे डिपाज़िटरों के हितों की चिन्ता नहीं करते इस कारण सरकार को एक क़ानून बना कर डिपाज़िटरों के हितों की रक्षा करनी चाहिये।

रिज़र्व बैंक का प्रस्तावित बैंक बिल इस प्रकार था—बैंक की परिभाषा अधिक निश्चित और सीमित कर देनी चाहिए और कोई भी कंपनी जो बैंकिंग कार्य नहीं करती उसे अपने नाम के आगे बैंक शब्द जोड़ने का अधिकार न होगा। जो कंपनी बैंकिंग कार्य करती है वह अपने नाम

के साथ बैंक शब्द अवश्य जोड़ेगी। कोई भी बैंक उन कार्यों के अतिरिक्त अन्य कारबार नहीं करेगी जिनका बिल में समावेश है।

कोई भी बैंक उस समय तक बैंकिंग कार्य न कर सकेगा जब तक उसकी चुकता पूँजी और रक्षित कोष (Reserve) कम से कम एक लाख रुपये न हो और यदि बैंक नीचे लिखे स्थान में से किसी में कारबार करता है अर्थात् ब्रांच खोलता है तो उसको प्रत्येक स्थान के लिए नीचे लिखे अनुसार पूँजी रखनी होगी :—बम्बई और कलकत्ते के लिए ५ लाख, प्रत्येक ऐसे स्थान के लिए जिसकी आबादी एक लाख से अधिक हो कम से कम २ लाख रुपये। यदि बैंक उस प्रान्त या राज्य के बाहर ब्रांच खोलना चाहता है जिसमें उसका हेड आफिस है तो उसकी चुकता पूँजी (Paid up Capital) और रक्षित कोष कम से कम २० लाख रुपये होना चाहिए। अर्थात् यदि किसी बैंक की चुकता पूँजी और रक्षित कोष २० लाख रुपये से अधिक है तो वह भारतवर्ष भर में जहां चाहे ब्रांचें खोल सकता है।

किसी बैंक की विक्रित पूँजी (Subscribed capital) उसकी अधिकृत पूँजी (Authorised capital) की आधी से कम और चुकता पूँजी (Paid up capital) विक्रित पूँजी से आधी से कम न होगी। उदाहरण के लिए यदि किसी बैंक की अधिकृत पूँजी (Authorised capital) ४ करोड़ रुपये है तो कम से कम २ करोड़ रुपये उसकी विक्रित पूँजी होनी चाहिए और १ करोड़ रुपये उसकी चुकता पूँजी होनी चाहिए।

प्रत्येक बैंक को रिज़र्व बैंक के पास अपनी चालू जमा और मुद्दती जमा का ३० प्रतिशत या नकद कोष (Cash Reserve) के रूप में अथवा रिज़र्व बैंक द्वारा स्वीकृत सिक्यूरिटियों के रूप में रखना होगा। प्रत्येक बैंक को प्रत्येक वर्ष १ फरवरी के पहले रिज़र्व बैंक में अपनी कुल डिपाज़िटों का लेखा तथा बैंक के पास कितनी देनी (Assets) है उसका लेखा भेजना होगा। कुल देनी (Liabilities) की ७५ प्रतिशत देनी (Assets) वह होंगी जिन्हें रिज़र्व बैंक स्वीकार करे।

किन्तु भारत सरकार ने उस समय बैंक ऐक्ट बनाना अस्वीकार कर दिया। भारत सरकार का कहना था कि युद्ध समाप्त हो जाने के उपरान्त ही इस प्रकार का कानून बनाना उचित होगा। किन्तु १९४१ और १९४२ में नये बैंकों की एक बाढ़ सी आ गई बहुत से नये बैंक स्थापित हुए। उनमें से बहुतों की अधिकृत पूँजी (Authorised capital) तो बहुत अधिक

थी किन्तु चुकता पूँजी बहुत कम थी। साथ ही बहुत से बैंकों ने पूर्वाधिकार वाले हिस्से (Preferential Shares) साधारण हिस्से (Ordinary Shares) तथा विलम्बित हिस्से (Deferred Shares) निकाले और पूर्वाधिकार वाले हिस्सों को मत देने का अधिकार ही नहीं दिया और विलम्बित हिस्सों (Deferred Shares) का मूल्य बहुत थोड़ा रक्खा एक या दो रुपया और उनको भी मत का अधिकार उतना ही दे दिया जितना साधारण हिस्से वालों को था जिनका मूल्य बहुत अधिक था। सच तो यह था कि यह युक्ति कुछ लोगों ने बैंक में बहुत कम पूँजी लगा कर बैंक को अपने हाथ में रखने के लिए निकाली थी। उदाहरण के लिए यदि एक बैंक स्थापित किया जाता है और उसकी विक्रित पूँजी (Subscribed capital) केवल एक करोड़ रुपया है इसमें २० हजार पूर्वाधिकार वाले हिस्से (Preferential Shares) हैं जिनका मूल्य प्रति हिस्सा १०० रुपया है जो पूरा चुका दिया गया है। ७५ हजार साधारण हिस्से हैं जिनका मूल्य प्रति हिस्सा १०० रुपया है जो पूरा चुका दिया गया है और केवल २ लाख विलम्बित हिस्से (Deferred Shares) जिनका मूल्य प्रति हिस्सा २½ रु० है और जिन पर प्रति हिस्सा केवल १ रुपया चुकाया गया है। अब बैंक को स्थापित करने वाले चतुर व्यवसायी विधान में यह नियम बना दें कि पूर्वाधिकार वाले हिस्सों को मतदान का कोई अधिकार न होगा अथवा एक हिस्से का एक वोट होगा और प्रत्येक साधारण हिस्से का एक वोट होगा और प्रत्येक विलम्बित हिस्से का भी एक वोट होगा और वे सब विलम्बित हिस्से खरीद लेते हैं और उन पर प्रति हिस्से के हिसाब से एक रुपया चुका देते हैं तो वे केवल २ लाख रुपये लगा कर २ लाख वोट प्राप्त कर लेंगे और साधारण हिस्सेदार और पूर्वाधिकार वाले हिस्सेदार ६५ लाख रुपये लगाकर भी कुल ६५ हजार वोटों के अधिकारी होंगे। इस प्रकार बैंक उन लोगों के जिन्होंने चालाकी से विलम्बित हिस्से खरीद लिए हैं अधिकार में चला जावेगा।

जब रिजर्व बैंक ने देखा कि नवीन स्थापित बैंकों में यह दोष बड़ी मात्रा में पाया जाता है तो रिजर्व बैंक ने भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। भारत सरकार ने १९४२ में कम्पनी ऐक्ट में संशोधन कर दिया और उसके अनुसार यह निश्चित हो गया कि जिस कम्पनी के नाम के साथ बैंकिंग या बैंकर लगा है उसको बैंकिंग कम्पनी स्वीकार किया जावेगा फिर चाहे उसका मुख्य कार्य ऐसा डिपाज़िट लेना जो कि चेक से निकाली जा सके हो

या न हो। उसके साथ ही सरकार ने यह भी नियम बना दिया कि प्रत्येक बैंक की विक्रित पूँजी (Subscribed capital) कम से कम अधिकृत पूँजी (Authorised capital) की आधी होगी और चुकता पूँजी (Paid-up capital) विक्रित पूँजी की कम से कम आधी होगी। और बैंक या तो केवल साधारण हिस्से (Ordinary Shares) ही रक्खें या यदि भिन्न प्रकार के हिस्से रक्खें तो उनके मतदान का अधिकार उनकी पूँजी के अनुपात में ही होगा। उदाहरण के लिए ऊपर जिस कल्पित बैंक का हमने उल्लेख किया है यदि उसमें पूर्वाधिकार वाले हिस्सेदारों को २० हज़ार, साधारण हिस्सेदारों को ७५ हज़ार तथा विलम्बित हिस्सेदारों को केवल २ हज़ार मत देने का अधिकार होगा।

इतना सब कुछ होने पर भी युद्ध काल में नये बैंकों की स्थापना इस तेजी से हुई और उनमें कुछ ऐसे दोष दृष्टिगोचर होने लगे कि भारत सरकार को स्वतंत्र बैंक कानून बनाने के लिए विवश होना पड़ा और १६४५ में भारत सरकार ने एक बिल धारा सभा में उपस्थित किया। यह प्रस्तावित बैंक कानून रिज़र्व बैंक के प्रस्तावित बैंक बिल के अनुसार ही है केवल उसमें इतना ही अन्तर है कि इस प्रस्तावित कानून में बैंक की परिभाषा इस प्रकार की गई है—बैंक वह है जो अभियाचन डिपाज़िट या जमा (Demand Deposit) स्वीकार करे। कोई भी बैंक अपने डायरैक्टरों को अथवा उस फर्म या कम्पनी को जिसका साझेदार, डायरैक्टर या मैनेजिंग एजेंट बैंक का कोई डायरैक्टर हो अरक्षित ऋण (Unsecured loan) नहीं दे सकता। इस प्रस्तावित बैंक कानून के अनुसार प्रत्येक बैंक को जो अपने जन्म प्रान्त के बाहर कारबार करे कम से कम २० लाख रुपये की चुकता पूँजी और रक्षित कोष रखना आवश्यक है। बम्बई या कलकत्ता में ब्रांच खोलने के लिए ५ लाख, प्रत्येक ऐसे स्थान पर जिसकी आबादी १ लाख से ऊपर हो २ लाख और प्रत्येक दूसरी ब्रांचों के लिए प्रति ब्रांच के हिसाब से १० हज़ार रुपये की पूँजी और रक्षित कोष आवश्यक होगा। कोई भी बैंक एक लाख की पूँजी और रक्षित कोष के बिना बैंक कार्य नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रस्तावित कानून में प्रत्येक बैंक को अपनी कुल डिपाज़िट का २५ प्रतिशत रिज़र्व बैंक के पास नकद कोष (Cash Reserve) अथवा सरकारी और ट्रस्ट सिक्यूरिटियों के रूप में रखना अनिवार्य होगा।

इस बिल में उन कार्यों का भी उल्लेख किया गया था जो एक बैंक

कर सकता था। यह इसलिये किया गया था कि जिससे रुपया जमा करने वालों की अमानत (जमा) की सुरक्षा हो। बिल का उद्देश्य यह था कि व्यापारिक बैंक अपना धन उद्योग धंधों में लम्बे समय के लिये न लगावें। उसके लिये औद्योगिक बैंकों की स्थापना आवश्यक है। जरमनी, इटली और बैलजियम में जिस प्रकार व्यापारिक कारबार करने के साथ-साथ स्थायी अथवा अर्ध स्थायी रूप से उद्योग धंधों में पूँजी लगाने की परिपाटी चल पड़ी है उसे भारत में न पनपने देना ही इस धारा का उद्देश्य था।

बिल में दो धारायें इस आशय की भी थीं कि बैंक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किसी प्रकार की व्यापारिक जोखिम को अपने ऊपर नहीं लेंगे और इस उद्देश्य से वे बैंकिंग कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी व्यापार को नहीं करेंगे।

बिल में एक धारा इस आशय की भी थी कि जो बैंक भारत या ब्रिटेन के बाहर स्थापित हुए हैं और वे भारत में अपना कारबार करते हैं। उन्हें रिजर्व बैंक के पास रिज़र्व बैंक द्वारा निश्चित अमानत (जमा) रखनी होगी। इसके द्वारा उन भारतीयों को जो विदेशी बैंकों में अपना रुपया जमा करते हैं थोड़ी सुरक्षा देने का प्रयत्न किया गया था।

इस बिल के अनुसार प्रत्येक बैंक के लिए यह अनिवार्य बना दिया गया कि वे प्रत्येक महीने अपने कारबार का लेखा और उन्होंने अपनी पूँजी कहाँ लगाई इसका ब्योरा रिज़र्व बैंक को देंगे जिससे रिज़र्व बैंक उनकी गति-विधि से पूरी तरह से परिचित हो सके।

बिल के अनुसार रिजर्व बैंक को अन्य बैंकों की जाँच करने का भी अधिकार प्राप्त था।

किन्तु १६४५ का यह बैंकिंग बिल व्यवस्थापिका सभा के भंग हो जाने के कारण व्यवस्थापिका सभा के सामने उपस्थित न किया जा सका।

अन्त में ११ अप्रैल १६४६ को तत्कालीन अर्थ सदस्य सर रोलैंड्स ने पुराने बिल का संशोधन करके फिर व्यवस्थापिका सभा के सामने उपस्थित किया जो सेलेक्ट कमेटी के सुपुर्द कर दिया गया। यह बिल १६४५ के बिल के आधार पर ही बनाया गया था। इसमें केवल कुछ संशोधन किये गये थे। इस नये बिल के अनुसार रिज़र्व बैंकों को किसी भी बैंक के हिसाब तथा कारबार की जाँच करने का अधिकार था। यह बिल विदेशी बैंकों पर

भी लागू होता तथा इसके अनुसार एक विशेष प्रकार की लेनी-देनी का लेखा (Balance Sheet) निर्धारित कर दिया गया तथा रिज़र्व बैंक को अन्य बैंकों से सारी जानकारी प्राप्त करने का अधिकार दे दिया गया। बैंकों को बैंकिंग कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य करने की मनाही कर दी गई। बिना पूर्व आज्ञा लिए कोई दो बैंक का जहाँ तक पूँजी के संगठन का प्रश्न था वह पूर्ववत् ही रक्खा गया।

किन्तु यह बिल भी शीघ्र पास न हो सका। इस बीच में आवश्यकता पड़ने के कारण सरकार ने १६४६ में एक आर्डिनेंस बनाकर रिज़र्व बैंक को अन्य बैंकों की जाँच का अधिकार दे दिया। साथ ही रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार दे दिया गया कि यदि उसकी जाँच का परिणाम यह निकले कि बैंक का कार्य ठीक नहीं है तो रिज़र्व बैंक उस बैंक को आगे जमा न लेने की आज्ञा दे सकता है और उसको शिड्यूल बैंक की श्रेणी से निकाल सकता है। रिज़र्व बैंक ने इस अधिकार का प्रयोग किया और इंटर नेशनल बैंक आव इंडिया, आर्यन बैंक तथा ज्वाला बैंक इत्यादि को आगे डिपाज़िट न लेने की आज्ञा दे दी।

एक दूसरे आर्डिनेंस से भारतीय बैंकों को बेयरर प्रामिसरी नोट निकालने की मनाही कर दी गई। बात यह थी कि यदि कोई बैंक बेयरर प्रामिसरी नोट निकाले तो वे बिना किसी अड़चन के एक हाथ से दूसरे हाथ में जा सकेंगे और उनका चलन बैंक नोटों के अनुसार होने लगेगा।

एक तीसरा विधान यह बनाया गया कि कोई बैंक बिना रिज़र्व बैंक की आज्ञा प्राप्त किए कोई नई शाखा नहीं खोल सकेगा और न स्थापित शाखा के स्थान को ही बदल सकेगा। रिज़र्व बैंक उस बैंक की आर्थिक स्थिति, प्रबंध, उस बैंक का पुराना इतिहास, लाभ की आशा तथा जनहित को ध्यान में रखकर किसी बैंक की स्थापित ब्रांच को बंद करने तथा उसके स्थान परिवर्तन की आज्ञा देगा अथवा नहीं देगा।

बैंकिंग बिल १६४८ :—१६४६ का बैंक बिल भी केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में न लाया जा सका क्योंकि अगस्त १६४७ में भारत स्वतंत्र हो गया अतएव उस बिल में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अस्तु पुराने बिल को सरकार ने वापस ले लिया और १६४८ में एक नया बिल व्यवस्थापिका सभा के

सामने उपस्थित किया गया। १९४८ के बिल की मुख्य बातें नीचे लिखे अनुसार हैं।

(१) बैंक की एक विस्तृत परिभाषा स्वीकार कर ली गई है। किसी भी प्रकार की उस परिभाषा के अनुसार जो भी संस्था ऋण देने के लिए अथवा विनियोग (Investment) के लिए किसी भी प्रकार की जमा (डिपाजिट) स्वीकार करे वह बैंक की श्रेणी में गिनी जावेगी।

(२) जो बैंक नहीं हैं उन्हें चालू जमा स्वीकार करने की मनाही कर दी गई है।

(३) कोई बैंकिंग कम्पनी किसी अन्य प्रकार का व्यापार अथवा कार बार नहीं कर सकता। इस प्रकार बैंकिंग कारबार के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की जोखिम बैंकों पर नहीं रहेगी।

(४) १९४५ के बिल में जो न्यूनतम पूँजी का विधान किया गया था उसको इस बिल में वैसे का वैसा ही स्वीकार कर लिया गया।

(५) बैंक के हिस्सेदारों को लाभ समिति कर दिया गया है।

(६) जो बैंक भारत के बाहर स्थापित हुए हैं उन पर भी यह कानून लागू होगा।

(७) बैंकों को अपनी लेनी देनी का लेखा (बैलेंस शीट) एक विशेष फार्म के अनुसार तैयार करना होगा। रिज़र्व बैंक को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह प्रत्येक बैंक से समय समय पर उनके कारबार के आँकड़े माँग सके।

(८) जब भी रिजर्व बैंक को आवश्यकता होगी वह किसी भी बैंक के हिसाब की जाँच कर सकता है।

(९) केन्द्रीय सरकार को इस कानून के अनुसार यह अधिकार प्राप्त हो गया कि यदि उसको प्रतीत हो कि कोई बैंक रुपया जमा करने वालों के हित के विरुद्ध कार्य कर रहा है तो वह जो भी कार्यवाही उस बैंक के विरुद्ध करना चाहे कर सके।

(१०) बिल में इस बात का प्रबन्ध कर दिया गया है कि रिज़र्व बैंक और अन्य बैंकों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जावे।

(११) यदि कोई बैंक दिवालिया हो जावे तो उसका कारबार समेटने में अधिक विलम्ब न लगे उसका प्रबन्ध भी बिल में कर दिया गया है।

(१२) इम्पीरियल बैंक आव इंडिया पर भी इस कानून की कुछ धारायें लागू होंगी।

(१३) रिज़र्व बैंक अन्य बैंकों के संकट के समय उनकी सहायता कर सके इसके लिए कानून द्वारा उसे विशेष अधिकार दे दिए गए हैं।

अन्ततः यह बिल व्यवस्थापिका सभा में स्वीकार किया जाकर कानून बन गया। बहुत वर्षों के प्रयत्नों के बाद पहली बार भारत में बैंक सम्बन्धी कानून बना। आशा है कि इस कानून के प्रभाव से तथा रिज़र्व बैंक की देख-भाल, नियंत्रण तथा नेतृत्व के कारण देश में बैंक अधिक कार्यशील और सुसंगठित बन सकेंगे।

अध्याय—२४

द्वितीय महायुद्ध तथा देश के विभाजन का भारतीय बैंकिंग पर प्रभाव

(१) द्वितीय महायुद्ध का भारतीय बैंकिंग पर पहला प्रभाव यह पड़ा कि यहां नये बैंकों की बाढ़ सी आ गई, अनेक नये बैंक स्थापित हुए और पुराने बैंकों ने तेजी से अपनी ब्रांचों को बढ़ाया। इसका कारण यह था कि युद्ध काल में धंधों को खड़ा करने के लिए मशीन तथा यन्त्र तो विदेशों से आ नहीं सकते थे जो फैक्टरियां स्थापित की जा सकतीं और न इमारतें इत्यादि बनाने की सुविधा थी। किन्तु बैंक स्थापित करने में इन चीजों की आवश्यकता न थी। उसके लिए केवल अल्पकालीन कोष (Short-term Funds) की आवश्यकता थी और वह युद्ध काल में इस देश में बहुतायत से उपलब्ध था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक बड़े पूँजीपति या व्यवसायी ने अपना बैंक खड़ा कर दिया। आज ऐसा कोई प्रसिद्ध भारतीय व्यवसायी नहीं है जिसने इस समय एक बैंक स्थापित नहीं किया। यदि भारत सरकार नई मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों के स्थापित होने पर रोक न लगा देती तो सम्भवतः भारत में अनाप-शनाप बैंकों की वृद्धि होती। फिर भी जहाँ १६३६ के जून में इम्पीरियल बैंक, विनिमय बैंकों को मिला कर सब शिड्यूल बैंकों की संख्या ५१ थी वह १६४४ में बढ़ कर ७६ हो गई और उनकी ब्रांचों की संख्या १६३२ से बढ़कर २१४१ हो गई और १६४७ में ६४ या ६५हो गई। १६३६ के अन्त तक सब शिड्यूल बैंकों की ब्रांचों की संख्या बढ़कर ३५१६ हो गई। इनमें ४४५ ब्रांचें इम्पीरियल बैंक की थीं, ७८० ब्रांचें पाँच बड़े बैंकों की थीं और अन्य शिड्यूल बैंकों की शाखों की संख्या २२०७ थी।

बैंकों की इस कल्पनातीत वृद्धि के होने पर प्रति ब्रांच बड़े बैंकों में १५ लाख रुपये और साधारण और छोटे बैंकों में ३ लाख रुपये से डिपाजिटों का औसत कम नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यह है कि युद्ध काल में बैंकों की डिपाजिट भी बेहद बढ़ गई। इम्पीरियल बैंक विनिमय बैंकों और भारतीय मिश्रित पूँजी वाले बैंकों की स्थिति १६४१ तक लगभग पूर्ववत ही रही परन्तु जापान के युद्ध में सम्मिलित होते ही विनिमय बैंकों (एक्सचेंज बैंकों)

की अनुपातिक डिपाज़िट गिरने लगीं। जहाँ युद्ध के पूर्व एक्सचेंज बैंकों की डिपाज़िट कुल बैंकों की डिपाज़िटों का २६·५ प्रतिशत थी गिरकर १६४२ में २५ प्रतिशत और १६४३ में २० प्रतिशत से भी कम हो गई। उसी समय इम्पीरियल बैंक ने विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) का कार्य तेजी से आरम्भ कर दिया था और उसकी ऊँची साख तथा अधिक विस्तार होने के कारण जो एक्सचेंज बैंकों को हानि हुई वह इम्पीरियल बैंक के लिए लाभदायक प्रमाणित हुई। एक्सचेंज बैंकों की डिपाज़िटों का अनुपात कम हुआ किन्तु इम्पीरियल बैंक की डिपाज़िटों का अनुपात १६४२ में बढ़ कर ३७ प्रतिशत हो गया किन्तु बहुत से नवीन बैंक स्थापित हो जाने के कारण १६४३ में इम्पीरियल बैंक की डिपाज़िटों का अनुपात गिर कर ३० प्रतिशत से भी नीचे हो गया। १६४३ में भारतीय मिश्रित बैंकों की डिपाज़िटों का अनुपात तेज़ी से बढ़ गया। जहाँ १६३६ में उनकी डिपाज़िटों का अनुपात केवल ३८ प्रतिशत था वहाँ १६४३ में वह बढ़ कर ४६ प्रतिशत हो गया। भारतीय मिश्रित बैंकों में भी १६४२ तक 'बड़े पाँच' के पास ही भारतीय बैंकों की अधिकांश डिपाज़िट थीं वहाँ १६३६ में बड़े पाँच की डिपाज़िटों का अनुपात कुल भारतीय बैंकों की डिपाज़िटों का ७० प्रतिशत था १६४२ में वह बढ़कर ८० प्रतिशत हो गया। किन्तु १६४३ में बहुत से नये बैंकों के स्थापित हो जाने के कारण यह गिरकर ६० प्रतिशत रह गया और 'बड़े सात' की डिपाज़िटों का अनुपात ७५ प्रतिशत से घटकर ६१ प्रतिशत रह गया।

युद्ध का दूसरा प्रभाव यह हुआ कि बैंकों की डिपाज़िट में कल्पनातीत वृद्धि हुई। इम्पीरियल बैंक, एक्सचेंज बैंक तथा अन्य शिड्यूल बैंकों की कुल डिपाज़िट युद्ध आरम्भ होने के समय २३८ करोड़ रुपये थीं। १६४४ में वही बढ़ कर ७८२ करोड़ रुपये हो गई। और जनवरी १६४८ में वही बढ़कर १०८० करोड़ रुपये के लगभग हो गई। यह ध्यान में रखने की बात है कि १६३६ से १६३६ तक केवल २० करोड़ रुपये की बैंकों की डिपाज़िट में वृद्धि हुई थी। जहाँ एक ओर बैंकों की डिपाज़िट में तेजी से वृद्धि हो रही थीं वहाँ पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंकों की डिपाज़िट तथा कैश सर्टिफिकेट में कमी हो गई। १६२८ में पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक डिपाज़िट तथा कैश सर्टिफिकेट की रकम १४० करोड़ थी वह घट कर १६४१ में १०२ करोड़; १६४२ में ३८ करोड़ और १६४३ में १०८ करोड़ हो गई। बैंकों की डिपाज़िटों की वृद्धि का कारण तो यह था कि युद्ध के व्यय के कारण मुद्रा (Currency) का

देश में बहुत विस्तार हुआ था। रिजर्व बैंक तथा सरकार ने अनाप-शनाप नोट छापे। बैंकों की डिपाजिटों की वृद्धि का एक कारण था कि बैंकों ने नये क्षेत्रों में प्रवेश किया था तथा ब्रांचों का बहुत विस्तार हुआ था। पोस्ट आफिस सेविंग बैंक तथा कैश सर्टिफिकेटों की रकम के घटने का कारण यह था कि बेहद मँहगाई के कारण मध्यम श्रेणी का व्यक्ति कुछ बचा नहीं सकता वरन् उसे अपनी पुरानी बचत को भी खर्च करना पड़ता था।

बैंकों की डिपाजिटों के सम्बन्ध में एक और आश्चर्यजनक बात हुई। युद्ध आरम्भ होने के पूर्व मुद्दती जमा (Fixed Deposits) का कुल डिपाजिटों का अनुपात ५० प्रतिशत था अर्थात् मुद्दती जमा आधी थी किन्तु युद्ध काल में वे २५ प्रतिशत रह गई। हुआ यह कि युद्ध काल में मुद्दती जमा तो बहुत कम बढ़ी किन्तु चालू जमा (Current Deposit) बहुत अधिक बढ़ गई। इसके तीन मुख्य कारण थे। पहला कारण तो यह था कि सूद की दर बहुत गिर गई थी। १९३१ के उपरान्त सूद की दर गिरती ही चली जा रही थी इस कारण सर्वसाधारण को एक वर्ष के लिए रुपया अटकाने में कोई लाभ नहीं दिखता था। वह चालू खाते में रुपया जमा करना पसंद करती थी। किन्तु यह प्रभाव युद्ध के पहले से ही काम कर रहा था। दूसरा कारण यह था कि सर्वसाधारण कीमतें बहुत ऊँची होने के कारण अपनी बचत को जमीन, इमारतें, सोना-चाँदी, कंपनियों के हिस्सों में लगाने से हिचकती थी। वह अपनी बचत को तरल रूप (Liquid Form) में रखना चाहती थी कि जब अवसर आवे तभी अपनी बचत का इन चीजों के खरीदने में उपयोग कर सके। तीसरा कारण चालू जमा की अत्यधिक वृद्धि का यह था कि युद्ध काल में मशीनें तथा अन्य सामान न मिलने के कारण नये कारखाने तो स्थापित हो नहीं सकते थे कि जिनमें व्यवसायी तथा व्यापारी अपने बढ़ते हुए लाभ को लगा सकते अतएव वे उस धन को अपने कारखानों की कार्यशील पूँजी (Working Capital) को बढ़ाने में लगाते थे जिससे वे उसी कारखाने से अधिक से अधिक उत्पादन कर सकें।

युद्ध का तीसरा प्रभाव यह हुआ कि बैंकों की चुकता पूँजी या परिदत्त पूँजी (Paid up Capital) और रक्षित कोष उनकी डिपाजिटों की तुलना में बहुत घट गई। इम्पीरियल बैंक की पूँजी और रक्षित कोष उसकी डिपाजिटों की तुलना में जहाँ १९३९ में १२·८ प्रतिशत था वह घटकर ४·५ प्रतिशत रह गया, पाँच बड़ों की परिदत्त पूँजी और रक्षित कोष ९·३ प्रतिशत से घट कर

४५ प्रतिशत रह गई। इसका फल यह हुआ कि बहुत से बैंकों ने अपनी पूँजी (Capital) को बढ़ाया।

युद्ध का चौथा प्रभाव यह हुआ कि उद्योग-धन्धों और व्यापार के लिए जो ऋण की माँग थी वह कम हो गई किन्तु सरकार ने एक के बाद दूसरे ऋण निकालने आरम्भ किए। १६३६ में जहाँ बैंक अपनी कुल डिपाज़िटों का ५८ प्रतिशत ऋण, नकद साख तथा बिलों के रूप में धन्धों और व्यापार में लगाते थे वहाँ १६४५ में उन्होंने अपनी डिपाज़िटों का कुल २० प्रतिशत इस रूप में लगाया। जैसे-जैसे युद्ध चलता गया उद्योग-धन्धों को बैंकों से उधार लेने की आवश्यकता कम होती गई। उनके लाभ को व्यवसायी चालू खाते में रखते थे और उसी को कार्यशील पूँजी (Working Capital) के रूप में लाते थे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि बैंकों ने अपने कोष (Funds) को सरकारी सिक्यूरिटियों में अधिकाधिक लगाना आरम्भ कर दिया। यही नहीं बैंकों ने नकद कोष (Cash Reserve) भी अधिक रखना आरम्भ कर दिया। शिड्यूल बैंक १५ प्रतिशत, इम्पीरियल बैंक १५ से २५ प्रतिशत, बड़े पाँच १८ प्रतिशत, और वे बैंक जो शिड्यूल बैंक नहीं हैं वे ११ प्रतिशत नकद कोष रखने लगे। दूसरे शब्दों में युद्ध काल में बैंकों की तरल लेनी (Liquid Assets) का अनुपात बढ़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बैंकों को अपने रुपये पर सूद की कम आय होने लगी इस कारण उन्होंने भी डिपाज़िटों पर सूद कम कर दिया।

युद्ध का पाँचवाँ प्रभाव यह पड़ा कि बैंकों में कुछ खराबियाँ और उनकी कार्य पद्धति में कुछ कमी दृष्टिगोचर होने लगी। अतएव रिज़र्व बैंक ने भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया और भारत सरकार ने कम्पनी ऐक्ट में कुछ सुधार किए (देखो अध्याय २३) तथा एक बैंक कानून का निश्चय किया।

युद्ध का छटाँ प्रभाव यह पड़ा कि बैंकों की वृद्धि होने के कारण बैंक कर्मचारियों का टोटा पड़ गया। नये बैंकों ने पुराने बैंकों के कर्मचारियों को अधिक वेतन देकर अपने यहाँ रख लिया और प्रत्येक बैंक को यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि युवकों को अपरैंटिस रखकर उनको बैंक कार्य सिखाने का प्रबन्ध किया जावे।

अन्तिम प्रभाव यह हुआ कि भारतीय बैंक यह अनुभव करने लगे कि अखिल भारतीय बैंकर्स ऐसोसियेशन स्थापित की जावे जो अस्वस्थकर होड़ को रोके तथा बैंकों में सद्भावना और परस्पर सम्बन्ध स्थापित करे। साथ ही

ऊँचे दर्जे की बैंकिंग परम्परा का निर्माण करे तथा बैंकों और रिजर्व बैंक के बीच में एक कड़ी का काम दे। यह एसोसियेशन भारतीय बैंकों की कठिनाइयों तथा माँगों को सरकार के सामने रख सकेगी और उनका प्रतिनिधित्व कर सकेगी। यही कारण था कि बम्बई के बैंकरों ने उसको स्थापित करने का प्रयत्न किया।

यद्यपि युद्ध के फल स्वरूप भारत में बैंकों का तेज़ी से विस्तार हुआ किन्तु उस बाढ़ में बहुत से निर्बल बैंक भी स्थापित किए गए और वे डिपाज़िट लेने के लिए अस्वस्थकर प्रतिस्पर्द्धा करने लगे। विशेष कर बगाल और पंजाब में इस प्रकार के बहुत से छोटे छोटे बैंक स्थापित हुए। १६४७ में इनमें से पचास से अधिक बैंक डूब गए। भविष्य में बैंकों को सबल और सुदृढ बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि छोटे बैंक दूसरे बैंकों से मिल जावें। देश में इस समय बैंकिंग सम्मिश्रण (Banking Amalgamation) की आवश्यकता है तभी बैंकिंग व्यवसाय उन्नति कर सकेगा।

देश के स्वतंत्र होने तथा विभाजन का प्रभाव—१५ अगस्त १६४७ को भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया किन्तु साथ ही उसका विभाजन भी हो गया। उसके फल स्वरूप जो पंजाब, सीमा प्रान्त तथा सिंध इत्यादि में हत्याकांड हुआ उसमें उत्तर पश्चिम भारत में फैले हुए बैंकों की बहुत अधिक हानि हुई है। वहाँ का व्यापार तथा व्यवसाय चौपट हो गया और बैंकों का जो रुपया लगा हुआ था वह बहुत कुछ डूब गया। अभी यह कह सकना कठिन है कि कितनी हानि हुई है किन्तु यह कहना होगा कि बैंकों ने इस हानि को सहन कर लिया है और उनमें से अधिकांश की स्थिति अच्छी है। हाँ इसका एक प्रभाव अवश्य हुआ है पंजाब तथा पाकिस्तान में बहुत से बैंक अपने हेड आफिसों को वहाँ से हटाकर भारत में ले आये हैं। साथ ही बहुत से बैंक सम्भवतः वहाँ अपनी ब्रांचों को भी बन्द कर दें।

इम्पीरियल बैंक तथा रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण—कुछ दिनों से देश में रिज़र्व बैंक तथा इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) की माँग हो रही थी। अभी हाल में भारत सरकार के भूतपूर्व अर्थ मंत्री चेट्टी महोदय ने भारतीय पार्लियामेंट में यह घोषणा की थी कि सरकार रिज़र्व बैंक तथा इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करेगी।

अध्याय—२५

बैंकों की कार्य पद्धति और उनके नियम

बैंकर और उसके ग्राहक

बैंक की परिभाषा—यद्यपि भिन्न-भिन्न देशों में बैंक या बैंकर की परिभाषा वहां के कानूनों में भिन्न है और यह कह सकना कठिन है कि कौन सी परिभाषा सही है फिर भी हम साधारण तौर से यह कह सकते हैं कि बैंक या बैंकर वह है जो ऐसी अभियाचन जमा (Demand Deposit) स्वीकार करता है जो चेक द्वारा निकाली जा सकें।

बैंक के ग्राहक (Customer) की परिभाषा—अभी तक बैंक के ग्राहक की कोई कानूनी परिभाषा नहीं है किन्तु इस विषय के विद्वानों का मत है कि बैंक के ग्राहक होने के लिये व्यक्ति को दो शर्तें पूरी करनी होंगी (१) कुछ समय तक बैंक से व्यवहार करता रहा हो (२) उसका बैंक से कारवार बैंकिंग सम्बन्धी हो। आजकल पहली शर्त को आवश्यक नहीं माना जाता परन्तु दूसरी शर्त आवश्यक है अर्थात् वही व्यक्ति बैंक का ग्राहक माना जावेगा जो बैंक से बैंकिंग सम्बन्धी कारबार करता हो। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति कभी-कभी बैंक में जाकर सौ रुपये के नोट भुना लाता है अपने चेक या बैंक ड्राफ्ट का नक़द रुपया ले आता है अथवा अपने ज़ेवर इत्यादि को बैंक की रक्षा में रख देता है तो वह बैंक का ग्राहक नहीं कहलावेगा क्योंकि यह कार्य बैंक के नियमित कार्य नहीं हैं। अधिकांश विद्वान अब यही मानते हैं कि बैंक का ग्राहक होने के लिए जमा खाता (Deposit Account) खोलना आवश्यक है।

बैंकर तथा ग्राहक का सम्बन्ध - बैंकर अपने ग्राहक का कर्ज़दार होता है और ग्राहक बैंकर का लेनदार (Creditor) होता है क्योंकि ग्राहक अपना रुपया बैंक में जमा करता है। बैंकर जमा किये हुए रुपये का ट्रस्टी नहीं होता और न वह अपने ग्राहक का उस रुपये के सम्बन्ध में एजेंट ही होता है जब तक कि ग्राहक उसे विशेष रूप से अपने रुपये का ट्रस्टी या एजेंट नहीं बना देता। जब ग्राहक अपना रुपया बैंक में जमा कर देता है तो उसका उस रुपये

पर कोई अधिकार नहीं रहता। बैंक उस रुपये का जिस प्रकार भी चाहे उपयोग कर सकता है। हाँ, बैंक की यह ज़िम्मेदारी अवश्य होती है कि ग्राहक जब उस रुपये को माँगे तो वापस करे। अस्तु बैंकर, ग्राहक का ट्रस्टी या एजेंट न होकर केवल कर्ज़दार (Debtor) ही होता है।

रुपये को वापस करने की माँग आवश्यक है—बैंक और साधारण कर्ज़दार के कर्ज में भेद इतना ही है कि जहाँ साधारण कर्ज़दार के विरुद्ध कर्ज की अवधि समाप्त हो जाने पर लेनदार (Creditor) बिना उससे कर्ज की अदायगी की माँग किये ही उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही कर सकता है वहाँ बैंक का ग्राहक ऐसा नहीं कर सकता। जब तक कि ग्राहक अपना रुपया बैंक से नहीं माँगता तब तक बैंक उसको अपनी ओर से रुपया नहीं अदा कर सकता।

दिये हुए रुपये का नियोजन (Appropriation)—यदि किसी ग्राहक के एक बैंक में बहुत से खाते (Accounts) हैं तो वह बैंक में रुपया भेजते समय इस बात का उल्लेख कर सकता है कि वह रुपया किस खाते में जमा किया जावे या वह इस बात का उल्लेख कर सकता है कि यह रुपया किसी बिल, हुंडी या चेक विशेष का भुगतान करने के लिये रक्खा जावे। यदि ग्राहक ने उस रुपये का किस प्रकार उपयोग किया जावे इसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया तब तो बैंक को उसकी आज्ञा माननी ही होगी और उसी खाते में उस रुपये को जमा करना होगा जिसमें ग्राहक रुपया जमा करना चाहता है अथवा उसी हुंडी या चेक के भुगतान के लिये उस रुपये को रखना होगा जिसका ग्राहक ने उल्लेख किया है। किन्तु यदि ग्राहक ने ऐसा कुछ नहीं किया तो बैंक को इस बात का पूरा अधिकार है कि वह उस रुपये को उस ऋण को जो बैंक का ग्राहक पर हो वसूल करने में इस्तेमाल कर ले। यहाँ तक कि जो कर्ज़ा अत्यधिक पुराना होने के कारण कानूनन वसूल नहीं किया जा सकता उसको भी बैंक इस रुपये से चुका ले सकता है।

जहाँ तक अकेले चालू खाते (Current Account) का प्रश्न है नियम यह है कि उस खाते में नामे (Debit) की ओर जो पहली रकम होगी वह जमा (Credit) की ओर की पहली रकम को चुकावेगी या कम करेगी। किन्तु यह नियम केवल चालू खाते के लिए है।

बैंकर अपने ग्राहक के चेकों का भुगतान करने के लिए बाध्य है—बैंक का यह पहला उत्तरदायित्व है कि वह अपने ग्राहक के काटे हुए

चेकों का भुगतान करे जब तक कि उसके खाते में रुपया है अथवा जब तक कि उसके दिये हुए ओवर ड्राफ्ट की रकम समाप्त नहीं हो गई हो। हाँ, यदि चेक ६ महीने से अधिक पुराना हो या उसमें काई दोष हो (देखो अध्याय १) या ग्राहक ने ही उसका भुगतान रोक दिया तभी बैंक उसका भुगतान करने से इनकार कर सकता है। यदि ग्राहक ने कुछ चेक तथा बैंक ड्राफ्ट अपने खाते में जमा करने के लिए भेजे हैं तो बैंक उस समय तक उन्हें उसके खाते में जमा करने के लिए बाध्य नहीं है जब तक कि उसको उनका रुपया वसूल न हो जावे। यदि कोई बैंक अपने ग्राहक का चेक बिना उचित कारण के अस्वीकार कर देता है तो ग्राहक उससे अपनी साख गिरने के उपलक्ष में हर्जाना वसूल कर सकता है।

यदि किसी ग्राहक के एक ही स्थिति में दो खाते हों और एक में नामे बाकी (Debit Balance) हो और दूसरे में जमा बाकी (Credit Balance) हो तो बैंक ग्राहक को नोटिस देकर उन दोनों खातों का प्रतिसाद (Set off) कर सकता है अर्थात् एक खाते की कमी को दूसरे खाते से पूरा कर सकता है। (इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि एक जज ने तो यहाँ तक निर्णय दिया है कि बिना ग्राहक की अनुमति के बैंक ऐसा नहीं कर सकता।)

बैंक का ग्रहणाधिकार (Lien)—यदि कोई ग्राहक बैंक के पास अपनी सिक्यूरिटियाँ जमा कर देता है तो बैंक को उन पर ग्रहणाधिकार (Lien) प्राप्त हो जाता है। ग्रहणाधिकार का अर्थ यह है कि यदि वह ग्राहक बैंक का कर्ज़दार है तो बैंक उन सिक्यूरिटियों को ज़मानत के रूप में अपने पास रख सकता है और यदि ग्राहक उस कर्ज़ को अदा न करे तो उन सिक्यूरिटियों को बेंच कर अपना कर्ज़ वसूल कर सकता है। किन्तु यह अधिकार बैंक को तभी प्राप्त होता है जब उसको वे सिक्यूरिटियाँ बैंकर की हैसियत से मिली हों। उदाहरण के लिए यदि ग्राहक भूल से अपने मूल्यवान कागज़ पत्र, चेक, बिल, या अन्य मूल्यवान ज़ेवर इत्यादि बैंकर के पास छोड़ जाता है या सिक्यूरिटियों को बैंकर के हाथ में एक नये ऋण की ज़मानत के रूप में देता है जो बैंक अस्वीकार कर देता है या उन सिक्यूरिटियों को वह किसी विशेष उद्देश्य से बैंक के पास जमा करता है तो बैंक उन पर अपना ग्रहणाधिकार (Lien) स्थापित नहीं कर सकता। यदि ग्राहक और बैंकर के बीच में ऐसा कोई समझौता हो गया हो कि बैंक उन सिक्यूरिटियों पर

ग्रहणाधिकार स्थापित नहीं करेगा तो भी बैंक अपने इस अधिकार से वंचित रहेगा। नहीं तो बैंक के पास जो चेक, बिल, शेयर, वारट बांड ग्राहक के हिसाब में जमा करने के लिए आते हैं वह उन पर अपना ग्रहणाधिकार स्थापित कर सकता है और उनको वसूल करके अपने उस रुपये को जो कि बैंक का ग्राहक पर कर्ज के रूप में है और ग्राहक नहीं चुकाता वसूल कर सकता है।

बैंकर का कर्तव्य है कि वह अपने ग्राहक की आर्थिक स्थिति को गुप्त रक्खे—बैंक का यह प्रमुख कर्तव्य है कि बिना उचित कारण के वह ग्राहक के खाते (Account) को किसी को न बतावे। बैंक ग्राहक के खाते को तभी प्रकट कर सकता है जब कि कानून द्वारा वह ऐसा करने के लिए विवश हो या बैंक के हित में आवश्यक हो (उदाहरण के लिए बैंक यदि ग्राहक पर कर्ज अदा न करने के कारण मुकदमा चलावे) अथवा ग्राहक की सहमति से उसने ऐसा किया हो। आजकल व्यापारियों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में बैंक एक दूसरे को गोपनीय सम्मति देते हैं। यह इतना अधिक प्रचलित है कि यह उनका अधिकार माना जाने लगा है।

अदालत की आज्ञा (Garnishee order)—यदि अदालत बैंक को आज्ञा दे कि किसी ग्राहक विशेष को अपने खाते में से रुपया न निकालने दे तो बैंक उस आज्ञा के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होगा।

खाते को बन्द करना—कोई भी ग्राहक अपने खाते में से सारे रुपये को निकाल कर खाते को बन्द कर सकता है। किन्तु बैंक ग्राहक को बिना पूर्व सूचना दिये उसके खाते बन्द नहीं कर सकता। बैंक यदि किसी ग्राहक के हिसाब को बन्द करना चाहे तो उसे ग्राहक को सूचित कर देना चाहिए कि वह अपना रुपया निकाल ले और भविष्य में उसका रुपया जमा नहीं किया जावेगा। किन्तु नीचे लिखी दशाओं में बैंक ग्राहक के हिसाब को रोक देने के लिए बाध्य है। (क) यदि ग्राहक मर जावे, पागल हो जावे या दिवालिया हो जावे। या यदि ग्राहक कम्पनी है तो उसके टूटने का नोटिस मिलने पर बैंक उसका खाता रोक देगा (ख) यदि अदालत की इस आशय की आज्ञा मिले तो बैंक ग्राहक के खाते को रोक देगा।

पास बुक की प्रविष्टि (Entry)—यदि पास बुक में ग्राहक के पक्ष में भूल से बैंक ने कोई रकम जमा कर दी है तो वह यह साबित कर

सकता है कि वह रुपया भूल से जमा हो गया और उसको सही कर सकता है। किन्तु यदि बैंक ने भूल से ग्राहक के खाते में उसके पक्ष में कुछ रुपया जमा कर दिया है और यदि ग्राहक ने उस प्रविष्टि (Entry) के भरोसे चेक काट दिया तो बैंकर को उसका भुगतान करना ही होगा। उस दशा में बैंकर उस प्रविष्टि से बँध जावेगा। किन्तु यदि इस बीच में ग्राहक के खाते की स्थिति नहीं बदली तो बैंकर उस भूल का सुधार कर सकता है।

ग्राहकों के खाते (Accounts)—नये ग्राहक का खाता खोलने से पूर्व बैंक को उसके बारे में संतोषजनक जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिए अन्यथा उसे जोखिम उठानी पड़ सकती है और वह दोषी ठहराया जा सकता है। यदि बैंक ने नये ग्राहक के बारे में संतोषजनक जांच पड़ताल कर ली है तो फिर ग्राहक ने जो रुपया जमा किया हो वह कैसा है और कहां से आया है उसके बारे में बैंक को कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

ग्राहक दो प्रकार के होते हैं :—(१) वैयक्तिक खाता (Personal Account) (२) *अवैयक्तिक खाता (Impersonal Account)*। अवैयक्तिक खाते कम्पनियों, संस्थाओं तथा म्युनिस्पल बोर्ड इत्यादि के होते हैं। हम यहाँ दोनों प्रकार के खातों के बारे में लिखेंगे।

वैयक्तिक खाते—जब कोई व्यक्ति हिसाब खोलता है तो उसके हस्ताक्षरों के नमूने बैंक लेता है। यदि ग्राहक अपने खाते पर चेक काटने तथा चेकों, हुंडियों या बिलों इत्यादि पर बेचान (Enborsement) का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को देना चाहता है तो बैंक उससे अपने फार्म पर इस आशय का लिखित आदेश ले लेता है। यदि ग्राहक अपना कोई एजेंट नियुक्त करता है तो उसके क्या अधिकार होंगे यह लिख देना आवश्यक है। यदि ग्राहक ने उसके अधिकारों का स्पष्टीकरण नहीं किया है तो वह उन सब अधिकारों का प्रयोग कर सकता है जो बैंकिंग सम्बन्धी कारबार में होते हैं।

नाबालिग़ (Minor)—बैंक नाबालिग को बिना जोखिम के खाता खोलने दे सकता है किन्तु यदि नाबालिग़ को भूल से बैंक ने उसका जितना रुपया जमा है उससे अधिक निकाल लेने दिया तो बैंक उससे वसूल नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक कि बैंक नाबालिग को ओवर-ड्राफ्ट नहीं देता तब तक कोई जोखिम नहीं होती। किन्तु बैंक अधिकतर नाबालिगों का खाता उनके माता-पिता के नाम से खोलते हैं। नाबालिग किसी का एजेंट बन सकता है।

विवाहिता स्त्री—विवाहिता स्त्री चालू खाता खोल सकती है और वह चेक काट सकती है। लेकिन यदि किसी बैंकर ने किसी स्त्री को कर्ज़ दे दिया है तो बैंक उसको जेल नहीं भिजवा सकता केवल उसकी व्यक्तिगत पृथक् जायदाद या स्त्री धन को कुर्क करवा सकता है। किन्तु स्त्रियों की सम्पत्ति में बहुत कानूनी उलझनें होती हैं इस कारण बैंक उन्हें अधिकतर ऋण नहीं देते। यदि विवाहिता स्त्री ने कोई कर्ज़ लिया है तो उसका पति उसके लिए जिम्मेदार न होगा।

संयुक्त खाता (Joint Account)—दो या दो से अधिक व्यक्तियों के नाम में चालू खाता खोला जा सकता है जो साझीदार न हों लेकिन बैंकर को इतनी सावधानी बरतनी चाहिए कि वह उन व्यक्तियों से एक लिखित आदेश प्राप्त कर ले कि उस खाते का सचालन किस प्रकार होगा। किस प्रकार बिल, हुंडी या चेक इत्यादि का बेचान (Endorsement) होगा और यदि उनमें से किसी की मृत्यु हो जावे तो बाकी किसको दी जावेगा।

जब तक संयुक्त खाता खोलने वाले सब व्यक्ति किसी एक को चेकों पर हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं दे देते तब तक चेक, बिल तथा अन्य सभी पत्रों पर सब के हस्ताक्षर होना चाहिए। यदि किसी की मृत्यु हो जावे तो जो शेष व्यक्ति जीवित रह गए हैं बाकी रुपये के अधिकारी वे लोग होते हैं। किन्तु जहाँ तक उस मरे हुए व्यक्ति के हिस्से का प्रश्न है यह बचे हुए लोग मरे हुए व्यक्ति के ट्रस्टी होते हैं। अतएव बैंक के लिए यह आवश्यक है कि खाता खोलते समय ही इस सम्बन्ध में निश्चित आदेश ले लें कि मरने पर रुपया किसको दिया जावे। साथ ही बैंक को सभी व्यक्तियों से इस बात की लिखित स्वीकृति ले लेनी चाहिए कि यदि बैंक ओवर ड्राफ्ट देगा तो वे सभी सम्मिलित तथा व्यक्तिगत रूप से उसके देनदार होंगे। यदि बैंक ऐसा नहीं करेगा तो वे लोग उसके सम्मिलित रूप से ही देनदार होंगे और यदि उनमें एक मर गया तो मरे हुए व्यक्ति की सम्पत्ति से बैंक अपना रुपया वसूल नहीं कर सकेगा। केवल बचे हुए व्यक्ति उसके देनदार रहेंगे।

दिवालिया—जैसे ही कि बैंकर को ज्ञात हो कि किसी ग्राहक ने दिवालिया घोषित किये जाने की अदालत में प्रार्थना की है अथवा उसने अपने लेनदारों (Creditors) को उनके रुपये का चुकाना बंद कर दिया है अथवा वह ऐसा करने जा रहा है तो बैंक को उससे तुरन्त व्यवहार बंद कर देना चाहिए। दिवा लिए की सारी सम्पत्ति पर आफिशियल रिसिवर का अधिकार होता है जिसका

प्रबंध वह उस दिवालिये के लेनदारों (Creditors) के लाभ के लिए करता है। जिसको अदालत ने ऋणमुक्त-दिवालिया (Discharged Bankrupt) घोषित नहीं कर दिया उसका खाता खोलने में बहुत जोखिम है। इस कारण बैंक उन दिवालियों का जो अदालत से ऋणमुक्त नहीं घोषित किए गए हैं खाता नहीं खोलते।

साझेदारी (Partnership)–प्रत्येक साझीदार को यह अधिकार है कि वह फर्म के नाम में खाता खोले और फर्म के लिए चेकों, बिलों को काटे, उन पर बेचान करे और हुंडियों और बिलों को स्वीकार करे। जो कुछ वह फर्म के नाम से करता है फर्म उससे बंध जाती है अर्थात् फर्म उसकी जिम्मेदार हो जाती है फिर चाहे अन्य साझीदारों ने उसको यह अधिकार न भी दिया हो। हाँ, उस व्यक्ति या बैंक इत्यादि के लिए फर्म उत्तरदायी नहीं होगी जो वह जानता हो कि उस साझीदार को ऐसा करने का अधिकार नहीं है। अस्तु बैंकर एक साझीदार की प्रार्थना पर ही फर्म के नाम खाता खोल सकता है किन्तु व्यवहार में बैंकर को ऐसा कभी भी न करना चाहिए कि वह एक साझीदार की प्रार्थना पर फर्म के नाम खाता खोल दे या ऐसे चेकों का भुगतान करे जिन पर केवल एक साझीदार के हस्ताक्षर हों। ऐसा वह तभी कर सकता है जब वह अन्य सभी साझीदारों से इस आशय का लिखित आदेश ले ले। जब किसी फर्म के नाम हिसाब खोला जावे तो बैंक को सभी साझीदारों से लिखित आदेश ले लेना चाहिए कि वे उस बैंक में हिसाब खोलना चाहते हैं। हिसाब का संचालन किस प्रकार होगा, कौन हस्ताक्षर करेगा इत्यादि बातों का भी उसमें उल्लेख होना चाहिए और इस बात का भी उसमें उल्लेख होना चाहिए कि सब साझीदार सम्मिलित रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से बैंक द्वारा फर्म को दिए गए ऋण के लिये जिम्मेदार होंगे। यदि फर्म ऋण की ज़मानत स्वरूप अपनी कोई सम्पत्ति गिरवी रक्खे तो उसके प्रलेख (Document) पर सब साझीदारों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।

बैंक को एक फर्म का खाता किसी एक साझीदार के नाम न खोलना चाहिए। फर्म का हिसाब फर्म के नाम में ही खोलना चाहिए और न बैंकर को किसी ऐसे चेक को लेना चाहिए जो फर्म के नाम काटा गया हो और कोई साझीदार अपने व्यक्तिगत खाते में जमा करना चाहता हो जब तक कि सब साझीदारों की अनुमति न हो। लेकिन यदि कोई साझीदार फर्म के खाते पर अपने पक्ष में चेक काटता है तो बैंक को पूँछ ताछ करने की आवश्यकता नहीं है।

जब कोई साझीदार फर्म से अलग होता है तो भविष्य में फर्म जो कार-बार करती है उसका दायित्व (Liability) उस पर न होगा। किन्तु यदि उन्होंने फर्म से अलहदा होने की सूचना बैंक को नहीं दी है तो भविष्य में भी बैंक फर्म को जो ऋण देगा उसके लिए वे जिम्मेदार होंगे। ऐसी दशा में जब बैंक को यह सूचना मिले कि कोई साझीदार फर्म से हट रहा है तो उसको पहले खाते बन्द कर देना चाहिए और एक नया खाता खोलना चाहिए नहीं तो अलहदा होने वाला साझीदार बैंक द्वारा फर्म को उस समय के दिए हुए कर्ज के दायित्व से मुक्त हो जावेगा जब कि वह फर्म का साझीदार था। फर्म के टूटने पर भी बैंक को यही करना चाहिए।

कम्पनियाँ—जब किसी मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी (Joint Stock Company) के नाम में खाता खोला जावे तो बैंक को उस प्रस्ताव की नकल माँगनी चाहिए जो बोर्ड आफ डायरैक्टरों ने उस बैंक को कम्पनी का बैंकर नियुक्त करते समय स्वीकार किया हो। उस प्रस्ताव में इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख होना आवश्यक है कि कम्पनी के खाते का सचालन कौन करेगा। उस प्रस्ताव के साथ बैंकर को कम्पनी की रजिस्ट्री का प्रमाण पत्र, तथा कारबार आरम्भ करने का प्रमाण पत्र भी भेजना चाहिए। बैंक इनको देखकर वापस कर देगा। इन कागजों के अतरिक्त बैंक को "कम्पनी का स्मारक पत्र" (Memorandum of Association) तथा कम्पनी की नियमावली (Articles of Association) तथा आय-व्यय निरीक्षक (आडिटर) द्वारा प्रमाणित लेनी-देनी का लेखा (Blance Sheet) और माँग लेना चाहिए।

बैंक को कम्पनी का स्मारक पत्र ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए जिससे उसे यह ज्ञात हो जावे कि कम्पनी के कारबार का क्या स्वरूप है और कम्पनी तथा उसके डायरैक्टरों (सचालकों) को क्या क्या अधिकार हैं। कम्पनी की नियमा-वली को भी बैंकर को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए विशेषकर कम्पनी के हिसाब खोलने, चेक, हुंडी, प्रामिसरी नोटों, तथा अन्य प्रलेखों (Documents) पर हस्ताक्षर करने के सम्बन्ध में क्या नियम है। बैंक को यह जान लेना चाहिए कि इस सम्बन्ध में बोर्ड की मीटिंग में ही निर्णय हो सकता है अथवा सचालन बोर्ड (Board of Directors) को यह अधिकार किसी एक डायरैक्टर को दे देने का अधिकार प्राप्त है।

जब भी कम्पनी बैंक से ऋण लेना चाहे तो बैंक को इस आशय के

संचालन बोर्ड (Board of Directors) के प्रस्ताव की प्रमाणित नकल माँगनी चाहिए जिसमें ओवर ड्राफ़्ट या ऋण लेने का अधिकार दिया गया हो और ज़मानत क जमा करने तथा तत्सम्बन्धी प्रलेखों पर हस्ताक्षर करने का अधिकार प्रदान दिया गया हो। बैंक को यह भी देख लेना चाहिए कि वह प्रस्ताव कम्पनी के स्मारक पत्र तथा नियमावली के अनुसार है या नहीं। बैंकर को यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि ऋण किस कार्य के लिए लिया जा रहा है और यदि उस रुपये को कोई डायरैक्टर गबन कर ले तो भी कम्पनी बैंक के लिए देनदार होगी।

कम्पनियाँ जो व्यापार नहीं करतीं—कुछ ऐसी कम्पनियाँ भी होती हैं जिनका उद्देश्य व्यापार करना नहीं होता वरन् विज्ञान, साहित्य, धर्म तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति होता है। उनके सदस्यों को उस कम्पनी से होने वाला लाभ नहीं बाँटा जा सकता। ऐसी कम्पनियों का खाता खोलने से वही सब काम करना होगा जो व्यापारिक कम्पनियों के साथ करने पड़ते हैं। केवल इन कम्पनियों को कारबार आरम्भ करने का प्रमाण पत्र नहीं देना पड़ता। यदि ऐसी कम्पनी ऋण लेना चाहे तो बैंकर को यह पता लगा लेना चाहिए कि उस कम्पनी के अधिकार ऋण लेने के सम्बन्ध में क्या है।

भुगतान करने वाला बैंकर (Paying Banker)—भुगतान करने वाले बैंक का यह पहला कर्तव्य है कि वह अपने ग्राहक के चेकों का भुगतान करे किन्तु बैंकर नीचे लिखी शर्तों के पूरा होने पर ही चेक का भुगतान करेगा। (१) ग्राहक का बैंक में चालू खाता या कोई अन्य ऐसा खाता होना चाहिए जिस पर वह चेक काटने की आज्ञा देता है (२) खाते में चेक का भुगतान करने के लिए यथेष्ट रुपया होना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो ओवर ड्राफ्ट का प्रबन्ध होना चाहिए (३) चेक को उसका पाने वाला (Holder) या उसका एजेंट बैंक के कारबार के घंटों में उपस्थित करे (४) चेक ठीक प्रकार से लिखा या काटा गया हो (५) और कोई कानूनी कारण उस चेक को अस्वीकार करने का न हो।

यदि चेक पर चेक काटने वाले (Drawer) के हस्ताक्षर हों, उसके भुगतान की तारीख अगली न हो अर्थात् उसके भुगतान का समय हो गया हो, और वह बहुत पुराना (Stale) न हो गया हो, यदि शब्दों और अंकों में रकम एक समान हो, यदि वह आर्डर चेक है तो उस पर ठीक बेचान हुआ हो, और यदि उसमें कोई परिवर्तन हुआ हो तो उस पर काटने वाले (Drawer) के हस्ताक्षर हों तो चेक को ठीक माना जावेगा।

नीचे लिखे कारण होने पर बैंक चेक का भुगतान करना रोक देगा :—

(१) जब ग्राहक ने उसका भुगतान रोक दिया हो।

(२) यदि बैंक को ज्ञात हो जावे कि भुगतान के लिए चेक उपस्थित करने वाला चेक का सही मालिक नहीं है।

(३) यदि ग्राहक के दिवालिया हो जाने, मर जाने, या पागल हो जाने की खबर बैंक को लग गई हो। यदि कम्पनी हो और उसके टूटने का नोटिस दे दिया गया हो।

(४) जब ग्राहक ने अपने हिसाब में जो कुछ भी बाकी हो उसको किसी दूसरे व्यक्ति के नाम कर दिया हो और उसकी सूचना बैंक को हो।

(५) यदि बैंकर को यह मालूम हो जावे कि ग्राहक ट्रस्ट के रुपये को अपने लाभ के लिए लेना चाहता है।

(६) जब अदालत की आज्ञा (Garnishee order) हो कि ग्राहक अपने खाते से रुपया न निकाले।

जब बैंकर चेक का भुगतान नहीं करता और उसे वापस करता है तो उसके साथ एक स्लिप लगाकर उसका कारण लिख देता है (देखो अध्याय १)

बैंकर की जोखिम— चेक का भुगतान करने में बैंक को दो मुख्य जोखिमों का सामना करना पड़ता है। (१) ग्राहक के हस्ताक्षरों का जाली होना (२) रकम को बढ़ा देना या अन्य कोई परिवर्तन कर देना।

बैंकर के पास अपने ग्राहक के हस्ताक्षर होते हैं इस कारण यदि हस्ताक्षरों में तनिक भी अन्तर हो तो उसे चेक का भुगतान न करना चाहिये। यदि जाल बनाने वाला ऐसी होशियारी से जाल बनावे कि बैंकर यह जान न सके कि यह जाली हस्ताक्षर है और वह चेक का भुगतान कर दे तो भी बैंकर उतना रुपया ग्राहक के हिसाब में से कम नहीं कर सकता। यह हानि बैंकर को ही उठानी होगी। परन्तु हाँ यदि ग्राहक को यह मालूम है कि एक जाली चेक बैंक के सामने उपस्थित किया जा रहा है और वह उसकी सूचना बैंक को नहीं देता तो अवश्य वह उसका जिम्मेदार होगा। उदाहरण के लिए एक ग्राहक की पत्नी अपने पति के जाली हस्ताक्षर करके बैंक से चेक का भुगतान ले लेती थी और अन्त में उसने आत्म हत्या कर ली। मुकदमें का फैसला यह हुआ कि ग्राहक को यह हानि उठानी होगी। बैंक वह रुपया ग्राहक के खाते से कम कर लेगा।

यदि चेक में कोई ऐसा परिवर्तन कर दिया गया है जिससे उसकी सुरक्षा बढ़ती हो तब तो कोई हानि नहीं परन्तु यदि रक़म बढ़ा दी गई हो और बैंक असावधानी से उसका भुगतान कर दे तो ग्राहक उसका देनदार न होगा। किन्तु यदि ग्राहक ने ही चेक में रक़म ऐसी असावधानी से लिखी हो जिससे उसको बढ़ाया जा सकता हो तो ग्राहक उस हानि के लिए जिम्मेदार होगा। बैंक को चेक को ध्यानपूर्वक देखकर उसी के अनुसार उसका भुगतान करना चाहिए। यदि चेक रेखांकित है तो उस चेक का भुगतान किसी बैंक के द्वारा ही करना चाहिए। यदि उस चेक पर विशेष रेखांकन (Special Crossing) है तो भुगतान उसी बैंक को करना चाहिए जिसका नाम उसमें दिया हो।

चेकों का रुपया वसूल करने वाला बैंक—(Collectg Banker) यदि वसूल करने वाला बैंक अपने ग्राहक के बिना रेखांकित किये हुए चेक का रुपया वसूल करता है और बाद को यह ज्ञात होता है कि उस चेक पर जाली बेचान (Forged Endorsement) है या बैंक का ग्राहक उसका वास्तविक स्वामी नहीं है अर्थात् चेक चुराया हुआ है तो वसूल करने वाले बैंक को उस चेक के असली मालिक को रुपया देना होगा। हाँ बैंकर अपने ग्राहक से हानि की पूर्ति कर सकता है।

किन्तु यदि चेक रेखांकित (Crossed) है और बैंक के पास पहुँचने से पहले वह रेखांकित कर दिया गया है साथ ही बैंक किसी ग्राहक के लिए उसका भुगतान बिना यह जाने कि उसका ग्राहक उस चेक का वास्तविक स्वामी नहीं है ले लेता है तो वसूल करने वाले बैंक से उस चेक का असली मालिक रुपया वसूल नहीं कर सकता।

यदि किसी रेखांकित चेक पर यह लिखा हो कि रुपया पाने वाले के हिसाब में जमा करो (Account Payee only) तो वसूल करने वाले बैंक को ग्राहक के हिसाब में ही जमा करना चाहिए।

श्यकताओं को भली भाँति पूरा कर सकें। प्रारम्भिक अवस्था में स्थानीय इकाई बैंकों (Unit Banks) के द्वारा उस क्षेत्र में जनता को बैंकों से कारबार करने का अभ्यास पड़ता है बाद में फिर बड़े बैंक वहाँ अपनी शाखें स्थापित कर सकते हैं। अतएव भारत की विशालता को देखते हुए स्थानीय इकाई बैंक का यहाँ स्थान है। साथ ही हमें यह न भूलना चाहिए कि मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंक किसी भी देश में उद्योग गृह धंधों को, साधारण किसानों को, नौकरी या अन्य पेशा करने वाले लोगों को, छोटे छोटे ठेकेदारों को साख नहीं दे सकते। इनको छोटे स्थानीय बैंक ही साख दे सकते हैं।

कुछ देशों में व्यापारिक कारबार के साथ-साथ बैंक उद्योग-धंधों को भी आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं, इसे मिश्रित बैंकिंग कहते हैं। जरमनी और जापान में मिश्रित बैंकिंग प्रचलन था और उससे वहाँ के धन्धों को खूब प्रोत्साहन मिला। परन्तु यह भी निर्बलता का एक कारण बन जाता है। क्योंकि व्यापारिक बैंकों को थोड़े समय के लिए डिपाजिट मिलती है और उस रुपये को धन्धों में लम्बे समय के लिए फँसा देना जोखिम को मोल लेना है। सच तो यह है कि प्रत्येक देश में औद्योगिक उन्नति के प्रारम्भिक काल में मिश्रित बैंकों का प्राधान्य रहा। जब उद्योग-धंधे विकसित और उन्नत हो गए और जनसाधारण उनमें अपनी पूँजी लगाने लगे तब व्यापारिक बैंक उद्योग-धन्धों से हटकर शुद्ध व्यापारिक कारबार करने लगे। अब अधिकांश देशों में मिश्रित बैंक क्रमशः शुद्ध व्यापारिक बैंक ही बनते जा रहे हैं।

भारतवर्ष में आरम्भ में कुछ मिश्रित बैंकों की प्रवृत्ति रही परन्तु बहुत जल्दी ही भारतीय बैंकों ने इंगलैंड की पद्धति को अपनाकर शुद्ध व्यापारिक बैंकिंग कारबार को ही प्राथमिकता दी और आज देश में बैंक शुद्ध व्यापारिक कारबार ही करते हैं। अतएव जहां तक मिश्रित बैंकों से होने वाली निर्बलता का प्रश्न है इस देश के बैंकों में वह नहीं पाई जाती।

परन्तु पिछले दिनों में भारतवर्ष में एक नई और कुछ अर्थों में अस्वस्थकर प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है। दूसरे महायुद्ध के समय प्रत्येक बड़े व्यवसायी और उसके सहयोगियों ने बैंक स्थापित करना आरम्भ कर दिए। आज देश में कोई बड़ा उद्योगपति नहीं है जिसका एक बैंक न हो। बिड़ला, डालमिया, सिंघानिया, सेकसरिया, ताता सभी बड़े उद्योगपतियों ने अपने बैंक स्थापित कर रक्खे हैं। यह स्थिति स्वस्थकर नहीं है। आज देश में

क्रमशः सभी धन्धों और बैंकिंग पर कुछ प्रमुख उद्योगपतियों का प्रभुत्व स्थापित होता जा रहा है यह आर्थिक शक्ति जो कुछ व्यक्तियों के हाथ में आ रही है वह देश की राजनैतिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए बाधक सिद्ध होगी।

(३) **विनियोग (Investment)** :—बैंकों की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण उनकी गलत विनियोग नीति होती है। जब बैंक भूल से गलत कारबार में अथवा जोखिम के कारबार में रुपया लगा देते हैं तो आर्थिक संकट के समय उनकी स्थिति डवाडोल हो जाती है और वे असफल हो जाते हैं। भारतवर्ष में धन को तरल लेनी (Liquid Assets) में लगाने की सुविधायें अधिक नहीं हैं। अधिकतर सरकारी प्रतिभूति (सिक्यूरिटी) में ही रुपया लगाना पड़ता है। जिन देशों में औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है उन देशों में ऋण देने का क्षेत्र सीमित होता है। भारतवर्ष में जो भी बैंक असफल हुए हैं यदि उनका इतिहास देखा जावे तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि उन बैंकों ने अपना रुपया जोखिम की जगह फँसा दिया था। गलत विनियोग (Investment) ही उनकी असफलता का मुख्य कारण था।

(४) **आर्थिक संकट के कारण असफलता** :—जब देश में आर्थिक संकट आता है मुद्रा (Currency) का संकोचन (Deflation) होता है तथा वस्तुओं का मूल्य गिरने लगता है तो सुदृढ़ बैंकों की स्थिति भी कठिन हो जाती है। ऐसी दशा में जिस बैंक में भी तनिक सी कमज़ोरी होती है वही धराशायी हो जाता है। प्रथम योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त योरोपीय देशों में जो आर्थिक संकट उपस्थित हुआ उसके फल स्वरूप उन देशों में बहुत से बैंक असफल हो गए। यद्यपि भारतवर्ष में भी कुछ बैंक असफल हुए परन्तु यहां स्थिति इतनी नहीं बिगड़ी जितनी कि योरोपीय देशों की बिगड़ गई।

बैंकों की असफलता और केन्द्रीय बैंक :—जिस देश में केन्द्रीय बैंक प्रभावशाली होता है उसका नेतृत्व अच्छा होता है और वह बैंकिंग की सुदृढ़ परम्परायें स्थापित कर देता है वहां बैंकों की असफलता कम होती है। सौभाग्यवश भारतवर्ष में रिज़र्व बैंक की स्थापना हो चुकी है, उसको बैंकों के कार्य के निरीक्षण के अधिकार प्राप्त हैं। वह एक सजग प्रहरी की भांति बैंकों के कार्यों को देखता रहता है और

उन्हें नेतृत्व प्रदान करना है। साथ ही भारत सरकार ने एक बैंक कानून भी बना दिया है जिससे बैंकिंग जगत् में अच्छी परम्परायें स्थापित होंगी। आशा है कि भविष्य में भारतीय बैंक रिज़र्व बैंक के नेतृत्व में सुदृढ़ और बलवान बनेंगे।

अब हम भारतीय बैंकों की असफलता का संक्षिप्त इतिहास लिखेंगे। इससे यह ज्ञात होगा कि जो बैंक भारत में असफल हुए उसका मुख्य कारण क्या था।

भारतवर्ष में यों तो इक्का दुक्का बैंक टूटते रहे किन्तु १९१३ १४ में बैंकों के धराशायी होने की एक बाढ़ सी आ गई। अनेक बैंकों ने अपना कारबार बन्द कर दिया और बहुतों का रुपया डूब गया।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जावे तो यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि असफल होने वाले बैंकों में नये बैंक ही अधिक थे। १९१३-१४ से आज तक जितने बैंक इस देश में असफल हुए हैं उनमें दो तिहाई बैंक ग्यारह वर्ष से कम के थे। जो बैंक पुराने होते जाते हैं उनमें असफल बैंकों का प्रतिशत घटता जाता है।

भारतीय बैंकों का असफलता के इतिहास से हमें एक बात और देखने को मिलती है कि अधिकतर वे ही बैंक धराशायी होते हैं जो बहुत नगण्य हैं, जिनकी पूँजी बहुत कम है। जो भी बैंक इस देश में बन्द हुए हैं उनमें से अधिकांश की चुकता पूँजी एक लाख रुपए थे। ऐसे बहुत कम बैंक बन्द हुए जिनकी पूँजी पाँच लाख से अधिक थी।

अब हम यहां कुछ प्रतिनिधि बैंकों की असफलता के कारण लिखेंगे :—

(१) बैंक कानून का न होना, जनता का बैंकिंग के सम्बन्ध में अनजान होना और प्रबन्धकों का ईमानदार न होना :—बहुत से बैंकों की असफलता का कारण यह था कि कुछ बेईमान व्यापारियों ने बैंक कानून न होने के कारण मनमाने ढंग से बैंक स्थापित किए और जनता को खूब ठगा। यह बैंक वास्तव में बहुत छोटे थे उनकी चुकता पूँजी दो तीन लाख से अधिक नहीं थी किन्तु वे बड़े-बड़े अक्षरों में छपवाते कि हमारी अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) कई करोड़ है। साधारण जनता अधिकृत पूँजी और चुकता पूँजी में कोई भेद नहीं समझती थी। वह समझती थी कि इस बैंक की पूँजी कई करोड़ रुपए है

जबकि उसकी वास्तविक चुकता पूँजी (Paid up Capital) केवल लाख दो लाख रुपए ही थी। किसी किसी बैंक की चुकता पूँजी तो केवल कुछ हजार ही होती थी। यह बैंक विज्ञापन करते कि हमारी शाखायें देश भर में फैली हुई हैं और कुछ ने तो यहाँ तक सूचित किया कि हम लंदन पैरिस इत्यादि नगरों में ब्रांच खोल रहे हैं। भोली और अनभिज्ञ जनता यह समझ कर कि यह बहुत बड़े बैंक हैं उनमें अपना रुपया जमा कर देती और कुछ समय बाद यह बैंक अपना कारबार बंद कर देते। १६४० के उपरान्त जो इस देश में नये बैंकों की स्थापना की एक बाढ़ सी आई उसमें भी बहुत से छोटे-छोटे बैंक स्थापित हुए और १६४५—४६ में बहुत से ऐसे बैंक विशेष कर बंगाल के बैंक धराशायी हो गए। इन बैंकों की पूँजी बहुत कम थी, उन्होंने जल्दी-जल्दी दूर-दूर स्थानों में तथा सुदूर प्रान्तों में अपनी ब्रांच स्थापित कर दी और दलाल रख कर ऊँचा सूद देकर भोली जनता से जमा लेना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे बहुत जल्दी धराशायी हो गए और बहुत से लोगों का रुपया डूब गया। इस प्रकार के बैंकों में पूना बैंक, अमृतसर नेशनल बैंक, पायनियर बैंक, हिन्दुस्तान बैंक मुल्तान, काठियावाड़ अहमदाबाद कारपोरेशन, ब्रिटिश इंडिया बैंक, बाम्बे बैंकिंग कारपोरेशन, पायनियर बैंक बाम्बे, क्रैडिट बैंक आव इंडिया, बंगाल नेशनल बैंक आव इंडिया, आर्यन बैंक, मैट्रापालिटन बैंक कलकत्ता इत्यादि मुख्य हैं। इस प्रकार के बैंक मुख्यतः पंजाब और बंगाल में अधिक स्थापित हुए। १६४६ के आस पास तो बंगाल में लगभग ६० छोटे-छोटे बैंक बंद हो गए।

(२) लम्बे समय के लिए उद्योग-धन्धों में रुपया लगाना :—कुछ अच्छे और बड़े बैंक इस कारण नष्ट हो गए क्योंकि उन्होंने अपना रुपया लम्बे समय के लिए कारखानों में लगा दिया। जब तक उन धंधों की आर्थिक स्थिति अच्छी रही उन्हें लाभ होता रहा तब तक सब ठीक रहा परन्तु जब आर्थिक संकट आया धन्धों को हानि होने लगी तो इन बैंकों की स्थिति खराब हो गई और वे धराशायी हो गए। इन बैंकों में लाहौर का प्यूपिल्स बैंक, अमृतसर बैंक लाहौर, ताता औद्योगिक बैंक, बैंक आव बर्मा, नाथ बैंक कलकत्ता, तथा ज्वाला बैंक आगरा मुख्य हैं।

(३) सट्टे की जोखिम :—कुछ बैंक सोने चाँदी तथा अन्य वस्तुओं के सट्टे में फँस कर अपना विनाश करते हैं। बैंक का कारबार करने वाला यदि सट्टे में हाथ डाले तो उस बैंक का विनाश अवश्यम्भावी है। इंडियन स्पीशी बैंक, एलाइंस बैंक आव शिमला इस श्रेणी में आते हैं।

(४) दुर्भाग्य वश असफल होना :—कभी कभी अच्छे बैंक दुर्भाग्य वश कठिन परिस्थिति में फँस जाते हैं और धराशायी हो जाते हैं एलाइंस बैंक शिमला और ट्रावनकोर नेशनल क्विलन बैंक दुर्भाग्यवश ऐसी परिस्थिति में फँस गए।

अभी हाल में बंगाल में नाथ बैंक जैसे बड़े बैंक तथा अन्य बंगाली बैंकों के ठप्प हो जाने से एक विशेष स्थिति उत्पन्न हो गई। रिज़र्व बैंक के नेतृत्व में बंगाल में बैंकों के एकीकरण (Amalgamation) का आंदोलन चल पड़ा है। भविष्य में भारत में बैंकों का एकीकरण हो जाने पर ही थोड़े से सबल और सुदृढ़ बैंक देश की सेवा कर सकेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि जहां तक हो सके बैंकों का एकीकरण शीघ्र हो जावे. आज की स्थिति में बहुत छोटे बैंकों के लिए बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं अतएव उनका एकीकरण हो जाना आवश्यक है।